श्री

गोकुलदास संस्कृत ग्रन्थमाला

170

महाकवि भट्टनारायण प्रणीतम्

वेणीसंहार नाटकम्

(विस्तृत भूमिका, अन्वय, अनुवाद, 'चन्द्रिका' हिन्दी व्याख्या, व्याकरणात्मक टिप्पणी, संस्कृत व्याख्या)

व्याख्याकार :

डॉ. राकेश शास्त्री

आत्मारामा विहितरतयो निर्विकल्पे समाधौ
ज्ञानोत्सेकाद्विघटिततमोग्रन्थयः सत्त्वनिष्ठाः।
यं वीक्षन्ते कमपि तमसां ज्योतिषां वा परस्तात्
तं मोहान्धः कथमयममुं वेत्तु देवं पुराणम्॥1/23॥

चौखम्भा ओरियन्टालिया

प्राच्यविद्या, आयुर्वेद तथा दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक

दिल्ली-110007 (भारत)

॥श्रीः॥

गोकुलदास संस्कृत ग्रन्थमाला

170

महाकवि भट्टनारायण प्रणीतम्

वेणीसंहार नाटकम्

(विस्तृत भूमिका, अन्वय, अनुवाद, 'चन्द्रिका' हिन्दी व्याख्या, व्याकरणात्मक टिप्पणी, संस्कृत व्याख्या सहित)

व्याख्याकार :

डॉ. राकेश शास्त्री

डी.लिट्

सेवा निवृत्त-अध्यक्ष संस्कृत-विभाग

श्री गोविन्द गुरु राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,

बाँसवाडा (राज.)

चौखम्भा ओरियन्टालिया

प्राच्य-विद्या, आयुर्वेद एवं दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक

दिल्ली–110007 (भारत)

प्रास्ताविकम्

संस्कृत काव्य साहित्य में नाटकों की महत्ता विद्वानों द्वारा **'काव्येषु नाटकम् रम्यम्'** कहकर स्वीकार की गयी है। इसीलिए अनेक महाकवियों द्वारा अनेकानेक नाटकों की संरचना की गयी। अब तक के संस्कृत ग्रन्थों की व्याख्या के लेखनक्रम में जिस सरलशैली में महाकवि कालिदास विरचित 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्', महाकवि हर्ष प्रणीत 'नागानन्दम्', 'रत्नावली' नाटिका, महाकवि भास विरचित 'स्वप्नवासवदत्तम्', 'प्रतिमानाटकम् और महाकवि विशाखदत्त के 'मुद्राराक्षसम्' आदि नाट्यकृतियों की व्याख्याएँ मेरे द्वारा विस्तृत भूमिका व 'चन्द्रिका' हिन्दी, संस्कृत व्याख्या सहित प्रस्तुत की गयीं।

इसी क्रम में यह व्याख्या प्रस्तुत की जा रही है। इस लेखन के पीछे एक महत्त्वपूर्ण प्रयोजन यह भी है कि वर्तमान समय की यह महती आवश्यकता है कि यदि हम अपनी मातृभाषा संस्कृत को जीवित रखना चाहते हैं तो सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य के जीवनोपयोगी प्राचीन ग्रन्थों की व्याख्या को हिन्दी माध्यम से सरलरूप में प्रस्तुत करना होगा, जिससे सहृदय एवं जिज्ञासु पाठक को किसीप्रकार की कठिनाई का अनुभव न हो और उनकी इस भाषा के प्रति दुरूहता और अव्यावहारिकता की भावना पूरी तरह समाप्त हो सके। इसी अभिप्राय को दृष्टिगत रखते हुए प्रस्तुत कृति पर लेखनी चलाने का विनम्र प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत कृति के आरम्भ में विस्तृत भूमिका के अन्तर्गत महाकवि भट्टनारायण उनके वेणीसंहार नाटक तथा उनसे सम्बन्धित अनेकानेक जिज्ञासाओं के समाधान का विनम्र प्रयास किया गया है। तत्पश्चात् द्वितीय भाग में नाटक की मूल संस्कृत को, पुस्तक में बायीं ओर प्रस्तुत करते हुए,

प्रास्ताविकम्

संस्कृत काव्य साहित्य में नाटकों की महत्ता विद्वानों द्वारा **'काव्येषु नाटकम् रम्यम्'** कहकर स्वीकार की गयी है। इसीलिए अनेक महाकवियों द्वारा अनेकानेक नाटकों की संरचना की गयी। अब तक के संस्कृत ग्रन्थों की व्याख्या के लेखनक्रम में जिस सरलशैली में महाकवि कालिदास विरचित 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्', महाकवि हर्ष प्रणीत 'नागानन्दम्', 'रत्नावली' नाटिका, महाकवि भास विरचित 'स्वप्नवासवदत्तम्', 'प्रतिमानाटकम् और महाकवि विशाखदत्त के 'मुद्राराक्षसम्' आदि नाट्यकृतियों की व्याख्याएँ मेरे द्वारा विस्तृत भूमिका व 'चन्द्रिका' हिन्दी, संस्कृत व्याख्या सहित प्रस्तुत की गयीं।

इसी क्रम में यह व्याख्या प्रस्तुत की जा रही है। इस लेखन के पीछे एक महत्त्वपूर्ण प्रयोजन यह भी है कि वर्तमान समय की यह महती आवश्यकता है कि यदि हम अपनी मातृभाषा संस्कृत को जीवित रखना चाहते हैं तो सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य के जीवनोपयोगी प्राचीन ग्रन्थों की व्याख्या को हिन्दी माध्यम से सरलरूप में प्रस्तुत करना होगा, जिससे सहृदय एवं जिज्ञासु पाठक को किसीप्रकार की कठिनाई का अनुभव न हो और उनकी इस भाषा के प्रति दुरूहता और अव्यावहारिकता की भावना पूरी तरह समाप्त हो सके। इसी अभिप्राय को दृष्टिगत रखते हुए प्रस्तुत कृति पर लेखनी चलाने का विनम्र प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत कृति के आरम्भ में विस्तृत भूमिका के अन्तर्गत महाकवि भट्टनारायण उनके वेणीसंहार नाटक तथा उनसे सम्बन्धित अनेकानेक जिज्ञासाओं के समाधान का विनम्र प्रयास किया गया है। तत्पश्चात् द्वितीय भाग में नाटक की मूल संस्कृत को, पुस्तक में बायीं ओर प्रस्तुत करते हुए,

उसी के सामने दायीं ओर हिन्दी अनुवाद दिया गया है, जिससे पाठक को मूल संस्कृत का अभिप्राय समझने में सुविधा हो सके।

श्लोकों के मूल को बड़े अक्षरों में तथा उसके हिन्दी अनुवाद को **'बोल्ड'** में करके प्रस्तुत किया गया है। इसके पीछे सरलता ही मुख्य उद्देश्य रहा है। इसके बाद 'चन्द्रिका' हिन्दी व संस्कृत व्याख्या को क्रमशः तीसरे खण्ड में दिया गया है। इस अंश का उद्देश्य वस्तुतः श्लोक के भाव–सौन्दर्य एवं कला–सौन्दर्य से पाठक को पूर्णरूप से अवगत कराना रहा है।

अन्त में परिशिष्ट के अन्तर्गत श्लोकानुक्रमणिका के साथ–साथ नाटक में प्रयुक्त सूक्तियों, छन्दों के विषय में भी जानकारी प्रस्तुत की गयी है। विद्यार्थियों की कठिनाइयों को दृष्टिगत रखते हुए, परीक्षा में पृष्टव्य कुछ लघु प्रश्न भी दिए गए हैं, जिनके आधार पर उन्हें मूल ग्रन्थ में से ही दूसरे अनेक प्रश्न बनाने में भी सुविधा रहे।

इसके अलावा मेरी प्रेरणास्रोत एवं सह–धर्मिणी संस्कृत की अप्रतिम विदुषी **डॉ. प्रतिमा शास्त्री, सेवानिवृत्त, अध्यक्ष, संस्कृत–विभाग, हरिदेव जोशी राजकीय कन्या महाविद्यालय, बाँसवाडा(राज.)** का हृदय से धन्यवाद ज्ञापित करना मैं अपना पुनीत कर्तव्य समझता हूँ, जिनके निरन्तर सहयोग और प्रेरणा से यह गुरुतर कार्य सम्पन्न हो सका।

यह प्रयास कितना सफल है, इसका निर्णय तो संस्कृत के अध्येता छात्र और संस्कृत के सुधी विद्वान् ही कर सकते हैं तथापि इस सम्बन्ध में इतना अवश्य कहना चाहूँगा कि इस व्याख्या की प्रस्तुति में, जो भी अच्छाइयाँ हैं, वे सब पूज्यपाद गुरुजनों के आशीर्वाद का परिणाम है और त्रुटियाँ मेरी अज्ञानता के कारण हैं। अतः कृपा करके उदारतापूर्वक दृष्टिपात करते हुए, क्षमापूर्वक मार्गदर्शन करने का अनुग्रह करें। इति शुभम्।

वैशाखशुक्ला, तृतीया,
विक्रमसंवत्, 2078

विदुषां वशंवद
राकेश शास्त्री डी.लिट

समर्पणम्

विद्वत्ता एवं सरलता की प्रतिमूर्ति,
वेद, संस्कृत एवं संस्कृति के उन्नयन के लिए
पूर्णतया समर्पित,
अनेकानेक संस्कृत, वेद–ग्रन्थों के लेखक एवं
प्रकाशक
अद्भुत देदीप्यमान व्यक्तित्व,
संस्कृत–शिक्षा के क्षेत्र में
विविध आयामों के संस्थापक, परमस्नेही
परमश्रद्धेय, गुरुवर्य,

डॉ. गौतमजी भाई पटेल,
गुजराज

के कर–कमलों
में
सादर

डॉ. राकेश शास्त्री डी.लिट

विषयानुक्रमणिका

•••

भूमिका

(1) काव्य का स्वरूप– साहित्यशास्त्रियों[1] ने काव्य को प्रथम दृष्ट्या दो भागों में विभाजित किया है– दृश्यकाव्य एवं श्रव्यकाव्य। इनमें भी दृश्यकाव्य जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, देखे जाने के कारण इसे 'दृश्यकाव्य' कहा जाता है। अभिनेता, कथा अथवा काव्य की भावना के अनुसार उसके पात्रों की वेशभूषा को धारण करके मंच पर नाटक के उन पात्रों के आचरण एवं वाणी का, अपनी योग्यता एवं अभ्यास से अत्यन्त सुन्दर अनुकरण करते हैं, जिसे देखकर सहृदय सामाजिक स्वयं को उसी काल एवं परिस्थितियों में अनुभव करता है, जिसमें नाटक की कथावस्तु निबद्ध होती है।

इतना ही नहीं, कलाकारों की अभिनेयता के कौशल से उस कथा का एक पात्र वह दर्शक स्वयं भी हो जाता है और तन्मयता से अनुभव करके वह अत्यधिक आनन्दित अनुभव करता है। काव्य की भाषा में इसे ही 'रूपक' कहते हैं।[2] इसीप्रकार पात्रों की अवस्था का अनुकरण करने के कारण विद्वानों द्वारा इसे 'नाट्य' संज्ञा भी प्रदान की गयी है।[3]

यह दृश्य–काव्य रूपक और उपरूपक भेद से दो प्रकार का होता है। पुनः रूपक के दस भेदों[4] तथा उपरूपक के अट्ठारह भेदों

---

[1]. दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम्।
दृश्यं तत्राभिनेयं तद्रूपारोपात्तु रूपकम्।। साहित्यदर्पण– 6/1 ।

[2]. रूपकं तत्समारोपात्। दशरूपक– 1/4 ।

[3]. अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्। वही 1/7 ।

[4]. नाटकमथ प्रकरणं भाणव्यायोगसमवकारडिमाः।

•••

भूमिका

(1) काव्य का स्वरूप– साहित्यशास्त्रियों[1] ने काव्य को प्रथम दृष्ट्या दो भागों में विभाजित किया है– दृश्यकाव्य एवं श्रव्यकाव्य। इनमें भी दृश्यकाव्य जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, देखे जाने के कारण इसे 'दृश्यकाव्य' कहा जाता है। अभिनेता, कथा अथवा काव्य की भावना के अनुसार उसके पात्रों की वेशभूषा को धारण करके मंच पर नाटक के उन पात्रों के आचरण एवं वाणी का, अपनी योग्यता एवं अभ्यास से अत्यन्त सुन्दर अनुकरण करते हैं, जिसे देखकर सहृदय सामाजिक स्वयं को उसी काल एवं परिस्थितियों में अनुभव करता है, जिसमें नाटक की कथावस्तु निबद्ध होती है।

इतना ही नहीं, कलाकारों की अभिनेयता के कौशल से उस कथा का एक पात्र वह दर्शक स्वयं भी हो जाता है और तन्मयता से अनुभव करके वह अत्यधिक आनन्दित अनुभव करता है। काव्य की भाषा में इसे ही 'रूपक' कहते हैं।[2] इसीप्रकार पात्रों की अवस्था का अनुकरण करने के कारण विद्वानों द्वारा इसे 'नाट्य' संज्ञा भी प्रदान की गयी है।[3]

यह दृश्य–काव्य रूपक और उपरूपक भेद से दो प्रकार का होता है। पुनः रूपक के दस भेदों[4] तथा उपरूपक के अट्ठारह भेदों

---

[1]. दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम्।
दृश्यं तत्राभिनेयं तद्रूपारोपात्तु रूपकम्।। साहित्यदर्पण– 6/1 ।

[2]. रूपकं तत्समारोपात्। दशरूपक– 1/4 ।

[3]. अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्। वही 1/7 ।

[4]. नाटकमथ प्रकरणं भाणव्यायोगसमवकारडिमाः।

का उल्लेख किया गया है,[1] जबकि श्रव्यकाव्य– गद्य, पद्य और चम्पू भेद से तीन प्रकार का होता है। केवल श्रव्य होने से इसे इस संज्ञा से अलंकृत किया गया है। महाकवि बाण की कादम्बरी गद्यकाव्य का और काव्यकार कालिदास का 'रघुवंश' पद्य काव्य का एवं त्रिविक्रमभट्ट का 'नलचम्पू' चम्पूकाव्य के सुन्दर उदाहरण कहे जा सकते हैं, जिनका संक्षेप में इसप्रकार उल्लेख किया जा सकता है–
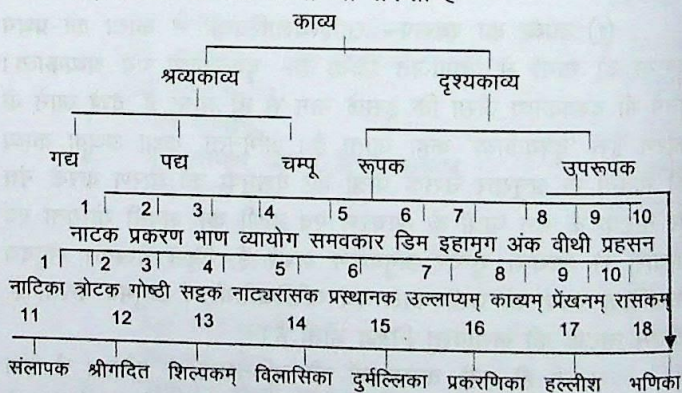
इसमें भी श्रव्य–काव्य की अपेक्षा दृश्य–काव्य प्राचीन समय से ही अधिक लोकप्रिय रहा है। इसीलिए विद्वानों में **'काव्येषु नाटकं रम्यम्'** इत्यादि उक्ति प्रचलित रही है। कहने का अभिप्राय यही है कि काव्यों में नाटक अत्यधिक रमणीय होता है। नाट्यशास्त्र के प्रणेता आचार्य भरतमुनि ने भी जनसामान्य से जुड़ा होने के कारण 'नाट्य' की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है–

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
नासौ योगे न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते।।[2]

ईहामृगांकवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश।। साहित्यदर्पण–6/3।

1. साहित्यदर्पण– षष्ठ परिच्छेद, 4–6।
2. नाट्यशास्त्र, भरतमुनि–1/116।

डॉ. दासगुप्त इस मत से सहमत प्रतीत होते हैं कि वेदमन्त्रों में नाटकीय तत्त्व संवाद, संगीत, नृत्य और अभिनय प्रचुरमात्रा में विद्यमान हैं, साथ ही, तात्कालिक जनजीवन में धार्मिक अवसरों पर, संगीत समारोह एवं नृत्य आदि महोत्सवों से नाटकों का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा था।[1]

उनका मानना है कि नाटक में ज्ञान, शिल्प, कला, नूतन–योजना, कार्यकुशलता आदि सभी का अत्यन्त सुन्दर समन्वय दृष्टि–गोचर होता है। इसीकारण श्रव्यकाव्य की अपेक्षा नाटकों का अत्यधिक महत्त्व है। इस प्रसंग में उल्लेखनीय यह भी है कि यहाँ पर नाटक से अभिप्राय रूपक से ही ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि काव्यशास्त्रियों ने दृश्यकाव्य को 'नाट्य', 'रूपक' और 'रूप' इन सभी शब्दों के माध्यम से कहना स्वीकार किया है, इनमें अभिनेता अपने ऊपर अभिनेय पात्रों के रूप का आरोप कर लेते हैं, इसलिए इसे 'रूपक' कहा जाता है।[2] आचार्य धनंजय के अनुसार– 'अवस्था की अनुकृति ही नाट्य होता है।'[3]

(2) नाटक का स्वरूप– आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण के षष्ठ परिच्छेद में कारिका संख्या–7 से लेकर कारिका संख्या 10 तक नाटक के स्वरूप पर विस्तार से विचार किया है। तदनुसार –

'नाटक की कथावस्तु इतिहास प्रसिद्ध होती है। इसको कम से कम पाँच और अधिकतम दस अंकों में निबद्ध किया जाता है। धीरोदात्त गुणों से युक्त, प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न, प्रतापी, गुणवान् कोई भी राजा, देवता आदि अथवा दिव्यादिव्य गुणों से युक्त रामकृष्णादि नाटक का नायक होता है। नाटक का नायक धीरोदात्त, धीरललित

---

[1]. हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, डॉ.एस.एन.दासगुप्त, वोल्यूम–1, संस्करण–1947, पृ.–44।

[2]. रूपकं तत्समारोपात्, रूपारोपात्तु रूपकम्।

[3]. अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्। दशरूपकम् ।

धीरोद्धत अथवा धीरप्रशान्त कोई भी हो सकता है।' हमारे विवेच्य नाटक वेणीसंहार का नायक धीरोद्धत श्रेणी का भीमसेन रहा है।

नाटक में शृंगार अथवा वीर रसों में से किसी एक की प्रधानता होती है। अन्य सभी रस अंगरूप में प्रयुक्त होते हैं। मुख, प्रतिमुख, गर्भ, अवमर्श और निर्वहण, इन नाट्यसंधियों का प्रयोग किया जाता है। कथावस्तु के विकास के लिए यहाँ गाय की पूँछ को उदाहरणरूप में दिया गया है। कथावस्तु का आकार गाय की पूँछ के आकार के समान शुरू में छोटा, बीच में बढ़े हुए विस्तार वाला और अन्त में एक स्थान पर इकट्ठा होकर समाप्त होने वाला होता है।

इसके अलावा इसमें विलास, धैर्य, समृद्धि और अनेकप्रकार के दूसरे गुणों का भी प्रयोग किया जाता है।[1] इसमें चार या पाँच पुरुष पात्रों की प्रधानता होती है। उल्लेखनीय है कि नाटक के अन्तर्गत युद्ध, वध, भोजन, शाप, मलत्याग, रतिक्रिया, शयन, अधरपान, स्नान और लेपन आदि क्रियाओं के प्रदर्शन का पूर्णतया निषेध होता है।

यदि हम व्यावहारिक दृष्टि से अवलोकन करें तो संस्कृत साहित्य में प्रयुक्त नाटकों में प्रायः उक्त सभी विशेषताएँ देखी जा सकती हैं। **जैसे–** अभिज्ञान शाकुन्तलम् का नायक दुष्यन्त 'धीरोदात्त' गुणों से युक्त है। इसीप्रकार वेणीसंहार नाटक का नायक भीम यहाँ 'धीरोद्धत' नायक की श्रेणी में आता है, जबकि शूद्रक के मृच्छकटिक नाटक में चारुदत्त 'धीरप्रशान्त' नायक के रूप में प्रयुक्त हुआ है, जबकि शूद्रक के 'मृच्छकटिक' नाटक का नायक चारुदत्त धीरललित कोटि में आता है।

(3) नाटक का उद्भव एवं विकास

नाटक अथवा रूपक की उत्पत्ति कब हुई? इस विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद हैं। कुछ विद्वान् इसे ईश्वरीय देन स्वीकार करते हैं तो अन्य इसकी उत्पत्ति वेदों से मानते हैं। उनके अनुसार–

---

[1]. नाट्यशास्त्र–6/7–11 ।

त्रेता युग के आरम्भ में इन्द्र आदि देवताओं ने मिलकर, ब्रह्माजी से सभी वर्णों के लिए मनोरंजन, सुलभ कराने वाले साधन का निर्माण करने की प्रार्थना की। इस पर ब्रह्मा ने चारों वेदों का स्मरण करके, ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रसों को ग्रहण करके, नाट्यवेद नामक 'पंचम वेद' का निर्माण किया और इसका अभिनय 'इन्द्र–ध्वज' नामक महोत्सव के अवसर पर किया गया –

> **एवं संकल्प्य भगवान् सर्ववेदानुस्मरन्**
> **नाट्यवेदं ततश्चक्रे चतुर्वेदां सम्भवम्।**
> **जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च**
> **यजुर्वेदाभिनयान् रसा– नाथर्वणादपि।।**[1]

विद्वानों द्वारा इसे **दैवी उत्पत्ति के सिद्धान्त** की संज्ञा प्रदान की गयी। दूसरे मत के अनुसार– ऋग्वेद में अनेक संवाद–सूक्तों का प्रयोग हुआ है, **जैसे**– इन्द्र–मरुत् संवाद[2], अगस्त्य–लोपामुद्रा संवाद,[3] सरमा–पणि संवाद,[4] विश्वामित्र–नदी संवाद,[5] इन्द्र–इन्द्राणी–वृषाकपि संवाद,[6] पुरुरवा–उर्वशी संवाद[7] और यम–यमी संवाद[8]। यदि सूक्ष्मदृष्टि से विचार करें तो इन संवादों में हमें अभिनेयात्मकता का गुण विशेषरूप से दृष्टिगोचर होता है। विद्वन्मान्यता है कि ये वैदिक संवाद–सूक्त ही कालान्तर में परिमार्जित एवं परिष्कृत होकर नाटकरूप

---

[1]. नाट्यशास्त्र– 1/12, 16, 17 ।
[2]. ऋग्वेद–1/165, 170 ।
[3]. वही– 1/179 ।
[4]. वही– 10/108 ।
[5]. वही– 3/33 ।
[6]. वही– 10/86 ।
[7]. वही– 10 /95 ।
[8]. वही– 10/10 ।

में परिणत हो गए।[1] इसप्रकार इन्हीं संवाद–सूक्तों से नाटकों का विकास हुआ, इसी कारण इस सिद्धान्त को वैदिक–संवाद सूक्तवाद अथवा **विकासवाद का सिद्धान्त** भी कहा जाता है।

इस सिद्धान्त को मानने वालों में प्रो. मैक्समूलर, प्रो. सिल्वाँ लेवी, प्रो. फॉन श्रोएडर एवं डॉ. हर्टल आदि प्रमुखरूप से उल्लेखनीय हैं। प्रो. लेवी के अनुसार– सामवेद में संगीत के तत्त्व विद्यमान हैं तथा अथर्ववेद में नृत्य के तत्त्व हैं। अतः वैदिक युग में नाटकों के सभी उपकरण प्राप्त होते हैं। इसके अलावा प्रो. ऑल्डेनबर्ग, विण्डिश एवं डॉ. पिशेल आदि विद्वानों ने भी इन संवाद–सूक्तों में नाटकीय तत्त्वों की उपस्थिति को स्वीकार किया है।

ऋग्वेद के सूक्तों से पता चलता है कि 'सोमविक्रय' के समय एक प्रकार का अभिनय किया गया था, जिसका उद्देश्य दर्शकों का मनोरंजन करना था। अश्वमेधादि यज्ञों के अवसरों पर तथा उनके अन्तर्गत होने वाले अनुष्ठानों के मध्य में प्राप्त होने वाले अवकाश के समय शुनःशेपादि के प्रसिद्ध आख्यानों का कथन किया जाता रहा है।

इस आधार पर यह कल्पना भी की जा सकती है कि उपर्युक्त प्रसंगों के अवसर पर वैदिक देवताओं के चरित्र विषयक नाटकों का भी अभिनय किया जाता रहा होगा, आरम्भ में हो सकता है कि ये नाटक सर्वांगपूर्ण न रहे हों, फिर भी यह बात तो निःसंदेहरूप से कही जा सकती है कि इनमें संस्कृत नाट्यकला के बीज अवश्य विद्यमान रहे होंगे।[2]

वाजसनेयि–माध्यन्दिन–शुक्ल–यजुर्वेद संहिता एवं तैत्तिरीय ब्राह्मण में 'शैलूष' शब्द की उपलब्धि, इस कथ्य के प्रमाणरूप में प्रस्तुत की जा सकती है। इस शब्द का अर्थ 'नट' होता है। इसके अतिरिक्त

---

[1] . कालिदास और भवभूति के नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ. सुरेन्द्र देव शास्त्री, पृष्ठ–5 ।

[2] . वही ।

कौषीतकि ब्राह्मण[1] में नृत्य, गीत और संगीत को मुख्य विद्याओं में परिगणित किया गया है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि वैदिक एवं ब्राह्मण–काल में नट एवं नाट्य–कला का अस्तित्व विद्यमान था।

इसके अतिरिक्त प्रो. रिजवे का मानना है कि– विश्व की सभी संस्कृतियों में प्रायः मृत आत्माओं के प्रति श्रद्धा प्रदर्शित करने की परम्परा दृष्टिगोचर होती है, जिन्हें प्रसन्न करने के लिए आज भी अनेक प्रकार के अभिनय एवं प्रदर्शनों का आयोजन किया जाता है। इसलिए इन्हीं अभिनेयात्मक आयोजनों को नाटकों का आरम्भिक रूप स्वीकार किया जा सकता है।

प्राचीनग्रन्थ आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र में हम **'इन्द्रध्वज'** जैसे अभिनय की प्रस्तुति का अवलोकन करते हैं। इसीप्रकार के आयोजन आज भी भारतीय परम्परा में वसन्त पंचमी तथा होली जैसे महोत्सवों के अवसरों पर देखे जाते हैं। इसके अतिरिक्त वैदिक यज्ञों तथा धार्मिक अनुष्ठानों के अवसर पर भी संवादात्मक एवं अभिनेयात्मक आयोजनों को देखा जा सकता है। इस आधार पर बहुत अधिक सम्भावना की जा सकती है कि ये आयोजन ही नाटकों के उद्भव में मुख्य कारण रहे होंगे।

इसी प्रसंग में उल्लेखनीय यह भी है कि डॉ. पिशेल ने नाटकों में प्रयुक्त सूत्रधार तथा संस्थापक शब्दों के प्रयोग के आधार पर कठपुतलियों के नृत्य से नाटक के उद्भव को अपनी स्वीकृति प्रदान की है। उनके मत में– प्राचीन समय में भारतवर्ष में कठपुतली का नृत्य हिन्दू समाज में प्रचलित था। इसी के विकसित रूप को नाटक के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

---

[1] . द्रष्टव्य– लेखककृत शांखायन ब्राह्मण, (भाग–1, 2) प्रकाशक, चौखम्भा ओरियन्टालिया, दिल्ली–7। 2020।

इसके विपरीत प्रो. ल्यूडर्स और कोनोव का मानना है कि छाया नाटकों में किए जाने वाले छाया–चित्रों के प्रदर्शन से नाटकों की उत्पत्ति को माना जाना चाहिए। उनके मत में– महाभारत में भी इस प्रकार के संकेत उपलब्ध होते हैं।

जबकि प्रो. हिलेब्राण्ट तथा स्टेनकोनो का मन्तव्य है कि– लोगों में प्रचलित स्वांगों के साथ ही महाभारत एवं रामायण की कथाओं के आधार पर ही नाटकों की उत्पत्ति हुई है, इसप्रकार की सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त प्रो. विंडिश और प्रो. वेबर ने संस्कृत नाटकों में प्रयुक्त होने वाले 'यवनिका' अथवा 'जवनिका' शब्द के आधार पर भारतीय नाटक को यूनानी प्रभाव से जोड़ने का प्रयास किया है, क्योंकि डॉ. वेबर का मानना है कि यूनानियों के सम्पर्क में आने के कारण भारतवर्ष में अभिनय की प्रकृति को प्रोत्साहन की प्राप्ति हुई, किन्तु संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् डॉ.कपिलदेव द्विवेदी ने डॉ. वेबर के इस मत का विस्तारपूर्वक खण्डन किया है।[1] इसके अतिरिक्त प्रो. कीथ भी भारतीय नाटकों पर यूनानी प्रभाव को सिरे से नकारते हैं।[2]

संस्कृत नाटक के उद्भव एवं विकास विषयक उपर्युक्त मान्यताओं के उल्लेख के पश्चात् यदि हम भारतीय परम्परा के विषय में चिन्तन करते हैं तो हम आचार्य भरत द्वारा प्रणीत **नाट्यशास्त्र** में वर्णित नाटक की उत्पत्ति सम्बन्धी कथा को आधार मान सकते हैं। तदनुसार–

एक बार सभी देवताओं ने ब्रह्माजी से इसप्रकार की मनोरंजनात्मक वस्तु के निर्माण की प्रार्थना की, जो सभी के लिए श्रव्य तथा दृश्य हो, जिसका उपयोग समाज के सभी चारो वर्णों द्वारा किया जा सके। उनकी प्रार्थना को स्वीकार करके विधाता ब्रह्मा ने ऋग्वेद से

---

[1] संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, डॉ. कपिल देव द्विवेदी, पृ.–269 ।

[2] . संस्कृत नाटक, कीथ, (हिन्दी अनुवाद) पृष्ठ– 46–49 ।

संवाद लेकर, सामवेद से संगीत को ग्रहण करके तथा यजुर्वेद से अभिनय को एवं अथर्ववेद से रसतत्त्व को लेकर पंचम वेद नाट्यवेद की संरचना की –

नाट्यवेदं ततश्चक्रे चतुर्वेदांगसम्भवम्।
जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च ।।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वनादपि।।

(नाट्यशास्त्र–1/16, 17)

नाटक की उत्पत्ति विषयक उक्त सिद्धान्तों का संक्षेप में उल्लेख करने के पश्चात् प्रश्न यह उठता है कि उपर्युक्त सिद्धान्तों में से कौन सा सिद्धान्त सर्वाधिक उपयोगी कहा जा सकता है? इस सम्बन्ध में यह बात स्पष्टरूप से कही जा सकती है कि–

कथावस्तु, संगीत, अभिनय तथा रस इन चारों तत्त्वों की स्थिति हमें वेदों में देखने को मिल जाती है। यथा– ऋग्वेद के संवाद–सूक्तों में नाटक की कथावस्तु के दर्शन होते हैं। सामवेद में संगीत की उपस्थिति को देख सकते हैं। इसीप्रकार यजुर्वेद में मन्त्रों के उच्चारण तथा हस्तचालन आदि में अभिनय तथा अथर्ववेद में रस की स्थिति को सहज ही देखा जा सकता है।

इसके अतिरिक्त अथर्ववेद के अनेक सूक्तों में वीर रस[1] और श्रृंगार रस[2] की पर्याप्त उपस्थिति देखी जा सकती है। भारतीय नाटकों में भी इन दोनों ही रसों की मुख्यता रही है। इसकारण आचार्य भरतमुनि का यह कथन –'चतुर्वेदांगसम्भवम्' अर्थात् चारों वेदों से नाटक की उत्पत्ति, सटीक ही प्रतीत होता है। इसलिए कहा जा सकता है कि –

चारों वेदों से उत्पन्न होने वाले, इस **पंचम नाट्यवेद** का आरम्भ में अभिनय यज्ञ आदि के अवसरों पर किया जाता रहा। बाद में

---

[1]. अथर्ववेद– 2/12, 3/6, 4/3, 18/34।

[2] अथर्ववेद– 3/25, 9/2, 19/52 ।

ये दूसरे धार्मिक अनुष्ठानों के भी अंग बन गए। उसके बाद लोक प्रियता के कारण इनका अभिनय 'पर्व' आदि के अवसर पर भी होने लगा। इन्द्र महोत्सव को हम इसी श्रृंखला की कड़ीरूप में देख सकते हैं। बाद में, यही नाटक पर्वों, उत्सवों, रासलीला आदि अवसरों पर भी अत्यधिक लोकप्रियता को प्राप्त हुए।

इसप्रकार पर्ववाद तथा रासलीला वाद को नाटक के विकास की महत्त्वपूर्ण कड़ी की भूमिका के रूप में देख सकते हैं, किन्तु इस विषय में यह भी विशेषरूप से ध्यातव्य है कि केवल इसी को नाटक की उत्पत्ति के एकमात्र कारण के रूप में नहीं देखा जा सकता है। मनोरंजन का महत्त्वपूर्ण माध्यम होने के कारण, बाद में यह समाज में अत्यधिक लोकप्रियता को प्राप्त हुआ। इसके अलावा यह भी सत्य है कि ऋग्वेद में प्रयुक्त संवाद–सूक्तों की भी नाटक की उत्पत्ति में महती भूमिका अवश्य रही होगी, किन्तु एकमात्र उसी को ही यहाँ कारण नहीं कह सकते हैं।

इस प्रसंग में यह भी विशेषरूप से उल्लेखनीय है कि भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि में यह निर्विवाद तथ्य है कि नाटकों का आरम्भ वस्तुतः सर्वप्रथम भारत में ही हुआ। मैक्डॉनल, मैक्समूलर, कीथ, पिशेल तथा लेवी आदि विद्वानों ने भी इस मन्तव्य से अपनी सहमति प्रदर्शित की है। इसके अलावा संस्कृत नाटक के विकास की परम्परा का विधिवत् अध्ययन करने के लिए वैदिककाल से लेकर वर्तमान समय तक की दीर्घकालीन अवधि को हम निम्नप्रकार से छः भागों में विभाजित कर सकते हैं–

(क) प्राचीन युग– यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता में **शैलूष** जाति के एक व्यक्ति के माध्यम से व्यावसायिक दृष्टि से नाटकों के अभिनय का कथन हुआ है। इस जाति के लोग अपनी आजीविका चलाने के लिए यज्ञ आदि के अवसरों पर लय तथा तालबद्ध नृत्य प्रस्तुत करते हुए, गीतों को गाते थे तथा दर्शकों का मनोरंजन करते

थे। इन्हें यहाँ सूत्र, नर्तन तथा शैलूष कहा गया है, जिसे हम बाद में **नट** भी कहते रहे हैं, इसका कार्य वस्तुतः गीतों को प्रस्तुत करना था।[1] इस समय को प्राचीनयुग की संज्ञा दी जा सकती है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय तक नाटकों की संरचना नहीं हुई थी।

(ख) विकासोन्मुख युग – इस युग में रामायण और महाभारत से लेकर महाकवि भास तक के समय को सम्मिलित कर सकते हैं। इस समय में विभिन्न नाटकों के नामों का उल्लेख मिलता है। यद्यपि उन नाटकों की उपलब्धता, महाकवि भास को छोड़कर वर्तमान समय तक नहीं हो सकी है।

इसी प्रसंग में यह भी विशेषरूप से कथनीय है कि रामायण एवं महाभारत काल में भी नाट्यकला पर्याप्तरूप से विकसित थी, क्योंकि इन दोनों ही ग्रन्थों में नट, नर्तक एवं गायक आदि शब्दों का उल्लेख हुआ है।[2] रामायण में कथन किया गया है कि जहाँ राजा नहीं होता, वहाँ नट एवं नर्तक प्रसन्न नहीं होते हैं।[3] साथ ही, यहाँ नट एवं नर्तकों के समाज में गोष्ठी एवं मनोरंजन का भी कथन किया गया है। महाभारत के विराटपर्व में रंगशाला का उल्लेख, इस समय में नाटकों की विकासोन्मुख स्थिति को पुष्ट करता प्रतीत होता है।

इसके अलावा हरिवंशपर्व में एक स्थल पर **वज्रनाभ** नामक राक्षस की नगरी में रामायण एवं **कौबेर–रम्भाभिसार** नामक नाटकों के अभिनय का भी कथन किया गया है।[4] यद्यपि ये दोनों ही नाटक वर्तमान समय में उपलब्ध नहीं हैं। उल्लेखनीय है कि वाल्मीकि

---

[1]. यजुर्वेद – 30/6 ।

[2]. वाल्मीकि रामायण– 1/4/9,, 2/67/15, 2/69/4, 2/83/15 ।
महाभारत वनपर्व–15/13 ।
इत्यब्रवीत् सूत्रधारः सूतः पौराणिकस्तथा (वही–1/51/15।

[3]. वाल्मीकि रामायण– 2/67/15 ।

[4]. महाभारत हरिवंश पर्व– 19/17 अध्याय।

रामायण में 'व्यामिश्र' शब्द का प्रयोग ऐसे नाटकों के लिए किया गया है, जिनमें अनेक भाषाओं का सम्मिश्रण होता था।[1]

इसके अतिरिक्त ई.पू. चतुर्थ शताब्दी में स्थित आचार्य पाणिनि की अष्टाध्यायी में **नट–सूत्रों** का उल्लेख हुआ है।[2] जहाँ **शिलालिन्** और **कृशाश्व** आदि आचार्यों द्वारा बनाए हुए नट–सूत्रों का कथन किया गया है। इसका अभिप्राय यही है कि इस समय तक नाटकों का इतना अधिक प्रचार हो गया था कि विद्वानों को नटों की शिक्षा के लिए सूत्र–ग्रन्थों के प्रणयन की आवश्यकता अनुभव होने लगी थी। आचार्य पाणिनि ने भी **'जाम्बवती जय'** अथवा **'पाताल विजय'** नामक नाटकों की संरचना की थी, जिसकी पुष्टि में यह श्लोक उद्धृत किया जा सकता है–

स्वस्ति पाणिनये तस्मै येन रूद्रप्रसादतः।
आदौ व्याकरणं प्रोक्तं ततो जाम्बवतीजयम्।।

उल्लेखनीय यह भी है कि महर्षि पतंजलि के महाभाष्य में उनके द्वारा विरचित **'कंस–वध'** और **'बलि–बन्धन'** इत्यादि नाटकों के प्रदर्शन किए जाने का उल्लेख हुआ है।[3] यद्यपि ये दोनों ही नाटक वर्तमान समय में उपलब्ध नहीं हैं, जिससे यह बात निश्चयपूर्वक कही जा सकती है कि महाभाष्यकार के समय तक जनसामान्य के समक्ष नाटकों का अभिनय, उनके मनोरंजन का सर्वश्रेष्ठ एवं लोकप्रिय साधन था। महर्षि पतंजलि का समय ई.पू. 150 के लगभग माना गया है और महाभाष्यकार उनके पश्चात् हुए।

लगभग इसी समय स्थित आचार्य भरतमुनि ने कुल छत्तीस अध्यायों में नाट्यशास्त्र के सिद्धान्तों को आधार बनाकर अपने नाट्य

---

1. वाल्मीकि रामायण, अयोध्या काण्ड– 1/27 ।
2. पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः।। अष्टाध्यायी– 4/3/110 एवं कर्मन्द कृशाश्वादीनि । 4/3/111 ।
3. महाभाष्य– पतंजलि, 3/3/111 ।

शास्त्र नामक विशालग्रन्थ की संरचना की। ऐसा प्रतीत होता है कि यह ग्रन्थ उनके समय तक उपलब्ध नाटकों को आधार बनाकर लिखा गया, क्योंकि इस ग्रन्थ में उन्होंने नाटक विषयक सभी सिद्धान्तों का विस्तार से प्रामाणिक विवेचन प्रस्तुत किया है। इस ग्रन्थ के साथ ही उन्होंने **त्रिपुरदाह, असुर पराजय** तथा **समुद्रमंथन** नामक तीन नाटकों का उल्लेख भी किया है।

इसी प्रसंग में उल्लेखनीय यह भी है कि आचार्य कौटिल्य ने अपने राजनीति के प्रसिद्ध ग्रन्थ **अर्थशास्त्र** में अध्यक्षप्रचार नामक अध्याय के अन्तर्गत दूसरी विद्याओं का विवेचन करते हुए, नाट्यविद्या का भी विस्तार से सांगोपांग वर्णन किया है।[1] इसके अतिरिक्त विनय–पिटक नामक बौद्धग्रन्थ में बौद्धभिक्षुओं द्वारा नाटक का अवलोकन करने के अनन्तर नर्तकी के साथ बातचीत करने का निषेध किया गया है।

इसके बाद ई.पू. 450 के लगभग महाकवि भास का प्रादुर्भाव होता है। इनके नाटकों की खोज का श्रेय श्री टी. गणपति शास्त्री को जाता है, जिन्होंने 1909 ई. में त्रावणकोर के पद्मनाभपुरम् के निकट मनलिक्कमाथम नामक स्थान से इनके कुल 13 नाटकों की पाण्डु–लिपियों को प्राप्त किया। इसी कालखण्ड में मृच्छकटिक के रचयिता महाकवि शूद्रक का भी परिगणन किया गया है। इस सम्पूर्ण कालखण्ड के नाटककारों को विकासोन्मुख युग के नाटककारों की श्रेणी में रखा जा सकता है, क्योंकि इनके नाटकों में हमें नाटकों का आरम्भिकरूप देखने को मिलता है।

(ग) पूर्ण विकास का युग– इसी शृंखला में ई.पू. प्रथम शती में स्थित नाट्यशिरोमणि नाटककार कालिदास के नाम का उल्लेख किया जा सकता है। उल्लेखनीय है कि उन्होंने अपने प्रथम नाटक मालविकाग्निमित्रम् में भास के अतिरिक्त **कविपुत्र** तथा **सौमिल्लक**

---

[1] . अर्थशास्त्र, कौटिल्य, अध्याय–16, 41 ।

नामक अन्य दो नाटककारों के नामों का भी उल्लेख किया है, किन्तु वर्तमान समय में उनके किसी नाटक की उपलब्धता नहीं है।

इसलिए महाकवि कालिदास को ही इस शृंखला की अगली कड़ी के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। वसन्तोत्सव के अवसर पर मंचन की गयी, अपनी प्रथम नाट्यकृति मालविकाग्निमित्रम् की प्रस्तावना में सूत्रधार के मुख से विद्वत्परिषद् के समक्ष अभिनीत करने का कथन कराते हुए भास, सौमिल्ल एवं कविपुत्रादि पूर्ववर्ती नाटककारों के नामों का उल्लेख किया है।[1]

इस प्रसंग में प्रयुक्त सूत्रधार और पारिपार्श्विक के वार्तालाप में नाटककार ने जहाँ एक ओर अपने पूर्ववर्ती भास आदि प्रसिद्ध कवियों को स्मरण किया है, वहीं दूसरी ओर उन्होंने **'पुराणमित्येव न साधु सर्वम्'**[2] इत्यादि का कथन करके, भासादि के नाटकों की अपेक्षा अपने नाटकों की श्रेष्ठता को भी अप्रत्यक्षरूप से अभिव्यक्ति प्रदान की है।

कहने का अभिप्राय यही है कि महाकवि भास के नाटकों एवं आचार्य भरत के नाट्य–शास्त्र आदि से प्रभावित होकर ही नाटककार कालिदास ने भी अपनी नाट्य–कृतियों के प्रणयन का मानस बनाया और संस्कृत नाट्य–जगत् में अपना नाम अमर कर लिया। यद्यपि उनकी प्रथम एवं द्वितीय नाट्यकृतियों मालविकाग्निमित्रम् एवं विक्रमोर्वशीयम् ने विद्वानों को इतना प्रभावित नहीं किया, किन्तु अन्तिम कृति अभिज्ञान शाकुन्तलम् ने तो सहृदयों को मानो चमत्कृत ही कर दिया और वे मानो 'कालिदास का शाकुन्तल', 'कालिदास का शाकुन्तल' कहते हुए भावविभोर हो गए।[3]

---

1. मा तावत् प्रथितयशसां भास–सौमिल्ल–कविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य वर्तमान–कवेः कालिदासस्य क्रियायां कथं परिषदो बहुमानः। मालविकाग्निमित्रम्– प्रस्तावना।
2. मालविकाग्निमित्रम्–1/2 ।
3. एकीभूतमभूतपूर्वमथवा स्वर्लोकभूलोकयोरैश्वर्यम्।
   यदि वांछसि प्रिय सखे! शाकुन्तलं सेव्यताम्।
   (गेटे के कथन का प्रो. मिराशी द्वारा संस्कृत अनुवाद)

जिसका परिणाम यह हुआ कि बाद में होने वाले काव्यकार कालिदास एवं उनके भी बाद होने वाले ऋतुसंहारीय कालिदास ने अपना नाम भी 'कालिदास' ही रख लिया, क्योंकि इस नाम की ख्याति ही उस समय तक इतनी अधिक हो गयी थी कि कोई भी स्वयं को इस नाम से बुलवाने का प्रबल इच्छुक था। उल्लेखनीय तथ्य यह भी है कि नाटककार कालिदास के नाम एवं प्रसिद्धि से प्रभावित होकर न केवल काव्यकार ने अपना नाम ही 'कालिदास' रखा, अपितु उन्होंने इनके काव्यों में प्रतिपादित भारतीय संस्कृति के तत्त्वों एवं सिद्धान्तों का, अपने काव्यों में समावेश करके इनका अनुमोदन भी किया।

अन्त में स्थित ऋतुसंहारीय कालिदास का प्रयोजन केवल ऋतुओं का शृंगारिक वर्णन करना ही प्रमुख रहा। अतः काव्य गुणों की दृष्टि से न्यून होने के कारण, इनकी सामान्य कृति को ही महाकवि कालिदास की प्रथम रचना के रूप में स्वीकार कर लिया गया,[1] जबकि ऋतुसंहार की रचना करने वाले ऋतुसंहारीय कालिदास नाटककार एवं काव्यकार दोनों कालिदासों से सर्वथा भिन्न रहे। इसप्रकार इन तीनों कालिदासों को एक मानकर जहाँ हम इनमें से किसी के साथ भी न्याय नहीं कर सके, वहीं दूसरी ओर कालिदास के काल–निर्धारण के जंजाल में फँसकर अपनी शक्ति का व्यर्थ में ही प्रयोग करते रहे।

इसी प्रसंग में उल्लेखनीय यह भी है कि संस्कृत नाट्यपरम्परा में महाकवि कालिदास की नाट्यकृतियाँ, नाट्यकला के पूर्ण विकास को प्रदर्शित करती हैं। भाषा, भाव और कल्पना आदि सभी दृष्टियों से विद्वानों ने इन नाटकों को अद्वितीय कहा है। नाटककार कालिदास का समय ई.पू. प्रथम शताब्दी माना गया है।

नाटककार कालिदास के पश्चात् नाटककार अश्वघोष का नाम आता है। इनका समय ईसा की प्रथम शताब्दी माना गया है, क्योंकि ये महाराज कनिष्क के राजकवि थे। सन् 1910 ई. में प्रो. ल्यूडर्स ने

---

[1] . कालिदास दर्शन, डॉ. शिवप्रसाद भारद्वाज, पृ.–79 ।

मध्य एशिया के **तूरफान** नामक स्थान से इनके तीन नाटकों की खोज की। इनमें **शारिपुत्रप्रकरण** नाटक पूर्ण है, जिसमें नौ अंकों का नियोजन किया गया है। अन्य दो अपूर्ण हैं, जिनके नाम भी ज्ञात नहीं हैं।

नाट्यकला के पूर्ण विकास की अग्रिम कड़ी के रूप में दिङ्नाग की कुन्दमाला, विशाखदत्त का मुद्राराक्षस, हर्ष की रत्नावली, प्रियदर्शिका तथा नागानन्द नामक नाटक आते हैं। साथ ही, इस कालखण्ड की कृतियों में भवभूति के उत्तररामचरित, मालतीमाधव एवं महावीरचरित का भी उल्लेख किया जा सकता है। इनमें भी मुद्राराक्षस नाटक अन्य नाटकों की परम्परा से पूर्णरूप से अलग हटकर निबद्ध किया गया है, जिसमें नाटककार विशाखदत्त ने चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त विषयक राजनीतिक घटनाक्रम को कथावस्तु के रूप में ग्रहण करके, अपने क्रान्तिकारी नाटककार होने को परिपुष्ट किया है।

नाटककार कालिदास के बाद दूसरा स्थान नाटककार भवभूति का माना जाता है। यद्यपि कुछ विद्वान् करुण रस की दृष्टि से भवभूति को सर्वोत्कृष्ट नाटककार की श्रेणी में रखने के पक्षधर रहे हैं। इन्होंने रामायण की दुःखान्त घटना को आधार बनाकर, 'उत्तररामचरितम्' की संरचना की और अन्त में इसे सुखान्त स्वरूप प्रदान किया। इन्हीं का अनुकरण महाकवि दिङ्नाग ने अपने कुंदमाला नाटक में भी किया। महाकवि भवभूति के नाटकों में हमें भावप्रवणता का सौन्दर्य दृष्टिगोचर होता है, जिसकी विद्वानों द्वारा भूरि–भूरि प्रशंसा की गयी है।

(घ) ह्रासोन्मुख युग–महाकवि भवभूति के पश्चात् हमें संस्कृत नाट्यजगत् में नाट्यकौशल की अपेक्षा पाण्डित्य प्रदर्शन अधिक देखने को मिलता है, क्योंकि यहाँ न तो हमें महाकवि शूद्रक के समान मौलिक दृष्टि परिलक्षित होती है और न ही विशाखदत्त के समान सामान्यजनों की अभिव्यक्ति। इतना ही नहीं, यहाँ हमें नाटककार

कालिदास, भवभूति और हर्ष के नाटकों के समान नाट्यकुशलता, भावप्रवणता एवं काव्यप्रतिभा के भी दर्शन नहीं होते हैं।

हमारे विवेच्य महाकवि भट्टनारायण के वेणीसंहार नाटक से इस युग का प्रारम्भ स्वीकार किया जा सकता है तथा मुरारि एवं राजशेखर पर्यन्त इसी ह्रासोन्मुख युग के दर्शन होते हैं। गौडी शैली में विरचित ये नाटक कथानक और काव्य प्रतिभा दोनों ही दृष्टियों से निश्चय ही श्रेष्ठ रचना मानी जा सकती हैं, किन्तु अभिनेयता की दृष्टि से उसे विद्वानों द्वारा सफल नहीं कहा गया है। इसका मुख्य कारण इसमें प्रयुक्त इनकी कृत्रिम शैली ही रही है। साथ ही नाटकीय सिद्धान्तों का अक्षरशः पालन करने की प्रवृत्ति ने भी इसके नाट्यकौशल को पर्याप्त रूप से प्रभावित किया है।

इसके पश्चात् मुरारि का **अनर्घराघव** नामक नाटक जो 540 श्लोकों के विशाल कलेवर में लिखा गया है, विद्वानों ने इसे नाटक की श्रेणी में कम श्रव्यकाव्य की कोटि में अधिक रखा है। इसलिए इस नाटक को भी इस ह्रासोन्मुख युग की ही कृति स्वीकार किया जा सकता है। हम देखते है कि इसके बाद महाकवि राजशेखर ने भी इसी सरणि का अनुकरण किया है, क्योंकि बालरामायण, बालभारत, कर्पूर मंजरी और विद्धशालभंजिका नामक चारों नाटक में उन्होंने लम्बे-लम्बे वर्णनों, बड़े शार्दूलविक्रीडित एवं स्रग्धरा जैसे छन्दों का प्रयोग करके, इन्हें न केवल पाठकों के लिए दुरुह बना दिया है, अपितु अभिनेयता को तो दूर की कोड़ी ही रखा है। वस्तुतः ये सभी नाटक महाकवियों की पाण्डित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति के ही प्रबल परिचायक कहे जा सकते हैं।

तत्पश्चात् ग्यारहवीं शती में प्रबोधचन्द्रोदय के रचयिता श्री कृष्णमिश्र ने तो अद्वैत वेदान्त के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करके, नाटक के प्रमुख उद्देश्य को ही भुला दिया है। इसीप्रकार की प्रवृत्ति हमें यशपाल के **मोहपराजय** एवं जयदेव के **प्रसन्नराघव** तथा **कर्णपूर**

चैतन्य, चन्द्रोदय नामक नाटकों में भी परिलक्षित होती है, क्योंकि यहाँ भी बड़े–बड़े छन्दों का प्रयोग करके, इन्होंने अपने पाण्डित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति को अधिक नियोजित किया है।

(ङ) ह्रास का युग– इस कालखण्ड का आरम्भ बारहवीं शती से लेकर यवनों के प्रभुत्व के साथ–साथ होता है। इससे पूर्व संस्कृत विषयक सृजन को राजाश्रय प्राप्त था, किन्तु इस समय में इसका लगभग अभाव होने के कारण इस अवधि में विशिष्ट वर्ग के लिए ही नाटकों का प्रणयन किया गया। इसकारण इन्हें प्रसिद्धि भी प्राप्त नहीं हो सकी। साथ ही, इस काल–खण्ड में जनसामान्य की भाषा भी संस्कृत न होने के कारण, उनके लिए ये दुरूह हो गए। यही कारण है कि इस अवधि में लोकप्रिय नाटकों का लेखन नहीं हुआ।

पुनरपि इस अवधि में विग्रहराज देव का **'हरिकेलि'**, सुभट का **'दूतांगद,'** मदन का **'पारिजात मंजरी,'** जयसिंह सूरि का **'हम्मीर–मद–मर्दन'** भास्कर का **'उन्मत्तराघव'**, रामदेव व्यास का **'रामाभ्युदय'**, **'पाण्डवाभ्युदय'** और **'सुभद्रा परिचय'** तथा रामचन्द्र दीक्षित का **'जानकी परिचय'** नामक नाटक विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। इनका प्रणयन सत्रहवीं शती तक किया गया।

(च) आधुनिक युग – इसका प्रारम्भ 18 वीं शती से लेकर वर्तमान तक के समय के रूप में परिगणित किया गया है। विद्वानों ने इसे पुनर्जागरण का काल बताया है। इस अवधि में लिखे गए नाटकों को प्राचीन परम्परा के आधार पर ही प्रणयन करने का प्रयास रहा है, फिर भी 19वीं शती में जिन नाटकों की संरचना की गयी, उनमें हमें राष्ट्रीय भावनाओं की प्रधानता देखने को मिलती है, किन्तु इस काल–खण्ड में संस्कृत सामान्य जन से दूर हो गयी थी। इसलिए इस समय में अत्यल्प ही नाटक लिखे गए।

इस अवधि में लिखे गए नाटकों में 'अम्बिकादत्त व्यास' का **'सामवतम्'**, रामचन्द्र का **'शृंगारसुधार्णव'**, वाचस्पति भट्टाचार्य का

'चैत्रयज्ञ' 19 वीं शती में लिखी गयीं प्रसिद्ध रचनाएँ हैं, जबकि 20 वीं शती के नाटकों एवं नाटककारों के नाम इसप्रकार हैं–

महामहोपाध्याय शंकरलाल का 'सावित्रीचरित', 'ध्रुवाभ्युदय', श्रीनिवासचारी का 'ध्रुवचरित', पंचानन का 'अमरमंगल', मूलशंकर माणिकलाल का 'छत्रपति साम्राज्य', 'प्रताप–विजय', 'संयोगिता स्वयंवर', वायमहालिंग शास्त्री का 'प्रताप विजय', 'पृथ्वीराज', 'गाँधी विजय', 'भारत विजय', आदि प्रमुख रूप से उल्लेखनीय नाटक हैं। प्रस्तुत कृति के लेखक का एक नाट्य संग्रह **'संस्कृत नाट्य निकुँज'** भी हंसा प्रकाशन, जयपुर से 2019 ई. प्रकाशित हो चुका है, जिसमें शिक्षाप्रद कथावस्तु को ग्रहण करके, कुल सात लघु नाटकों को निबद्ध किया गया है, जिसके हिन्दी अनुवाद के साथ शीघ्र ही चौखम्भा ओरियन्टालिया, दिल्ली से प्रकाशित कराने की योजना है।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि वेदों से आरम्भ हुई संस्कृत नाट्यपरम्परा वस्तुतः लौकिक संस्कृत में पर्याप्त समृद्ध हुई तथा यही वर्तमान समय में भी अक्षुण्णरूप से विद्यमान है, क्योंकि आज भी विद्वानों द्वारा अनेक नाटकों का प्रणयन किया जा रहा है। हाँ इतना अवश्य है कि नाटककार कालिदास एवं भवभूति जैसे उद्भट कवियों ने इनमें जो अभूतपूर्व योगदान प्रदान किया वह तो 'न भूतो, न भविष्यति' जैसा ही है।

4. संस्कृत नाटकों का वैशिष्ट्य– प्राचीन एवं अर्वाचीन नाटकों का सूक्ष्मदृष्टि से अवलोकन करने पर हम देखते हैं कि इनमें हमें सामान्यरूप से कुछ विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं, जिनका हम यहाँ अत्यन्त संक्षेप में उल्लेख कर रहे हैं–

- **सुखान्त होना–** इसे संस्कृत नाटकों की महत्त्वपूर्ण विशेषता के रूप में देखा जा सकता है। यद्यपि मनुष्य के जीवन में सुख और दुःख दोनों की ही स्थिति समानरूप से होती है, किन्तु यह भी कटु सत्य है कि वह दुःखों से दूर ही रहना चाहता है। उसकी इसी प्रवृत्ति

के कारण संस्कृत नाटक हमें सुखान्त ही देखने को मिलते हैं। हमारे विवेच्य महाकवि भट्टनारायण ने भी दुर्योधन जैसे आततायी का वध करने से इसे सुखान्त नाटक की कोटि में रखना ही उचित समझा है।

▪ **रस की प्रधानता का होना–** उल्लेखनीय है कि संस्कृत नाटकों में रसों की निष्पत्ति पर अत्यधिक बल दिया गया है। यहाँ हमें श्रृंगार एवं वीर इन दोनों रसों की ही प्रमुखता दृष्टिगोचर होती है। इतना ही नहीं किसी भी कवि अथवा नाटककार की सफलता उसकी रसप्रवणता में ही मानी गयी है। प्रस्तुत नाटक वीररस प्रधान रहा है।

▪ **विदूषक की परिकल्पना** – प्राचीन नाटकों में हमें यह विशेषता प्रमुखरूप से देखने को मिलती है। यद्यपि मंचन में हास्य रस की अनुभूति कराने में विदूषक जैसे किसी भी पात्र का प्रमुख योगदान कहा जा सकता है। संस्कृत नाटकों में इसे प्रायः नायक के मित्र के रूप में प्रतिपादित किया गया है, जो कथानक की प्रगति में अपना योगदान प्रदान करता है, किन्तु यहाँ यह भी विशेषरूप से ध्यातव्य है कि यह पात्र वस्तुतः यूनान के नाटकों के 'क्लाउन' से भिन्न रहा है। हमारे विवेच्य वेणीसंहार में विदूषक का अभाव ही रहा है।

▪ **अन्वितित्रय का अभाव–** उल्लेखनीय है कि संस्कृत नाटकों में काल एवं स्थान की एकता का कठोरता से पालन नहीं किया गया है, क्योंकि कार्य की एकता ही, यहाँ प्रमुखतया परिलक्षित होती है, जबकि यूनानी नाटकों में इस पर विशेषरूप से बल दिया गया है।

▪ **पात्रों की संख्या का अनिश्चित होना–**संस्कृत नाटकों में पात्रों की संख्या का निश्चित होना आवश्यक नहीं है। यहाँ सामाजिक दृष्टि से पात्रों की श्रेणी भी अलग–अलग होती हैं, **जैसे–** उच्च वर्ग के पात्र, मध्यम वर्ग के पात्र, निम्न वर्ग के पात्र। इसीप्रकार उनकी दिव्य श्रेणी तथा अदिव्य श्रेणियाँ भी देखने को मिलती हैं, किन्तु यूनानी नाटकों में ऐसा नहीं है। वहाँ पात्रों की संख्या अत्यल्प ही होती है।

▪ **आदर्शवाद की स्थापना–** संस्कृत नाटकों में हमें आदर्शवाद की स्थापना के दर्शन होते हैं, क्योंकि इनमें प्रायः आदर्श चरित्र वाले पात्रों का नियोजन किया जाता है, क्योंकि यहाँ इनका उद्देश्य मात्र लोगों का मनोरंजन करना ही नहीं है, अपितु ये तो दर्शकों के हृदय को शुद्ध करने वाले तथा उन्हें कल्याणकारी मार्ग की ओर ले जाने वाले होते हैं।

▪ **कथावस्तु का ऐतिहासिक एवं कथाग्रन्थों पर आधारित होना** – प्रायः देखने को मिलता है कि संस्कृत में नाटकों की कथावस्तु अधिकांशरूप से ऐतिहासिक होती है, क्योंकि इनकी कथावस्तु का आधार रामायण, महाभारत, पुराण या अन्य इतिहास ग्रन्थ होते हैं। इसके अलावा 'बृहत्कथा' जैसा विशालकाय कथाग्रन्थ भी अनेक नाटकों की कथावस्तु का आधार रहा है।

▪ **बीच–बीच में प्राकृत भाषा का प्रयोग किया जाना–** संस्कृत नाटकों की महत्त्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि इनमें उच्च एवं मध्यम श्रेणी के पात्र तो संस्कृत भाषा के माध्यम से अपने विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं, जबकि निम्न श्रेणी के पात्र तथा सभी स्त्री पात्र, प्राकृत भाषा का प्रयोग करते हैं, किन्तु ये दोनों ही क्रमशः संस्कृत तथा प्राकृत को समझ सकते हैं। उल्लेखनीय यह भी है कि प्राकृत के भी अनेक प्रकार के भेदों का एक ही नाटक में प्रयोग किया जाता है। **जैसे–** महाराष्ट्री, शौरसेनी तथा मागधी।

▪ **गद्य एवं पद्य का प्रयोग–** संस्कृत नाटकों के अध्ययन से हम यह भी देखते हैं कि संवादों में यहाँ गद्य और पद्य दोनों का ही प्रयोग किया जाता है, प्रकृति वर्णन, नैतिक शिक्षा तथा सुभाषित आदि का कथन करने के लिए यहाँ पद्यों का प्रयोग होता है। अनेक बार सामान्य भावाभिव्यक्ति भी पद्यात्मक रूप में कर दी जाती है।

▪ **विशिष्ट रचनापद्धति का प्रयोग** – इसके अतिरिक्त संस्कृत नाटकों में हमें विशिष्ट प्रकार की रचना शैली के भी दर्शन होते हैं।

के कारण संस्कृत नाटक हमें सुखान्त ही देखने को मिलते हैं। हमारे विवेच्य महाकवि भट्टनारायण ने भी दुर्योधन जैसे आततायी का वध करने से इसे सुखान्त नाटक की कोटि में रखना ही उचित समझा है।

▪ **रस की प्रधानता का होना–** उल्लेखनीय है कि संस्कृत नाटकों में रसों की निष्पत्ति पर अत्यधिक बल दिया गया है। यहाँ हमें शृंगार एवं वीर इन दोनों रसों की ही प्रमुखता दृष्टिगोचर होती है। इतना ही नहीं किसी भी कवि अथवा नाटककार की सफलता उसकी रसप्रवणता में ही मानी गयी है। प्रस्तुत नाटक वीररस प्रधान रहा है।

▪ **विदूषक की परिकल्पना** – प्राचीन नाटकों में हमें यह विशेषता प्रमुखरूप से देखने को मिलती है। यद्यपि मंचन में हास्य रस की अनुभूति कराने में विदूषक जैसे किसी भी पात्र का प्रमुख योगदान कहा जा सकता है। संस्कृत नाटकों में इसे प्रायः नायक के मित्र के रूप में प्रतिपादित किया गया है, जो कथानक की प्रगति में अपना योगदान प्रदान करता है, किन्तु यहाँ यह भी विशेषरूप से ध्यातव्य है कि यह पात्र वस्तुतः यूनान के नाटकों के 'क्लाउन' से भिन्न रहा है। हमारे विवेच्य वेणीसंहार में विदूषक का अभाव ही रहा है।

▪ **अन्वितित्रय का अभाव–** उल्लेखनीय है कि संस्कृत नाटकों में काल एवं स्थान की एकता का कठोरता से पालन नहीं किया गया है, क्योंकि कार्य की एकता ही, यहाँ प्रमुखतया परिलक्षित होती है, जबकि यूनानी नाटकों में इस पर विशेषरूप से बल दिया गया है।

▪ **पात्रों की संख्या का अनिश्चित होना–**संस्कृत नाटकों में पात्रों की संख्या का निश्चित होना आवश्यक नहीं है। यहाँ सामाजिक दृष्टि से पात्रों की श्रेणी भी अलग–अलग होती हैं, **जैसे–** उच्च वर्ग के पात्र, मध्यम वर्ग के पात्र, निम्न वर्ग के पात्र। इसीप्रकार उनकी दिव्य श्रेणी तथा अदिव्य श्रेणियाँ भी देखने को मिलती हैं, किन्तु यूनानी नाटकों में ऐसा नहीं है। वहाँ पात्रों की संख्या अत्यल्प ही होती है।

■ **आदर्शवाद की स्थापना**– संस्कृत नाटकों में हमें आदर्शवाद की स्थापना के दर्शन होते हैं, क्योंकि इनमें प्रायः आदर्श चरित्र वाले पात्रों का नियोजन किया जाता है, क्योंकि यहाँ इनका उद्देश्य मात्र लोगों का मनोरंजन करना ही नहीं है, अपितु ये तो दर्शकों के हृदय को शुद्ध करने वाले तथा उन्हें कल्याणकारी मार्ग की ओर ले जाने वाले होते हैं।

■ **कथावस्तु का ऐतिहासिक एवं कथाग्रन्थों पर आधारित होना** – प्रायः देखने को मिलता है कि संस्कृत में नाटकों की कथावस्तु अधिकांशरूप से ऐतिहासिक होती है, क्योंकि इनकी कथावस्तु का आधार रामायण, महाभारत, पुराण या अन्य इतिहास ग्रन्थ होते हैं। इसके अलावा 'बृहत्कथा' जैसा विशालकाय कथाग्रन्थ भी अनेक नाटकों की कथावस्तु का आधार रहा है।

■ **बीच–बीच में प्राकृत भाषा का प्रयोग किया जाना**– संस्कृत नाटकों की महत्त्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि इनमें उच्च एवं मध्यम श्रेणी के पात्र तो संस्कृत भाषा के माध्यम से अपने विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं, जबकि निम्न श्रेणी के पात्र तथा सभी स्त्री पात्र, प्राकृत भाषा का प्रयोग करते हैं, किन्तु ये दोनों ही क्रमशः संस्कृत तथा प्राकृत को समझ सकते हैं। उल्लेखनीय यह भी है कि प्राकृत के भी अनेक प्रकार के भेदों का एक ही नाटक में प्रयोग किया जाता है। **जैसे**– महाराष्ट्री, शौरसेनी तथा मागधी।

■ **गद्य एवं पद्य का प्रयोग**– संस्कृत नाटकों के अध्ययन से हम यह भी देखते हैं कि संवादों में यहाँ गद्य और पद्य दोनों का ही प्रयोग किया जाता है, प्रकृति वर्णन, नैतिक शिक्षा तथा सुभाषित आदि का कथन करने के लिए यहाँ पद्यों का प्रयोग होता है। अनेक बार सामान्य भावाभिव्यक्ति भी पद्यात्मक रूप में कर दी जाती है।

■ **विशिष्ट रचनापद्धति का प्रयोग** – इसके अतिरिक्त संस्कृत नाटकों में हमें विशिष्ट प्रकार की रचना शैली के भी दर्शन होते हैं।

जिसमें नान्दीपाठ, स्थापना एवं प्रस्तावना आदि के प्रयोग प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त नाटक की कथावस्तु को प्रभावशाली बनाने के लिए विष्कम्भक, प्रवेशक, चूलिका आदि **अर्थोपक्षेपकों** का प्रयोग भी किया जाता है। साथ ही, नाटक के अन्त में भरत–वाक्य का भी नियोजन करते हैं। प्रस्तुत विवेच्य नाटक में **नान्दी, प्रस्तावना, विष्कम्भक** और प्रवेशक और अन्त में युधिष्ठिर द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण से आशीर्वाद स्वरूप **भरत–वाक्य** के रूप में कामना भी की गयी है।

▪ **प्रकृति के साथ घनिष्ठता का होना–** उल्लेखनीय है कि संस्कृत नाटकों में प्रकृति को मानव के अनुरूप प्रयुक्त किया गया है, क्योंकि महाकवि भवभूति तथा नाटककार कालिदास दोनों ने ही अपने–अपने नाटकों में प्रकृति को मानव की भावनाओं के साथ दुःखी एवं सुखी वर्णित किया है।

▪ **अभिनय संकेतों के प्रयोग द्वारा भावाभिव्यक्ति करना–** इसके अतिरिक्त संस्कृत नाटकों में रोचकता एवं अभिनेयता की वृद्धि के लिए अनेक प्रकार के अभिनय संकेतों को भी अपनाया गया है। **जैसे–** आकाश की ओर देखकर बिना किसी पात्र के ही संवाद का प्रयोग **'आकाशे'** इस अभिनय संकेत द्वारा प्रदर्शित किया गया है। इसीप्रकार **जनान्तिक, सरोषम्, नेपथ्य, सक्रोधम्, स्वगतम्, विहस्य, ससम्भ्रमम्, अपवारितम्,** किन्तु प्रस्तुत नाटक में महाकवि ने भावाभिव्यक्ति को प्रभावी तथा रोचक बनाने की दृष्टि से इनमें से अधिकाँश अभिनय संकेतों का प्रयोग किया है।

▪ **अशिष्ट प्रदर्शनों पर प्रतिबन्ध होना–** संस्कृत नाटकों की यह महत्त्वपूर्ण विशेषता कही जा सकती है कि यहाँ अशिष्ट प्रदर्शन जैसे– मृत्यु, भोजन, युद्ध, चुम्बन एवं आलिंगन आदि क्रियाओं पर पूर्णतया प्रतिबन्ध लगाया गया है, क्योंकि इनका मंच पर प्रदर्शन नहीं किया जाता है, अत्यधिक आवश्यक होने पर इन क्रियाओं की मात्र सूचना ही दी जाती है।

■ **नाट्यशालाओं के आकारों का निर्धारण होना** –ध्यातव्य है कि नाट्यशास्त्र के प्रणेता आचार्य भरतमुनि ने संस्कृत नाटकों के अभिनय हेतु अनेक प्रकार की नाट्यशालाओं की परिकल्पना की। तदनुसार– नाटक का मंचन करने के लिए नाट्यशाला वर्गाकार, आयताकार तथा त्रिभुजाकार होनी चाहिए। इसी प्रसंग में उन्होंने इनकी लम्बाई, चौड़ाई के सम्बन्ध में भी उल्लेख किया है।

■ **रूपक एवं उपरूपकों की संरचना किया जाना**– यदि हम सूक्ष्मदृष्टि से विचार करें तो संस्कृत नाटक का क्षेत्र अत्यधिक विशाल रहा है। यहाँ हमें रूपकों के दस भेदों का उल्लेख देखने को मिलता है, **नाटक तो इनमें केवल एक भेद मात्र है,** किन्तु बाद में इन सभी के लिए नाटक शब्द का ही प्रयोग होने लगा। इतना ही नहीं, यहाँ तो उपरूपकों के भी अट्ठारह भेदों का परिगणन किया गया है, जिसे संस्कृत नाट्यशास्त्र की मौलिक परिकल्पना कही जा सकती है।

■ **स्वाभाविकता पर विशेष ध्यान देना**– संस्कृत नाटकों की महत्त्वपूर्ण विशेषता है कि यहाँ पर सरसता, स्वाभाविकता तथा प्रभावो–त्पादकता पर विशेष बल दिया गया है। यही कारण है कि स्त्री पात्रों के अभिनय को यहाँ स्त्रियों द्वारा ही कराया जाता है, पुरुष पात्रों का इसके लिए प्रयोग नहीं करते हैं।

■ **विशिष्ट कथावस्तु का विधान करना**– संस्कृत के नाटकों की विशेषता यह भी है कि यहाँ सम्पूर्ण कथावस्तु को अंकों में विभाजित किया जाता है, जिसकी अधिकतम संख्या यहाँ दस मानी गयी है। यह कथावस्तु आधिकारिक एवं प्रासंगिक दो प्रकार की होती है। इसमें भी प्रासंगिक कथावस्तु के पताका और प्रकरी दो भेद बताए गए हैं। ऐसा करने से कथावस्तु में रोचकता का आधान होता है। आचार्य धनंजय ने **दशरूपक** नामक नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थ में इस सबके विषय में विस्तार से उल्लेख किया है।

5. महाकवि भट्टनारायण– महाभारत की कथा पर आधारित वेणीसंहार नाटक का संस्कृत के नाटकों में नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि महाकवि दण्डी ने इनके तीन ग्रन्थों का उल्लेख किया है, किन्तु सम्प्रति केवल **वेणीसंहार नाटक** ही उपलब्ध है। नाटक की प्रस्तावना से स्पष्ट है कि इन्हें **'मृगराजलक्ष्मी'** की उपाधि प्राप्त थी। बंगाल में एक किंवदन्ती प्रचलित है कि सेनवंश के प्रवर्तक आदिशूर (650 ई.) ने कान्यकुब्ज से पाँच ब्राह्मण परिवारों को **वैदिकधर्म के प्रचार के लिए** आमन्त्रित किया था, जिनमें भट्टनारायण भी एक थे। यहाँ हम इनके व्यक्तित्त्व एवं कृतित्व आदि के विषय में विस्तार से विचार कर रहे हैं–

i) **स्थितिकाल**– अपने जीवन–वृत्त के विषय में कुछ भी न लिखने की संस्कृत कवियों की लम्बी प्रवृत्ति व परम्परा रही है। इसलिए हमारे विवेच्य कवि भी इसके अपवाद नहीं है, किन्तु फिर भी विद्वानों ने अन्तःसाक्ष्य एवं बाह्यसाक्ष्य के आधार पर कुछ निर्णय करने का प्रयास किया है, जिसका यहाँ हम अत्यन्त संक्षेप में उल्लेख कर रहे हैं–

'आदिशूर' पालवंश के उत्थान से पूर्ववर्ती राजा माने गए हैं। इनका समय विद्वानों ने सप्तम शती का उत्तरार्द्ध स्वीकार किया है और इसी युग को भट्टनारायण का उदयकाल भी माना है।[1] इसके अलावा दशमशती में स्थित दशरूपकालोक के प्रणेता आचार्य धनिक ने अपने ग्रन्थ में भट्टनारायण द्वारा विरचित वेणीसंहार का अत्यधिक मार्मिक एवं गम्भीर विश्लेषण किया है, जिसके आधार पर हमारे विवेच्य महाकवि को आचार्य धनिक की अपेक्षा पर्याप्त पूर्ववर्ती माना जा सकता है।

---

[1]. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा निकेतन, वाराणसी, 2001 पृष्ठ–532।

इसीप्रकार 780 ई. के लगभग स्थित[1] आचार्य वामन ने अपने काव्यालंकार सूत्र में वेणीसंहार के 'पतितं वेत्स्यति क्षितौ' इत्यादि वाक्य में प्रयुक्त 'वेत्स्यति' पद की व्याकरण विषयक अनुकूलता को सिद्ध किया है। तदनुसार 'वेत्स्यसि' पद में पदच्छेद द्वारा दो पदों की प्राप्ति होती है– 'वेत्सि+असि'। इसलिए व्याकरण की दृष्टि से उक्त दोनों ही शुद्ध हैं। **इसलिए महाकवि भट्टनारायण को 780 ई. से पूर्ववर्ती मानना उपयुक्त प्रतीत होता है।**

इसीप्रकार 850 ई. के लगभग स्थित आनन्दवर्धनाचार्य ने अपने ध्वन्यालोक में वेणीसंहार के पंचम अंक में प्रयुक्त श्लोक 'कर्ता द्यूतच्छलानाम्' (5/26) को ध्वनिकाव्य के उत्कृष्ट उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है।[2] इसके अतिरिक्त 1070 ई. के लगभग स्थित आचार्य भोज ने सरस्वती कण्ठाभरण में, ग्यारहवीं शती के पूर्वार्द्ध में विद्यमान आचार्य क्षीरस्वामी की अमरकोष टीका में तथा 1100 ई. के लगभग स्थित आचार्य मम्मट ने अपने काव्यप्रकाश में हमारे विवेच्य वेणीसंहार के उद्धरणों को प्रस्तुत किया है। **इस आधार पर महाकवि भट्टनारायण को उक्त सभी से पूर्ववर्ती आदिशूर के समय में 650 ई. से लेकर 675 के मध्य स्थित मानना युक्तिसंगत प्रतीत होता है।**

ii) **व्यक्तित्व एवं कृतित्व** – यद्यपि महाकवि ने स्वयं के विषय में अधिक कुछ भी नहीं लिखा है, किन्तु प्रस्तुत एकमात्र कृति वेणी–संहार के आधार पर उनके व्यक्तित्व के विषय में हम कुछ अनुमान अवश्य लगा सकते हैं, जिसके विषय में हम यहाँ अत्यन्त संक्षेप में उल्लेख कर रहे हैं–

---

1 . संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, संस्कृत साहित्य संस्थान, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, पृष्ठ– 382 ।

2 . ध्वन्यालोक, आनन्दवर्धनाचार्य, पृष्ठ–225।

(क) **महाकवि की धार्मिक आस्था**– सर्वप्रथम तो इस नाटक के मंगलाचरण में कवि ने भगवान् विष्णु,[1] रासलीला में संलग्न श्रीकृष्ण[2] तथा त्रिपुरासुर के विनाशक धूर्जटि भगवान् शिव[3] को स्मरण किया है। इसलिए कहा जा सकता है कि इन तीनों में ही उनकी प्रबल आस्था रही है। इनमें भी श्रीकृष्ण को भगवान् विष्णु का ही अवतार मानते हुए उन्होंने परमब्रह्म[4] की श्रेणी में रखा है। यही कारण है कि यहाँ पर श्रीकृष्ण का सुदर्शन के साथ वर्णन किया गया है[5] तथा उन्हें अपने से ही उत्पन्न 'महत्' तत्त्वादि के क्षोभ से उत्पन्न बताया है।[6] दुर्योधन की सभा में भी वे अपना विराटस्वरूप प्रदर्शित करके दुर्योधन द्वारा बन्दी बनाए जाने के प्रयास को विफल कर देते हैं। इसके अतिरिक्त उनकी मान्यता है कि सूर्य अनिष्टों को दूर करने वाला है, इसीलिए वे द्वितीय अंक में भानुमती के स्वप्नदर्शन के अनिष्ट को सूर्य की पूजा उन्हें पुष्पांजलि तथा अर्घ्य प्रदान कराकर दूर करने का प्रयास करते हैं।[7]

(ख) **प्रस्तुत कृति का अपनी वृद्धावस्था में प्रणयन**– इसके अतिरिक्त द्वितीय अंक में वर्णित कंचुकी की वृद्धावस्था का वर्णन,[8] कवि

---

[1]. वेणीसंहार– 1/1।

[2]. वेणीसंहार– 1/2।

[3]. वेणीसंहार– 1/3।

[4]. आत्मारामा विहितरतयो निर्विकल्पे समाधौ
ज्ञानोत्सेकाद्विघटिततमोग्रन्थयः सत्त्वनिष्ठाः।
यं वीक्षन्ते कमपि तमसां ज्योतिषां वा परस्तात्
तं मोहान्धः कथमयममुं वेत्तु देवं पुराणम्।। 1/23।।

[5]. वेणीसंहार– 3/9।

[6]. कृतगुरुमहदादिक्षोभसम्भूतमूर्ति,
गुणिनमुदयनाशस्थानहेतुं प्रजानाम्।
अजममरमचिन्त्यं चिन्तयित्वाऽपि न त्वां,
भवति जगति दुःखी किं पुनर्देव दृष्ट्वा ।।43।।

[7]. वेणीसंहार– 2/16 से पूर्व।

[8]. वेणीसंहार– 2/1।

कवि की स्वयं की वृद्धावस्था की स्थिति प्रतीत होता है। प्रस्तुत वर्णन से यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि महाकवि को राजाओं के महलों में रहने का भी अवसर प्राप्त हुआ होगा, क्योंकि यहाँ पर राजमहल में रहने वाले व्यक्ति की स्थिति का सुन्दर वर्णन किया गया है, जिसमें उसे सुनते हुए भी अनसुना करना तथा देखते हुए भी अनदेखा करना पड़ता है।

(ग) **ब्राह्मणों के प्रति सद्भाव**– प्रस्तुत कृति में महाकवि का ब्राह्मणों के प्रति सद्भाव भी अभिव्यक्त हुआ है। यही कारण है कि यहाँ उन्होंने ब्राह्मण को अवध्य[1] कहने के साथ–साथ राक्षसों द्वारा इनके रक्त को पीने का निषेध भी किया है,[2] क्योंकि तृतीय अंक में रुधिरप्रिय रुधिरप्रिय तथा उसकी पत्नी वसागन्धे के मध्य वार्तालाप प्रसंग में द्रोणाचार्य के रक्त न पीने के प्रति कवि की भावना ब्राह्मणों के प्रति उनके समादर भाव को अभिव्यक्त करने वाली है।

(घ) **शकुनों के प्रति अगाध विश्वास**– प्रस्तुत कृति में पद–पद पर महाकवि की शकुनों के प्रति गहन विश्वास की अभिव्यक्ति हुई है, तभी तो प्रायः प्रत्येक अंक में कवि ने इसका उल्लेख किया है। अपशकुनों के विषय में द्वितीय अंक में दुर्योधन की पत्नी भानुमती, चेटी एवं सखी–संवाद के अन्तर्गत स्वप्न में नकुल द्वारा सौ सर्पों को मारने का वर्णन[3] कह सकते हैं, जो दुर्योधन के सौ भाइयों की भावी मृत्यु की की सूचना के रूप में प्रयोग किया गया है।

---

[1] . कर्णः–जात्या काममवध्योऽसि चरणं त्विममुद्धृतम्।
अनेन लूनं खड्गेन पतितं द्रक्ष्यसि क्षितौ।।3/41।।

अश्वत्थामा– अरे मूढ़! किं नाम 'जात्या काममवध्योऽहम्' इयं सा जातिः परित्यक्ता। (इति यज्ञोपवीतं छिनत्ति) तृतीयअंक–42 से पूर्व।

[2] . राक्षसः–(सभयम्) वसागन्धे, ब्राह्मणशोणितं खल्वेतत् गलं दहद्दहत प्रविशति। तत्किमेतेन? 3/3 से पूर्व

[3] . वेणीसंहार– 2/8 के बाद।

किन्तु इस सम्बन्ध में महाकवि की मान्यता है कि अपशकुनों से होने वाले अनिष्ट को धार्मिकचर्चा, देवसंकीर्तन, दूर्वा आदि मांगलिक वस्तुओं को धारण करने से भी दूर किया जा सकता है। इसीप्रकार दुर्योधन के रथ की पताका के टूटने[1] रूप अपशकुन के लिए, यहाँ पर गंगाजल के स्पर्श करने, ब्राह्मणों का आशीर्वाद प्राप्त करने तथा यज्ञ आदि करने का उल्लेख किया गया है।[2] इसके अलावा दुर्योधन की बायीं आँख के फड़कने[3], उसके द्वारा पूजा के पुष्पों के गिरने[4] को भी अपशकुन के रूप में चित्रित किया गया है तथा शुभ शकुन के रूप में षष्ठ अंक में युधिष्ठिर की दायीं आँख का फड़कना सम्मिलित हैं[5], जिसके परिणामस्वरूप बाद में द्रौपदी का भीमसेन से मिलन हुआ है।

किन्तु इसी प्रसंग में यह भी ध्यातव्य है कि यद्यपि महाकवि ने एक स्थल पर अंगिरा ऋषि के मत को प्रदर्शित करते हुए[6], इस विषय में विश्वास न करने की बात का भी कथन किया है, जिसे तात्कालिक समाज में प्रचलित एक मत के रूप में देखा जा सकता है। उल्लेखनीय है कि कवि का पुनर्जन्म में भी गहन विश्वास रहा है।[7]

(ङ) **स्त्रियों के प्रति सम्मानजनक स्थिति का अभाव**– प्रस्तुत नाटक के आधार पर महाकवि के मन में स्त्रियों के प्रति सम्मानजनक

---

1. वेणीसंहार– 2/23 के बाद।
2. वेणीसंहार– 2/12 के बाद।
3. वेणीसंहार– 2/14 ।
4. वेणीसंहार– 2/16 से पूर्व ।
5. युधिष्ठिर– (दक्षिणाऽक्षिस्पन्दनं सूचयित्वा) पांचालि! निमित्तानि में कथयन्ति, सम्भावयिष्यसि वृकोदरमिति। वेणीसंहार– 6/33 के बाद।
6. (वामाक्षिस्पन्दनं सूचयित्वा) आः! कथं ममापि नाम दुर्योधनस्यानिमित्तानि हृदयक्षोभमावेदयन्ति। (सावष्टम्भम्) अथवा भीरुजनहृदयप्रकम्पनेषु का गणना दुर्योधनस्यैवं विधेषु विषयेषु? गीतश्चायमर्थोऽगिरसा–

    ग्रहाणां चरितं स्वप्नोऽनिमित्तान्युपयाचितम्।
    फलन्ति काकतालीयं तेभ्यः प्राज्ञा न बिभ्यति।।15।।

7. वेणीसंहार– 4/9 के बाद तथा 4/13 ।

भाव दृष्टिगोचर नहीं हुआ है, क्योंकि यहाँ पर स्त्री अपने पति की आज्ञा प्राप्त करके ही व्रतादि का आचरण करने में समर्थ प्रतिपादित की गयी है। यही कारण है कि भानुमती स्वप्नदर्शन के अनिष्ट के निवारण के लिए अपने पति दुर्योधन से आज्ञा प्राप्त करती है।[1]

इसीप्रकार द्रौपदी के अपमान का बदला लेने की चिन्ता एकमात्र भीम को ही रही है, उसके दूसरे पति युधिष्ठिर आदि इसके प्रति उदासीन प्रतीत होते हैं। दूसरे शब्दों में, स्त्री की भावनाओं की यहाँ पुरुष पात्रों को कोई परवाह नहीं है। उच्चकुल की स्त्रियाँ उच्च चरित्र वाली बतायी गयी है।[2] पति के अनिष्ट की सम्भावना को देखकर स्त्री तो अपने स्वप्न को भी बार–बार भूल जाती है।

इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण नाटक में द्रौपदी की अत्यधिक दयनीय दशा का वर्णन करना, उक्त कथ्य की पुष्टि में सहायक तथ्य कहा जा सकता हैं। इसीप्रकार यहाँ स्त्रियों में होने वाली स्वभाव से ही झूठी शंका का उल्लेख भी किया गया है।[3] यहाँ तक कि स्वयं प्रतिनायक दुर्योधन भी भानुमती के भोलेपन का उपहास उड़ाता है।[4]

(च) **श्राद्धक्रिया में दृढ़ विश्वास**– अन्तिम षष्ठ अंक में महाकवि की यह मान्यता भी अभिव्यक्त हुई है, तभी तो चार्वाक नामक राक्षस द्वारा मुनिरूप में भ्रमित किए जाने पर, भीम तथा अर्जुन को मरा हुआ मानकर युधिष्ठिर और द्रौपदी भीम एवं अर्जुन दोनों के लिए ही **जलोदक क्रिया** सम्पन्न करते हैं।[5]

---

1. वेणीसंहार– 2/17 से पूर्व।
2. वेणीसंहार– 2/11।
3. वेणीसंहार– 2/15 से बाद।
4. अहो मुग्धत्वं बालानाम्। वेणीसंहार– 2/25 से पूर्व।
5. युधिष्ठिरः– (पादौ प्रक्षाल्योपस्पृश्य च) एष तावत्सलिलांजलिर्गांगेयाय भीष्माय गुरवे, अयं प्रपितामहाय शान्तनवे। अयमपि पितामहाय विचित्रवीर्याय। (सास्रम्) तातस्याधुनाऽवसरः। अयं तावत्स्वर्गस्थिताय सुगृहीतनाम्ने पित्रे पाण्डवे।

अद्यप्रभृति वारीदमस्मत्तो दुर्लभं पुनः।

(छ) **भाग्यों में प्रबल विश्वास**– प्रस्तुत नाटक में भीम को छोड़कर प्रायः सभी पात्रों युधिष्ठिर[1], दुर्योधन[2], कंचुकी[3], सखी आदि का भाग्यों में प्रबल विश्वास भी चित्रित किया गया है, जिसे महाकवि की स्वयं की मान्यता के रूप में देखा जा सकता है।

(ज) **लोकाचार के प्रति आस्था**– इसके अतिरिक्त प्रस्तुत विवेच्य नाटक में महाकवि की **लोकाचार** के विषय में भी दृढ़ आस्था अभिव्यक्त हुई है, तभी तो उन्होंने यहाँ इस बिन्दु पर अत्यधिक बल दिया है।[4] षष्ठ अंक में कवि का मुनियों के प्रति श्रद्धाभाव भी अभिव्यक्त हुआ है।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन के आधार पर हमें महाकवि की मान्यताओं एवं उनके व्यक्तित्व के विषय में स्पष्टरूप से आभास हो जाता है। नायक भीम के पुष्ट शरीर के समान ही, उनके पुष्ट शरीर वाला होने की बात भी इसी प्रसंग में कही जा सकती है। इसके अलावा महाकवि को यश अत्यधिक प्रिय रहा है। इसीलिए उन्होंने अश्वत्थामा के माध्यम से कीर्ति की महत्ता का उल्लेख किया है[5] तथा अपनी कृति वेणीसंहार के लिए 'जीयात् प्रबन्धो महान्' सर्वोत्कृष्ट होने की कामना करते हुए स्वयं के लिए सुयश की अभिलाषा की है।

इसी प्रसंग में विशेषरूप से उल्लेखनीय यह भी है कि महाकवि को अपने समय में काव्यरस के मर्मज्ञ विद्वानों के न होने की अत्यधिक पीड़ा है, क्योंकि उनका मानना है कि आज काव्यपाठ तथा

तात! माद्र्याऽम्बया सार्धं मया दत्तं निपीयताम्।। 6/29।।

1. युधिष्ठिरः–.........न पुनरेतावन्ति भागधेयानि नः, यदि कदाचिद्विजयी स्याद्वत्सो–ऽर्जुन.....। वेणीसंहार– 6/28 से पूर्व।

2. दुर्योधन– पराङ्मुखं खलु दैवमस्माकम्। वेणीसंहार– 5/9 से पूर्व।

3. कंचुकी– सर्वथा देवं नः स्वस्ति करिष्यति।

4. युधिष्ठिर– अनतिक्रमणीयं लोकवृत्तम्। 6/29 से पूर्व

5. अथ मरणमवश्यमेव जन्तोः
किमिति मुधा मलिनं यशः कुरुध्वे।।3/6।।

सुभाषित चर्चा में रुचि लेने वाले विद्वान् नहीं रह गए हैं। इसीप्रकार शास्त्रों तथा काव्यों के विषयों पर गोष्ठियों का आयोजन भी नहीं किया जाता है। कविजनों के सरस, सालंकार, प्रसादगुणयुक्त मनोहर वचन में भी अब सुनने को नहीं मिल रहे हैं।[1]

इसीप्रकार जैसा कि हम पूर्व में उल्लेख कर चुके हैं कि भट्टनारायण का केवल एक नाटक वेणीसंहार ही प्राप्त है। शास्त्रीय दृष्टि से हर्ष की रत्नावली के बाद इसका अत्यधिक महत्त्व है। यद्यपि अधिकांश नाट्याचार्यों ने इसी नाटक को आदर्श ग्रन्थ के रूप में स्वीकार किया है।

iii) **वेणीसंहार नाटक का संक्षिप्त परिचय**– प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु को कुल छः अंकों में निबद्ध किया गया है। अंकों के अनुसार इसकी कथा इसप्रकार है–

प्रथम अंक में श्रीकृष्ण दूत बनकर दुर्योधन की राजसभा में जाते हैं, इससे भीम अत्यधिक क्रोधित हैं, क्योंकि सन्धि होने पर वह दुःशासन की छाती का रक्तपान तथा दुर्योधन की जंघा को तोड़ने विषयक अपनी प्रतिज्ञा को पूरा नहीं कर पाएगा।[2] इसके अलावा जब भीम को ज्ञात होता है कि दुर्योधन ने श्रीकृष्ण को बन्दी बनाने की चेष्टा की, तो वह उनकी महिमा का वर्णन करते हुए[3], श्रीकृष्ण के इस अपमान के लिए युधिष्ठिर को दोषी मानकर उनके प्रति भी क्रोधित होता है। स्वयं युधिष्ठिर भी दुर्योधन के इस कृत्य से कुपित होते हैं।

द्वितीय अंक, युद्ध की घटनाओं से परिपूर्ण इस अंक में भीष्म एवं अभिमन्यु जैसे योद्धा वीरगति का प्राप्त हो चुके हैं तथा दुर्योधन

---

[1]. वेणीसंहार– 6/47।

[2]. चंचद्भुजभ्रमितचण्डागदाऽभिघात–
संचूर्णितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य।
स्त्यानाऽवनद्धघनशोणितशोणपाणि–
रुत्तंसयिष्यति कचांस्तव देवि! भीमः।।1/21।

[3]. वेणीसंहार– 1/23।

की पत्नी भानुमती नेवले द्वारा एक सौ सर्पों को मारने का दुःस्वप्न अपनी सखियों को सुनाकर, इस अनिष्ट के निवारण के लिए, भगवान् सूर्य के व्रत के लिए तत्पर होती है, किन्तु तभी दुर्योधन आकर उसका व्रत–भंग कर देता है तथा वह अनेक प्रकार से अपनी पत्नी को स्वप्न पर विश्वास न करने के लिए कहता है (2/15) और दोनों **दारुपर्वत नामक प्रासाद** पर चले जाते हैं।

तभी अकस्मात् कंचुकी द्विरुक्ति के माध्यम से दुर्योधन के रथ की पताका के टूटने की सूचना देता है तथा प्रतिहारी सिन्धुराज जयद्रथ की माता एवं दुःशला के आने की सूचना देता है। ये दोनों आकर अर्जुन की सूर्यास्त से पूर्व जयद्रथ को मारने की प्रतिज्ञा से दुर्योधन को अवगत कराते हुए, उससे अपने पति जयद्रथ रक्षा की प्रार्थना करती हैं। दुर्योधन उन दोनों को समझाते हुए विदा करता है (2/28) और स्वयं युद्धभूमि के लिए प्रस्थान करता है।

तृतीय अंक में राक्षस–राक्षसी संवाद से घमासान युद्ध होने तथा द्रोणाचार्य के मारे जाने की सूचना मिलती है तथा पितृवध के शोक से व्याकुल अश्वत्थामा प्रवेश करता है, जिसे कृपाचार्य सान्त्वना प्रदान करते हैं। इसी बीच में कर्ण तथा दुर्योधन का प्रवेश होता है, जिनके वार्तालाप से आचार्य द्वारा शस्त्रत्याग की सूचना मिलती है। इसके अलावा कर्ण, दुर्योधन को यह भी समझाता है कि आचार्य अपने पुत्र अश्वत्थामा को राजा बनाना चाहते थे। इसीलिए पुत्रवध को सुनकर निराश उन्होंने अपने शस्त्र का ही त्याग कर दिया।

दुर्योधन अपने मित्र कर्ण की बातों पर विश्वास कर लेता है। इसी बीच कृपाचार्य और अश्वत्थामा, दुर्योधन के पास आते हैं और कृपाचार्य, अपने भांजे अश्वत्थामा को सेनापति बनाने के लिए कहता है, जिससे वह अपने पिता की मृत्यु का बदला ले सके, जबकि दुर्योधन उन्हें बताता है कि उसने कर्ण को सेनापति बनाने का वचन दे दिया है।

इसके बाद कर्ण और अश्वत्थामा के बीच में वाक्‌युद्ध होता है, जिसके परिणामस्वरूप अश्वत्थामा, कर्ण के वध होने तक शस्त्रत्याग की प्रतिज्ञा कर लेता है। इसी बीच 'नेपथ्य' से भीम की गर्वोक्ति सुनायी देती है, जिसमें दुःशासन का रक्त पीने की सूचना दी जाती है, जिसे सुनकर अश्वत्थामा फिर से शस्त्र उठाने का प्रयास करता है, किन्तु तभी **आकाशवाणी द्वारा उसे रोक** दिया जाता है। अश्वत्थामा को इस बात का दुःख है कि वह दुःशासन की रक्षा नहीं कर पाता है।

चतुर्थ अंक में दुःशासन के खून का प्यासा भीम उसे मार डालने के लिए घोर आक्रमण करता है, जिसे बचाने के लिए स्वयं दुर्योधन युद्धभूमि में उतरता है, किन्तु भीम के बाणों से विद्ध होकर अचेत अवस्था में रथ में गिर जाता है। युद्ध में आहत हुए दुर्योधन को उसका सारथि युद्धभूमि से बाहर वटवृक्ष के नीचे ले जाता है। होश में आने पर दुर्योधन इस कार्य के लिए सारथि को डाँटता है। इसी बीच कर्ण का सेवक सुन्दरक आता है तथा दुर्योधन को युद्ध के विषय में विस्तार से कहता है तथा उसे दुःशासन की मृत्यु का दुःखद समाचार भी देता है। कर्ण के हीनबल से दुर्योधन अत्यन्त दुःखी होता है। युद्ध का वर्णन मात्र होने से इस अंक में नाटकीय व्यापार अवरुद्ध सा हो गया है।

पंचम अंक में दुःशासन की मृत्यु का समाचार सुनकर गान्धारी और धृतराष्ट्र, अपने पुत्र दुर्योधन की दुर्दशा को जानकर, स्वयं उसके पास आते हैं और अभी भी उससे पाण्डवों के साथ सन्धि करने का आग्रह करते हैं, किन्तु दुर्योधन इसे पूर्णरूप से नकार देता है। तभी शल्य कर्ण की मृत्यु का समाचार लेकर आता है। सभी लोग शोक से अभिभूत होकर उसके गुणों की चर्चा करते हैं।

तभी अर्जुन एवं भीम अपने शत्रु दुर्योधन को खोजते हुए वहाँ पर आते हैं। धृतराष्ट्र के समक्ष अर्जुन विनम्रता के साथ तथा भीम औद्धत्यपूर्वक अपना परिचय देता है। इसी अवसर पर भीम एवं दुर्योधन

का वाक्युद्ध होता है। इसी बीच अश्वत्थामा भी वहाँ पर आ जाता है और दुर्योधन के व्यवहार से असन्तुष्ट होकर प्रस्थान कर जाता है।

षष्ठ और अन्तिम अंक में कवि युधिष्ठिर का प्रवेश कराता है तथा शल्य की मृत्यु के बाद, भीम द्वारा वध से बचने के लिए दुर्योधन सरोवर में छिप जाता है तथा **सहदेव के प्रयत्नों से उसका पता चलता** है एवं उसके बाद भीम और दुर्योधन का गदायुद्ध होता है। इसी बीच दुर्योधन के मित्र चार्वाक राक्षस का मुनिवेष में आगमन होता है, जो अपनी माया से गदायुद्ध में भीम के वध की बात सभी के सामने कहता है, जिसके परिणामस्वरूप सभी शोक सन्तप्त हो जाते हैं तथा युधिष्ठिर एवं द्रौपदी आत्मदाह के लिए तत्पर होते हैं। तभी दुर्योधन के रक्त रंजित हाथों वाले भीम का आगमन होता है, युधिष्ठिर उसे दुर्योधन समझकर त्रस्त होते हैं, किन्तु कंचुकी के पहचानने पर उसका परिचय सभी को प्राप्त होता है। सभी प्रसन्न होते हैं तथा श्रीकृष्ण के आशीर्वाद रूप भरतवाक्य से नाटक समाप्त हो जाता है।

iv) **वेणीसंहार कृति के मूलस्रोत एवं परिवर्तन**– जैसा कि हम पूर्व में उल्लेख कर चुके हैं कि वेणीसंहार नाटक की मूलकथा को कवि ने महाभारत से ग्रहण किया है और घटनाओं को नाटकीयरूप प्रदान करने के लिए आवश्यकता के अनुसार अनेक संशोधन एवं परिवर्तन भी किए हैं, जो इसप्रकार हैं–

- मूलकथा में भीम ने केवल दुर्योधन के उरुभंग की प्रतिज्ञा की है, जबकि प्रस्तुत नाटक में कवि ने उसके रक्त से रंजित हाथों द्वारा द्रौपदी की वेणी को संवारने की प्रतिज्ञा करायी है।
- मूलकथा में पाँच गाँव देकर सन्धि करने का प्रस्ताव लेकर संजय ही दुर्योधन के पास जाता हैं, किन्तु प्रस्तुत नाटक में कवि ने यह कार्य श्रीकृष्ण द्वारा कराया है।
- इसीप्रकार मूलकथा में श्रीकृष्ण द्वारा अपने प्रभाव के अतिशय को प्रदर्शित करने के लिए **विश्वरूप** का दर्शन कराया गया

है, जबकि प्रस्तुत नाटक में कवि ने दुर्योधन के चंगुल से बचने के लिए श्रीकृष्ण के विश्वरूप के प्रदर्शन को नियोजित किया है।

- इसके अलावा प्रथम अंक में भानुमती तथा द्रौपदी के वार्तालाप का सम्पूर्ण अंश कवि की मौलिक कल्पना रही है।

- इसीप्रकार द्वितीय अंक पूर्णतया मौलिकरूप से निबद्ध किया गया है, महाभारत में तो भानुमती के नाम का भी उल्लेख नहीं हुआ है।

- इसके अतिरिक्त प्रस्तुत नाटक के तृतीय अंक में कर्ण एवं अश्वत्थामा का वाक्युद्ध द्रोण के निधन के बाद होता है, जबकि मूल कथा में यह द्रोणवध से पूर्व ही प्रयुक्त हुआ है। वहाँ पर इसका आरम्भ कर्ण एवं कृपाचार्य के वाक्युद्ध से होता है।

- इसीप्रकार तृतीय अंक में प्रयुक्त राक्षस–राक्षसी संवाद के रूप में प्रयुक्त 'प्रवेशक' कवि की मौलिक कल्पना रही है, जिसके माध्यम से उन्होंने युद्ध की अनेक महत्त्वूपर्ण घटनाओं की सूचना प्रदान की है।

- प्रस्तुत नाटक के षष्ठ अंक में भीम द्वारा ललकारने पर दुर्योधन जलाशय से निकलता है, महाभारत की कथा में ललकारने का यह कार्य युधिष्ठिर द्वारा किया जाता है।

- इसीप्रकार षष्ठ अंक में ही चार्वाक राक्षस का आगमन, युधिष्ठिरादि को भ्रमित करना, वस्तुतः दुर्योधन का कूटनीतिक प्रयोग है। नाटकीय दृष्टि से रोचकता लाने के लिए कवि ने इसका नियोजन किया है। इसका आधार वस्तुतः महाभारत युद्ध की समाप्ति के पश्चात् युधिष्ठिर की निन्दा के लिए, ब्राह्मणरूप में राक्षस का हस्तिनापुर जाने की घटना रही है।

- भीम की मृत्यु का झूठा समाचार षष्ठ अंक में राक्षस द्वारा सुनने के बाद युधिष्ठिर एवं द्रौपदी के चिता पर आरोहण आदि की

घटना मूल महाभारत में नहीं है, कवि ने इसका नियोजन यहाँ पर विशेषरूप से करुण रस की सृष्टि के लिए किया है।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि महाभारत के आधार पर विरचित प्रस्तुत वेणीसंहार नाटक में कवि ने नाटकीय रूपान्तर एवं रोचकता का प्रावधान करने हेतु, मूलकथा में अनेक स्थलों पर मनोरम परिवर्तन किए हैं, जिससे महाभारत की नीरस कथावस्तु में सरसता के संचार के साथ–साथ सहृदय को विशिष्ट आनन्द की अनुभूति हुई है।

v) वेणीसंहारम् का नामकरण– कौरवों की सभा में द्यूतक्रीड़ा के अवसर पर दुर्योधन की आज्ञा से दुःशासन द्वारा द्रौपदी के केशपाश पकड़कर, उसका चीरहरण करते हुए घोर अपमान किया गया, जिसके परिणामस्वरूप द्रौपदी ने अपने केश खोलकर प्रतिज्ञा की कि– दुर्योधन के प्राणान्त के बाद ही वह अपनी चोटी बाँधेगी और इसी अवसर पर भीम ने भी दो कठोर प्रतिज्ञाएँ कीं कि–

(क) जिस दुःशासन ने द्रौपदी के चीर का हरण किया है, वह उसकी छाती का खून पिएगा तथा

(ख) जिस जँघा पर दुर्योधन ने पांचाली को बैठाने की बात कही है, उसी जँघा को तोड़कर वह उसका वध करने के बाद, अपने रक्तरंजित हाथों से द्रौपदी की वेणी को सँवारेगा।

ये दोनों ही घटनाएँ इस नाटक के नायक भीम द्वारा पूरी की जाती हैं। इनमें भी प्रमुख घटना दुर्योधन की जँघा को तोड़कर, उसका वध करने की रही है। इसलिए यही घटना इस नाटक के नामकरण का प्रमुख आधार है, क्योंकि **नाटक के अन्त में दुर्योधन के प्राणान्त होने पर ही इस नाटक के नायक भीम ने द्रौपदी की वेणी अर्थात् चोटी का संहार अर्थात् बन्धन किया है।** महाभारत की इसी घटना की नाटकीय रूप में प्रस्तुति करने के लिए महाकवि ने कुछ परिवर्तन के

साथ इस नाटक का प्रणयन किया है। अतः कथावस्तु को देखते हुए प्रस्तुत नाटक का नामकरण पूर्णरूप से सटीक कहा जा सकता है।

vi) **वेणीसंहारम् में प्रकृति चित्रण**– यद्यपि वीररस पूर्ण नाटक होने के कारण यहाँ पर प्रकृति वर्णन का अवसर प्राप्त होना सम्भव नहीं था, किन्तु फिर भी हमारे विवेच्य नाटक में महाकवि ने प्रकृति के सुकुमार तथा कठोर दोनों ही पक्षों का सुन्दर वर्णन किया है, जिनके विषय में हम यहाँ पर अत्यन्त संक्षेप में उल्लेख कर रहे हैं–

प्रथम अंक की प्रस्तावना में सूत्रधार एवं पारिपार्श्विक के वार्तालाप के प्रसंग में सूत्रधार ने शरदृऋतु को आधार बनाकर गीत एवं वाद्यादि का आयोजन करने की बात से महाकवि का प्रकृति विषयक प्रेम अभिव्यक्त हुआ है–

सत्पक्षा मधुरगिरः प्रसाधिताशा मदोद्धतारम्भाः।
निपतन्ति धार्तराष्ट्राः कालवशान्मेदिनीपृष्ठे।।1/6।।

अर्थात् चन्द्रमा के प्रकाश, नक्षत्रों, क्रौंच, हंसों के समूहों, सप्तपर्ण, कुमुद–कमल, काश पुष्पों के परागकणों से धवल गगन से युक्त, दिशाओं के समूह वाले, स्वादिष्ट जल एवं जलाशयों से सम्पन्न, इस शरद्काल का आश्रय लेकर ही गीत, वाद्यादि का आरम्भ कर दिया जाए, क्योंकि इस शरदृऋतु में–

सुन्दर पंखों से युक्त, मधुर कलरव से सम्पन्न, विभिन्न दिशाओं को सुशोभित करने वाले, मदोन्मत्त कार्यों का आरम्भ करने वाले, काली चोंच एवं काले चरणों वाले, विशेष प्रकार के हंस पृथिवीतल पर उतर रहे हैं।।1/6।।

इसीप्रकार **द्वितीय अंक** में प्रयुक्त प्रातःकाल के वर्णन में भी प्रकृति के कोमलरूप के दर्शन सहज ही किए जा सकते हैं, जहाँ पर कमल की पंखुड़ियों में सूर्य की किरणों के पहुँचने पर भ्रमरों के जागरण तथा रात्रिपर्यन्त भ्रमरी के साथ रमण करने के बाद कमलिनी से निर्गमण का सुन्दर एवं मनभावन चित्र प्रस्तुत किया गया है–

जुम्भारम्भप्रविततदलोपान्तजालप्रविष्टै–
र्हस्तैर्भानोर्नृपतय इव स्पृश्यमाना विबुद्धाः।
स्त्रीभिः सार्धं घनपरिमलस्तोकलक्ष्यांगरागा
मुंचन्त्येते विकचनलिनीगर्भशय्यां द्विरेफाः।।2/8।।

इसीप्रकार प्रस्तुत अंक में ही आगे भयंकर आँधी के चित्रण में हम प्रकृति के कठोररूप को भी देख सकते हैं, जहाँ वृक्षों की शाखाओं को चारों ओर फैला देने वाला, घास–फूस से युक्त दण्ड के आकार की धूल को आकाश में उड़ा देने वाला, झाँय–झाँय करता हुआ, ऊँचे भवनों तथा कुँजों में नए मेघ के समान गम्भीर ध्वनि करने वाला, चारों ओर चलने वाला **प्रचण्ड झंझावात** वर्णित हुआ है–

दिक्षु व्यूढाङ्घ्रिपांगस्तृणजटिलचलत्पांसुदण्डोऽन्तरिक्षे
झांकारी शर्करालः पथिषु विटपिनां स्कन्धकार्षैः सधूमः।
प्रासादानां निकुंजेष्वभिनवजलदोद्गारगम्भीरधीर–
श्चण्डारम्भः समीरो वहति परिदिशं भीरु! किं सम्भ्रमेण।।[1]

इसके अलावा द्वितीय अंक में प्रयुक्त बालोद्यान का वर्णन में भी प्रकृति–चित्रण के सौन्दर्य को देखा जा सकता है, जहाँ पर कंचुकी चारों ओर सुगन्ध को सूँघकर महाराज दुर्योधन को ओस के कणों से शीतल वायु द्वारा कँपाए हुए डण्ठलों से ऊँची–नीची शेफालिकाओं द्वारा बना हुआ पुष्पों का समूह, किंचित् गुलाबी लज्जायुक्त सुन्दरियों के कपोलों के समान, श्वेत पुष्पों से पराजित प्रियंगुलता के सौन्दर्य से युक्त, विकसित मौलश्री तथा कुन्द के पुष्पों से सुगन्धित एवं शीतल प्रातःकाल की रमणीयता से सम्पन्न बालोद्यान का अवलोकन करने के लिए कहता है।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि महाकवि भट्टनारायण को प्रकृति के सुकोमल तथा कठोर दोनों ही रूप परमप्रिय रहे हैं, तभी तो अवसर न होते हुए भी उन्होंने वीररस पूर्ण इस काव्य में इसके दोनों ही पक्षों के मनभावन प्रयोग किए हैं।

---

[1]. वेणीसंहार– 2/19।

vii) **वेणीसंहारम् की भाषा शैली**– महाकवि भट्टनारायण वस्तुतः गौड़ी रीति के कवियों की श्रेणी में आते हैं। यही कारण है कि प्रस्तुत कृति के वीररस प्रधान होने के कारण, यहाँ पर ओजगुण और गौड़ी रीति का प्राधान्य दृष्टिगोचर होता है, जिसे भीम, कर्ण एवं अश्वत्थामादि पात्रों के कथन में मुख्यरूप से देखा जा सकता है, इन स्थलों पर भाषा किंचित् समास बहुल और क्लिष्ट हो गयी है। चतुर्थ अंक में सुन्दरक एवं दुर्योधन वार्तालाप के प्रसंग में दो पंक्तियों में मात्र एक शब्द को पूरा किया गया है।[1]

किन्तु इसी प्रसंग में यह भी ध्यातव्य है कि अनेक प्रसंगों में यहाँ वैदर्भी तथा पांचाली रीति का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है, जिन्हें हम श्रृंगार, करुण एवं संवादों में सरलता से देख सकते हैं। इसके अतिरिक्त पात्रों के अनुकूल भाषा का प्रयोग प्रस्तुत कृति की महती विशेषता कही जा सकती है। संवाद यद्यपि संक्षिप्त रहे हैं, किन्तु युद्ध वर्णन आदि प्रसंगों में ये अपेक्षाकृत अधिक लम्बे हो गए हैं। कुल मिलाकर कवि की भाषा को सबल, प्रौढ़ तथा पुष्ट कहा जा सकता है।

उल्लेखनीय है कि वीर, करुण तथा श्रृंगार वर्णनों में महाकवि का कविहृदय जाग्रत हो उठा है और वह भावप्रवाह में बह जाता है एवं कवित्व का आकर्षण उसे भावुक बना देता है। भाषा परिष्कृत एवं प्रांजल प्रयुक्त हुई है तथा अलंकारों के लिए अलंकारों का प्रयोग नहीं किया गया है। सूक्ष्मदृष्टि से विचार करने पर प्रस्तुत कृति में ओज गुण के साथ प्रसादगुण का मणिकांचन प्रयोग, हम सहज ही देख सकते हैं। उक्त कथन की पुष्टि में कुछ ही उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

कर्ण की उक्ति में प्रसादगुण का सौन्दर्य देखा जा सकता है–

सूतो वा सूतपुत्रो वा यो वा को वा भवाम्यहम्।

---

[1] **सुन्दरक–** वज्रनिर्घातनिर्घोषविषमरसितध्वजाग्रस्थितमहावानर स्तुरंगमसंवाहन–व्यापृतवासुदेवशंखचक्रासिगदालांछितचटुलचतुर्बाहुदण्डदुर्दर्शन (4/9 के बाद)

सखी–महाराज, प्रविशतु एनं दारुपर्वतप्रसादम्। उद्वेगकारी खल्वयमुत्थित–परुषरजः कलुषीकृतनयनविदलिततरुवरशब्दविन्नस्त मन्दुरापरिभ्रष्टवल्लभतुरंग–मपर्याकुलीकृतजनपद्धतिर्भीषणः समीरणाऽऽसारः। (2/9 के बाद)

दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम्।।3/37।।

इसीप्रकार दुर्योधन द्वारा कर्ण की मृत्यु के बाद, शल्य पर विजय की आशा लगाने में भी कवि की प्रसादगुण युक्त शैली के दर्शन किए जा सकते हैं–

गते भीष्मे हते द्रोणे कर्णे च विनिपातिते।
आशा बलवती राजन्छल्यो जेष्यति पाण्डवान्।।5/23।।

इसके अलावा महाकवि ने अनेक स्थलों पर माधुर्यगुण का भी मनभावन प्रयोग किया है। द्वितीय अंक में भानुमती के प्रति दुर्योधन का कथन इस सम्बन्ध में उदाहरणरूप में प्रस्तुत किया जा सकता है, जहाँ हमें ध्वन्यात्मकता एवं संगीतात्मकता के दर्शन होते हैं–

कुरु घनोरु पदानि शनैः शनै–
रयि! विमुंच गतिं परिवेपिनीम्।
सुतनु! बाहुलतोपनिबन्धनं मम
निपीडय गाढमुरःस्थलम्।।2/21।।

इसके अतिरिक्त वीररस की उक्तियों में ओज तथा गौड़ी रीति का सुन्दर प्रयोग किया गया है। नाटक के नायक भीम की उक्ति ओज गुण के सुन्दर निदर्शन के रूप में प्रस्तुत की जा सकती है–

चंचद्भुजभ्रमितचण्डगदाऽभिघात–
संचूर्णितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य।
स्त्यानाऽवनद्धघनशोणितशोणपाणि–
रुत्तंसयिष्यति कचांस्तव देवि! भीमः।।1/21।।

इसी क्रम में हम गौड़ी रीति को भी देख सकते हैं, जहाँ पर भीम अपने सिंहनाद की प्रतिध्वनि के समान, नगाड़े के बजाने की बात कहता है–

मन्थायस्तार्णवाम्भःप्लुतकुहरश्चलन्मन्दरध्वानधीरः
कोणाघातेषु गर्जत्प्रलयघनघटाऽन्योन्यसंघट्टचण्डः।
कृष्णाक्रोधाग्रदूतः कुरुकुलनिधनोत्पातनिर्घातवातः
केनास्मत्सिंहनादप्रतिरसितसखो दुन्दुभिस्ताडितोऽयम्।।2/21

अलंकार, रस, प्राकृत एवं छन्दों के प्रयोग के विषय में हम आगे स्वतन्त्ररूप से उल्लेख करेंगे, किन्तु उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण के आधार पर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि महाकवि गौड़ी रीति के कवि होते हुए भी प्रसाद, ओज एवं माधुर्य तीनों ही गुणों के प्रयोग में पूर्णतया सिद्धहस्त हैं। उनकी भाषा–शैली भी काव्यमर्मज्ञों को प्रभावित करने वाली रही है। भावों के अनुसार भाषा का प्रयोग उनकी महती विशेषता है।

viii) **वेणीसंहारम् में अलंकारयोजना**– इसी प्रसंग में यह भी विशेषरूप से उल्लेखनीय है कि महाकवि अलंकारों के स्वाभाविक प्रयोग के विषय में पूर्णरूप से निपुण हैं। प्रस्तुत वेणीसंहार नाटक में उन्होंने कहीं पर भी अलंकारों का प्रयत्नपूर्वक प्रयोग नहीं किया है। उन्हें उपमा[1], रूपक[2], श्लेष, अर्थान्तरन्यास[3], विरोधाभास, उत्प्रेक्षा[4] एवं काव्यलिंग आदि अलंकार विशेषरूप से प्रिय रहे हैं, जिनका हम यहाँ अत्यन्त संक्षेप में उल्लेख कर रहे हैं–

नाटक के नायक भीम की उक्ति में रूपक अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है, जहाँ पर महाकवि ने युद्ध में यज्ञ के रूपक की सुन्दर एवं मनभावन परिकल्पना की है–

चत्वारो वयमृत्विजः स भगवान् कर्मोपदेष्टा हरिः,
संग्रामाध्वरदीक्षितो नरपतिः पत्नी गृहीतव्रता।
कौरव्याः पशवः प्रियापरिभवक्लेशोपशान्तिः फलं,
राजन्योपनिमन्त्रणाय रसति स्फीतं यशोदुन्दुभिः।।1/25।।

इसीप्रकार प्रथम अंक के आरम्भ में ही कृष्णद्वैपायन व्यास को तमोगुण एवं रजोगुण अर्थात् अनुराग से रहित बताते हुए विरोधाभास अलंकार की सुन्दर सृष्टि की है–

श्रवणांजलिपुटपेयं विरचितवान्भारताख्यममृतं यः।

---

1. वेणीसंहार–1/14 ।
2. वेणीसंहार–1/23, 24, 27 ।
3. वेणीसंहार– 1/20 ।
4. वेणीसंहार–1/1 ।

तमहमरागमकृष्णं कृष्णद्वैपायनं वन्दे।।1/4।।

इसके अलावा सूत्रधार द्वारा किए गए शरदऋतु के वर्णन में कवि ने श्लेष अलंकार की छटा को बिखेरा है, जहाँ पर एक अर्थ **शरदऋतु के पक्ष** में तथा दूसरा **दुर्योधन के पक्ष** में प्रतीत हो रहा है, जो सहृदय को आह्लादित करने वाला है–

सत्पक्षा मधुरगिरः प्रसाधिताशा मदोद्धतारम्भाः।
निपतन्ति धार्तराष्ट्राः कालवशान्मेदिनीपृष्ठे।।1/6।।

इसीप्रकार अन्यत्र प्रयुक्त 'स्वस्थाः' पद में भी श्लेष अलंकार के सौन्दर्य के दर्शन किए जा सकते हैं, जहाँ पर कुरुराज के पुत्रों के **स्वस्थ** एवं **स्वर्ग स्थित** होने की प्रतीति हो रही है, जिसे अत्यन्त चमत्कारजनक कहा जा सकता है–

निर्वाणवैरदहनाः प्रशमादरीणां
नन्दन्तु पाण्डुतनयाः सह माधवेन।
रक्तप्रसाधितभुवः क्षतविग्रहाश्च
स्वस्था भवन्तु कुरुराजसुताः सभृत्याः।।1/7।।

एक स्थल पर महाकवि की दार्शनिक रुचि भी अभिव्यक्त हुई है, जहाँ पर उन्होंने भगवान् श्री कृष्ण में परमब्रह्म के दर्शन किए हैं–

आत्मारामा विहितरतयो निर्विकल्पे समाधौ
ज्ञानोत्सेकाद्विघटिततमोग्रन्थयः सत्त्वनिष्ठाः।
यं वीक्षन्ते कमपि तमसां ज्योतिषां वा परस्तात्
तं मोहान्धः कथमयममुं वेत्तु देवं पुराणम्।। 1/23।।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि महाकवि अलंकारों के स्वाभाविक प्रयोग में पूर्णतया सिद्धहस्त हैं। उन्होंने कहीं भी अलंकारों के लिए अलंकारों का प्रयोग नहीं किया है।

ix) वेणीसंहारम् में छन्दयोजना– प्रस्तुत नाटक में कुल अट्ठारह छन्दों का प्रयोग किया गया है। वीर रस एवं प्रकृति वर्णन में शार्दूलविक्रीडित और स्रग्धरा जैसे बड़े छन्दों का तथा नीति, करुण एवं

सामान्य वर्णन में छोटे छन्दों का प्रयोग किया है। इस सम्बन्ध में हमने परिशिष्ट में विस्तारपूर्वक विवेचन किया है। अतः यह उसी स्थान पर अवलोकनीय है।

x) **वेणीसंहारम् में रसयोजना**– प्रस्तुत विवेच्य नाटक में **अंगी रस वीर** रहा है, किन्तु करुण, बीभत्स, भयानक एवं शान्त[1] आदि रसों को यहाँ अंग रूप में प्रस्तुत किया गया है। भीम की उक्तियों में वीररस की मनोरम अभिव्यक्ति दर्शनीय है–

मथ्नामि कौरवशतं समरे न कोपाद्
दुःशासनस्य रुधिरं न पिबाम्युरस्तः।
संचूर्णयामि गदया न सुयोधनोरू
सन्धिं करोतु भवतां नृपतिः पणेन।।1/15।।

नाटक का नायक भीम अपने भाई सहदेव से कहता है कि यदि तुम्हारे भाई युधिष्ठिर कौरवों से पाँच गाँवों को लेकर सन्धि भी कर लें, तो क्या मैं युद्ध में क्रोधपूर्वक सौ कौरवों का वध नहीं करूँगा? दुःशासन की छाती का खून नहीं पीऊँगा? दुर्योधन की जँघा को नहीं तोड़ूँगा? अर्थात् निश्चय ही, मैं अपनी पूर्व में की गयी प्रतिज्ञाओं को पूरा करूँगा, इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है।

इसीप्रकार अन्यत्र दुर्योधन की उक्ति में भी वीररस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। उदाहरण द्रष्टव्य है–

कृष्टा केशेषु भार्या तव, तव च पशोस्तस्य राज्ञस्तयोर्वा
प्रत्यक्षं भूपतीनां मम भुवनपतेराज्ञया द्यूतदासी।
अस्मिन्वैरानुबन्धे वद किमपकृतं तैर्हता ये नरेन्द्राः,
बाह्वोर्वीर्यातिरेकद्रविणगुरुमदं मामजित्वैव दर्पः।।5/30।।

भीम के प्रति प्रस्तुत उक्ति में दुर्योधन ने अपने क्रोध को अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए, राजाओं के समक्ष अपनी आज्ञा से द्रौपदी के केशों को पकड़कर खींचने की बात का उल्लेख करते हुए कहा है

---

[1]. आत्मारामा विहितरतयो निर्विकल्पे समाधौ, इत्यादि। वेणीसंहार–1/23 ।

कि दूसरे राजाओं ने तुम्हारा क्या अपकार किया था, जो उनका वध किया गया। इसलिए सर्वप्रथम मुझ पर ही विजय प्राप्त करो, अन्यों को मारने से कोई लाभ नहीं है। दुर्योधन के क्रोधभाव के प्रदर्शित होने से वीररस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

इसीप्रकार द्वितीय अंक में प्रयुक्त कुछ श्लोकों में श्रृंगाररस की सुन्दर अभिव्यंजना हुई है, जिसमें दुर्योधन अपनी पत्नी भानुमती से कहता है कि प्रेम के कारण स्तिमित नेत्रों वाले, तुम्हारे मुखरूपी चन्द्रमा ने कमल की शोभा को भी जीत लिया है। लज्जा के कारण शब्दों की स्पष्ट अभिव्यक्ति नहीं हो पा रही है। व्रत का पालन करने से अधर का आलक्तक हट गया है,मैं तो तुम्हारे इस मुखचन्द्र का पान करना चाहता हूँ, क्योंकि दूसरा सभी तो मुझे सहज ही उपलब्ध है–

प्रेमाऽऽबद्धस्तिमितनयनाऽऽपीयमानाब्जशोभं
लज्जायोगादविशदकथं मन्दमन्दस्मितं वा।
वक्त्रेन्दुं ते नियममुषितालक्तकाग्राधरं वा
पातुं वांछा परमसुलभं किं नु दुर्योधनस्य।।2/18।।

इसीप्रकार षष्ठ अंक में मुनि वेष में स्थित चार्वाक राक्षस द्वारा भीम की मृत्यु का झूठा समाचार देने के बाद युधिष्ठिर एवं द्रौपदी के शोक में करुणरस की सुन्दर सृष्टि हुई है। भीम को लक्ष्य करके कही गयी युधिष्ठिर की उक्ति इस प्रसंग में उल्लेखनीय है–

मया पीतं पीतं तदनु भवताऽम्बास्तनयुगं,
मदुच्छिष्टैर्वृत्तिं जनयसि रसैर्वत्सलतया।
वितानेष्वप्येवं तव मम च सोमे विधिरभू–
न्निवापाऽम्भः पूर्वं पिबसि कथमेवं त्वमधुना ।।6/31।।

अर्थात् हमेशा ही तुमने मेरे पीने के बाद माता के स्तनों का दूध पिया, मेरे खाने के बाद उच्छिष्ट से अपनी तृप्ति की, यज्ञों में सोम पान भी मेरे पीने के बाद ही किया, तो फिर तर्पण की जलांजलि तुम पहले क्यों ग्रहण कर रहे हो?

इसीप्रकार पंचम अंक में शोकाकुल माता–पिता को समझाते हुए दुर्योधन के कथन में भी करुणरस का परिपाक देखा जा सकता है, जहाँ पर वह अपने मरे हुए सौ पुत्रों की चिन्ता न करके, अपने अयोग्य पुत्र की चिन्ता न करने की बात माता गान्धारी से कहता है–

मातः! किमप्यसदृशं कृपणं वचस्ते
सुक्षत्रिया क्व भवती ? क्व च दीनतैषा?
निर्वत्सले! सुतशतस्य विपत्तिमेतां
त्वं नानुचिन्तयसि, रक्षसि मामयोग्यम्?।।3।।

इसीप्रकार युद्धवर्णनों में बीभत्स आदि रसों को भी सहज ही अनुभव किया जा सकता है। उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन के आधार पर निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि महाकवि रसपरिपाक में निपुण रहे हैं, प्रस्तुत कृति में उनके इस काव्यकौशल का सहृदय को सहज ही अनुमान हो जाता है।

xi) **वेणीसंहारम् में प्राकृत प्रयोग**– आचार्य भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में देश एवं पात्र के अनुसार विभिन्न प्राकृतों के प्रयोग का निर्देश किया है। उन्होंने सात प्राकृतों को भाषा तथा अन्यों को विभाषा संज्ञा प्रदान की है। सात भाषाओं में मागधी, अवन्तिजा, प्राच्या, शौरसेनी, अर्धमागधी, बाह्लीक, और महाराष्ट्री को गिनाया गया है, जबकि शाबरी, आभीरी, चाण्डाली, सचरी, द्राविड़ी, उद्रजा तथा वनेचरों की भाषाओं को विभाषा माना है।[1]

उल्लेखनीय है कि हमारे विवेच्य नाटक में **शौरसेनी प्राकृत** का विशेषरूप से प्रयोग किया गया है, किन्तु तृतीय अंक में राक्षस–राक्षसी संवाद में प्रयुक्त 'प्रवेशक' के अन्तर्गत महाकवि ने **मागधी प्राकृत** का प्रयोग किया है। सूत्रधार, पारिपार्श्विक तथा सभी स्त्रीपात्र एवं निम्न श्रेणी के अन्य पात्र यहाँ पर शौरसेनी प्राकृत के माध्यम से अपने विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं।

---

[1]. नाट्यशास्त्र, भरतमुनि– 17/48–49।

शौरसेनी प्राकृत में प्रथम पुरुष एकवचन में **ओ**, **एषः** को **एसो**, **जनः** को **जणो** हो जाते हैं तथा प्रथमपुरुष एक वचन में **द** का लोप नहीं होता है। जैसे– **विपद्यते** को **विवज्जदि** तथा **प्रेक्षते** को **पेक्खदि** होता है और **श** को यहाँ **स** हो जाता है। जैसे– **श्लाघनीयानि** को **सलाहणिआइं** आदि।

इसीप्रकार मागधी में प्रथमपुरुष एक वचन में **एषः** को **एशे** तथा **स्** को **श्** होकर **कस्य** को **कश्य** बनता है। **र** को **ल** होकर यहाँ पर **द्वारके** के स्थान पर **दुआलके** हो जाता है।

xii) **वेणीसंहारम् के तृतीय अंक का महत्त्व**– यद्यपि कुछ विद्वानों ने इस नाटक के तृतीय अंक को नाटकीय दृष्टि से सर्वथा अनुपयोगी माना है, किन्तु यदि हम सूक्ष्मदृष्टि से विचार करें तो वेणीसंहार के इस अंक का अत्यधिक महत्त्व है, क्योंकि इसी अंक में महाकवि को कवित्व तथा नाट्यशास्त्रीय दोनों ही दृष्टियों से अपनी प्रतिभा को प्रदर्शित करने का सुन्दर अवसर प्राप्त हुआ है, जिसपर हम यहाँ अत्यन्त संक्षेप में चिन्तन प्रस्तुत कर रहे हैं। तृतीय अंक में वस्तुतः चार वर्णन प्रमुखरूप से प्रयुक्त हुए है– (क) **राक्षस–राक्षसी संवाद** (ख) **द्रोणाचार्य वध** (ग) **कर्ण एवं अश्वत्थामा का वाक्युद्ध** और (घ) **भीम द्वारा दुःशासन का खून पीने की सूचना**।

वस्तुतः उक्त चारों ही वर्णन नाटक की कथावस्तु में गति प्रदान करने तथा स्वयं कवि को अभिव्यक्त करने की दृष्टि से अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। यही कारण है कि कवि ने इस अंक में सर्वाधिक उनचास श्लोकों का प्रयोग किया है, जिनमें कवि की कवित्व प्रतिभा को अभिव्यक्त होने का अवसर मिला है। उक्त घटनाक्रम के बिन्दुओं के महत्त्व को दृष्टिगत रखते हुए चिन्तन इसप्रकार है–

(क) **राक्षस–राक्षसी संवाद**– इस अंक के आरम्भ में प्रयुक्त राक्षस–राक्षसी संवाद के माध्यम से सहृदय पाठक को युद्ध की भयावहता एवं उससे होने वाली अपूरणीय क्षति और कई सामरिक महत्त्व की घटनाओं के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। इसके अलावा इसी संवाद के माध्यम से भीम तथा हिडिम्बा के पुत्र घटोत्कच

तथा द्रोण की मृत्यु का पता भी हमें चल जाता है, जो कथावस्तु में प्रवाह की दृष्टि से अत्यधिक उपयोगी रहा है।

इसीप्रकार इसी संवाद के माध्यम से दुःशासन के रक्तपान के लिए भीम के शरीर में राक्षसों के प्रवेश करने की बात कहलवा कर कवि ने इस नाटक के नायक भीम के उज्ज्वल चरित्र की रक्षा भी की है। इसके अतिरिक्त इस संवाद के माध्यम से सहृदय पाठकों को युद्ध के चरमसीमा पर घटित होने का भी पता चलता है।

(ख) **द्रोणाचार्य वध**– उक्त राक्षस–राक्षसी संवाद के बाद, इसी अंक में महाकवि ने द्रोणाचार्य के अप्रतिम शौर्य का वर्णन किया है तथा अपने पिता की मृत्यु से अश्वत्थामा का क्रोधित एवं दुःखी होने से वीररस के साथ–साथ करुण रस की सृष्टि होने में भी कवि को सहयोग प्राप्त हो सका है।

(ग) **कर्ण एवं अश्वत्थामा का वाक्युद्ध**– इसी प्रसंग में उल्लेखनीय यह भी है कि यहाँ प्रयुक्त कर्ण एवं अश्वत्थामा का वाक्युद्ध अत्यन्त नाटकीयता के साथ–साथ सजीवता लिए हुए भी है, जिसे पाठकों तथा दर्शकों दोनों ही दृष्टियों से अत्यधिक उपयोगी कहा जा सकता है, क्योंकि इस अंश में महाकवि ने मृत्यु की अवश्यंभाविता, व्यक्ति की जन्मना न होकर कर्मणा महत्ता, समाज में ब्राह्मण की अवध्यता इत्यादि प्रसंगों को अत्यधिक प्रभावीरूप से चित्रित किया है।

(घ) **भीम द्वारा दुःशासन का खून पीने की सूचना**– इसीप्रकार इसी अंक के अन्त में भीम द्वारा दुःशासन के वक्षःस्थल का रक्तपान करने की सूचना भी पाठक को मिलती है, जो वस्तुतः नाटक को नवीन तथा नाटकीय रूप प्रदान करने वाला है, क्योंकि इससे नाटक के पात्रों को आत्मनिरीक्षण का अवसर भी प्राप्त होता है।

xiii) **महाकवि भट्टनारायण की नाट्यकला**– महाकवि भट्ट–नारायण का संस्कृत नाटककारों में उत्कृष्ट स्थान है, क्योंकि अपनी एकमात्र नाट्यकृति वेणीसंहार में उन्होंने आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र में प्रतिपादित प्रायः सभी नियमों की विधिवत् पालना की है। यही कारण है कि परवर्ती नाट्यशास्त्राचार्यों ने भी प्रस्तुत विवेच्य नाटक से

पद–पद पर अनेक उद्धरण दिए हैं। दूसरे शब्दों में, नाट्य में प्रयुक्त होने वाली अर्थप्रकृतियों, अवस्थाओं तथा सभी पंचसन्धियों का यहाँ पर अत्यधिक प्रभावीरूप में प्रयोग किया गया है।

महाभारत से मूलकथा को ग्रहण करके, उसमें अपेक्षित नाटकीय परिवर्तन करते हुए, अपने अद्भुत नाट्यकौशल का परिचय दिया है। कथा संयोजन के नैपुण्य को यहाँ पर सहज ही देखा जा सकता है। यद्यपि संवाद छोटे तथा रोचक प्रयुक्त हुए हैं, किन्तु कुछ स्थलों पर ये आवश्यकता से अधिक लम्बे होने के कारण नीरस भी हो गए हैं, जिसे तात्कालिक कविसमुदाय की सामयिक एवं साहित्यिक प्रवृत्ति के परिचायक रूप में देखा जा सकता है।

कथानक की दृष्टि से घटनाक्रम अत्यधिक सीमित रहा है, किन्तु कवि यहाँ पर अपने उद्देश्य की पूर्ति में पूर्णरूप से सफल हुआ है। उल्लेखनीय है कि महाकवि ने नाटकीय नियमों की पूर्ति के लिए ही वीररस की प्रधानता वाले नाटक में शृंगाररस की उद्भावना भी की है, यद्यपि उनके इस प्रयास को परवर्ती काव्यशास्त्रियों ने रस–दोष की श्रेणी में रखा है।

इसके अतिरिक्त कथनीय यह भी है कि प्रस्तुत नाट्यकृति में पात्रों की संख्या भी सीमित रही है तथा उनमें भी प्रत्येक पात्र का चरित्र–चित्रण भी सुन्दर ढंग से किया गया है, जिसका विस्तार से विवेचन हमने आगे पात्र चरित्र–चित्रण शीर्षक के अन्तर्गत किया है। नाटक के नायकरूप में चित्रित भीम के चरित्र में हमें लेशमात्र भी न्यूनता अथवा शिथिलता दृष्टिगोचर नहीं होती है। प्रतिनायक दुर्योधन राजनीति का चतुर खिलाड़ी होने के साथ–साथ कूटनीतिज्ञ भी चित्रित किया गया है, जो पराजित होने पर भी हिम्मत नहीं हारता है। विलासिता उसके जीवन की सबसे बड़ी कमजोरी है। वह मित्रों का आदर करना भी जानता है। यही कारण है कि सूतपुत्र होते हुए भी कर्ण को उसने अपनी बराबरी का दर्जा दे रखा है।

जहाँ तक ब्राह्मणपुत्र अश्वत्थामा का प्रश्न है। इस चरित्र में हमें स्वयं कवि के व्यक्तित्व के दर्शन होते हैं। वह अवसर की गरिमा

को पहचानने में सर्वथा असमर्थ रहता है। बार–बार शस्त्र परित्याग तथा ग्रहण करना, उसकी अस्थिर बुद्धि होने का ही परिचायक कहा जा सकता है, किन्तु दुर्योधन की सहायता करने की उसके मन में कसक है, जिसे वह उसकी मूर्खता के कारण पूरा नहीं कर पाता है तथा अन्त में अज्ञातवास में चला जाता है।

इसके अलावा कर्ण शूरवीर, महारथी तथा स्वाभिमानी होते हुए भी कुटिल बुद्धि चित्रित हुआ है, इसी के परिणामस्वरूप यह दुर्योधन तथा अश्वत्थामा में दूरियाँ बनाए रखने में सफल हो पाता है। इसप्रकार चरित्र–चित्रण की दृष्टि से प्रस्तुत नाटक को पूर्णतया सफल कहा जा सकता है।

जहाँ तक नाटकीय दृष्टि से घटना संयोजन का प्रश्न है। महाभारत जैसी विशाल कथा से कथावस्तु को ग्रहण करने के बाद भी महाकवि ने यहाँ पर केवल नाट्योपयोगी अंशों को ही ग्रहण किया है। इसीलिए आरम्भ से अन्त तक सभी अंक परस्पर सम्बद्ध प्रयुक्त हुए हैं, क्योंकि प्रथम अंक में प्रयुक्त **'संचूर्णयामि गदया न सुयोधनोरू..'**[1] का सम्बन्ध, नाटक के अन्तिम छठे अंक में प्रयुक्त होने वाले दुर्योधन की जंघा के भंग होने से जुड़ा हुआ है।

इसीप्रकार प्रथम चरण में ही प्रयुक्त 'दुःशासनस्य रुधिरं न पिबाम्युरस्तः.'[2] इत्यादि अंश का सम्बन्ध पंचम अंक में प्रयुक्त 'क्षीबो दुःशासनस्यासृजा..'[3], से जबकि तृतीय अंक में प्रयुक्त कर्ण एवं अश्वत्थामा का विवाद पंचम अंक में 'ममाप्यन्तं प्रतीक्षस्व कः कर्णः कः सुयोधनः?'[4] से सम्बद्ध देखा जा सकता है। इसी प्रसंग में उल्लेखनीय यह भी है कि महाकवि ने प्रस्तुत नाट्यकृति में **पताका स्थानकों** के भी सुन्दर एवं मनभावन प्रयोग किए हैं। **जैसे–** भग्नं भीमेन भवतो....।[5]

---

[1]. वेणीसंहार– 1/15 ।
[2]. वेणीसंहार– 1/15 ।
[3]. वेणीसंहार– 5/28 ।
[4]. वेणीसंहार– 5/39 ।
[5]. वेणीसंहार– 2/24 ।

इत्यादि कथ्य से कवि ने दुर्योधन के भविष्य में होने वाले उरुभंग की सूचना दी है।

इसके अलावा प्रस्तुत कृति में हमें वर्णनों की सार्थकता, स्वाभाविकता भी पद–पद पर देखने को मिलती है। **जैसे–** प्रथम अंक में शरद् वर्णन, अंक–2 में प्रयुक्त प्रभात–वर्णन, अंक–3, व 4 में युद्ध–वर्णन, अन्तिम अंक–6 में युधिष्ठिर तथा द्रौपदी का आत्मदाह के लिए उद्यत होना आदि सभी स्थल महाकवि की नाट्यकला के सुन्दर निदर्शन कहे जा सकते हैं।

इसीप्रकार हम यहाँ पर वर्णनों एवं घटनाओं में संकेतात्मकता का भी अवलोकन कर सकते हैं। **जैसे–** नाटक के प्रथम अंक में प्रयुक्त प्रस्तावना में 'स्वस्था भवन्तु कुरुराजसुताः सभृत्याः'[1] इत्यादि में 'स्वस्थाः' का अभिप्राय कौरवों के स्वर्गस्थ अर्थात् उन सभी का मरण होने से ग्रहण किया गया है, जिसे घटनाओं की संकेतात्मकता के उत्कृष्ट उदाहरण रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त इसी प्रसंग में यह भी ध्यातव्य है कि प्रस्तुत विवेच्य नाटक में प्रत्येक पात्र अपनी स्थिति तथा गरिमा के अनुसार ही भाषा का प्रयोग करते हैं, क्योंकि युधिष्ठिर, भीम, कर्ण तथा अश्वत्थामा इन सभी पात्रों की उक्तियों द्वारा इन सभी का चरित्र–चित्रण सहज ही किया जा सकता है। नाटक के नायक भीम के कथन धीरोद्धत नायक की स्मृति को ताजा कर देते हैं।

अन्त में उल्लेखनीय तथ्य यह भी है कि प्रस्तुत विवेच्य नाटक का अंगीरस **वीर** रहा है, जबकि श्रृंगार, करुण, बीभत्स आदि दूसरे रस अंगरूप में प्रयुक्त हुए हैं। इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है, क्योंकि इस नाटक का आरम्भ और अन्त, भीम की वीररस से परिपूर्ण उक्तियों से होता है। दूसरे शब्दों में, इस नाटक की अन्तरात्मा के रूप में वीररस को स्वीकार किया जा सकता है, जिसका श्रेय नाटक के

---

1. वेणीसंहार– 1/7 ।

नायक तथा प्रतिनायक दोनों के साथ–साथ अश्वत्थामा तथा कर्ण की उक्तियों को भी जाता है।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि किंचित् न्यूनताओं को छोड़कर प्रस्तुत वेणीसंहार नाटक महाकवि भट्टनारायण की उत्कृष्ट नाट्यकला का श्रेष्ठ उदाहरण कहा जा सकता है।

xiv) **महाकवि की प्रेमविषयक दृष्टि**– उल्लेखनीय है कि वीररस पूर्ण प्रस्तुत नाट्यकृति में महाकवि ने समाज के लगभग सभी सम्बन्धों में प्रेम का सुन्दर एवं तलस्पर्शी चित्रण किया है, जिसमें पिता–पुत्र, माता–पुत्र, भाई–भाई, पति–पत्नी, एक मित्र का दूसरे मित्र के साथ, राजा का प्रजा के साथ, भाई का बहन के साथ, स्वामी एवं सेवक का परस्पर प्रेम, यहाँ तक की प्रकृति के साथ आदर्श प्रेम का भी सुन्दर प्रस्तुतीकरण हुआ है, जो सहृदय सामाजिक को बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेता है, जिसे हम महाकवि की गहन प्रेमपूर्ण दृष्टि के रूप में देख सकते हैं।

इनमें भी पिता–पुत्र के प्रेम के लिए हम सर्वप्रथम अश्वत्थामा तथा द्रोण के सम्बन्ध को आदर्शरूप में ग्रहण कर सकते हैं, जो अपने पिता की मृत्यु के समाचार को प्राप्त करके, अत्यधिक दुःखी होता है। इस प्रसंग में अश्वत्थामा द्वारा किया गया विलाप निश्चय ही पिता–पुत्र के गहन प्रेम को साकाररूप प्रदान करने वाला है।[1] कर्ण तथा पुत्र वृषसेन का प्रेम भी इसी कोटि का कहा जा सकता है।

इसी प्रेम के दूसरे स्वार्थी पक्ष को हम धृतराष्ट्र एवं दुर्योधन के मध्य देख सकते हैं, जहाँ न तो पुत्र को ही अपने पिता की परवाह है और न ही पिता धृतराष्ट्र ही पुत्र के लिए विकल हैं, जो विकलता देखने को मिलती भी है, उसमें केवल स्वार्थ ही निहित है, क्योंकि उन्हें दुर्योधन के अलावा अब कोई दूसरा अवलम्ब ही दिखायी नहीं देता है,

---

[1]. वेणीसंहार– 3/19 से 3/25 तक।

जिसे पंचम अंक में धृतराष्ट्र तथा दुर्योधन के वार्तालाप में सहज ही देखा जा सकता है।

जहाँ तक माता और पुत्र के प्रेम का सम्बन्ध है, इसे हम दुर्योधन तथा गान्धारी के मध्य देख सकते हैं,[1] जहाँ अन्धे धृतराष्ट्र और गान्धारी दोनों ही हाथों से टटोलते हुए, दुर्योधन का आलिंगन करते हैं[2]। इसी प्रसंग में प्रयुक्त माता गान्धारी का रुदन,[3] राज्य एवं विजय की उपेक्षा करके, पुत्र के जीवनमात्र की अपेक्षा करना, युद्ध व्यापार से रोकने के लिए उसके सामने हाथ जोड़ना। धृतराष्ट्र द्वारा उसे बार-बार समझाना और युधिष्ठिर के साथ सन्धि के लिए प्रेरित करना, इत्यादि स्थल माता एवं पुत्र के मध्य प्रेम के उत्कृष्ट उदाहरण कहे जा सकते हैं।

इसके अतिरिक्त पति-पत्नी के मध्य प्रेम के यहाँ पर दो रूप देखने को मिलते हैं। प्रथम दुर्योधन का भानुमती के प्रति प्रेम, जो पूर्णतया **'ऐन्द्रिक'** कहा जा सकता है, जो कामुकता लिए हुए है, उसमें लेशमात्र भी गहनता नहीं है। इसी के ठीक दूसरी ओर द्रौपदी का अपने पति भीमसेन के प्रति प्रेम, पूर्णरूप से सात्त्विकता लिए हुए अन्तर्मन की गहराइयों का है, जिसके अभाव में वह क्षण भर के लिए भी जीवित रहना नहीं चाहती है और चिता पर आरूढ़ होकर शीघ्र से शीघ्र अपने प्रिय के साथ स्वर्ग में जाकर मिलने के लिए बेचैन है।

दो मित्रों के मध्य पवित्र-प्रेम को हम दुर्योधन तथा कर्ण के बीच देख सकते हैं, जहाँ जाति आदि सभी गौण हो गए हैं। पंचम अंक में प्रयुक्त दुर्योधन तथा कर्ण के उद्गार इसके उदाहरणरूप में प्रस्तुत किए जा सकते है।[4] स्वामी-सेवकों के मध्य प्रेम का भी यहाँ सुन्दर चित्रण किया गया है, जिसका पद-पद पर अवलोकन किया जा सकता है, फिर भी अन्तिम षष्ठ अंक इसके लिए आदर्श रहा है, जहाँ

---

1. वेणीसंहार- 5/1-25।
2. वेणीसंहार- 5/1 के बाद।
3. वेणीसंहार- 5/7 के बाद।
4. वेणीसंहार- 5/12, 13, 14, 15, 18, 19, 20, 22।

पर स्वामी युधिष्ठिर की विकलता में सभी सेवक भी उतने ही दुःख का अनुभव कर रहे हैं।

इसी अंक में भाई का भाई के प्रति प्रगाढ़ प्रेम, हम युधिष्ठिर का भीम एवं अर्जुन के प्रति देख सकते हैं, जो सहृदय को अश्रुओं से भिगो देता है। ऐसा हृदयद्रावक प्रेम–चित्रण अन्यत्र सर्वथा दुर्लभ है। भाई–बहन के प्रेमसम्बन्ध को दुर्योधन के पास अपने पति की रक्षा के लिए गयी दुःशला तथा दुर्योधन के मध्य देखा जा सकता है, जहाँ निरीह दुःशला के प्रति उसके भाई दुर्योधन का उपेक्षापूर्ण व्यवहार रहा है, जिसे किसी भी दृष्टि से प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता है।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन के आधार पर महाकवि की प्रेम विषयक दृष्टि के विषय में स्पष्टचित्र सहृदय पाठक के समक्ष उभरकर आता है, जिसे प्रस्तुत विवेच्य नाटक का अत्यधिक प्रभावी पक्ष कहा जा सकता है। प्रकृति विषयक प्रेम के बारे में हम पूर्व में उल्लेख कर चुके हैं, क्योंकि प्रकृति को यहाँ कवि ने प्रेरणा की स्रोत के रूप में वर्णित किया है।

xv) **महाकवि की न्यूनताएँ**– भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने प्रस्तुत विवेच्य महाकवि की अनेकानेक न्यूनताओं का उल्लेख किया है, जिनके विषय में यहाँ अत्यन्त संक्षेप में उल्लेख कर रहे हैं–

- प्रस्तुत नाटक में विवरणों की अत्यधिक बहुलता होने से पाठक को अनावश्यक उलझन उत्पन्न हुई है, जिसके कारण इसमें रोचकता के गुण को हानि पहुँची है।
- दुर्योधन एवं भानुमती के बीच में श्रृंगाररस का प्रभावहीन प्रयोग सहृदय को अत्यधिक पीड़ा देने वाला है। इसीलिए काव्य–शास्त्रीय विद्वानों ने इसमें 'अकाण्डे प्रथनम् दोष' की परिकल्पना की है।
- महाकवि ने स्वयं को नाटकीय नियमों में अनावश्यक रूप से जकड़कर रखा है, जिससे उनकी नाट्यकला को खुलकर विस्तार नहीं मिल पाया है।

▪ नाटक में कवित्व की अनावश्यक प्रधानता के कारण नाटकीयता एवं कथाप्रवाह दोनों ही प्रभावित हुए हैं।

▪ कर्ण एवं अश्वत्थामा के वाक्युद्ध को कवि द्वारा अनावश्यक विस्तार प्रदान किया गया है।

▪ महाकवि में घटनाओं को नाटकीय शैली में प्रस्तुत करने की क्षमता का सर्वथा अभाव ही रहा है।

▪ अंक दो से लेकर पंचम अंक पर्यन्त सभी अंक नाटकीय दृष्टि से उपयोगी प्रतीत नहीं हो रहे हैं, जिसे कथानक का असंतुलित गठन भी कहा जा सकता है।

नायिका द्रौपदी के चरित्र में रोचकता तथा चारित्रिक विकास का अभाव रहा है।

▪ अंक चार में सुन्दरक के कथन को अत्यधिक विस्तार प्रदान करने के कारण, यह प्रसंग बोझिल तथा गत्यात्मकता के अभाव से युक्त हो गया है।

▪ इसीप्रकार अंक छः में भी मुनि वेशधारी राक्षस के कथन को अनावश्यक विस्तार प्रदान किया गया है।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण के आधार पर हम कह सकते हैं कि महाकवि भट्टनारायण के वेणीसंहार नाटक में समालोचकों को गुण कम दोष अधिक ही प्रतीत हुए हैं, किन्तु इसे पूर्णतया न्यायोचित नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि जब इस नाटक के गुणों पर हम विस्तार से चिन्तन करते हैं, तो यह नाटक हमें नूतन सरणी को प्रदर्शित करने वाला, उत्कृष्ट नाटक प्रतीत होता है, जिसके आधार पर महाकवि का नाट्यजगत् में स्थान निर्धारित किया जा सकता है।

xvi) **महाकवि का नाट्यसाहित्य में स्थान**– वेणीसंहार वस्तुतः वीररस प्रधान नाटक है। इसलिए इसकी भाषा में वीररस के लिए उपयुक्त ओज गुण तथा गौड़ी रीति को स्वीकार किया गया है, जिसे इस नाटक का दोष न मानकर गुण ही स्वीकार करना युक्तिसंगत होगा, क्योंकि यहाँ प्रयुक्त भीम, दुर्योधन, कर्ण और अश्वत्थामा की उक्तियाँ मृत्प्राय व्यक्ति में भी प्राण फूँक देने वाली हैं।

अनेक स्थलों पर प्रसाद एवं माधुर्य गुणों की मनभावन उपस्थिति की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। वस्तुस्थिति तो यह है कि महाकवि प्रसाद, माधुर्य गुणों के साथ–साथ ओज गुण की प्रस्तुति में भी निपुण रहे हैं। वीररस की प्रधानता के कारण आलोचकों को उनकी प्रमुखता दिखायी देना स्वाभाविक है, जिसे इस नाटक का दोष न कहकर गुण ही स्वीकार करना चाहिए।

इसके अतिरिक्त वीर एवं करुण रस का जिसप्रकार का समन्वय हमें प्रस्तुत नाटक में दृष्टिगोचर होता है, वैसा अन्यत्र सर्वथा दुर्लभ है। फिर जैसे वीर एवं ओज से परिपूर्ण भीम जैसे पात्र को देखकर एक बार तो दर्शक भी भयभीत हो जाते हैं, जिसे इस नाटक की सफलता के रूप में ही देखा जा सकता है।

इसीप्रकार नाटक की काव्यात्मकता को भी दोषरूप में देखना संगत प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि सहृदयों को ये ही स्थल 'बोर' करने वाले न होकर आनन्द विभोर करने वाले है। यही कारण है कि वे इसके दूसरे सभी दोषों को विस्मृत करके मन्त्रमुग्ध हो जाते हैं।

इसके अतिरिक्त उल्लेखनीय यह भी है कि परवर्ती नाट्यशास्त्रियों तथा काव्यशास्त्रियों ने इस नाटक की शैली की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। महाभारत की लगभग सम्पूर्ण कथा एक छोटे से नाटक में सिमेटने का कार्य महाकवि द्वारा जिस कुशलतापूर्वक किया गया है, उसे निश्चय ही **अद्वितीय** कहा जा सकता है। कुछ प्रसंग निश्चय ही विस्तृत हो गए हैं, किन्तु केवल उन्हीं के आधार पर नाटक को निकृष्ट सिद्ध करना लेशमात्र भी उचित नहीं है।

वस्तुस्थिति तो यह है कि प्रस्तुत नाटक का प्रत्येक अंक सप्रयोजन नियोजित किया गया है। कथावस्तु की आवश्यकता को दृष्टिगत रखते हुए ही उसे विस्तार दिया गया है, इसीलिए उससे हटाया गया कोई भी अंश नाटक में अधूरापन लाने वाला है। चरित्र–चित्रण भी प्रभावोत्पादक एवं सुन्दर बन पड़े हैं। संवादों एवं वर्णनों में सजीवता विद्यमान है। भावों के अनुकूल प्रयुक्त होने वाले शब्द–विन्यास की तो विदेशी विद्वानों ने भी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन के आधार पर निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि महाकवि भट्टनारायण विरचित वेणीसंहार नाटक वस्तुतः संस्कृत के नाट्यजगत् में उत्कृष्ट कोटि का वीररस पूर्ण नाटक है। यदि इसमें कोई श्रृंगाररस प्रधान नाटक के समान कल्पना करे, तो इसे कवि तथा कृति दोनों के प्रति भी न्याय नहीं माना जाएगा। इसलिए अन्त में महाकवि को सफल नाटककार तथा उनकी एकमात्र कृति वेणीसंहार को उत्कृष्ट नाट्यकृति कहने में हमें लेशमात्र भी संकोच नहीं करना चाहिए।

6. चरित्र चित्रण–प्रस्तुत विवेच्य नाटक में महाकवि ने पात्रों का नियोजन एवं चरित्र–चित्रण प्रतिद्वन्द्वी रूप में किया है। **जैसे–** भीम–दुर्योधन, कर्ण–अश्वत्थामा, द्रौपदी और भानुमती। उल्लेखनीय है कि प्रस्तुत नाटक में इन युगल चरित्रों के माध्यम से ही पात्रों के चरित्र का पारम्परिक रूप हमारे समक्ष प्रस्तुत किया गया है, जिसका हम यहाँ अत्यन्त संक्षेप में विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं–

(क) भीमसेन– नाटक के नायक के रूप में चित्रित गहरे नीले नेत्रों वाले[1] भीम का चरित्र वस्तुतः अत्यधिक शक्तिशाली तथा शारीरिक रूप से सुदृढ़ वर्णित हुआ है। यही कारण है कि हजारों हाथियों की शक्ति से युक्त यह शत्रुओं की विशाल सेना को अकेला ही विनष्ट करने में सक्षम है। अपने अप्रतिम शारीरिक बल के कारण यह बाल्यकाल से ही धृतराष्ट्र के पुत्र कौरवों की शत्रुता का पात्र रहा है।[2] इसके अलावा स्वाभिमान इसमें कूट– कूटकर भरा हुआ है, तभी तो यह सन्धि का प्रयास करने पर स्पष्टरूप से इससे स्वयं को अलग कर लेता है।[3]

इसे कौरवों द्वारा किया गया एक–एक अपकार, धर्मराज युधिष्ठिर को जुआ खिलाकर राज्य हड़पने, लाक्षागृह में जला डालने का निन्दनीय प्रयास, विष दिलाने एवं भरी सभा में द्रौपदी के केशों को

[1]. वेणीसंहार– 6/30।

[2]. प्रवृद्धं यद्वैरं मम खलु शिशोरेव कुरुभिः। वेणीसंहार– 1/10।

[3]. क्रुधा सन्धिं भीमो विघटयति यूयं घटयत।

पकड़कर, उसे निर्वसना करने का घृणित कार्य आदि सभी कुछ याद है, तभी तो वह उसका बदला लेने के लिए प्रतिक्षण व्याकुल रहता है और स्पष्टरूप से कह ही तो देता है कि– मेरे जीवित रहते हुए धृतराष्ट्र के पुत्र भला स्वस्थ कैसे रह सकते हैं?[1]

अपनी प्रियतमा द्रौपदी की खुले बालों वाली दयनीय स्थिति को देखकर उसका पौरुष उसे ललकारता रहता है, वह अत्यधिक दुःखी है कि युधिष्ठिर के कारण उसे शत्रुओं को विनष्ट करने का अवसर प्राप्त नहीं हो पा रहा है। इसीलिए वह अपनी प्रेयसी को आश्वासन भी दे देता है कि– 'भले ही राजा युधिष्ठिर कौरवों के साथ सन्धि कर लें, किन्तु वह तो अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार सौ कौरवों को युद्धभूमि में विनष्ट अवश्य करेगा। दुःशासन के वक्षस्थल का रक्त अवश्य पिएगा तथा गदा के द्वारा दुर्योधन की दोनों जँघाओं को निश्चय ही विदीर्ण करेगा–

मथ्नामि कौरवशतं समरे न कोपाद्
दुःशासनस्य रुधिरं न पिबाम्युरस्तः।
संचूर्णयामि गदया न सुयोधनोरू
सन्धिं करोतु भवतां नृपतिः परेन।।1/15।।

दुर्योधन भी दूसरे पाण्डुपुत्रों की अपेक्षा भीम से ही प्रतिक्षण भयभीत रहता है और उसके अदम्य साहस तथा अद्भुत शारीरिक सामर्थ्य के समक्ष अपना मानसिक सन्तुलन भी खो बैठता है, जिसके परिणामस्वरूप वह एक बारगी युद्धभूमि में भीम द्वारा स्वयं को मार डालने की बात का ही उल्लेख कर देता है।[2]

इसके अतिरिक्त भीम की दूसरी चारित्रिक विशेषताओं में महती विशेषता अपने बड़े भाई युधिष्ठिर की आज्ञा का पालन करना भी रहा है, जिसके कारण वह सामर्थ्य सम्पन्न होते हुए भी अनेक कष्टों को प्रसन्नता के साथ सहन कर लेता है। प्रतिक्षण शत्रुओं को विनष्ट करने के लिए लालायित होते हुए भी वह धैर्यवान् है। सामान्य स्थिति में वह

---

[1] . स्वस्था भवन्ति मयि जीवति धार्तराष्ट्राः? ।। वेणीसंहार– 1/8।

[2] स्वबलेन निहन्ति संयुगे न चिरात् पाण्डुसुतः सुयोधनम्। वेणीसंहार–

विनम्र है कि क्रोध की स्थिति में वह स्वयं पर नियन्त्रण रखने में समर्थ नहीं हो पाता है। पंचम अंक में धृतराष्ट्र तथा गान्धारी के प्रति किया गया व्यवहार इस कथ्य के प्रमाणरूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

इसीप्रकार भीम अपने बड़े भैया युष्ठिष्ठिर तथा अर्जुन सखा श्रीकृष्ण के प्रति अत्यन्त श्रद्धावान् हैं, तभी तो वह श्रीकृष्ण को परम ब्रह्म के रूप में देखता है[1] और उनकी मर्यादा के विपरीत किसी भी आचरण को यह सहन नहीं कर पाता है। इसे अपने छोटे भाइयों से भी अत्यधिक प्रेम है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रस्तुत नाटक में महाकवि ने भीम को नायकरूप में अनेक गुणों से युक्त निबद्ध किया है, जो सहृदय पाठक के हृदय में सहज ही अपना उत्कृष्ट स्थान बनाने में समर्थ हो जाता है। इसके सभी गुणों पर समग्ररूप में दृष्टिपात करने पर हमें यह धीरोद्धत श्रेणी का पात्र किंवा नायक प्रतीत होता है।

(ख) दुर्योधन– नाटक के नायक भीम का प्रतिद्वन्द्वी होने के कारण महाकवि ने अत्यधिक स्वार्थी, अहंकारी, अपकारी,[2] विलासी और मद से अन्धे इसे प्रतिनायक के रूप में चित्रित किया है। अपनी शक्ति के सामने सदा ही इसने सम्पूर्ण संसार को तिनके के समान तुच्छ माना है। महाभारत का हृदय विदारक युद्ध भी इसी के अहंकार का परिणाम है। धनुर्विद्या में निष्णात द्रोणाचार्य के युद्ध में मारे जाने के बाद, उनके लिए शोक न करके, उनकी निन्दा करना, वस्तुतः इसकी मदान्धता का ही परिचायक रहा है।

इतना ही नहीं, अपनी एकमात्र बहन दुःशला के पति जयद्रथ को मारने की अर्जुन की प्रतिज्ञा को सुनने के बाद भी, किसी प्रकार

---

[1] .आत्मारामा विहितरतयो निर्विकल्पे समाधौ
ज्ञानोत्सेकाद्विघटिततमोग्रन्थयः सत्त्वनिष्ठाः।
यं वीक्षन्ते कमपि तमसां ज्योतिषां वा परस्तात्
तं मोहान्धः कथमयममुं वेत्तु देवं पुराणम्।। वेणीसंहार– 1/23।।

[2] . गुप्त्या साक्षान्महानल्पः स्वयमन्येन वा कृतः।
करोति महतीं प्रीतिमपकारोऽपकारिषु।।2/3।।

का उद्यम न करना, अपितु अपनी पत्नी के साथ विलासितापूर्ण कार्यों में निमग्न हो जाना, उसके अविवेकी तथा अहंकारी होने को ही सिद्ध करता है। इस सबके अतिरिक्त नीच प्रवृत्ति वाले कर्ण तथा मामा शकुनि के परामर्श को ही अपना गुरुमन्त्र मानकर इस पात्र ने न केवल स्वयं के लिए, अपितु अपने इष्ट मित्रों, शुभचिन्तकों तथा सम्पूर्ण कुल के लिए विनाश के बीजों को ही बोया है।

इसप्रकार अवगुणों का महासागर होते हुए भी इस नाटक के प्रतिनायक दुर्योधन में हमें अनेक गुण भी दृष्टिगोचर होते हैं, क्योंकि भीष्म–द्रोण आदि अनेक महारथियों के मारे जाने तथा युद्ध के समाप्त हो जाने पर, अपने माता–पिता के कहने पर भी यह अपने दृढ़ निश्चय से विचलित नहीं होता है और युद्ध के बिना सूई की नोंक के बराबर भूमि भी पाण्डुपुत्रों को देने से मना कर देता है, यद्यपि प्रत्यक्षरूप से यह उसकी मूर्खता का ही परिचायक कहा जा सकता है, किन्तु अप्रत्यक्षरूप से इसे गुणरूप में भी देखा जा सकता है।

इसके अलावा अपने मित्रों के प्रति इसका अटूट विश्वास है। विपत्ति में भी यह उनका साथ नहीं छोड़ता है। कर्ण को इसके उदाहरणरूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। इसीप्रकार अपने सभी भाइयों तथा स्वजनों के प्रति इसे अपार स्नेह भी है। यही कारण है कि उन सबकी मृत्यु के बाद उसकी इच्छा राज्यलाभ करने तथा जीवित रहने की भी नहीं रह जाती है। इसके अतिरिक्त यह अद्वितीय योद्धा तथा कुशल कूटनीतिज्ञ भी कहा जा सकता है, इसके विनाश का मूलकारण तो वस्तुतः उसके नीच मित्र तथा परामर्शदाता रहे हैं, जिनमें उनके मामा शकुनि का महत्त्वपूर्ण हाथ कहा जा सकता है।

(ग) युधिष्ठिर– इसे प्रस्तुत नाटक में सामान्य श्रेणी के पात्र के रूप में चित्रित किया गया है, क्योंकि प्रथम अंक में अप्रत्यक्षरूप से तथा अन्तिम अंक में प्रत्यक्षरूप से उपस्थिति के अतिरिक्त अन्यत्र इसकी उपस्थिति हमें दिखायी नहीं देती है। यह पाण्डुपुत्रों में सबसे बड़ा होने के कारण राजा अवश्य है किन्तु सरल एवं शान्त प्रकृति का होने के कारण इसमें हमें क्षत्रियोचित गुण दिखायी नहीं देते हैं। अपनी

पत्नी द्रौपदी का भरी सभा में अपमान देखकर भी इसका खून नहीं खौलता है। सम्पूर्ण महाभारत का युद्ध वस्तुतः इसी के अदूरदर्शितापूर्ण कर्मों का परिणाम कहा जा सकता है।

युद्ध की विभीषिका से बचने के लिए अन्त में यह पाँच गाँवों को लेने मात्र से कौरवों के साथ सन्धि करने के लिए तैयार हो जाता है, जो किसी भी क्षत्रियोचित गुणों वाले व्यक्ति के लिए शोभादायक एवं सम्मानजनक नहीं कहा जा सकता है। इतना ही नहीं, अपने भाइयों के प्रेम के वशीभूत होकर तो यह यहाँ तक कह बैठता है कि– 'एक भी पाण्डव के युद्ध में मारे जाने पर मैं अपने प्राणों का परित्याग कर दूँगा।' इसे लेशमात्र भी प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता है।

इसी का लाभ नाटक के अन्तिम अंक में दुर्योधन का शुभेच्छु चार्वाक नामक राक्षस मुनिरूप में असत्य सूचना देकर उठाने का घृणित प्रयास करता है, जिसे युधिष्ठिर की लेशमात्र भी दूरदर्शिता की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है। अन्त में, केवल इतना ही कहना उपयुक्त होगा कि प्रस्तुत विवेच्य नाटक में युधिष्ठिर नाम का पात्र सहृदय सामाजिक के चित्त में छोटा सा भी आदरणीय स्थान बनाने में सर्वथा असमर्थ रहा है।

(घ) अश्वत्थामा– आचार्य द्रोण के पुत्र के रूप में चित्रित अश्वत्थामा नामक पात्र को कवि ने अपेक्षाकृत अधिक उत्कृष्टरूप से वर्णित किया है, क्योंकि धनुर्विद्या में पारंगत यह यहाँ पर पितृभक्त, स्वामीभक्त तथा आत्माभिमानी व्यक्ति के रूप में चित्रित हुआ है। अपने पिता के प्रति इसे अटूट श्रद्धा तथा गहन विश्वास है। अपार सामर्थ्य एवं शक्ति, इसके शरीर के रोम–रोम में विद्यमान है।

अपने पिता के युद्ध में मारे जाने पर यह प्रेमातिरेक के कारण ही उसी क्षण उनसे मिलने के लिए स्वर्ग में जाने के लिए भी तैयार हो जाता है। इसी पितृ–प्रेम एवं भक्ति के कारण यह अपने पिता की निन्दा में एक शब्द भी सुनना पसन्द नहीं करता है। कर्ण इसकी इसी कमजोरी से सुपरिचित है। इसीलिए कुटिलतापूर्वक वह दुर्योधन के सामने द्रोण की बुराई करता है, परिणामस्वरूप कर्ण–पक्षपाती दुर्योधन

की नीतियों से खिन्न होकर यह अपने अस्त्र–शस्त्रों का परित्याग कर देता है।

इसप्रकार हम देखते हैं कि यह पात्र यहाँ दृढ़ प्रतिज्ञ तथा कर्तव्यनिष्ठ दोनों ही गुणों से युक्त दिखायी देता है, क्योंकि भीम द्वारा दुःशासन की छाती को विदीर्ण करने की सूचना के अवसर पर यह शीघ्र ही उसकी रक्षा करने का प्रयास करते हुए, शस्त्र उठा ही तो लेता है, जिसे आकाशवाणी उसी क्षण ऐसा करने से रोक भी देती है। इतना ही नहीं, कर्ण की मृत्यु के बाद एक बार फिर से यह दुर्योधन की सहायता करने के लिए उद्यत होता है, जिसे दुरभिमानी दुर्योधन अपनी हठवादिता पूर्ण रवैये के कारण अस्वीकार कर देता है। परिणामस्वरूप दुःखी होकर यह हमेशा के लिए अज्ञातवास पर चला जाता है।

इसप्रकार उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन से स्पष्ट है कि अद्भुत शौर्य से सम्पन्न, यह पात्र महाभारत के समान ही यहाँ भी दुर्योधन की उपेक्षावृत्ति का शिकार रहा है। कुटिल परामर्श दाताओं से घिरा होने के कारण दुर्योधन, अपने अविवेक के कारण दृढ़ प्रतिज्ञ, धार्मिक, उत्तम धनुर्विद्या विशेषज्ञ और निःस्पृह इस ब्राह्मण पात्र का अपने पक्ष में किसी भी प्रकार से उपयोग नहीं कर सकता है, जिसे दुर्योधन की अदूरदर्शिता के रूप में ही देख सकते हैं।

(ङ) कर्ण– इसे नाटक का पराक्रमी, उत्साही, किन्तु दुरभिमानी पात्र कह सकते हैं। स्वभाव से ही दुष्ट होने से यह पाण्डवों से बदला लेने एवं उनका अहित करने की ताक में हमेशा ही लगा रहता है। यहाँ तक कि अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए यह दुर्योधन को भी अश्वत्थामा के विरुद्ध भड़काने से नहीं चूकता है। इसके अतिरिक्त पुरुषार्थ पर इसका अडिग विश्वास देखा जा सकता है। तभी तो यह अश्वत्थामा के साथ वाक्युद्ध में स्पष्ट रूप से कहता है कि मेरा जन्म किसी भी कुल में क्यों न हुआ हो, उसकी मुझे परवाह नहीं है, क्योंकि मनुष्य का जन्म लेना तो विधाता के अधीन है, मेरे अधीन तो कर्म करना है–

दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम्।

अद्भुत शौर्यसम्पन्न होते हुए भी इसमें हमें दुरभिमान, ईर्ष्या, असिष्णुता और कुमन्त्रणा आदि अनेक दुर्गुण भी देखने को मिलते हैं। वस्तुतः इसी की कुमन्त्रणा का परिणाम है कि दुर्योधन, अश्वत्थामा जैसे वीर, निःस्पृही व्यक्ति को सेनापति पद पर नियुक्त नहीं करता है। इसप्रकार दुर्योधन को विनाश के कगार पर धकेलने में भी यह कुछ सीमा तक कारण रहा है। इसप्रकार कह सकते हैं कि प्रस्तुत विवेच्य नाटक में प्रमुखता लिए हुए भी यह पात्र विध्वंसक, स्वार्थी, दम्भी तथा कलुषित चरित्र वाला होने के कारण पाठक की सहानुभूति को जीतने में पूर्णतया असमर्थ रहा है।

(च) द्रौपदी– प्रस्तुत नाटक में दासी आदि को यदि छोड़ दे, तो प्रमुखरूप से दो ही स्त्री पात्र प्रयुक्त हुए हैं, द्रौपदी एवं भानुमती। इनमें द्रौपदी इस नाटक के नायक भीम की प्रेयसी है, तो भानुमती इसके प्रतिनायक दुर्योधन की पत्नी है। द्रौपदी यहाँ वस्तुतः उत्कृष्ट क्षत्रियकुल में उत्पन्न वीरांगना है। स्वाभिमान इसमें हमें कूट–कूटकर देखने को मिलता है। प्रस्तुत विवेच्य नाटक की यह धुरी है, क्योंकि नाटक का सम्पूर्ण घटनाचक्र आरम्भ से लेकर अन्त तक इसी पात्र के इर्दगिर्द घूमता रहता है। युधिष्ठिर द्वारा जुए में इसको हारने के बाद दुर्योधन के उकसाने पर दुःशासन द्वारा किया गया मर्यादाभंग स्वाभिमानिनी इसे लेशमात्र भी सहन नहीं हो सका है तथा जिसका विरोध इसने अपनी तरह से अपनी वेणी को खुला रखकर किया है।

इसी से प्रभावित होकर महाकवि ने इसे नाटक की प्रमुख घटना तथा नामकरण में कारण माना है। तभी तो वे यहाँ पर भीम अपनी प्रियतमा के अश्रुओं को पौंछने तथा दुर्योधन के रक्त से उसके खुले बालों को संवारने की भीषण प्रतिज्ञा करा देते हैं, जो नाटक के नामकरण में भी सहायक है। इसी प्रसंग में यह विशेषरूप से उल्लेखनीय है कि यद्यपि महाभारत की मूल कथा के अनुसार द्रौपदी के पतियों की संख्या पाँच रही है, किन्तु उसे भीम अत्यधिक प्रिय रहा है, जिसे कवि ने अनेक स्थलों पर सुन्दर अभिव्यक्ति भी प्रदान की है।

वह एक सती भारतीय नारी होने के साथ स्वाभिमानी तथा निडर रही है। अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए यह अपने प्राणों को आहुत करने के लिए भी प्रतिपल तैयार रहती है। तभी तो कपटी मुनिवेषधारी राक्षस चार्वाक के असत्य वचनों पर विश्वास करके, वह स्वयं को अग्नि में दाह करने के लिए उद्यत हो जाती है, क्योंकि शत्रु द्वारा किए जाने वाले तिरस्कार से वह प्राणों का त्याग करना अधिक श्रेयस्कर मानती है।

(छ) भानुमती– इस नाटक के प्रतिनायक दुर्योधन की पत्नी होने पर भी यह स्त्रीपात्र यहाँ पर सहृदय सामाजिक की सहानुभूति प्राप्त करने में किंचित् सफल रहा है। यद्यपि प्रथम अंक में द्रौपदी के लिए प्रयुक्त व्यंग्य सहृदय को कटु भी प्रतीत हुआ है, किन्तु उद्धत एवं क्रूर स्वभावी पति की पत्नी होने यह दोष इसमें आया है, अन्यथा तो हमें यहाँ पर इसका सरल हृदय, श्रेष्ठ, साध्वी भारतीय नारी का उत्कृष्ट स्वरूप ही देखने को मिलता है। यही कारण है कि स्वप्न में भी अपने पति का अनिष्ट देखकर[1] भारतीय नारी के समान यह इसके निवारणार्थ व्रतादि का आचरण करने में निमग्न हो जाती है।

इसके अतिरिक्त हमें यहाँ पर यह धर्मभीरु भी प्रतीत होती है तभी तो अपने स्वप्न को कहते हुए वह अधीर हो उठती है और व्रत के भंग होने पर अपने पति दुर्योधन से इस व्रत को पूरा करने का अत्यन्त विनम्र आग्रह भी करती है। इसप्रकार हम देखते हैं कि मात्र प्रथम एवं द्वितीय अंक में थोड़ी देर के लिए दिखायी देने वाली भानुमती का चरित्र महाकवि ने एक पति परायण, धर्मभीरु भारतीय नारी के रूप में चित्रित किया है, जो पाठक को बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेता है।

•••

---

1 . केनाप्यतिशयितदिव्यरूपिणा नकुलेनाहिशतं व्यापादितम्।।

पात्र–परिचय

पुरुष–पात्र

1. **भीम** : नायक, मध्यम पाण्डव ।
2. युधिष्ठिर : ज्येष्ठ पाण्डव ।
3. अर्जुन : युधिष्ठिर का अनुज, कुन्तीपुत्र।
4. नकुल सहदेवः युधिष्ठिर के दूसरे अनुज, माद्रीपुत्र।
5. कृष्ण : अर्जुन के मित्र, सारथि, विष्णु के अवतार।
6. **दुर्योधन** : प्रतिनायक, कौरवश्रेष्ठ।
7. धृतराष्ट्र : कौरवों के पिता, पाण्डवों के चाचा।
8. कर्ण : दुर्योधन का मित्र, अंगदेश का राजा।
9. कृपाचार्य : दुर्योधन आदि के गुरु, द्रोण के साले।
10. अश्वत्थामा : द्रोणाचार्य का पुत्र, दुर्योधन का सहयोगी।
11. संजय : धृतराष्ट्र का सारथि।
12. सुन्दरक : अंगराज कर्ण का सेवक।
13. जयन्धर : युधिष्ठिर का अन्तःपुर का सेवक।
14. विजयन्धर : दुर्योधन का अन्तःपुर का सेवक (कंचुकी)।
15. चार्वाक : दुर्योधन का मित्र, कपट–मुनि, राक्षस।
16. अश्वसेन : द्रोणाचार्य का सारथि।
17. रुधिर प्रिय : पाण्डव के पक्ष का राक्षस।
18. सूत : दुर्योधन का सारथि।
19. बुधक : युधिष्ठिर के सन्देश वाहक।
20. पांचालक : युधिष्ठिर के सन्देश वाहक।

(भीष्म, द्रोण, अभिमन्यु, बलराम, धृष्टद्युम्न, दुःशासन, जयद्रथ, विदुर, शल्य आदि कुछ संकेतित पात्र)

स्त्री–पात्र

i) **द्रौपदी–** नायिका, पाँच पाण्डवों की पत्नी।
ii) **भानुमती–** दुर्योधन की पत्नी।
iii) गान्धारी– दुर्योधन की माता।
iv) दुःशला– दुर्योधन की बहन।
v) माता– जयद्रथ की माता।
vi) बुद्धिमतिका– द्रौपदी की सखी ।
vii) चेटी– द्रौपदी की परिचारिका ।
viii) सुवदना– भानुमती की सखी।
ix) तरलिका– भानुमती की सखी।
x) विहंगिका– कौरवों की दासी।
xi) वसागन्धा– राक्षसी, रुधिरप्रिय राक्षस की पत्नी।

•••

।। श्रीः ।।

वेणीसंहार–नाटकम्

प्रथमोऽङ्कः

निषिद्धैरप्येभिर्लुलितमकरन्दो मधुकरैः
करैरिन्दोरन्तश्छुरित इव संभिन्नमुकुलः।
विधत्तां सिद्धिं नो नयनसुभगामस्य सदसः
प्रकीर्णः पुष्पाणां हरिचरणायोरंजलिरयम्।।1।।

(अन्वय– निषिद्धैः अपि एभिः मधुकरैः, लुलित–मकरन्दः इन्दोः करैः अन्तः–छुरित इव, संभिन्न–मुकुलः हरि–चरणायोः प्रकीर्णः, अयम् पुष्पाणाम् अंजलिः, नः अस्य सदसः नयन–सुभगाम् सिद्धिम्, विध–त्ताम् ।।1।।)

अपि च –

कालिन्द्याः पुलिनेषु केलिकुपितामुत्सृज्य रासे रसं
गच्छन्तीमनुगच्छतोऽश्रुकलुषां कंसद्विषो राधिकाम्।
तत्पादप्रतिमानिवेशितपदस्योद्भूतरोमोद्गते
रक्षुण्णोऽनुनयः प्रसन्नदयितादृष्टस्य पुष्णातु वः।।2।।

(अन्वय– कालिन्द्याः पुलिनेषु रासे रसम् उत्सृज्य, गच्छन्तीम् केलि–कुपिताम् अश्रु–कलुषाम् राधिकाम् अनुगच्छतः, तत्–पाद–प्रतिमा–निवेशित–पदस्य उद्भूत–रोमोद्गतेः, प्रसन्न–दयिता–दृष्टस्य कंस–द्विषः अक्षुण्णः अनुनयः वः पुष्णातु ।।2।।)

अपि च –

दृष्टः सप्रेम देव्या, किमिदमिति भयात्संभ्रमाच्चासुरीभिः,
शान्तान्तस्तत्त्वसारैः सकरुणमृषिभिर्विष्णुना सस्मितेन।
आकृष्यास्त्रं सगर्वैरुपशमितवधूसंभ्रमैर्दैत्यवीरैः,

।। श्रीः ।।

वेणीसंहार नाटकम्

प्रथम अंक

अनुवाद– बार–बार दूर किए गए भी, इन भौंरों द्वारा बिखेरी गयी, चन्द्रमा की किरणों से मानो मध्यभाग में भरी हुई, खिली हुई कलियों वाली, भगवान् विष्णु के श्रीचरणों में विकीर्ण की गयी, यह पुष्पों की अंजलि हमें, इस सभा के लोगों के नेत्रों को आनन्द प्रदान वाली, सिद्धि प्रदान करे।।1।।

और भी,

अनुवाद– यमुना के तट पर रास के आनन्द का परित्याग करके, जाती हुई केलि–कुपित, आँसुओं से मलिन हुए मुख वाली, राधिका के चरण–चिह्नों पर पैर रखकर चलते हुए, रोमांचित शरीर एवं प्रियतमा राधिका द्वारा प्रसन्न दृष्टि से देखे जाने वाले, कंस के शत्रु भगवान् श्रीकृष्ण का अक्षुण्ण अनुरोध, आप सभी सामाजिकों को पुष्टि प्रदान करे।।2।।

और भी,

अनुवाद– मयदानव द्वारा बनाए गए, त्रिपुरासुर के नगर का दहन करते समय, देवी पार्वती द्वारा, जिन भगवान् शंकर (धूर्जटि) को प्रेमपूर्वक, राक्षसियों द्वारा 'यह क्या है?' इसप्रकार भय एवं उद्वेग के साथ, शान्त अन्तःकरण ही है धन, जिनका ऐसे ऋषियों द्वारा करुणा–पूर्वक, भगवान् विष्णु द्वारा प्रसन्नता के साथ, उद्विग्न अपनी पत्नियों को शान्त करने वाले, अहंकारी दानव वीरों द्वारा अस्त्र खींचकर, युद्ध के लिए उद्यत होकर और देवताओं द्वारा आनन्द के साथ देखे

सानन्दं देवताभिर्मयपुरदहने धूर्जटिः पातु युष्मान्।।3।।

(अन्वय– मयपुर–दहने सप्रेम देव्या दृष्टः, च आसुरीभिः, 'किम् इदम्,'? इति भयात्, संभ्रमात्, शान्त–अन्तः–तत्त्व–सारैः ऋषिभिः विष्णुना सकरुणम् सस्मितेन सगर्वैः उपशमित–वधू–संभ्रमैः दैत्यवीरैः, अस्त्रम् आकृष्य, देवताभिः सानन्दम् (दृष्टः), धूर्जटिः युष्मान् पातु।।3।।)

(नान्द्यन्ते)

सूत्रधारः– अलमतिप्रसंगेन।

श्रवणांजलिपुटपेयं विरचितवान्भारताख्यममृतं यः।
तमहमरागमकृष्णं कृष्णद्वैपायनं वन्दे।।4।।

(अन्वय– यः श्रवण–अंजलि–पुट–पेयम् भारत–आख्यम् अमृतम् विरचितवान्, तम् अरागम् अकृष्णम् कृष्ण–द्वैपायनम् अहम् वन्दे।।4।।)

(समन्तादवलोक्य)

तत्रभवतः परिषदग्रेसरान्विज्ञाप्यं न किंचिदस्ति।

कुसुमांजलिरपर इव प्रकीर्यते काव्यबन्ध एषोऽत्र।
मधुलिह इव मधुबिन्दून्विरलानपि भजत गुणलेशान्।।5।

(अन्वय– एषः काव्य–बन्धः, अपरः कुसुम–अंजलिः इव प्रकीर्यते, अत्र मधुलिहः मधु–बिन्दून् इव अविरलान् अपि गुणलेशान् भजत।।5।)

यदिदं कवेर्मृगराजलक्ष्मणो भट्टनारायणस्याभिनवां कृतिं वेणी–संहारं नाम नाटकं प्रयोक्तुमुद्यता वयम्। तदत्र कविपरिश्रमानुरोधाद्वा उदात्तवस्तुकथागौरवाद्वा नवनाटकदर्शनकुतूहलाद्वा भवद्भिरवधानं दीयमानमभ्यर्थये।

(नेपथ्ये)

भाव! त्वर्यताम्, त्वर्यताम्। एते खल्वार्यविदराज्ञया पुरुषाः सकलमेव शैलूषजनं व्याहरन्ति– 'प्रवर्त्यन्तामपरिहीयमानमातोद्यविन्यासा–दिका विषयः। प्रवेशकालः किल तत्रभवतः पाराशर्यनारदतुम्बु–रुजामदग्न्यप्रभृतिभिर्मुनिवृन्दारकैरनुगम्यमानस्य भरतकुलहितकाम्यया,

गए, इसप्रकार के वे धूर्जटि भगवान् शंकर आप सभी सामाजिकों की रक्षा करें।।3।।

(नान्दी के अन्त में)

सूत्रधारः– अत्यधिक विस्तार से बस करो।

अनुवाद– जिन कृष्णद्वैपायन व्यास ने कानों के छिद्ररूपी अंजलि पुट से पीने योग्य, 'महाभारत' नामक अमृतरूपी ग्रन्थ की संरचना की, उन अनुराग एवं तमोगुणों से रहित श्रीभगवान् वेदव्यास को मैं प्रणाम करता हूँ।।4।।

(चारों ओर देखकर)

हमें आप सभी सम्माननीय सभासदों से कुछ निवेदन करना है।

अनुवाद– यह वेणीसंहार नामक नाट्यरचना आप सभी के समक्ष दूसरी पुष्पांजलि के समान प्रकृष्टरूप से विकीर्ण की जा रही है, जिसप्रकार भौंरे मधु के कणों का आस्वादन करते हैं। ठीक उसीप्रकार आप सभी सभासद भी, इसके थोड़े से गुणों का आस्वादन कीजिएगा।।5।।

इसलिए 'मृगराज' उपाधि धारण करने वाले, महाकवि की रचना वेणीसंहार नामक नाटक का अभिनय करने के लिए, हम सभी तैयार हैं, तो इसमें कवि के परिश्रम के अनुरोध से अथवा फिर उदात्त कथावस्तु के गौरव से या फिर नए नाटक को देखने के कौतूहल द्वारा आप सभी द्वारा ध्यान दिए जाने की मैं प्रार्थना करता हूँ।

(नेपथ्य में)

समादरणीय, शीघ्रता कीजिए, शीघ्रता कीजिए। वस्तुतः आर्य विदुर की आज्ञा से ये राजपुरुष सभी नटों से कह रहे हैं कि–'आतोद्य विन्यास' आदि सभी चारों प्रकार के वाद्यों के वादन की विधियाँ बिना किसी गलती के आरम्भ कर दी जाएँ, क्योंकि मुनिश्रेष्ठ व्यास–नारद–तुम्बरु एवं परशुराम आदि मुनिसमूह द्वारा अनुगमन किए जाते हुए, युधिष्ठिर के कुल की हितकामना से स्वयं दूतकार्य को स्वीकार करने

स्वयं प्रतिपन्नदौत्यस्य, देवकीसूनोर्देवस्य चक्रपाणेर्महाराजदुर्योधन–शिविरसन्निवेशं प्रति प्रस्थातुकामस्य' इति।

सूत्रधारः– (आकर्ण्य सानन्दम्) अहो नु खलु भोः! भगवता सकल जगत्प्रभवस्थितिनिरोधप्रभविष्णुना विष्णुनाऽद्यानुगृहीतमिदं भरतकुलं, सकलं च राजचक्रमनयोः कुरुपाण्डवराजपुत्रयोराहवकल्पान्तानलप्रशम हेतुनाऽनेन स्वयं सन्धिकारिणा कंसारिणा दूतेन। तत्किमिति पारिपार्श्विक! नारम्भयसि कुशीलवैः सह संगीतमेलकम्?

(प्रविश्य)

पारिपार्श्विकः– भवतु, आरम्भयामि, कतमं समयमाश्रित्य गीयताम्?

सूत्रधारः– नन्वमुमेव तावच्चन्द्रातप–नक्षत्र–ग्रह–क्रौंच–हंसकुल–सप्तच्छद–कुमुद–कोकनद–काश–कुसुम–परागधवलित दिङ्मण्डलं स्वादुजलजलाशयं शरत्समयमाश्रित्य प्रवर्त्त्यतां संगीतकम्। तथा ह्यस्यां शरदि–

सत्पक्षा मधुरगिरः प्रसाधिताशा मदोद्धतारम्भाः।
निपतन्ति धार्तराष्ट्राः कालवशान्मेदिनीपृष्ठे।।6।।

(अन्वय– सत्–पक्षाः, मधुर–गिरः, प्रसाधित–आशाः, मदोद्धत–आरम्भाः धार्तराष्ट्राः, काल–वशात् मेदिनीपृष्ठे निपतन्ति।।6।।)

सूत्रधार– सूत्रं धारयति, इति– सूत्रधारः। सूत्र+√धृ+णिच्+अण् (कर्मण्यण् सूत्र से) यह रंगमंच पर अभिनय किए जाने वाली सभी घटनाओं को नियन्त्रित करता है। वर्तमान समय में इसी को **'डायरेक्टर'** भी कहते हैं। वस्तुतः यह रंगमंच का अधिष्ठाता होता है, जो नाटक की प्रस्तावना में स्वयं उपस्थित होकर नाटक का आरम्भ करता है तथा सभी दूसरे पात्रों को अभिनय सम्बन्धी निर्देश भी प्रदान करता है।

इसके अलावा नाट्य के उपकरणों को सूत्र भी कहते हैं–

'नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते।'

इसलिए नाट्य के उपकरणों अर्थात् सूत्रों को धारण करने के कारण ही इसे 'सूत्रधार' कहते हैं, क्योंकि इसी के मार्गदर्शन में सम्पूर्ण नाटक का अभिनय किया जाता है।

वाले, महाराज दुर्योधन के शिविर स्थान के प्रति प्रस्थान करने की कामना से चक्रपाणि देवकीनन्दन श्रीकृष्ण के आने का समय हो गया है।

सूत्रधार– (सुनकर, आनन्दपूर्वक) अरे, निश्चय ही आश्चर्य है कि सम्पूर्ण संसार की उत्पत्ति, पालन एवं संहार करने में पूर्णरूप से समर्थ, इन कौरव एवं पाण्डव राजकुमारों के युद्धरूपी प्रलयाग्नि को शान्त कराने के कारण एवं स्वयं ही सन्धि कराने वाले, कंस के विनाशक, दूत, भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा इस भरतकुल तथा राजाओं के समूह को अनुगृहीत किया गया है। इसलिए हे पारिपार्श्विक! तुम सभी कुशीलवों के साथ नृत्यसंगीत आरम्भ क्यों नहीं कर रहे हो?

(प्रवेश करके)

पारिपार्श्विक– ठीक है। आरम्भ करता हूँ। किस ऋतु का अवलम्ब लेकर गाया जाए?

सूत्रधार– तब तो चन्द्रमा के प्रकाश, नक्षत्रों, क्रौंच, हंसों के समूहों, सप्तपर्ण, कुमुद–कमल, काश पुष्पों के परागकणों से धवल गगन से युक्त, दिशाओं के समूह वाले, स्वादिष्ट जल एवं जलाशयों से सम्पन्न, इस शरद्काल का आश्रय लेकर ही गीत, वाद्यादि का आरम्भ कर दिया जाए, क्योंकि इस शरद्ऋतु में–

(शरद्पक्षे) **सुन्दर पंखों से युक्त, मधुर कलरव से सम्पन्न, विभिन्न दिशाओं को सुशोभित करने वाले, मदोन्मत्त कार्यों का आरम्भ करने वाले, काली चोंच एवं काले चरणों वाले, विशेष प्रकार के हंस पृथिवीतल पर उतर रहे हैं।।6।।**

(दुर्योधनपक्षे) भीष्म–द्रोणादि श्रेष्ठ सहयोगियों से युक्त, मधुर भाषी, अपनी अभिलाषाओं को बलपूर्वक पूरा करने वाले, अहंकार के कारण उद्दण्ड कार्य करने वाले, धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन आदि मृत्यु के वश में होकर पृथ्वीतल पर गिर रहे हैं।।6।।

पारिपार्श्विकः— (ससम्भ्रमम्) भाव! शान्तं पापम्। प्रतिहतममंगलम्।

सूत्रधारः— (सवैलक्ष्यस्मितम्) मारिष! शरत्समयवर्णानाशंसया हंसा 'धार्तराष्ट्राः' इति व्यपदिश्यन्ते । तत्किं शान्तं पापं प्रतिहतममंगलमिति ?

पारिपार्श्विकः— भाव! न खलु न जाने। किंत्वमंगलाशंसयाऽस्य वो वचनस्य यत्सत्यं कम्पितमिव मे हृदयम्।

सूत्रधारः— मारिष! ननु सर्वमेवेदानीं प्रतिहतममंगलं स्वयं प्रतिपन्नदौत्येन सन्धिकारिणा कंसारिणा । तथा हि—

निर्वाणवैरदहनाः प्रशमादरीणां
नन्दन्तु पाण्डुतनयाः सह माधवेन।
रक्तप्रसाधितभुवः क्षतविग्रहाश्च
स्वस्था भवन्तु कुरुराजसुताः सभृत्याः।।7।।

(अन्वय— अरीणाम् प्रशमात् निर्वाण—वैर—दहनाः पाण्डु—तनयाः माधवेन सह नन्दन्तु, रक्त—प्रसाधित—भुवः क्षत—विग्रहाः च सभृत्याः कुरुराज—सुताः स्वस्थाः भवन्तु।।7।।)

(नेपथ्ये। साधिक्षेपम्)

आः पापी! दुरात्मन्! वृथामंगलपाठक! शैलूषापसद!

लाक्षागृहाऽनलविषान्नसभाप्रवेशैः
प्राणेषु वित्तनिचयेषु च नः प्रहृत्य।
आकृष्य पाण्डववधूपरिधानकेशान्
स्वस्था भवन्तु मयि जीवति धार्तराष्ट्राः।।8।।

(अन्वय— लाक्षा—गृह—अनल—विष—अन्न—सभा—प्रवेशैः नः प्राणेषु वित्त—निचयेषु च प्रहृत्य पाण्डव—वधू—परिधान—केशान् आकृष्य मयि जीवति, धार्तराष्ट्राः स्वस्थाः भवन्तु?।।8।।)

सूत्रधारः— (आकर्ण्य सभयं नेपथ्यभिमुखमवलोक्य च)

पारिपार्श्विकः— भाव! कुत एतत्?

पारिपार्श्विकः– (घबराहटपूर्वक) समादरणीय, पाप शान्त हो। अमंगल नष्ट हो।

सूत्रधार– (विस्मयपूर्वक, मुस्कराते हुए) हे मारिष! शरद्काल के वर्णन की आकांक्षा से हंसों को 'धार्तराष्ट्र' पद से क्यों कह रहे हो?

पारिपार्श्विकः– वास्तव में तो मैं आपके अभिप्राय को समझ नहीं पा रहा हूँ, किन्तु अमंगल की आशंका वाले आपके, इन वचनों से मेरा हृदय भी काँप सा गया है, जो निश्चय ही सत्य है।

सूत्रधार– हे मारिष! अब तो सम्पूर्ण अमंगल को स्वयं दूतकर्म करने वाले, सन्धि कार्य करने वाले, कंस के शत्रु श्रीकृष्ण ने ही वस्तुतः विनष्ट कर दिया है, फिर भी,

शत्रुओं के विनाश से समाप्त हुए, वैररूपी अग्नि वाले, युधिष्ठिर आदि पाण्डव, श्रीकृष्ण सहित प्रसन्न होवें एवं जिनके रक्त से भूमि अलंकृत हुई है, ऐसे नष्ट हुए आकार वाले दुर्योधन आदि कौरव अपने सेवकों के साथ स्वस्थ होवें।।7।।

(नेपथ्य में, तिरस्कारपूर्वक)

अरे! पापी, दुरात्मन्! व्यर्थ ही मंगलपाठ करने वाले, नीच नट!

लाक्षागृह के अग्निकाण्ड, विष से युक्त भोजन, सभा में द्रौपदी के वस्त्रों तथा केशों को खींचने आदि भयंकर कार्यों को करके, हम लोगों के प्राणों तथा जुए आदि कार्यों द्वारा धनसंग्रह से आक्रमण करके, मेरे जीवित रहते हुए, धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन आदि भला कैसे स्वस्थ रह सकते हैं?।।8।।

सूत्रधार– (सुनकर तथा नेपथ्य की ओर भयपूर्वक देखकर)

पारिपार्श्विकः– समादरणीय! यह कहाँ से?

सूत्रधारः– (पृष्ठतो विलोक्य सभयम्) अये! एष खलु वासुदेव-गमनात्कुरुसन्धानममृष्यमाणः पृथुललाटतटघटितविकटभृकुटिना दृष्टि-पातेनाऽपिबन्निव नः सर्वान्सहदेवेनानुगम्यमानः क्रुद्धो भीमसेन इत एवाऽभिवर्तते। तन्न युक्तमस्य पुरतः स्थातुम्। तदित आवामन्यत्र गच्छावः। (इति निष्क्रान्तौ।)

(प्रस्तावना)

(ततः प्रविशति सहदेवेनानुगम्यमानः क्रुद्धो भीमसेनः)

भीमसेनः– आः पाप! दुरात्मन्! वृथामंगलपाठक! शैलूषापसद!

('लाक्षागृहानल–1/8' इत्यादि पुनः पठति।)

सहदेवः– (सानुनयम्) आर्य! मर्षय मर्षय। अनुमतमेव नो भरतपुत्रस्याऽस्य वचनम्। पश्य–

('निर्वाणवैरदहनाः'1/7 इति पठित्वाऽन्यथाभिनयति)

भीमसेनः– (सोपलम्भम्) न खलु न खल्वमंगलानि चिन्तयितुमर्हन्ति भवन्तः कौरवाणाम्। सन्धेयास्ते भ्रातरो युष्माकम्।

सहदेव– (सरोषम) आर्य!

धृतराष्ट्रस्य तनयान्कृतवैरान् पदे पदे।
राजा न चेन्निषेद्धा स्यात्कः क्षमेत तवानुजः।।9।।

(अन्वय– चेत् राजा निषेद्धा न स्यात्, पदे पदे कृत–वैरान् धृतराष्ट्रस्य तनयान् कः तव अनुजः क्षमेत?।।9।।)

भीमसेनः– (सरोषम्) एवमिदम्। अत एवाऽद्यप्रभृति भिन्नोऽहं भवद्भ्यः। पश्य–

प्रवृद्धं यद्वैरं मम खलु शिशोरेव कुरुभि–
र्न तत्रार्यो हेतुर्न भवति किरीटी न च युवाम्।
जरासन्धस्योरः स्थलमिव विरूढं पुनरपि
क्रुधा सन्धिं भीमो विघटयति, यूयं घटयत।।10।।

(अन्वय– मम शिशोः एव यत् कुरुभिः वैरम् प्रवृद्धम्, तत्र न आर्यः हेतुः, न भवति, न किरीटी, न च युवाम्, जरासन्धस्य विरूढम्

सूत्रधार– (पीछे की ओर देखकर) अरे! यह क्या? भगवान् श्री कृष्ण के दौत्यकर्म द्वारा कौरवों से सन्धि को सहन न करते हुए, विशाल ललाट पर खिंची हुई भ्रकुटि वाले, देखने मात्र से ही इस सब को मानो पी जाने वाले, सहदेव द्वारा अनुगमन किए जाते हुए, क्रोधित भीमसेन इधर ही आ रहे हैं। इसलिए उनके सामने खड़े रहना उचित नहीं है। अतः हम दोनों यहाँ से अन्यत्र चले जाते हैं।

(यह कहकर दोनों निकल जाते हैं)

(प्रस्तावना)

(उसके बाद सहदेव द्वारा अनुगमन किए जाते हुए क्रुद्ध भीमसेन प्रवेश करता है)

भीमसेन– अरे! दुरात्मा? व्यर्थ मंगलपाठ करने वाले, नीच शैलूष! (लाक्षागृहानल 1/8 श्लोक को फिर से पढ़ता है)

सहदेव– (विनम्रतापूर्वक) आर्य! क्षमा करें, क्षमा करें। इस नट का कथन तो हम लोगों के अनुकूल ही है। देखिए! (निर्वाणवैरदहनाः 1/7 श्लोक पढ़कर अन्य प्रकार से अभिनय करने लगता है)

भीमसेन– (उपालम्भपूर्वक) नहीं, वास्तव में तो आप सभी लोग कौरवों के अमंगल की बातें सोचने के योग्य ही नहीं हैं, क्योंकि तुम्हारे वे भाई तो सन्धि के योग्य ही हैं।

सहदेव– (क्रोधपूर्वक) आर्य!

यदि महाराज युधिष्ठिर मना न करें, तो पग–पग पर वैर करने वाले, धृतराष्ट्र के पुत्रों को, आपका कौन सा कनिष्ठ भ्राता भला क्षमा कर सकता है?।।9।।

भीमसेन–(क्रोधपूर्वक) यह ऐसा ही है। इसीलिए आज से लेकर मैं आप लोगों से अलग हूँ। देखो,

बाल्यकाल से ही मेरा कौरवों के साथ वैर बढ़ता रहा है, उसका कारण न आर्य युधिष्ठिर हैं, न किरीटी अर्जुन है और न ही तुम लोग हो। जरासन्ध के वक्षस्थल के समान, फिर से विनियोजित सन्धि को यह भीमसेन क्रुद्ध होकर तोड़ रहा है, आप लोग इसे जोड़िए।।10।।

उरःस्थलम् इव, भीमः क्रुधा पुनः अपि सन्धिम् विघटयति, यूयम् घटयत खलु।।10।।)

सहदेवः– (सानुनयम्) आर्य! एवमतिसम्भृतक्रोधेषु युष्मासु कदाचित्खिद्यते गुरुः।

भीमसेनः–(सहासं) किं नाम मयि कदाचित् खिद्यते गुरुः? (सामर्षं) गुरुः खेदमपि जानाति। पश्य–

तथाभूतां दृष्ट्वा नृपसदसि पांचालतनयां,
वने व्याधैः सार्धं सुचिरमुषितुं वल्कलधरैः।
विराटस्याऽऽवासे स्थितमनुचितारम्भनिभृतं,
गुरुः खेदं खिन्ने मयि भजति, नाद्यापि कुरुषु।।11।।

(अन्वय– नृप–सदसि तथाभूताम् पांचाल–तनयाम् दृष्ट्वा, वल्कल–धरैः व्याधैः सार्धम् वने सुचिरम् उषितुम् (दृष्ट्वा), विराटस्य आवासे अनुचित–आरम्भ–निभृतम् स्थितम् (दृष्ट्वा), मयि खिन्ने गुरुः खेदम् भजति, अद्य अपि कुरुषु न।।11।।)

तत्सहदेव, निवर्त्तस्व। एवं चापि चिरप्रवृद्धामर्षोद्दीपितस्य भीमस्य वचनाद्विज्ञापय राजानम्।

सहदेवः– आर्य! किमिति।

भीमसेनः– एवं विज्ञापय–

युष्मच्छासनलंघनाहसि मया मग्नेन नाम स्थितं
प्राप्ता नाम विगर्हणा स्थितिमतां मध्येऽनुजानामपि।
क्रोधोल्लासितशोणितारुणगदस्योच्छिन्दतः कौरवा–
नद्यैकं दिवसं ममासि न गुरुर्नाहं विधेयस्तव।।12।।

(अन्वय– युष्मत् शासन–लंघन–अहसि मया मग्नेन स्थितम् नाम, स्थिति–मताम् अनुजानाम् अपि मध्ये विगर्हणा प्राप्ता नाम, क्रोध–उल्लासित–शोणित–अरुण–गदस्य कौरवान् उच्छिन्दतः, मम अद्य एकम् दिवसम् गुरुः न असि, न अहम् तव विधेयः (अस्मि)।।12।।)

(इत्युद्धतं परिक्रामति)

सहदेव– (विनम्रतापूर्वक) आर्य! आप द्वारा इसप्रकार क्रोध करने पर बड़े भाई युधिष्ठिर कहीं नाराज़ न हो जाएँ?

भीमसेन– क्या कहा? भ्राता जी कहीं नाराज़ हो जाएँ? क्या भ्राता जी नाराज़ होना भी जानते हैं? देखो,

राजाओं की सभा में उसप्रकार की स्थिति वाली, पांचाली को देखकर, वल्कल धारण करने वाले, वनचरों के साथ लम्बे समय तक वन में निवास को देखकर, राजा विराट के आवास में 'कंक' आदि रूपों में अनुचित कार्यों को करते हुए, गुप्तरूप से समय व्यतीत करने को देखकर, भ्राता जी मेरे ऊपर तो क्रुद्ध होंगे, तो क्या आज भी वे कौरवों पर क्रुद्ध नहीं हो पा रहे हैं?।।11।।

तो सहदेव, तुम लौट जाओ और लम्बे समय तक वृद्धि को प्राप्त हुए क्रोध वाले, भीम के वचनों के अनुसार राजा युधिष्ठिर से कह दो।

सहदेव– आर्य! क्या कह दिया जाए?

भीमसेन– तुम इसप्रकार कहना कि–

भले ही मैं आपकी आज्ञा के उल्लंघनरूपी महापाप में डूब जाऊँ, आज्ञा का पालन करने वाले, छोटे भाइयों के मध्य में भी भले ही मैं निन्दा को प्राप्त कर लूँ, किन्तु क्रोध के कारण कौरवों के ऊपर प्रहार करने के लिए उठायी गयी, खून से लाल वर्ण वाली गदा वाले, कौरवों को समूल उखाड़कर फैंकने वाले, मुझ भीम के आज एक दिन के लिए न तो आप बड़े भाई हैं और न ही आज भर के लिए मैं आपकी आज्ञा का पालन करने वाला अनुज ही हूँ।।12।।

(ऐसा कहकर उद्धतभाव से घूमता है)

शब्दार्थ– विघटयति–तोड़ता है, कदाचित्–कभी, खिद्यते–नाराज़ होना, दृष्ट्वा–देखकर, सार्धम्–साथ, उषितम्–निवास को, निवर्तस्व–लौट जाओ, अंहसि–पाप में, विगर्हणा–निन्दा, अद्य–आज, खेदम्–पीड़ा को, नाराज़गी को, मम–मेरे, पश्य–देखो, अपि–भी, घटयत–जोड़ो, कदाचित्–कभी, मयि–मुझ पर, आवासे–निवास स्थान में, खिन्ने–दुःखी या क्राधित होने पर, कुरुषु– कौरवों पर।

सहदेवः— (तमेवानुगच्छन्नात्मगतम्) अये! कथमार्यः पांचाल्याश्चतुःशालकं प्रति प्रस्थितः। भवतु तावदहमत्रैव तिष्ठामि। (इति स्थितः)

भीमसेनः— (प्रतिनिवृत्याऽवलोक्य च) सहदेव! गच्छ त्वं गुरुमनुवर्तस्व। अहमप्यायुधागारं प्रविश्यायुधसहायो भवामि।

सहदेवः— आर्य! नेदमायुधागारम्, पांचाल्याश्चतुःशालकमिदम्।

भीमसेनः— (सवितर्कम्) किं नाम! नेदमायुधागारम्, पांचाल्याश्–चतुःशालकमिदम्। (विचिन्त्य, सहर्षम्)। आमन्त्रयितव्यैव मया पांचाली। (सप्रणयं सहदेवं हस्ते गृहीत्वा) वत्स! आगम्यताम्।

सहदेवः— यदादिशत्यार्यः।

भीमसेनः— वत्स! यदार्यः कुरुभिः सन्धानमिच्छन्नस्मान्पीडयति तद्भवानपि पश्यतु।

(परिक्रम्य उभौ प्रवेशं नाटयतः। भीमसेनः सक्रोधं भूमावुपविशति)

सहदेवः— (ससम्भ्रमम्) आर्य! इदमासनमास्तीर्णम्। अत्रोपविश्य मुहूर्त्तमार्यः पालयतु कृष्णाऽऽगमनम्।

भीमसेनः—(उपविश्य, स्मृत्वा) वत्स! 'कृष्णागमन' मित्यनेनोपोद्घातेन स्मृतम्। अथ भगवान्कृष्णः केन पणेन सन्धिं कर्तुं सुयोधनं प्रति प्रहितः?

सहदेवः— आर्य! पंचभिर्ग्रामैः।

भीमसेनः— (कर्णौ पिधाय) अहह! कथं तस्य देवस्याऽजात–शत्रोरप्ययमीदृशस्तेजोऽपकर्ष इति, यत्सत्यं कम्पितमिव मे हृदयम्।

शब्दार्थ— अनुगच्छन्–पीछे चलता हुआ, चतुःशाला–निवास स्थान, प्रस्थितः–प्रस्थान किया, अत्रैव–यहीं पर, प्रतिनिवृत्य–लौटकर, अनुवर्तस्व–अनुगमन को, विचिन्त्य–सोचकर, गृहीत्वा–ग्रहण करके, इच्छन्–चाहते हुए, परिक्रम्य–घूमकर, उपविश्य–बैठकर, पणेन–सन्धि द्वारा, पिधाय–ढककर, अहह!–दुःखसूचक अव्यय, स्मृत्वा–स्मरण करके, ईदृशः–ऐसा, कर्तुम्–करने के लिए, प्रहितः–भेजा गया।

सहदेव– (उसी का अनुगमन करता हुआ मन में) अरे! क्या आर्य भीम पांचाली की चतुःशाला की ओर प्रस्थान कर गए। ठीक है, तब तक मैं यहीं पर ठहरता हूँ। (ऐसा कहकर रुक जाता है)

भीमसेन– (लौटकर और देखकर) सहदेव! तुम जाओ और बड़े भाई की आज्ञा का पालन करो। मैं भी शस्त्रागार में प्रवेश करके शस्त्र ग्रहण करता हूँ।

सहदेव– आर्य! यह शस्त्रागार नहीं है, यह तो पांचाली की चतुःशाला (निवास) है।

भीमसेन– (वितर्कपूर्वक) क्या यह शस्त्रागार नहीं है, यह पांचाली की चतुःशाला है (सोचकर, प्रसन्नता के साथ) तब तो मुझे पांचाली को ही बुलाना चाहिए। (प्रेमपूर्वक, सहदेव को हाथ से पकड़कर) वत्स! आओ।

सहदेव– आर्य की जैसी आज्ञा।

भीमसेन– वत्स! कौरवों से सन्धि की इच्छा करते हुए, जो महा–राज युधिष्ठिर हम सभी को पीड़ित कर रहे हैं, वह तो आप भी देख ही रहे हैं।

(दोनों चारों ओर घूमकर प्रवेश करने का अभिनय करते हैं और भीमसेन क्रोधपूर्वक भूमि पर बैठ जाते हैं)

सहदेव– (घबराहटपूर्वक) आर्य! यह आसन बिछा हुआ है। यहाँ बैठकर क्षणभर के लिए कृष्णा के आगमन की प्रतीक्षा कीजिए।

भीमसेन– (बैठकर, स्मरण करके) वत्स! 'कृष्णागमन' इस शब्द के कहने से प्रकरण याद आया। भला भगवान् श्रीकृष्ण किस शर्त के साथ सन्धि करने हेतु दुर्योधन के पास भेजे गए हैं?

सहदेव– आर्य, पाँच गाँवों द्वारा।

भीमसेन– (दोनों कानों को बन्द करके) अहह! अजातशत्रु महा–राज युधिष्ठिर के तेज का ऐसा अपकर्ष, इसे सुनकर तो सचमुच मेरा हृदय काँप सा गया है।

(परिवृत्य स्थित्वा)

तद्वत्स! न त्वया कथितं, न च मया भीमेन श्रुतम्।

यत्तदूर्जितमत्युग्रं क्षात्रं तेजोऽस्य भूपतेः।

दीव्यताऽक्षैस्तदाऽनेन नूनं तदपि हारितम्।।13।।

(**अन्वय**– अस्य भूपतेः यत् तत् अति–उग्रम् ऊर्जितम् क्षात्रम् तेजः तत् अपि अक्षैः दीव्यता अनेन तदा नूनम् हारितम्।।13।।)

(नेपथ्ये)

(समाश्वसितु समाश्वसितु भट्टिनी, अपनेष्यति ते मन्युं नित्यानुबद्धकुरुवैरः कुमारो भीमसेनः)[1]

सहदेवः– (कर्णं दत्वा नेपथ्याभिमुखमवलोक्याऽऽत्मगतम्) **अये! कथं याज्ञसेनी मुहुरुपचीयमानबाष्पपटलस्थगितनयना आर्यसमीपमुपसर्पति। तत्कष्टतरमापतितम्।**

यद्वैद्युतमिव ज्योतिरार्ये क्रुद्धेऽद्य सम्भृतम्।

तत्प्रावृडिव कृष्णेयं नूनं संवर्द्धयिष्यति।।14।।

(**अन्वय**– अद्य क्रुद्धे आर्ये वैद्युतम् इव यत् ज्योतिः सम्भृतम्, तत् इयम् कृष्णा प्रावृट् इव नूनम् संवर्द्धयिष्यति।।14।।)

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टा द्रौपदी चेटी च)

(द्रौपदी सास्रं निःश्वसिति)

चेटी– **समाश्वसितु समाश्वसितु भट्टिनी। अपनेष्यति ते मन्युं नित्यानुबद्धकुरुवैरः कुमारो भीमसेनः।**[2]

द्रौपदी– **हंजे बुद्धिमतिके! भवत्येतद्यदि महाराजः प्रतिकूलो न भवेत्। तन्नाथं प्रेक्षितुं त्वरते मे हृदयम। तदादेशय मे नाथस्य वासभवनम्।**[1] (इति परिक्रामतः)

---

[1]. समस्ससदु समस्ससदु भट्टिणी। अवणइस्सदि दे मण्णुं णिच्चाणुबद्धकुत्लुवेलो कुमालो भीमसेणो।

[2]. समस्ससदु समस्ससदु भट्टिणी। अवणइस्सदि दे मुष्णुं णिच्चाणुबद्धकुल्लुवेलो कुमालो भीमसेणो।

(घूमकर और ठहरकर)

तो वत्स! यह कथन न तो तुमने कहा और न ही मुझ भीम ने सुना,

इन महाराज युधिष्ठिर का, जो वह अत्यधिक प्रचण्ड बल से युक्त क्षत्रियोचित प्रताप था, उसको भी पाँसों के साथ जुआ खेलते हुए, इन्होंने निश्चय ही हरा दिया है।।13।।

(नेपथ्य में)

स्वामिनि! धैर्य धारण कीजिए। धैर्य धारण कीजिए।

सहदेव– (कान लगाकर, नेपथ्य की ओर देखकर, अपने मन में) अरे! क्या याज्ञसेनी बार–बार बढ़ते हुए आँसुओं के समूह से आवृत्त नेत्रों से युक्त हुई, आर्य भीमसेन के पास आ रही हैं। यह तो अत्यन्त कष्ट की बात हो गयी।

क्योंकि आर्य भीम के क्रोधित होने पर, बिजली के समान जो तेज आज एकत्रित हुआ है, वर्षा के समान उसे यह कृष्णा निश्चय ही बढ़ा देगी।।14।।

(उसके बाद बतायी गयी स्थिति वाली द्रौपदी और चेटी प्रवेश करती हैं)

(अश्रु प्रवाहित करती हुई द्रौपदी लम्बा श्वास लेती है)

चेटी– स्वामिनि! धैर्य धारण करें, धैर्य धारण करें। आपका क्रोध कौरवों से नित्य वैर रखने वाले, कुमार भीमसेन अवश्य दूर कर देंगे।

द्रौपदी– सखि, बुद्धिमतिके! निश्चय ही यह ऐसा ही होता, यदि महाराज युधिष्ठिर प्रतिकूल न होते तो, इसीलिए स्वामी को देखने के लिए मेरा हृदय शीघ्रता कर रहा है। मुझे स्वामी के वासभवन का मार्ग बताओ।

(यह कहकर दोनों घूमती हैं)

---

[1]. हंजे बुद्धिमदिए! होदि एदं जइ महाराओ पडिऊलो ण भवे। ता णाहं पेक्खिदुं तुवरिद मे हिअअं। आदेसेहि मे णाहस्स वासभवणां।

चेटी–एत्वेतु भट्टिणी। एतद्वासभवनम्। अत्र प्रविशतु भट्टिनी।[1]

द्रौपदी– हंजे! कथय नाथस्य ममागमनम्।[2]

चेटी– यद्देव्याज्ञापयति । (इति परिक्रम्योपसृत्य च) जयतु जयतु कुमारः।[3]

(भीमसेनोऽश्रृण्वन् 'यत्तदूर्जितम्'1/13 इति पुनः पठति)

चेटी– (परिवृत्य) भट्टिनि! प्रियं ते निवेदयामि। परिकुपित इव कुमारो लक्ष्यते।[4]

द्रौपदी– हंजे! यद्येवं तदवधीरणाप्येषा मामाश्वासयत्येव। तदेकान्त उपविष्टां भूत्वा श्रृणुमस्तावन्नाथस्य व्यवसितम्।[5]

(उभे तथा कुरुतः)

भीमसेनः– (सक्रोधं सहदेवमधिकृत्य) किं नाम पंचभिर्ग्रामैः सन्धिः?

मथ्नामि कौरवशतं समरे न कोपाद्
दुःशासनस्य रुधिरं न पिबाम्युरस्तः।
संचूर्णयामि गदया न सुयोधनोरू
सन्धिं करोतु भवतां नृपतिः पणेन।।15।।

(अन्वय– समरे कोपाद् कौरव–शतम् न मथ्नामि? दुःशासनस्य उरस्तः रुधिरम् न पिबामि? गदया सुयोधन–उरू न संचूर्णयामि? भवताम् नृपतिः पणेन सन्धिम् करोतु ।।15।।)

द्रौपदी– (सहर्षम्। जनान्तिकम्) नाथ! अश्रुतपूर्वं खलु ते ईदृशं वचनम्। तत्पुनः पुनस्तावद्भण।[6]

---

[1]. एदु एदु भट्टिणी। एदं वासभवणं। एत्थ पविसदु भट्टिणी।
[2]. हंजे! कहेहि णाहस्य मह आगमणं।
[3]. जं देवीं आवणवेदि। (इति परिक्रम्योपसृत्य च) जअदु जअदु कुमालो।
[4]. (परिवृत्य) भट्टिणि! पिंअं दे णिवेदेमि। परिकुविदो विअ कुमालो लक्खीअदि।
[5]. हंजे! जइ एवं ता अवहीरणावि एसा मं आसासअदि ज्जेव। ता एअन्ते उवविट्ठा भविअ सुणुमो दाव णाहस्स ववसिदं।
[6]. (सहर्षम्। जनान्तिकम्) णाह! अस्सुदपुव्वं क्खु दे एदिसं वअणं। ता पुणो पुणो दाव भणाहि।

चेटी– स्वामिनि! आइए, आइए। यह वासभवन है। स्वामिनि! इसमें प्रवेश कीजिए।

द्रौपदी– सखि! स्वामी को मेरे आगमन की सूचना कहो।

चेटी– जैसी देवी की आज्ञा (ऐसा कहकर घूमकर तथा पास जाकर) जय हो, कुमार की जय हो।

(इसे न सुनते हुए भीमसेन यत्तदूर्जितम् 1/13 इत्यादि को फिर से पढ़ता है)

चेटी– (घूमकर) स्वामिनि! आपके लिए प्रिय निवेदन करती हूँ। कुमार अत्यधिक कुपित से दिखायी दे रहे हैं।

द्रौपदी– सखि! यदि ऐसा है, तब तो यह अपमान भी मुझे धीरज धारण ही कराएगा। इसलिए एकान्त में स्थित होकर हम स्वामी के निश्चय को सुनते हैं।

(दोनों वैसा ही करती हैं)

भीमसेन– (सहदेव को लक्ष्य करके क्रोधपूर्वक) क्या केवल पाँच गाँवों के साथ सन्धि?

यदि आपके राजा पाँच गाँवों के मूल्य से सन्धि कर लेते हैं, तब क्या मैं क्रोध से युद्ध में सौ कौरवों को विनष्ट नहीं करुँगा? तब क्या मैं दुःशासन के वक्षःस्थल से रक्त को नहीं पीऊँगा? तब क्या मैं सुयोधन की दोनों जँघाओं को गदा से विदीर्ण नहीं करूँगा?।।15।।

द्रौपदी– (प्रसन्नतापूर्वक, धीमे से) स्वामी आपके मुख से इसप्रकार के वचन पूर्व में कभी नहीं सुने हैं, जरा फिर से तो कहिए।

शब्दार्थ– प्रविशतु–प्रवेश कीजिए, हंजे–सखी, अवधीरणा–अपमान, भूत्वा–होकर, अधिकृत्य–आधार बनाकर, पणेन–शर्त से, ईदृशम्–ऐसा, भण–कहो, पुनः–फिर से, परिकुपितः–अत्यधिक क्रोधित, इव–समान, परिवृत्य–घूमकर, लक्ष्यते–दिखायी दे रहे हैं, अधिकृत्य–आधार बनाकर, लक्ष्य करके, पिबामि–पीता हूँ, करोतु–कीजिए।

(भीमसेनोऽश्रृण्वन्निव 'मथ्नामि कौरवशतम्–' 1/15 इत्यादि पुनः पठति)

सहदेवः– आर्य! किं महाराजस्य सन्देशोऽयमार्येणाऽव्युत्पन्न इव गृहीतः।

भीमसेनः– का पुनरत्र व्युत्पत्तिः?

सहदेवः– आर्य! एवं गुरुणा सन्दिष्टम्।

भीमसेनः– कस्य?

सहदेवः– सुयोधनस्य।

भीमसेनः– किमिति?

सहदेवः–

इन्द्रप्रस्थं वृकप्रस्थं जयन्तं वारणावतम्।
प्रयच्छ चतुरो ग्रामान्कंचिदेकं तु पंचमम्।।16।।

(अन्वय– इन्द्रप्रस्थम्, वृकप्रस्थम्, जयन्तम्, वारणावतम् चतुरः ग्रामान् कंचित् एकम् तु पंचमम् (ग्रामम्) प्रयच्छ।।16।।)

भीमसेनः– ततः किम्?

सहदेवः– तदेवमनया प्रतिनामग्रामप्रार्थनया पंचमस्य चाऽकीर्तना– द्विषभोजनजतुगृहदाहद्यूतसभाद्यपकारस्थानोद्घाटनमेवेदं मन्ये।

भीमसेनः– (साटोपम्) वत्स! एवं कृते किं भवति?

सहदेवः– आर्य! एवं कृते लोके तावत्स्वगोत्रक्षयाशंकि हृदयमा– विष्कृतं भवति, कुरुराजस्य तावदसन्धेयता च तदैव प्रतिपादिता भवति।

भीमसेनः– मूढ! सर्वमप्येतदनर्थकम्। कुरुषु तावदसन्धेयता तदैव प्रतिपादिता यदैवाऽस्माभिरितो वनं गच्छद्भिः सर्वैरेव कुरुकुलस्य निधनं प्रतिज्ञातम्। लोकेऽपि च धार्तराष्ट्रकुलक्षयः किं लज्जाकरो भवताम् ? अपि च रे मूर्ख–

युष्मान्ह्रेपयति क्रोधाल्लोके शत्रुकुलक्षयः।
न लज्जयति दाराणां सभायां केशकर्षणम्।।17।।

(न सुनते हुए भीमसेन, 'मथ्नामि कौरवशतम्' इत्यादि श्लोक 1/15 फिर से पढ़ता है)

सहदेव– आर्य! क्या महाराज का यह सन्देश आपने अभिप्राय को ग्रहण किए बिना ही ग्रहण कर लिया है?

भीमसेन– इसमें गम्भीर अभिप्राय क्या है?

सहदेव– आर्य! महाराज ने इसप्रकार सन्देश भेजा है।

भीमसेन– किसे?

सहदेव– सुयोधन को।

भीमसेन– भला क्या?

सहदेव– इन्द्रप्रस्थ, वृकप्रस्थ, जयन्त, वारणावत ये चार गाँव एवं पाँचवाँ कोई भी दूसरा गाँव अपनी इच्छा से हमें दे दो।।16।।

भीमसेन– तो इससे क्या?

सहदेव– इसप्रकार नाम लेकर गाँवों की प्रार्थना करने से एवं पाँचवें गाँव का नाम न लेने से, मेरा मानना है कि विष देने, लाक्षागृह का अग्निकाण्ड, द्यूतसभा आदि चार स्थानों द्वारा कौरवों को उनके चार अपकारों को स्मरण दिलाना ही है।

भीमसेन– (क्रोधपूर्वक) वत्स! ऐसा करने से भला क्या होता है?

सहदेव– आर्य! ऐसा करने से सर्वप्रथम संसार में, अपने कुल के विनाश की आशंका से युक्त हृदय होने वाला ज्ञात होता है। साथ ही, कौरवराज के साथ सन्धि न करना भी प्रदर्शित होता है।

भीमसेन– मूर्ख! यह सब तो अनर्थक है, क्योंकि कौरवों के साथ सन्धि न करना तो उसी समय सिद्ध हो गया था, वन में जाते हुए जब हम सबने ही कौरववंश के विनाश की प्रतिज्ञा की थी तथा संसार में भी धृतराष्ट्र के पुत्रों के वंश का विनाश क्या आप लोगों को लज्जित कर रहा है? फिर भी हे मूर्ख!

संसार में क्रोधपूर्वक शत्रुओं के कुल का विनाश आप लोगों को लज्जित कर रहा है, किन्तु भरी सभा में पत्नी के बालों को पकड़कर खींचा जाना लज्जित नहीं कर रहा है।।17।।

(अन्वय– लोके क्रोधात् शत्रु–कुल–क्षयः युष्मान् ह्रेपयति, सभायाम् दाराणाम् केश–कर्षणम् न लज्जयति? ।।17।।)

द्रौपदी– (जनान्तिकम्) नाथ! न लज्जन्त एते। त्वमपि तावन्मा विस्मार्षीः।[1]

भीमसेनः– (सस्मरणम्) वत्स! कथं चिरयति पांचाली? त्वरते मे मनः संग्रामावतरणाय।

सहदेवः– आर्य! का खलु वेलाऽत्रभवत्याः प्राप्तायाः। किन्तु रोषावेशवशादार्याऽऽगताप्यार्येण नोपलक्षिता।

भीमसेनः– (दृष्ट्वा, सादरम्) देवि! समुद्धतामर्षैरस्माभिरागताऽपि भवती नोपलक्षिता। अतो न मन्युं कर्तुमर्हसि।

द्रौपदी– नाथ! उदासीनेषु युष्मासु मम मन्युर्न पुनः कुपितेषु।[2]

भीमसेनः– यद्येवमपगतपरिभवमात्मानं समर्थयस्व।

(द्रौपदी सखेदं निःश्वसिति)

भीमसेनः– (हस्ते गृहीत्वा, पार्श्वे समुपवेश्य, मुखमवलोक्य च) किं पुनरत्रभवतीमुद्विग्नामिवोपलक्षयामि?

द्रौपदी– नाथ, किमप्युद्वेगकारणं युष्मासु सन्निहितेषु।[3]

भीमसेनः– किमिति नावेदयसि। (केशानवलोक्य, निःश्वस्य) अथवा किमावेदितेन।

जीवत्सु पाण्डुपुत्रेषु दूरमप्रोषितेषु च।
पांचालराजतनया वहते यदिमां दशाम्।।18।।

(अन्वय– पाण्डु–पुत्रेषु जीवत्सु, दूरम् अप्रोषितेषु च, पांचालराज–तनया इमाम् दशाम् यत् वहते।।18।।)

द्रौपदी– हंजे! बुद्धिमतिके! कथय तावन्नाथस्य सर्वं व्यवसितम्। कोऽन्यो मम परिभवेण खिद्यते?[1]

---

1. णाह! ण लज्जन्ति एदे। तुमं वि दाव मा विसुमरेहि।
2. णाह! उदासीणेसु तुम्हेसु मह मण्णु , ण उण कुविदेसु।
3. णाह, किं बि उव्वेअकालणं तुम्हेसु सण्णिहिदेसु।

द्रौपदी– (धीमे से) स्वामिन्! ये तो लज्जित नहीं होते हैं। आप भी तो मुझे नहीं भुला देना।

भीमसेन– (स्मरणपूर्वक) वत्स! पांचाली देर क्यों कर रही है? क्योंकि मेरा मन युद्ध में उतरने के लिए शीघ्रता कर रहा है।

सहदेव– आर्य! समादरणीया द्रौपदी को तो आए हुए काफी देर हो गयी है, किन्तु क्रोध के आवेश के कारण आयी हुई भी आर्या द्रौपदी आपके द्वारा नहीं देखी गयी हैं।

भीमसेन– (देखकर आदरपूर्वक) देवि! बढ़े हुए क्रोध वाले, हमारे द्वारा आयी हुई भी आप देखी नहीं जा सकीं, इसलिए आप क्रोध करने योग्य नहीं हैं।

द्रौपदी– स्वामी! आप लोगों के उदासीन होने पर मुझे क्रोध आता है, (शत्रुओं के प्रति) क्रुद्ध होने पर नहीं।

भीमसेन– यदि ऐसा है तो अपने तिरस्कार को दूर हुआ समझो।

(द्रौपदी खेदपूर्वक लम्बा श्वास छोड़ती है)

भीमसेन– (हाथ पकड़कर, पास में बैठाकर, मुख को देखकर) इस समय मैं समादरणीया आपको उद्विग्न सी क्यों देख रहा हूँ?

द्रौपदी– नाथ! आपके पास होने पर भला उद्वेग का कारण ही क्या हो सकता है?

भीमसेन– तुम उसे बता क्यों नहीं रही हो? (केशों को देखकर, लम्बा श्वास लेकर) अथवा निवेदन करने से भी क्या?

पाण्डुपुत्रों के जीवित रहते हुए एवं दूर देश न जाने पर भी पांचालराज की पुत्री द्रौपदी, इस दशा को प्राप्त हो रही है।।18।।

द्रौपदी– सखि! बुद्धिमतिके! स्वामी को तो यह सब बता ही दो, क्योंकि दूसरा कौन मेरे तिरस्कार से दुःखी हो सकता है?

---

[1]. हंजे बुद्धिमदिए! कहेहि दाव णाहस्स सव्वं ववसिदं। को अण्णो मह परिहवेण खिज्जइ।

चेटी–यद्देव्याज्ञापयति। (भीममुपसृत्य। अंजलिं बद्ध्वा) शृणोतु कुमारः। इतोऽप्यधिकतरमद्योद्वेगकारणमासीद्देव्याः।[1]

भीमसेनः– किं नामाऽस्मादप्यधिकतरम्। बुद्धिमतिके, तत्कथय कथय?

कौरव्यवंशदावेऽस्मिन्क एष शलभायते।
मुक्तवेणीं स्पृशन्नेनां कृष्णां धूमशिखामिव।।19।।

(अन्वय– कौरव्य–वंश–दावे अस्मिन् मुक्त–वेणीम् धूम–शिखाम् इव एनाम् कृष्णाम् स्पृशन्, कः एषः शलभायते? ।।19।।)

चेटी– शृणोतु कुमारः। अद्य खलु देव्याम्बासहिता सुभद्राप्रमुखेन सपत्नीवर्गेण परिवृता आर्याया गान्धार्याः पादवन्दनं कर्तुं गता आसीत्।[2]

भीमसेनः– युक्तमेतत्। वन्द्याः खलु गुरवः। ततस्ततः।

चेटी– ततः प्रतिनिवर्तमाना भानुमत्या देवी दृष्टा।[3]

भीमसेनः– (सक्रोधम्) आः, शत्रोर्भार्यया दृष्टा। हन्त! स्थानं क्रोधस्य साम्प्रतं देव्याः। ततस्ततः।

चेटी– ततस्तया देवीं प्रेक्ष्य सखीजनदत्तदृष्टया सगर्वमीषद्विहस्य भणितम्।[4]

भीमसेनः– न केवलं दृष्टा। उक्ता च। अहो? किं कुर्मः? तत–स्ततः।

चेटी– अयि याज्ञसेनि! पंचग्रामाः प्रार्थ्यन्त इति श्रूयते। तत् कस्मादिदानीमपि ते केशा न संयम्यन्ते।[5]

---

1 . ज देवी आणवेदि। (भीममुपसृत्य। अंजलिं बद्ध्वा) सुणादु कुमालो। इदो वि अहिअदरं अज्ज उव्वेअकालणं आसी देवीए।

2 . सुणादु कुमालो। अज्ज क्खु देवी अम्बासहिदा सुभद्दाप्पमुहेण सवत्तिवग्गेण परिवुदा अज्जाए गन्धालीए पादवन्दणं कादुं गदाआसी।

3 . तदो पडिणिवुत्तमाणा भाणुमदीए देवी दिट्ठा।

4 . तदो ताए देवीं पेक्खिअ सहीजणदिण्णदिट्ठिए सगव्वं ईसि विहसिअ भविअं।

5 . अइ जण्णसेणि! पंचगामा पत्थीअन्ति त्ति सुणीअदि। ता कीस दाणीं वि दे केसा ण संजमीअन्ति।

चेटी– देवी की जैसी आज्ञा। (भीमसेन के पास जाकर हाथ जोड़कर) कुमार! सुनिए। आज इससे भी अधिक देवी के उद्वेग का क्या कारण था?

भीमसेन– क्या कहा? इससे भी अधिक तब तो हे बुद्धिमतिके! कहो, कहो।

कौरवों के वंश के लिए इस दावानल में खुले हुए जूड़े वाली, धुएँ की शिखा के समान काली, कृष्णा को स्पर्श करते हुए, यह कौन भला पतंगा बनकर स्वयं को नष्ट किए दे रहा है?।।19।।

चेटी– कुमार सुनिए। माता कुन्ती के साथ आज देवी द्रौपदी सुभद्रा आदि सपत्नी वर्ग को साथ लेकर, आर्या गान्धारी के पादवन्दन के लिए गयी थीं।

भीमसेन– यह तो ठीक ही है, क्योंकि गुरुजन निश्चय ही वन्दनीय हैं। उसके बाद।

चेटी– उसके बाद लौटती हुई देवी द्रौपदी को भानुमती ने देखा।

भीमसेन– (क्रोधपूर्वक) आः! शत्रु की पत्नी द्वारा देखी गयी। दुःख है! तब तो देवी का क्रोध करना उचित ही है। उसके बाद..।

चेटी– उसके पश्चात् उस भानुमती ने देवी द्रौपदी को देखकर, सखियों की ओर देखते हुए अभिमानपूर्वक कहा।

भीमसेन– केवल देखा ही नहीं, अपितु कहा भी। अहो! क्या करें? उसके बाद।

चेटी– (वह बोली–) हे याज्ञसेनि! सुना है, पाँच गाँव माँगे जा रहे हैं, तो फिर इस समय भी तुम्हारे ये केश क्यों नहीं बाँधे जा रहे हैं?

शब्दार्थ– उपसृत्य–पास जाकर, बद्ध्वा–बाँधकर, शृणोतु–सुनिए, शलभायते–शलभ के समान आचरण करता है, परिवृता–घिरी हुई, दृष्टा–देखी गयी, भणितम्–कहा गया, संयम्यन्ते–सँवारे जा रहे हैं, उक्ता–कही गयी, इदानीम्–इस समय, साम्प्रतम्–इस समय।

भीमसेन– सहदेव, श्रुतम्।

सहदेवः– आर्य, उचितमेवैतत्तस्याः। दुर्योधनकलत्रं हि सा। पश्य–

स्त्रीणां हि साहचर्याद्भवन्ति चेतांसि भर्तृसदृशानि।
मधुराऽपि हि मूर्च्छयते विषविटपिसमाश्रिता वल्ली।।20।

(अन्वय– हि साहचर्यात् स्त्रीणाम् चेतांसि भर्तृ–सदृशानि भवन्ति, हि विष–विटपि–समाश्रिता मधुरा अपि वल्ली मूर्च्छयते।।20।)

भीमसेनः– बुद्धिमतिके! ततो देव्या किमभिहितम्?

चेटी– कुमार यदि परिजनहीना भवेत्तदा देवी भणति।[1]

भीमसेनः– किं पनुरभिहितं भवत्या?

चेटी– कुमार ततो मया भणितम्– 'अयि भानुमति! युष्माकमुक्तेषु केशहस्तेषु कथमस्माकं देव्याः केशाः संयम्यन्त' इति।[2]

भीमसेनः– (सपरितोषम्) साधु बुद्धिमतिके, साधु। तदभिहितं यदस्मत्परिजनोचितम्। (सावष्टम्भमासनादुत्तिष्ठन्) अयि पांचालराज–तनये! अलं विषादेन। किं बहुना, यत्करिष्ये तच्छ्रूयताम्। अचिरेणैव कालेन–

चंचद्भुजभ्रमितचण्डगदाऽभिघात–
संचूर्णितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य।
स्त्यानाऽवनद्धघनशोणितशोणपाणि–
रुत्तंसयिष्यति कचांस्तव देवि! भीमः।।21।।

(अन्वय–देवि! चंचत्–भुज–भ्रमित–चण्ड–गदा–अभिघात–संचूर्णित–उरु–युगलस्य सुयोधनस्य स्त्यान–अवनद्ध–घन–शोणित–शोण–पाणिः भीमः तव कचान् उत्तंसयिष्यति।।21।।)

---

[1]. कुमाल, जइ परिजणहीणा भवे तदो देवी भणादि।

[2]. कुमाल! तदो मए भणिअं– 'अइ भाणुमदि! तुम्हाणं अमुक्केसु केसहत्थेसु कधं अह्माणं देवीए केसा संजमीअन्ति' त्ति।

भीमसेन– सहदेव! सुना तुमने?

सहदेव– आर्य! उस भानुमती के लिए तो इसप्रकार कहना उचित ही है, क्योंकि वह दुर्योधन की पत्नी जो है, देखिए–

पतियों के सान्निध्य से स्त्रियों के मन भी पतियों के समान ही हो जाते हैं, क्योंकि विष के वृक्ष पर चढ़ी हुई लता, मधुर होने पर भी लोगों को मूर्छित ही करती है।।20।।

भीमसेन– बुद्धिमतिके! उसके बाद देवी द्रौपदी ने क्या कहा?

चेटी– कुमार! यदि परिजनो से रहित होतीं, तो वे कहतीं।

भीमसेन– तो फिर तुमने क्या कहा?

चेटी– हे कुमार! मैंने इसप्रकार कहा कि–'हे भानुमति! जब तक तुम्हारे केश न खुल जाएँ, हमारी देवीं भला अपने बाल कैसे सँवार सकती हैं?

भीमसेन– (संतोषपूर्वक) साधु बुद्धिमतिके! साधु। तुमने वही कहा, जो हमारे परिजनों द्वारा कहने योग्य था। (अभिमानपूर्वक आसन से उठते हुए) हे पांचालपुत्रि! विषाद से बस करो। अधिक कहने से क्या? मैं जो करूँगा, उसे सुनिए। अत्यधिक थोड़े समय में ही,

हे देवि! चंचल भुजाओं द्वारा घुमायी गयी, भयंकर गदा के प्रहार से टूटी हुई जँघाओं वाले, दुर्योधन के चिकने तथा चिपके हुए, गाढ़े खून से लाल रंग के हाथों वाला, यह भीमसेन तुम्हारे बालों को सँवारेगा।।21।।

शब्दार्थ–श्रुतम्–सुना, कलत्र–पत्नी, समाश्रिता–आश्रय ली गयी, वल्ली–लता, अभिहितम्–कहा गया, सपरितोषम्–संतोषपूर्वक, विषादेन–दुःख से, अभिघात–प्रहार, शोणित–रक्त,कचान्–केशों को, चंचत्–चंचल, अचिरेण–शीघ्र ही, ततः–उसके बाद, उत्तिष्ठन्–उठते हुए, भणति–कहती है, सावष्टम्भम्–अभिमानपूर्वक, श्रूयताम्–सुनिए, अलम्–बस करो, स्त्यान–गाढ़ा, कचान्–बालों को, साहचर्यात्–सान्निध्य से, साधु–अच्छा।

द्रौपदी– किं नाथ, दुष्करं त्वया परिकुपितेन। सर्वथाऽनुग्रहणन्त्वेतद् व्यवसितं ते भ्रातरः।[1]

सहदेवः– अनुगृहीतमेतदस्माभिः।

(नेपथ्ये महान्कलकलः। सर्वे सविस्मयमाकर्णयन्ति।)

भीमसेनः– (सानन्दम्) आः किमेतत्?

मन्थायस्तार्णवाम्भःप्लुतकुहरश्चलन्मन्दरध्वानधीरः
कोणाघातेषु गर्जत्प्रलयघनघटाऽन्योन्यसंघट्टचण्डः।
कृष्णाक्रोधाग्रदूतः कुरुकुलनिधनोत्पातनिर्घातवातः
केनास्मत्सिंहनादप्रतिरसितसखो दुन्दुभिस्ताडितोऽयम्।।

(अन्वय– मन्थ–आयस्त–अर्णव–अम्भः–प्लुत–कुहरः चलन् मन्दर–ध्वान–धीरः कोण–आघातेषु गर्जत् प्रलय–घन–घटा अन्योन्य–संघट्ट–चण्डः कृष्णा–क्रोध–अग्रदूतः कुरु–कुल–निधन–उत्पात–निर्घात–वातः केन अस्मत् सिंहनाद–प्रतिरसित–सखः अयम् दुन्दुभिः केन ताडितः?।।22।।)

(प्रविश्य सम्भ्रान्तः)

कंचुकी– कुमार एष खलु भगवान्वासुदेवः।

(सर्वे कृतांजलयः समुत्तिष्ठन्ति)

भीमसेनः– (ससम्भ्रमम्) क्वासौ क्वासौ भगवान् ?

कंचुकी– पाण्डवपक्षपातामर्षितेन सुयोधनेन संयमितुमारब्धः।

(सर्वे सम्भ्रमं नाटयन्ति)

भीमसेनः– किं संयतः?

कंचुकी– नहि नहि, संयमितुमारब्धः।

भीमसेनः– किं कृतं देवेन।

कंचुकी– ततः स महात्मा दर्शितविश्वरूपतेजः सम्पातमूर्च्छितमवधूयकुरुकुलमस्मच्छिविरसन्निवेशमनुप्राप्तः कुमारमविलम्बितं द्रष्टुमिच्छति।

---

1 . किं णाह, दुक्कर' तुए परिकुविदेण। सव्वहा अणुगेह्णन्तु एदं ववसिदं दे भादरो।

द्रौपदी– हे स्वामिन्! कुपित हुए आपके लिए कुछ भी कठिन नहीं है। बस, आपके इस निश्चय को आपके भाइयों को भी स्वीकार करना चाहिए।

सहदेव– आपका कहा हुआ हमने मान लिया है।

(नेपथ्य में महान् कोलाहल होता है, सभी विस्मयपूर्वक सुनते हैं)

भीमसेन– (आनन्दपूर्वक) अरे! यह क्या है?

मन्थन के अवसर पर क्षुब्ध हुए समुद्र के जल से व्याप्त, कुहरों वाले घूमते हुए, मन्दराचल की ध्वनि के समान गम्भीर, कोणाघातों में गर्जन करते हुए, प्रलयकाल के बादलों की घटाओं के परस्पर टकराने से भयंकर, आगे–आगे चलकर द्रौपदी के क्रोध की घोषणा करने वाले, कौरववंश के विनाश की अशुभ सूचना प्रदान करने वाले, प्रचण्ड वायु के समान एवं हमारे सिंहनाद की प्रतिध्वनि के समान ध्वनि से युक्त, इस दुन्दुभि को भला किसके द्वारा बजा दिया गया है?।।22।।

(प्रवेश करके घबराहट के साथ)

कंचुकी– कुमार! निश्चय ही ये भगवान् वासुदेव...।

(सभी लोग हाथ जोड़कर उठ खड़े होते हैं)

भीमसेन– (घबराहटपूर्वक) वे कहाँ हैं? वे भगवान् कहाँ हैं?

कंचुकी– पाण्डवों का पक्षपात करने से क्रुद्ध हुए दुर्योधन ने उन्हें बाँधने का प्रयास किया है।

(सभी भयभीत होने का अभिनय करते हैं)

भीमसेन– क्या पकड़ लिया?

कंचुकी– नहीं, नहीं। पकड़ना आरम्भ किया।

भीमसेन– तब भगवान् वासुदेव ने क्या किया?

कंचुकी– उसके पश्चात् वे महात्मा अपने विराट स्वरूप को प्रदर्शित करके, सभी कौरवों को मूर्छित कर, उनका तिरस्कार करके, हमारे शिविर के पास में ही आ गए और वे आप कुमार को शीघ्र ही देखना चाहते हैं।

भीमसेनः– (सोपहासम्) किं नाम दुरात्मा सुयोधनो भगवन्तं संयमितुमिच्छति। (आकाशे दत्तदृष्टिः) आः! दुरात्मन्कुरुकुलपांसुल! एवमतिक्रान्तमर्यादे त्वयि निमित्तमात्रेण पाण्डवक्रोधेन भवितव्यम्।

सहदेवः– आर्य, किमसौ दुरात्मा सुयोधनहतको वासुदेवमपि भगवन्तं स्वरूपेण न जानाति।

भीमसेनः– वत्स, मूढः खल्वयं दुरात्मा कथं जानातु! पश्य–

आत्मारामा विहितरतयो निर्विकल्पे समाधौ
ज्ञानोत्सेकाद्विघटिततमोग्रन्थयः सत्त्वनिष्ठाः।
यं वीक्षन्ते कमपि तमसां ज्योतिषां वा परस्तात्
तं मोहान्धः कथमयममुं वेत्तु देवं पुराणम्।।23।।

(अन्वय– आत्मारामाः निर्विकल्पे समाधौ विहित–रतयः, ज्ञान-उत्सेकात् विघटित–तमः ग्रन्थयः, सत्त्व–निष्ठाः, तमसाम् ज्योतिषाम् वा परस्तात् यम् कम् अपि वीक्षन्ते, तम् अमुम् पुराणम् देवम् मोहान्धः अयम् कथम् वेत्तु?।।23।।)

आर्य जयन्धर, किमिदानीमध्यवस्यति गुरुः।

कंचुकी– स्वयमेव गत्वा महाराजस्याऽध्यवसितं ज्ञास्यति कुमारः।

(इति निष्क्रान्तः)

(नेपथ्ये कलकलानन्तरम्)

भो! भो!द्रुपद–विराट–वृष्ण्यन्धक–सहदेव–प्रभृतयोऽस्मदक्षौहिणी-पतयः कौरवचमूप्रधानयोधाश्च, शृण्वन्तु भवन्तः।

यत्सत्यव्रतभंगभीरुमनसा यत्नेन मन्दीकृतं
यद्विस्मर्तुमपीहितं शमवता शान्तिं कुलस्येच्छता।
तद्द्यूतारणिसम्भूतं नृपसुताकेशाम्बराकर्षणैः
क्रोधज्योतिरिदं महत्कुरुवने यौधिष्ठिरं जृम्भते।।24।।

(अन्वय– सत्य–व्रत–भंग–भीरु–मनसा यत् यत्नेन मन्दी–कृतम्, कुलस्य शान्तिम् इच्छता शमवता यत् विस्मर्तुम् अपि ईहितम्।

भीमसेन– (उपहासपूर्वक) भला क्या दुरात्मा दुर्योधन भगवान् को बाँधना चाहता है? (आकाश में दृष्टि डालकर) आः! दुरात्मन्! कुरुकुल के लिए कलंक स्वरूप! इसप्रकार मर्यादाविहीन आचरण करने वाले, तुझ पर क्रुद्ध होने में, पाण्डवगण तो निमित्तमात्र ही होंगे।

सहदेव– आर्य! क्या यह दुरात्मा दुर्योधन भगवान् श्रीकृष्ण के स्वरूप को भी नहीं जान पा रहा है?

भीमसेन– वत्स! निश्चय ही मूर्ख यह दुष्टात्मा, इन्हें भला किस प्रकार जान सकता है? देखो,

आत्मारूपी उपवन में रमण करने वाले, निर्विकल्पक समाधि में प्रेम रखने वाले, ज्ञान की बहुलता से नष्ट हुई अज्ञानरूपी मोहग्रन्थि वाले, सात्त्विक भावों से परिपूर्ण मुनि लोग, अज्ञानरूपी अन्धकार अथवा ज्ञानरूपी प्रकाश से आगे बढ़कर, जिनके दर्शन करते हैं, उस पुराण पुरुष परमात्मा को मोह से अन्धा हुआ यह दुर्योधन, भला कैसे जान सकता है?।।23।।

आर्य जयन्धर! अब भ्राता क्या निश्चय कर रहे हैं?

कंचुकी– कुमार स्वयं ही जाकर महाराज के निश्चय को जान लेंगे। (ऐसा कहकर निकल जाता है)

(नेपथ्य में कोलाहल के बाद)

अरे! अरे! द्रुपद, विराट, वृष्ण्यन्धक, सहदेव आदि हमारी अक्षौहिणी सेना के सेनापतियों और कौरवसेना के प्रधान योद्धाओं! आप सभी सुन लीजिए–

अपनी सत्य–प्रतिज्ञा भंग होने के भय से व्याकुल मन वाले, जिन युधिष्ठिर ने, जिस क्रोधरूपी अग्नि को धीमा कर दिया था, वंश के हित की कामना से शान्त धर्मराज ने उसे विस्मृत करने की चेष्टा भी की थी, जुए रूपी अरणि में भरी हुई उनके हृदय की यह क्रोधाग्नि राजपुत्री द्रौपदी के केश और वस्त्रों को खींचे जाने के कारण कौरवों के वंशरूपी वन में वृद्धि को प्राप्त हो रही है।।24।।

द्यूत–अरणि–सम्भूतम् तत् यौधिष्ठिरम्, क्रोध–ज्योतिः नृप–सुता-केश–अम्बर–आकर्षणैः महत् इदम् कुरु–वने जृम्भते।।24।।)

भीमसेनः– (आकर्ण्य। सहर्षाऽमर्षम्) जृम्भतां जृम्भतामप्रतिहत-प्रसरमार्यस्य क्रोधज्योतिः।

द्रौपदी– (सविस्मयम्) नाथ, किमिदानीमेष प्रलयजलधरघन-स्तनितमांसलोद्घोषः क्षणे क्षणे समरदुन्दुभिस्ताड्यते।[1]

भीमसेनः– देवि, किमन्यत्। यज्ञः प्रवर्तते।

द्रौपदी– (सविस्मयम्) क एष यज्ञः।[2]

भीमसेनः– रणयज्ञः। तथा हि–

चत्वारो वयमृत्विजः स भगवान् कर्मोपदेष्टा हरिः,
संग्रामाध्वरदीक्षितो नरपतिः पत्नी गृहीतव्रता।
कौरव्याः पशवः प्रियापरिभवक्लेशोपशान्तिः फलं,
राजन्योपनिमन्त्रणाय रसति स्फीतं यशोदुन्दुभिः।।25।।

(अन्वय– वयम् चत्वारः ऋत्विजः, सः भगवान् हरिः कर्म-उपदेष्टा, नरपतिः संग्राम–अध्वर–दीक्षितः, पत्नी गृहीत–व्रता, कौरव्याः पशवः, प्रिया–परिभव–क्लेश–उपशान्तिः फलम्, राजन्य–उप–निमन्त्रणाय यशः–दुन्दुभिः स्फीतम् रसति।।25।।)

सहदेवः– आर्य! गच्छामो वयमिदानीं गुरुजनानुज्ञाता विक्रमा-नुरूपमाचरितुम्।

भीमसेनः– वत्स, एते वयमुद्यता आर्यस्यानुज्ञामनुष्ठातुमेव (उत्थाय) तत्पांचालि! गच्छामो वयमिदानीं कुरुकुलक्षयाय।

द्रौपदी– (बाष्पं धारयन्ती) नाथ असुरसमराभिमुखस्य हरेरिव मंगलं युष्माकं भवतु। यच्चाम्बा कुन्त्याशास्ते तद्युष्माकं भवतु।[3]

---

1. णाह, किं दाणीं एसो पलअजलहरत्थणिदमंसलोदधनसो क्खणे क्खणे समर–दुन्दुही ताडीअदि।

2. को एसो जण्णो।

3. णाह, असुरसमराहिमुहस्स हरिणो विअ मंगल तुम्हाणं हादु। जं च अम्बा कुन्दी आसासदि तं तुम्हाणं होदु।

भीमसेन– (सुनकर हर्ष एवं क्रोधपूर्वक) महाराज युधिष्ठिर का अप्रतिहत गति वाला कोपानल, निरन्तर बढ़ता रहे, बढ़ता रहे।

द्रौपदी– (विस्मयपूर्वक) स्वामी! इस समय यह प्रलयकालीन घने मेघ के गर्जन के समान, गम्भीर उद्घोष वाला, युद्ध का नगाड़ा प्रतिक्षण क्यों बजाया जा रहा है?

भीमसेन– देवि! अन्य क्या? यह तो 'यज्ञ' आरम्भ हो गया है।

द्रौपदी– (विस्मयपूर्वक) यह कौन सा यज्ञ है?

भीमसेन– यह युद्धरूपी यज्ञ है, क्योंकि–

भीमादि हम चारों लोग इस यज्ञ में ऋत्विक् हैं। भगवान् श्री कृष्ण यहाँ कर्म का उपदेश करने वाले हैं। स्वयं धर्मराज युधिष्ठिर संग्रामरूपी यज्ञ का संकल्प लिए हुए हैं। पत्नी द्रौपदी ने इस यज्ञ का व्रत धारण किया हुआ है। सभी कौरव लोग इसमें पशु हैं। प्रियतमा के पराभवरूप क्लेश का शान्त होना ही इस यज्ञ का फल है। इसीलिए यह कीर्तिरूपी दुन्दुभि राजाओं को आमन्त्रित करने के लिए जोर–जोर से बजाया जा रहा है।।25।।

सहदेव– आर्य! महाराज युधिष्ठिर से आज्ञा प्राप्त हुए, हम इस समय पराक्रम के अनुरूप आचरण करने के लिए जा रहे हैं।

भीमसेन– वत्स! हम लोग भी आर्य युधिष्ठिर की आज्ञा का पालन करने के लिए तैयार ही हैं। (उठकर) तो पांचालि! अब हम कुरुकुल के विनाश के लिए जाते हैं।

द्रौपदी– (आँसुओं को रोकती हुई) हे स्वामिन्! असुरों के साथ युद्ध करने के लिए उद्यत भगवान् विष्णु के समान, आप सभी का मंगल होवे तथा जो माता कुन्ती कामना करती हैं, वह सब भी आप सभी को प्राप्त होवे।

शब्दार्थ– जम्भृते–वृद्धि को प्राप्त हो रहा है, सम्भूतम्–उत्पन्न, अम्बर–वस्त्र, ज्योति–प्रकाश, अग्नि, क्षयाय–नष्ट होने के लिए, स्फीत–जोर से।

उभौ– प्रतिगृहीतं मंगलवचनमस्माभिः।

चेटी– अन्यच्च देवी भणति। नाथ! पुनरपि युष्माभिः समरादागत्याऽहं समाश्वासयितव्या।[1]

भीमसेनः– ननु पांचालराजतनये ! किमद्याप्यलीकाश्वासनया।

भूयः परिभवक्लान्तिलज्जाविधुरिताननम्।
अनिःशेषितकौरव्यं न पश्यसि वृकोदरम्।।26।।

(अन्वय– परिभव–क्लान्ति–लज्जा–विधुरित–आननम् अनिःशेषित–कौरव्यम् वृकोदरम् भूयः न पश्यसि ।।26।।)

द्रौपदी– नाथ! मा खलु याज्ञसेनीपरिभवोद्दीपितकोपानला अनपेक्षितशरीराः संचरिष्यथ। यतोऽप्रमत्तसंचरणीयानि रिपुबलानि श्रूयन्ते।[2]

भीमसेनः– अयि सुक्षत्रिये! समर्था वयमस्मिन् रणे परिक्रमितुम्।

अन्योन्यास्फालभिन्नद्विपरुधिरवसामांसमस्तिष्कपंके
मग्नानां स्यन्दनानामुपरिकृतपदन्यासविक्रान्तपत्तौ।
स्फेतासृक्पानगोष्ठीरसदशिवशिवातूर्यनृत्यत्कबन्धे
संग्रामैकार्णवान्तःपर्याप्त विचरितुं पण्डिताः पाण्डुपुत्राः27

(अन्वय– अन्योन्य–आस्फाल–भिन्न–द्विप–रुधिर–वसा–मांस–मस्तिष्क–पंके, मग्नानाम् स्यन्दनानाम् उपरि–कृत–पदन्यास–विक्रान्त–पत्तौ स्फेत–असृक्–पान–गोष्ठी रसत् अशिव–शिवा–तूर्य–नृत्यत् कबन्धे संग्राम– एकार्णव–अन्तः–पर्याप्त विचरितुम् पाण्डुपुत्राः पण्डिताः (सन्ति)।।27।।)

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ इति प्रथमोऽङ्कः ॥

---

1 . अण्णं च देवी भणादि। णाह पुणो वि तुम्हेहिं समरादो आअच्छिअ समास्सासइदव्वा।

2 णाह, मा क्खु जण्णसेणी परिहवुद्दीबिदकोबाणला अणवेक्खिदसरीरा संचरिस्सध। जदो अप्पमत्तसंचरणिज्जाइं सुणीअन्ति।

दोनों– हम लोगों ने तुम्हारे मंगलवचनों को स्वीकार कर लिया है।

चेटी– देवी और भी कुछ कह रही हैं कि–'हे नाथ! युद्ध से लौटकर आप मुझे फिर से धीरज बँधाइएगा।'

भीमसेन– निश्चय ही, पांचलराजपुत्रि! अब झूठा आश्वासन देने से क्या लाभ है?

तिरस्कार के दुःख एवं लज्जा से मलिन मुख वाले, कौरवों का विनाश किए बिना भीमसेन को तुम जीवित नहीं देखोगी।।26।।

द्रौपदी– नाथ! याज्ञसेनी के तिरस्कार से उद्दीप्त क्रोधरूपी अग्नि वाले, आप लोग अपने शरीर की लापरवाही करके, युद्धक्षेत्र में विचरण नहीं कीजिएगा, क्योंकि शत्रु की सेनाएँ प्रमाद से रहित होकर ही विचरण करने योग्य सुनी जाती हैं।

भीमसेन– अयि, सुक्षत्राणि! इस युद्धक्षेत्र में विचरण करने में हम लोग समर्थ हैं–

आपस में टकराने से विदीर्ण हुए, हाथियों के रक्त, मेदा, माँस एवं कपाल आदि के कीचड़ में डूबे हुए, रथों के ऊपर पैर रखकर, चलने का पराक्रम प्रदर्शित करने वाली, पैदल सेना वाले, विशाल रक्त पान की गोष्ठियों में चिल्लाती हुई, अमंगलसूचक शृगालियों रूपी तुरहियों द्वारा उछलते हुए, धड़ों वाले संग्रामरूपी प्रमुख समुद्र के जलों के बीच में विचरण करने के लिए, हम पाण्डवपुत्र पूर्णरूप से निपुण हैं।।27।।

(इसप्रकार सभी निकल जाते हैं)

॥ इसप्रकार महाकवि भट्टनारायण विरचित वेणीसंहार के प्रथम अङ्क का डॉ. राकेश शास्त्री, बाँसवाड़ा **द्वारा किया हुआ हिन्दी अनुवाद पूर्ण हुआ॥**

।। श्रीः।।

द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रतिशति कंचुकी)

कंचुकी– आज्ञापितोऽस्मि महाराजदुर्योधनेन– 'विनयन्धरः सत्वरं गच्छ त्वम्। अन्विष्यतां देवी भानुमती। अपि निवृत्ता अम्बायाः पादवन्दनसमयान्न वेति। यतस्तां विलोक्य निहताभिमन्यवो राधेयजयद्रथप्रभृतयोऽस्मत् सेनापतयः समरभूमिं गत्वा सभाजयितव्याः' इति। यन्मया द्रुततरं गन्तव्यमिति। अहो प्रभविष्णुता महाराजस्य, यन्मम जरसाभिभूतस्य मर्यादामात्रमेवावरोधव्यापारः अथवा किमिति जरामुपा–
लमेय,यतः सर्वान्तः पुरिकाणामयमेव व्यावहारिको वेषश्चेष्टा च। तथाहि–

नोच्चैः सत्यपि चक्षुषीक्षितुमलं श्रुत्वापि नाकर्णितं
शक्तेनाप्यधिकार इत्यधिकृता यष्टिः समालम्ब्यते।
सर्वत्र स्खलितेषु दत्तमनसा यातं मया नोद्धतं
सेवास्वीकृतजीवितस्य जरसा किं नाम यन्मे कृतम्।।1।

(अन्वय– चक्षुषि सति अपि उच्चैः ईक्षितुम् न अलम्, श्रुत्वा अपि न आकर्णितम्, शक्तेन अपि अधिकारः इति अधिकृता यष्टिः सम्–आलम्ब्यते, सर्वत्र स्खलितेषु दत्त–मनसा मया उद्धतम् न यातम् सेवा–स्वीकृत–जीवितस्य मे किम् नाम जरसा, यत् कृतम्।।1।।)

प्रस्तुत अंक में दुर्योधन का कामुक चरित्र उभरकर पाठक के सामने आया है, क्योंकि जहाँ एक ओर युद्ध की घोषणा हो गयी हो, वहीं दूसरी ओर उसका अपनी पत्नी के साथ रंगरेलियाँ मनाने का प्रयास, किसी भी दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता है।

।। श्रीः ।।

द्वितीय अङ्क

(उसके बाद कंचुकी प्रवेश करता है)

कंचुकी– महाराज दुर्योधन ने मुझे आदेश दिया है कि– 'हे विनयन्धर! तुम शीघ्र जाओ और देवी भानुमती को खोजो, क्या वे माता गान्धारी के चरणवन्दन रूप कार्य से निवृत्त हो गयीं हैं? अथवा नहीं, क्योंकि उन्हें देखकर युद्ध–भूमि में जाकर, मुझे अभिमन्यु का संहार करने वाले, कर्ण और जयद्रथ इत्यादि सेनापतियों का सम्मान भी करना है।' इसलिए मुझे अत्यन्त तीव्र गति से जाना चाहिए। महाराज दुर्योधन का प्रभाव वस्तुतः आश्चर्यजनक है?, जिसके कारण वृद्धावस्था से अभिभूत हुए मेरा अन्तःपुर में ठहरना, मर्यादामात्र ही रह गया है अथवा बुढ़ापे को उलाहना देने से क्या लाभ? क्योंकि अन्तःपुर में रहने वाले, सभी लोगों का यही व्यावहारिक वेष तथा चेष्टाएँ होती हैं, क्योंकि–

नेत्र होते हुए भी अन्तःपुर में उन्हें ऊँचा करके देखने नहीं दिया जाता है, सब कुछ सुनते हुए भी उसे अनसुना करना होता है, समर्थ होते हुए भी छड़ी का सहारा लेकर चलना पड़ता है, सभी प्रकार की त्रुटियों पर ध्यान रखते हुए भी, मेरे द्वारा कभी उद्दण्डतापूर्वक प्रस्थान नहीं किया गया, इसप्रकार सेवा करने मात्र के जीवन को धारण करने वाले, मुझ कंचुकी के लिए वृद्धावस्था ने भला क्या नहीं किया?।।1।।

(परिक्रम्य दृष्ट्वा आकाशे) **विहंगिके अपि श्वश्रूजनपादवन्दनं कृत्वा प्रतिनिवृत्ता भानुमती।** (कर्णं दत्वा) **किं कथयति–आर्य! एषा भानुमती देवी पत्युः समरविजयाशंसया निर्वर्तितगुरुदेवपादवन्दना–ऽद्यप्रभृत्यारब्धनियमा देवगृहे बालोद्याने तिष्ठतीति। तद्भद्रे गच्छ त्वमात्मव्यापाराय यावदहमप्यत्रस्थां देवीं महाराजस्य निवेदयामीति।** (परिक्रम्य) **साधु पतिव्रते साधु स्त्रीभावेऽपि वर्तमाना वरं भवती, न पुनर्महाराजः। योऽयमुद्यतेषु बलवत्सु अथवा कि बलवत्सु वासुदेवसहायेषु पाण्डुपुत्रेष्वरिष्वद्याप्यन्तःपुरविहारसुखमनभुवति।** (विचिन्त्य) **इदमपरम–यथातथं स्वामिनश्चेष्टितम्। कुतः–**

आशस्त्रग्रहणादकुण्ठपरशोस्तस्याऽपि जेता मुने–
स्तापायास्य न पाण्डुसूनुभिरयं भीष्मः शरैः शायितः।
प्रौढानेकधनुर्धरारिविजयश्रान्तस्य चैकाकिनो
बालस्यायमरातिलूनधनुषः प्रीतोऽभिमन्योर्वधात्।।2।।

(**अन्वय–** आ–शस्त्र–ग्रहणात् अकुण्ठ–परशोः तस्य अपि मुनेः जेता, अयम् भीष्मः पाण्डु–सूनुभिः शरैः शायितः अस्य तापाय न, प्रौढ़ा–अनेक–धनुर्धर–अरि–विजय–श्रान्तस्य च एकाकिनः अराति–लून–धनुषः बालस्य अभिमन्योः वधात् अयम् प्रीतः।।2।।)

सर्वथा देवं नः स्वस्ति करिष्यति तद्यावदत्रस्थां देवीं महाराजस्य निवेदयामि। (इति निष्क्रान्तः)

(विष्कम्भकः)

(ततः प्रविशत्यासनस्था देवी भानुमती, सखी चेटी च)

सखी– सखि भानुमति, कस्मादिदानीं त्वं स्वप्नदर्शनमात्रस्य कृतेऽभिमानिनो महाराजदुर्योधनस्य महिषी भूत्वैवं विगलितधीरभावातिमात्रं सन्तप्यसे?[1]

---

1. सहि भाणुमदि, कीस दाणिं तुमं सिविण अदंसणमेत्तस्य किदे अहिमाणिणो महाराअदुज्जोहणस्स महिसी अविअ एव्वं विअलिअधीरभावा अति मेत्तं शंतप्पसि।

(घूमकर और आकाश में देखकर) हे विहंगिके! श्वश्रूजनों के चरणों की वन्दना करके, भानुमती क्या लौट आयी हैं? (कान लगाकर) क्या कह रही हो? 'आर्य! यह देवी भानुमती पति के युद्ध–विजय की कामना से, गुरुजनों तथा देवों के पाद–वन्दन से निवृत्त होकर, आज से ही व्रतादि नियमों का पालन करना आरम्भ करके, बालोद्यान में विद्यमान हैं,' तो भद्रे! तुम अपना कार्य करने के लिए जाओ, तब तक मैं भी यहाँ महारानी के स्थित होने की सूचना महाराज दुर्योधन को दे देता हूँ। (घूमकर) साधु, पतिव्रते! स्त्रीभाव होते हुए भी तुम श्रेष्ठ हो, न कि महाराज, जो कि बलवानों अथवा निर्बलों, वासुदेव श्रीकृष्ण का सहयोग प्राप्त करने वाले, पाण्डुपुत्रों से युद्ध हेतु उद्यत होने पर भी अन्तःपुर में विहार करने का सुख अनुभव कर रहे हैं। (विचारकर) महाराज दुर्योधन का यह दूसरा कार्य भी अनुचित है, क्योंकि–

शस्त्र ग्रहण करने के दिन से लेकर, जिनका फरसा कभी कुण्ठित नहीं हुआ, इसप्रकार के पराक्रमी मुनि परशुराम पर भी विजय प्राप्त करने वाले, वे भीष्म, पाण्डुपुत्रों द्वारा बाणों की शय्या पर सुला दिए गए, वह भी इनके सन्ताप का कारण नहीं हुआ, जबकि प्रसिद्ध अनेक धनुर्धारी वीरों को युद्धभूमि में हटाकर थके हुए, अकेले शत्रुओं द्वारा काटे गए, धनुष वाले बालक अभिमन्यु के वध से ये ही महाराज अत्यधिक प्रसन्न हो रहे हैं।।2।।

ऐसा होने पर भी भाग्य हमारा कल्याण करे। इसलिए तब तक यहाँ स्थित देवी भानुमती की सूचना महाराज के प्रति निवेदन करता हूँ। (यह कहकर निकल जाता है)

(विष्कम्भक)

(उसके बाद आसन पर बैठी देवी भानुमती, सखी एवं चेटी प्रवेश करती हैं)

सखी– सखि भानुमति! अभिमानी राजा दुर्योधन की पटरानी होकर भी तुम इस समय स्वप्न देखने मात्र से इसप्रकार धैर्यविहीन होकर, अत्यधिक सन्ताप क्यों कर रही हो?

चेटी– भट्टिनि, शोभनं भणति सुवदना। स्वपंजनः किं न खलु प्रलपति।[1]

भानुमती– हंजे, एवं न्विदं किन्तु एष स्वप्नोऽकुशलदर्शनं मे प्रतिभाति।[2]

सखी– प्रियसखि! यद्येवं तत् कथय स्वप्नं येन आवामपि प्रतिष्ठापयन्त्यौ धर्म्मप्रशंसया देवतानां संकीर्तनेन दूर्वादिपरिग्रहेण च परिहरिष्यामः।[3]

चेटी– शोभनं खलु भणति सुवदना। अकुशलदर्शना अपि स्वप्ना प्रशंसया कुशलपरिणामा भवन्तीति श्रूयते।[4]

भानुमती– यद्येवं तत्कथयिष्ये। अवहिते तावद् भवतम्।[5]

सखी– कथयतु प्रियसखी।[6]

भानुमती– सखि! भयेन विस्मृताऽस्मि, तत्तिष्ठ यावत्सर्वं स्मृत्वा कथयिष्ये।[7] (इति चिन्तां नाटयति)

(ततः प्रविशति दुर्योधनः कंचुकी च)

दुर्योधनः– सूक्तमिदं कस्यचित्।

गुप्त्या साक्षान्महानल्पः स्वयमन्येन वा कृतः।
करोति महतीं प्रीतिमपकारोऽपकारिषु।।3।।

(अन्वय– अपकारिषु गुप्त्या साक्षात् वा महान् अल्पः वा स्वयम् अन्येन वा अपकारः कृतः, महतीम् प्रीतिम् करोति ।।3।।)

---

1. भट्टिणि, सोहणं भणादि सुवअणा। सिविणअन्तो जणो किं ण क्खु प्पलवदि।

2. हंजे, एवं णेदं। किणु एदं सिविणअं अकुसलदंसणं मे पडिभादि।

3. पियसहि! जइ एव्वं ता कधेहि सिविणअं जं अम्बेहि पडिट्ठाव अन्तीओ धमप्पसंसाए देवदाणं संकीत्तणेण दूवादिपडिग्गहेण अ पडिहडिस्सामो

4. सोहणं क्खु भणदि सुबअणा! अकुसलदंसणावि। सिविणआप्पसंसाए कुशल– परिणामा होन्ति त्ति सुणीअदि।

5. जइ एव्वं ता कहइस्सं। अवहिदा दाव होध।

6. कहेदु पिअसही।

7. हला! भएण विसुमरिदह्मि, ता चिट्ठ जाव सव्वं सुमरिअ कहइस्सं।

चेटी– स्वामिनि! सुवदना ठीक ही कह रही है, स्वप्न में व्यक्ति क्या–क्या प्रलाप नहीं करता है?

भानुमती– हंजे! बात तो ऐसी ही है, किन्तु मुझे तो यह स्वप्न अशुभसूचक प्रतीत हो रहा है।

सखी– प्रियसखि! यदि ऐसा है तो तुम अपने स्वप्न को कहो, जिससे हम दोनों भी धार्मिक चर्चाओं द्वारा एवं देवों के संकीर्तन आदि से और दूर्वा आदि मांगलिक वस्तुओं को धारण करके, उस अमंगल को दूर करेंगी।

चेटी– सुवदना निःसन्देह ठीक कह रही है, क्योंकि ऐसा सुनते हैं कि अशुभसूचक स्वप्न भी देवों के संकीर्तन आदि से माँगलिक फल वाले बन जाते हैं।

भानुमती– यदि ऐसा है तो मैं अवश्य कहूँगी, तब तक तुम दोनों सावधान हो जाओ।

सखी– कहिए प्रियसखी।

भानुमती– हे सखि! मैं भय के कारण भूल गयी हूँ, इसलिए थोड़ा ठहरो। जब तक मैं सभी कुछ याद करके कहती हूँ।

(इसप्रकार चिन्तन करने का अभिनय करती है)

(उसके बाद दुर्योधन और कंचुकी प्रवेश करते हैं)

दुर्योधन– यह किसकी कहावत है?

अपकार करने वाले शत्रुओं पर गुप्तरूप से या प्रत्यक्षरूप से, बड़ा अथवा छोटा, स्वयं या फिर दूसरे द्वारा किया गया, अपकार अत्यधिक सन्तोष को उत्पन्न करने वाला होता है।।3।।

शब्दार्थ– प्रलपति–प्रलाप कर रही है, कथय–कहो, प्रतिभाति–प्रतीत हो रहा है, परिहरिष्यामः–दूर करेंगे, शोभनम्–सुन्दर, श्रूयते–सुना जाता है, अवहिते–दोनों सावधान हो जाओ, कथयतु–कहिए, विस्मृता–भूल गयी, अस्मि–हूँ, स्मृत्वा–याद करके, कथयिष्ये–कहूँगी, नाटयति–अभिनय करती है, तिष्ठ–ठहरो, प्रविशति–प्रवेश करती है, गुप्त्या–गुप्तरूप से।

येनाद्य द्रोणकर्णजयद्रथादिभिर्हतमभिमन्युमुपश्रुत्य समुच्छ्वसितमिव नश्चेतसा।

कंचुकी– देव, नेदमतिदुष्करमाचार्यशस्त्रप्रभावात्। कर्णजयद्रथयोर्वा का नामात्र श्लाघा?

राजा– विनयन्धर, किमाह भवान्? एकाकी बहुभिर्बालो लूनशरासनश्च निहत इत्यत्र का श्लाघा कुरुपुंगवानाम्। मूढ, पश्य–

हते जरति गांगेये पुरस्कृत्य शिखण्डिनम्।
या श्लाघा पाण्डुपुत्राणां सैवास्माकं भविष्यति।।4।।

(अन्वय– शिखण्डिनम् पुरस्कृत्य जरति गांगेये हते, पाण्डुपुत्राणाम् या श्लाघा, सा एव अस्माकम् भविष्यति।।4।।)

कंचुकी– (सवैलक्ष्यम्) देव, नैवेदं कल्पयितुमर्हसि। यतस्तव व: पौरुषप्रतिघातोऽस्माभिर्नानलोकितपूर्व, इत्यत एवं विज्ञापयामि।

राजा– एवमिदम्।

सहभृत्यगणं सबान्धवं सहमित्रं ससुतं सहानुजम्।
स्वबलेन निहन्ति संयुगे न चिरात्पाण्डुसुतः सुयोधनम्।5

(अन्वय– पाण्डु–सुतः स्व–बलेन, सह–भृत्य–गणम्, स–बान्धवम्, सह–मित्रम्, स–सुतम्, सह–अनुजम् सुयोधनम् संयुगे, न चिरात् निहन्ति।।5।।)

कंचुकी– (कर्णौ पिधाय। सभयम्) शान्तं पापम्। प्रतिहतममंगलम्।

राजा– विनयन्धर! किं मयोक्तम्?

कंचुकी–

सहभृत्यगणं सबान्धवं सहमित्रं ससुतं सहानुजम्।
स्वबलेन निहन्ति संयुगे न चिरात्पाण्डुसुतं सुयोधनः।।6

(अन्वय– सुयोधनः, पाण्डु–सुतम् स्व–बलेन, सह–भृत्य–गणम्, स–बान्धवम्, सह–मित्रम्, स–सुतम्, सह–अनुजम् संयुगे, न चिरात् निहन्ति ।।6।।)

एतद्विपरीतमभिहितं देवेन।

जिसके कारण आज द्रोण, कर्ण, जयद्रथ आदि महारथियों द्वारा अभिमन्यु का मारा जाना, सुनकर मेरा हृदय प्रफुल्लित सा हो रहा है।

कंचुकी– महाराज! द्रोणाचार्य जैसे शस्त्र प्रभाव वालों का यह अभिमन्यु को मारना, अत्यन्त दुष्कर कार्य नहीं है अथवा कर्ण एवं जयद्रथ की इस अभिमन्यु वध में प्रशंसा की क्या बात है?

राजा– विनयन्धर! आपने भला क्या कहा? कि– 'एक ही धनुर्विहीन बालक को अनेक ने मिलकर मार डाला', इसमें कौरवश्रेष्ठों की क्या प्रशंसा है? मूर्ख, जरा देखो–

शिखण्डी को सामने करके, बूढ़े भीष्मपितामह को मारने में, जो प्रशंसा पाण्डवों की थी, वही हमारी भी होगी।।4।।

कंचुकी– (आश्चर्यपूर्वक) महाराज! आपको इसप्रकार की कल्पना नहीं करनी चाहिए, क्योंकि आपका ऐसा पौरुष हम लोगों ने इससे पूर्व कभी नहीं देखा, इसीलिए मैं ऐसा कह रहा हूँ।

राजा– यह ऐसा ही है,

पाण्डुपुत्र अपने बल से, सेवकवर्ग, बान्धववर्ग, मित्रमण्डल एवं पुत्रों तथा छोटे भाइयों के साथ सुयोधन को युद्ध में शीघ्र ही मार डालेंगे।।5।।

कंचुकी– (दोनों कान बन्द करके भयपूर्वक) पाप शान्त हो, अमंगल नष्ट हो।

राजा– विनयन्धर! भला मैंने ऐसा क्या कह दिया?

कंचुकी– पाण्डुपुत्रों को सुयोधन अपने बल से, सेवकवर्ग, बन्धुवर्ग, मित्रमण्डल एवं पुत्रों तथा छोटे भाइयों के साथ युद्ध में शीघ्र ही मार डालेंगे।।6।।

महाराज ने इसका ठीक विपरीत कहा था।

राजा– विनयन्धर, अद्य खलु भानुमती यथापूर्वं मामनामन्त्र्य वासभवनात्प्रातरेव निष्क्रान्तेति व्याक्षिप्तमिव मे मनः। तदादेशय तमुद्देशं यत्रस्था भानुमती।

कंचुकी– इत इतो देवः।

(उभौ परिक्रामतः)

कंचुकी– (पुरोऽवलोक्य। समन्ततो गन्धमाघ्राय) देव, पश्य, पश्य, एतत्तुहिनकणशिशिरसमीरणोद्वेल्लितवृन्तबन्धुरशेफालिकाविरचितकुसुम-प्रकरम्, ईषदालोहितमुग्धवधूकपोलपाटललोध्रप्रसूनविजितश्यामलता-सौभाग्यम्, उन्मीलितबहुलकुन्दकुसुमसुरभिशीतलं प्रभातकालरमणीय-मग्रस्ते बालोद्यानम्। तदवलोकयतु देवः। तथाहि–

प्रालेयमिश्रमकरन्दकरालकोशैः
पुष्पैः समं निपतिता रजनीप्रबुद्धैः।
अर्कांशुभिन्नमुकुलोदरसान्द्रगन्ध–
संसूचितानि कमलान्यलयः पतन्ति।।7।।

(अन्वय– प्रालेय–मिश्र–मकरन्द–कराल–कोशैः रजनी–प्रबुद्धैः पुष्पैः समम् निपतिताः, अलयः अर्कांशु–भिन्न–मुकुल–उदर–सान्द्र–गन्ध–संसूचितानि कमलानि पतन्ति।।7।।)

राजा–(समन्तादवलोक्य) विनयन्धर, इदमपरममुष्मिन्नुषसि रमणी-यतरम् पश्य–

जृम्भारम्भप्रविततदलोपान्तजालप्रविष्टै–
र्हस्तैर्भानोनृपतय इव स्पृश्यमाना विबुद्धाः।
स्त्रीभिः सार्धं घनपरिमलस्तोकलक्ष्यांगरागा
मुंचन्त्येते विकचनलिनीगर्भशय्यां द्विरेफाः।।8।।

(अन्वय–जृम्भ–आरम्भ–प्रवितत–दल–उपान्त–जाल–प्रविष्टैः भानोः हस्तैः स्पृश्यमानाः विबुद्धाः नृपतयः इव, एते द्विरेफाःघन–परिमल–स्तोक–लक्ष्य–अंगरागाः स्त्रीभिः सार्धम् विकच–नलिनी–गर्भ–शय्याम् मुंचन्ति।।8।।)

राजा– विनयन्धर! वस्तुतः आज भानुमती पहले के समान, मुझसे पूछे बिना ही निवास–गृह से प्रातःकाल ही बाहर निकल गयी, इसलिए मेरा हृदय व्याकुल सा हो रहा है। अतः तुम उस स्थान को कहो, जहाँ पर भानुमती स्थित है।

कंचुकी– महाराज, इधर से आइए, इधर से।

(दोनों घूमते हैं)

कंचुकी– (सामने देखकर, चारों ओर सुगन्ध को सूँघकर) महाराज! देखिए, यह ओस के कणों से शीतल वायु द्वारा कँपाए हुए डण्ठलों से ऊँची–नीची शेफालिकाओं द्वारा बना हुआ पुष्पों का समूह, किंचित् गुलाबी लज्जायुक्त सुन्दरियों के कपोलों के समान, श्वेत पुष्पों से पराजित प्रियंगुलता के सौन्दर्य से युक्त, विकसित मौलश्री तथा कुन्द के पुष्पों से सुगन्धित एवं शीतल प्रातःकाल की रमणीयता से सम्पन्न, बालोद्यान आपके सामने है, महाराज इसका अवलोकन करें।

क्योंकि ओस के कणों से मिले हुए, मकरन्द से मुकुलित एवं रात्रि में खिले हुए, पुष्पों के साथ घिरे हुए, भौंरे सूर्य की किरणों से विकसित कलियों की तीखी गन्ध के कारण, ठीकप्रकार ज्ञात होने वाले कमलों पर गिर रहे हैं।।7।।

राजा– (चारों ओर देखकर) विनयन्धर! इस उषःकाल में यह दूसरी रमणीयता है। देखो,

विकसित होना आरम्भ होने पर विकसित पंखुडियों के किनारों रूपी झरोखों से प्रविष्ट होने वाली, सूर्य की किरणों द्वारा छुए जाते हुए, राजाओं के समान ये भौंरे, तीखी गन्ध के कारण थोड़ा–थोड़ा दिखायी देने वाले, अंगरागों वाली अपनी स्त्रियों के साथ विकसित कमलिनी के मध्यभाग रूपी शय्या का परित्याग कर रहे हैं।।8।।

कंचुकी– देव, नन्वेषा भानुमती सुवदनया तरलिकया च पर्युपास्यमाना तिष्ठति। तदुपसर्पतु देवः।

राजा– (दृष्ट्वा) आर्य विनयन्धर, गच्छ त्वं सांग्रामिकं मे रथमुपकल्पयितुम्। अहमप्येष देवीं दृष्ट्वाऽनुपदमागत एव।

कंचुकी– एष कृतो देवादेशः। (इति निष्क्रान्तः)

सखी– प्रियसखी, अपि स्मृतं त्वया।[1]

भानुमती– सखी स्मृतम्।[2]

सखी– कथयतु प्रियसखी।[3]

भानुमती– अद्य किल प्रमदवने आसीनाया ममाग्रत एव केनाऽप्यतिशयितदिव्यरूपेण नकुलेनाहिशतं व्यापादितम्।[4]

उभे– (अपवार्य! आत्मगतम्) शान्तं पापम्। प्रतिहतममंगलम्। (प्रकाशम्) ततस्ततः।[5]

भानुमती– सन्तापावगृहीतहृदयया विस्मृतं मया। तत्पुनरपि स्मृत्वा कथयिष्ये।[6]

राजा– (अवलोक्य) अहो, देवी भानुमती सुवदनातरलिकाभ्यां सह किमपि मन्त्रयमाणा तिष्ठति। भवतु। अनेन लताजालेनान्तरितः शृणोमि तावदासां विश्रम्भालापम्। (इति तथा कृत्वा स्थितः)

सखी– सखि, अलं सन्तापेन। कथयतु प्रियसखी।[7]

---

[1]. पिअसहि, अवि सुमरिदं तुए।

[2]. सहि! सुमरिदम्।

[3]. कहेदु पियसही।

[4]. अज्ज किल पमदवणे आसीणाए मम अग्गदो एव्व केण वि अदिसइद दिव्व–रूवेण णउलेन अहिसदं वावादिदम्।

[5]. सान्तं पावम्। पडिहदं अमंगलं। तदो तदो।

[6]. सन्दावावगहीदहिअआए विसुमरिदं मए। ता पुणोवि सुमरिअ कहइस्सम्।

[7]. सहि अलं संदावेण। कहेदु पिअसही।

कंचुकी– महाराज! सुवदना और तरलिका द्वारा सेवा की जाती हुई, निश्चय ही, ये भानुमती, स्थित हैं, आप इनके पास में चलिए।

राजा– (देखकर) आर्य विनयन्धर! जाओ, तुम मेरा युद्ध वाला रथ तैयार करो। मैं भी महारानी को देखकर अभी आया।

कंचुकी– बस, महाराज का आदेश यह किया।

(यह कहकर निकल जाता है)

सखी– प्रिय सखि! क्या आपको याद आ गया?

भानुमती– सखि! याद आ गया।

दोनों सखियाँ– तो प्रिय सखी कहिए।

भानुमती– निश्चय ही, आज **प्रमदवन** में बैठी हुई मेरे सामने ही, किसी अत्यधिक दिव्य रूपधारी नेवले ने सौ साँपों को मार डाला।

दोनों– (एक ओर मुख करके, मन में) पाप शान्त हो, अमंगल नष्ट हो (प्रकट में) उसके बाद क्या हुआ?

भानुमती– मानसिक वेदना के कारण व्याकुल हुई मैं, फिर से भूल गयी, तो फिर से याद करके कहूँगी।

राजा– (देखकर) अहो, देवी भानुमती, सुवदना एवं तरलिका के साथ कुछ मन्त्रणा कर रही हैं। ठीक है, तब तक इस लतासमूह से छिपकर, इनके विश्वस्त वार्तालाप को सुनता हूँ।

(ऐसा कहकर, वैसा करके स्थित होता है)

सखी– सखि! दुःख से बस कीजिए, प्रियसखी आगे कहिए।

शब्दार्थ– ननु–निश्चय ही, एषा–यह, पर्युपास्यमाना–सेवा की जाती हुई, तिष्ठति–बैठी है, उपसर्पतु–पास जावे, गच्छ–जाओ, उपकल्पितुम्–तैयार करने के लिए, आगतः–आया, कृतः–किया, निष्क्रान्तः–निकल गया, स्मृतम्–याद आया, व्यापादितम्–मार डाला, अग्रतः–सामने, आत्मगतम्–अपने मन में, प्रतिहतम्–विनष्ट हो, प्रकाशम्–प्रकट में, **अपवार्य**–छिपाकर(यह नाट्यसंकेतों में परिगणित पारिभाषिक शब्द है, इसमें मंच पर स्थित अभिनेता तीन अंगुलियों की आड़ में पात्र विशेष से छिपाकर कुछ कहता है, जिसे दर्शक तथा मंच पर स्थित दूसरे पात्र भी सुनते हैं।)

राजा– किं न खल्वस्याः सन्तापकारणम्। अथवाऽनामन्त्र्य मामियमद्य वासभवनान्निष्क्रान्तेति समर्थित एवास्या मया कोपः। अयि भानुमति! अविषयः खलु दुर्योधनो भवत्याः कोपस्य। पश्य–

किं कण्ठे शिथिलीकृतो भुजलतापाशः प्रमादान्मया
निद्राच्छेदविवर्तनेष्वभिमुखी नाद्यासि सम्भाविता।
अन्यस्त्रीजनसंकथालघुरहं स्वप्ने त्वया लक्षितो
दोषं पश्यसि कं प्रिये परिजनोपालम्भयोग्ये मयि।।9।।

(अन्वय– मया कण्ठे प्रमादात् भुज–लता–पाशः शिथिली–कृतः किम्? अद्य निद्रा–च्छेद–विवर्तनेषु अभिमुखी (त्वम्) सम्भाविता न असि? अन्य–स्त्री–जन–संकथा–लघुः अहम् स्वप्ने अपि त्वया न लक्षितः? प्रिये! परिजन–उपालम्भ–योग्ये मयि कम् दोषम् पश्यसि ।।9।।)

(विचिन्त्य)

अथवा।

इयमस्मदुपाश्रयैकचित्ता
मनसा प्रेमनिबद्धमत्सरेण।
नियतं कुपितातिवल्लभत्वात्
स्वयमुत्प्रेक्ष्य ममापराधलेशम्।।10।।

(अन्वय– अस्मत् उपाश्रय–एकचित्ता इयम् प्रेम–निबद्ध–मत्सरेण मनसा अति–वल्लभत्वात् मम अपराध–लेशम् स्वयम् उत्प्रेक्ष्य नियतम् कुपिता।।10।।)

तत्रापि शृणुमस्तावत् किन्नु वक्ष्यतीति।

भानुमती– ततोऽहं तस्यातिशयितदिव्यरूपिणो नकुलस्य दर्शनेनो–त्सुकाजाता हृतहृदया च। तत् उज्झित्वा तदासनस्थानं लतामण्डपं प्रवेष्टुमारब्धा।[1]

---

[1]. हला! तदो अहं तस्स अदिसइददिव्वरुविणो णउलस्स दंसणेण उच्छुआ जादा हिदहिअआ अ। तदो उज्झिअ तं आसणट्ठाणं लदामंडवं पविसिदुं आरद्धा।

राजा– वास्तव में, इसके सन्ताप का क्या कारण है? या फिर यह मुझसे कहे बिना वासभवन से निकल आयी थी, इसकारण मैं क्रुद्ध हो जाऊँगा, यह इन्होंने सिद्ध कर दिया है। हे भानुमति! निश्चय ही, यह दुर्योधन तुम्हारे क्रोध के योग्य नहीं है। देखो,

क्या मैंने तुम्हारे कण्ठ में डाली हुई अपनी भुजलताओं के पाश को उपेक्षापूर्वक ढ़ीला कर दिया है? क्या आज निद्रा के टूटने पर करवटें बदलते समय परस्पर आमने–सामने होने पर आलिंगन आदि न करने का अपराध कर दिया है? अथवा किसी दूसरी स्त्री के साथ प्रेमालाप करते हुए, तुमने मुझे स्वप्न में देख लिया है, जिससे मैं तुम्हारी दृष्टि में तुच्छ हो गया हूँ? हे प्रिये! दास के समान उलाहना देने योग्य मुझमें तुम ऐसा कौन सा अपराध देख रही हो?।।9।।

(चिन्तन करके) अथवा,

एक मात्र मुझमें ही अनुरक्त चित्त वाली यह, प्रेम से उत्पन्न होने वाले क्रोध से युक्त, मन से अत्यधिक प्रेम के कारण, मेरे थोड़े से अपराध को देखकर, निश्चय ही नाराज़ हो गयी है।।10।।

फिर भी जरा सुनते तो हैं कि यह क्या कह रही है?

भानुमती– सखि! उस समय उस अत्यधिक सुन्दर रूप सम्पन्न, नकुल के दर्शन के कारण उत्सुक चित्त वाली मैं पराधीन हो गयी थी और उस स्थान को छोड़कर मैंने लतामण्डप में घुसना आरम्भ कर दिया।

शब्दार्थ– सन्ताप–दुःख, कष्ट, अनामन्त्र्य–आमन्त्रित किए बिना, अद्य–आज, निष्क्रान्ता–निकल गयी, पश्य–देखो, विवर्तनेषु–करवटों के बदलने पर, लक्षितः–देख लिया गया, पश्यसि–देखती हो, मत्सरेण–ईर्ष्या से, उत्प्रेक्ष्य–कल्पना करके, कुपिता –क्रोधित हुई, तत्र–वहाँ, अपि–भी, शृणुमः–सुनते हैं, ततः–उसके बाद, उज्झित्वा–छोड़कर।

राजा– (सवैलक्ष्यम् आत्मगतं) किं नामातिशयितदिव्यरूपिणो नकुलस्य दर्शनेनोत्सुका जाता हृतहृदया च। तत्किमनया पापया माद्रीसुताऽनुरक्तया वयमेवं विप्रलब्धाः। (सोत्प्रेक्षम्, 'इयमस्मत्–' (2/10) इत्यादि पठित्वा) मूढ दुर्योधन, कुलटाविप्रलभ्यमानमात्मानं (बहुमन्यमानो ऽधुना किं पठित्वा) मूढ दुर्योधन, कुलटाविप्रलभ्यमानमात्मानं बहुमन्यमानो ऽधुना किं वक्ष्यसि। (किं 'कण्ठे' (2/9) इत्यादि पठित्वा दिशोऽवलोक्य) अहो, एतदर्थमेवास्याः प्रातरेव विविक्तस्थानाभिलाषः सखीजनसंकथासु च पक्षपातः। दुर्योधनस्तु मोहादविज्ञातबन्धकीहृदयसारः क्वापि परिभ्रान्तः। आः पापे! मत्परिग्रहपांसुले।

तद्भीरुत्वं तव मम पुरः साहसानीदृशानि
श्लाघा साऽस्मद्वपुषि विनयव्युत्क्रमेऽप्येष रागः।
तच्चौदार्यं मयि जडमतौ चापले कोऽपि पन्थाः
ख्याते तस्मिन्वितमसि कुले जन्म कौलीनमेतत्।।11।।

(अन्वय– मम पुरः तव तत् भीरुत्वम् ईदृशानि साहसानि, अस्मत् वपुषि सा श्लाघा, विनय–व्युत्क्रमे अपि एषः रागः, जड़मतौ मयि तत् च औदार्यम्, चापले कः अपि पन्थाः तस्मिन् ख्याते, वितमसि कुले जन्म, एतत् कौलीनम् ।।11।।)

सखी– ततस्ततः।[1]

भानुमती– ततः सोऽपि मामनुसरन्नेव लतामण्डपं प्रविष्टः।[2]

राजा–(आत्मगतम्) अहो, कुलटोचितमस्याः पापाया अशालीनत्वम्।

यस्मिंश्चिरप्रणयनिर्भरबद्धभाव–
मावेदितो रहसि मत्सुरतोपभोगः।
तत्रैव दुश्चरितमद्य निवेदयन्ती
ह्रीणासि पापहृदये न सखीजनेऽस्मिन्।।12।।

---

1. तदो तदो।
2. तदो सोवि मं अणुसरन्तो एव्व लदामंडवं पविट्ठो।

राजा– (आश्चर्यपूर्वक, मन में) अत्यधिक सुन्दर रूप वाले नकुल के दर्शन से क्या उत्कण्ठित हो गयी? और उस पर मुग्ध हो गयी एवं उस पापी माद्रीपुत्र पर अनुरक्ति से हम इसप्रकार फिर से ठगे गए। (उपहासपूर्वक 'इयमस्मत्' 2/10 इत्यादि श्लोक का उच्चारण करके)

मूर्ख दुर्योधन! इस कुलटा द्वारा धोखा दिए जाने पर स्वयं को धन्य समझता हुआ, तू अब दूसरों के समक्ष क्या कहेगा? (पुनः किं कण्ठे' 2/9 इत्यादि श्लोक पढ़ते हुए, इधर उधर देखकर) अहो! इसी कारण प्रातःकाल ही इसकी एकान्त स्थान पर जाने की इच्छा हुई थी तथा सखियों के साथ वार्तालाप करने का आग्रह भी था। यह दुर्योधन तो मोह के कारण इस कुलटा के मन की बात को जाने बिना ही भ्रम में पड़ा रहा। अरी पापिन्! मेरी निकृष्ट पत्नी!

मेरे सामने इसप्रकार तेरा भीरुपन प्रदर्शित करना और अब इस प्रकार लता के कुँज में अकेले जाने का दुःसाहस करना और हमारे शरीर की उसप्रकार प्रशंसा करना एवं जड़मती मुझमें इसप्रकार की उदारता दिखाना। इसके अलावा उस निर्दोष प्रसिद्ध कुल में जन्म ग्रहण करना एवं इसप्रकार की नीच कुल की स्त्रियों के कर्मों को करना। (ये सभी नितान्त विरुद्ध कार्य हैं)।।11।।

सखी– उसके बाद?

भानुमती– उसके पश्चात् वह भी मेरा अनुसरण करता हुआ लता मण्डप में प्रविष्ट हो गया।

राजा– (मन में) अहो! कुलटाओं के लिए उपयुक्त इस पापिनी का अशालीनत्व वस्तुतः विचित्र है।

हे दुराचारिणि! जिन सखीजनों के मध्य में तुम एकान्त में मेरी रतिक्रीड़ा विषयक व्यापार को चिरकाल से उत्पन्न होने वाले प्रेम की घनता के उत्पन्न होने वाले भाव से, अत्यन्त चाव के साथ कहती थी, वही तुम उसी सखी समुदाय में आज अपना दुराचार कह रही हो, तुम्हें जरा भी लज्जा नहीं आ रही है?।।12।।

(अन्वय– पाप–हृदये यस्मिन् सखी–जने, रहसि मत् सुरत–उपभोगः, चिर–प्रणय–निर्भर–बद्ध–भावम् आवेदितः, तत्र एव अस्मिन् अद्य दुश्चरितम् निवेदयन्ती न ह्रीणासि ।।12।।)

उभे– ततस्ततः।[1]

भानुमती–ततस्तेन सप्रगल्भं प्रसारितकरेणाऽपहृतं मे स्तनांशुकम्।[2]

राजा– (सक्रोधम्) **अलमिदानीमतः परमाकर्णनेन। भवतु, तावत्तस्य परवनितावस्कन्दनप्रगल्भस्य माद्रीसुतहतकस्य जीवितमपहरामि।** (किंचिद् गत्वा। विचिन्त्य) **अथवा इयमेव तावत्पापशीला प्रथममनुशासनीया।**

(इति निवर्तते)

उभे– ततस्ततः।[3]

भानुमती– तत आर्यपुत्रस्य प्रभातमंगलतूर्यरवमिश्रेण वारविलासिनीजनसंगीतरवेण प्रतिबोधिताऽस्मि।[4]

राजा– (सवितर्कम्) **किं नाम प्रतिबोधितास्मीति स्वप्नदर्शनमनया वर्णितं भवेत्।** (विचिन्त्य) **अथवा सखीवचनादेव व्यक्तिर्भविष्यति।**

(उभे सविषादमन्योन्यं पश्यतः)

सुवदना– यत्किमपि अपहितं तद्भागीरथीप्रमुखानां नदीनां सलिलेनापह्रियताम्। ब्राह्मणानामप्याशिषा आहुतिहुतेन प्रज्वलितेन भगवता हुताशनेन च अन्तर्यताम्।[5]

राजा– अलं विकल्पेन। स्वप्नदर्शनमेवैतदनया वर्णितम्। मया पुनर्मन्दधियाऽन्यथैव सम्भावितम्।

---

[1]. तदो तदो।

[2]. तदो तेण सप्पगब्भं प्पसारिअकरेण अवहिदं मे त्थणं सुअम्।

[3]. तदो तदो ।

[4]. तदो अज्ज उत्तस्य पभादमंगलतूररवमिस्सेण वारविलसिणीजणसंगद रवेण पडिबोधिदह्मि।

[5]. जं किम्बि अच्चाहिदं तं भाईरहीप्पमुहाणं णइणं सलिलेण अवहारिअदु। वह्म–णाणं वि आसीसाए आहुदिहुदेण पज्जलिणेण भअवदा हुदासणेण अ अन्तरीअदु हारिअदु।

दोनों सखियाँ– उसके बाद?

भानुमती– फिर उसने धृष्टतापूर्वक हाथ फैलाकर, मेरा स्तनांशुक खींच लिया।

राजा– (क्रोधपूर्वक) इसके पश्चात् अब और कुछ सुनना व्यर्थ है। ठीक है, तब तो उस पराई स्त्री के साथ बलात्कार करने वाले, धृष्ट एवं दुष्ट माद्री के पुत्र नकुल के प्राण ही लिए लेता हूँ। (कुछ दूर जाकर, सोचकर) अथवा इससे से भी पूर्व इसी पापचारिणी को दण्ड देता हूँ। (यह कहकर लौट आता है)

दोनों सखियाँ– उसके बाद?

भानुमती– हे सखि! उसके बाद, आर्यपुत्र के प्रातःकालीन. मंगल वाद्यों की ध्वनि से युक्त, वारविलासिनियों के संगीत के शब्द से मैं जाग गयी।

राजा– (विमर्शपूर्वक) क्या कहा जाग गयी? क्या वास्तव में इसने स्वप्नदर्शन का ही वर्णन किया था। (सोचकर) ठीक है, सखियों के कहने से ही स्पष्ट हो जाएगा।

(दोनों विषादपूर्वक परस्पर देखती हैं)

सुवदना– इस स्वप्न में जो कुछ भी अमंगल है, वह गंगा आदि नदियों के पवित्र जल के स्पर्श से दूर हो जाए और ब्राह्मणों के आशीर्वाद एवं हवन द्वारा प्रज्वलित भगवान् अग्निदेव के द्वारा भस्म हो जाए।

राजा– अब सन्देह करने की आवश्यकता नहीं है। इसने यह स्वप्नदर्शन ही वर्णित किया है, जबकि मन्दबुद्धि वाले, मेरे द्वारा इसे अन्य ही समझ लिया गया।

शब्दार्थ– पापहृदये–पापी हृदय में, रहसि–एकान्त में, ह्रीणासि–लज्जित हो रही हो, न–नहीं, इदानीम्–इस समय, स्तनांशुकम्–आँचल वस्त्र, प्रसारित–फैला हुआ, सप्रगल्भम्–धृष्टतापूर्वक, हतक–नीच, अपहरामि–हरण कर लेता हूँ, पर–दूसरे की, वनिता–स्त्री, अवस्कन्दन–बलात्कार, जोरजबरदस्ती, निवर्तते–लौट आता है।

दिष्ट्यार्धं श्रुतविप्रलम्भजनितक्रोधादहं नो गतो
दिष्ट्या नो पुरुषं रुषाऽर्धकथने किंचिन्मया व्याहृतम्।
मां प्रत्याययितुं विमूढहृदयं दिष्ट्या कथान्तं गता
मिथ्यादूषितयाऽनया विरहितं दिष्ट्या न जातंजगत्।।13

(अन्वय– दिष्ट्या अहम् अर्धम् श्रुत–विप्रलम्भ–जनित–क्रोधात् नो गतः, दिष्ट्या अर्ध–कथने रुषा किंचित् पुरुषम् मया नो व्याहृतम्, दिष्ट्या विमूढ–हृदयम् माम् प्रत्याययितुम् कथा अन्तम् गता, दिष्ट्या मिथ्या–दूषितया अनया जगत् विरहितम् न जातम्।।13।।)

भानुमती– हला, कथय किमत्र प्रशस्तं किं वाऽशुभसूचकमिति।[1]

सखी चेटी च– (अन्योन्यमवलोक्य, अपवार्य) अत्र नास्ति स्तोक–मपि शुभसूचकम्। ततोऽलीकं कथयन्ती प्रियसख्या अपराधिनी भविष्यामि। मे इदानीं स्निग्धो जनो यः पृष्टः परुषमपि हितं भणति। (प्रकाशम्) सखि, सर्वमेवैतदशुभनिवेदनम्। तद् देवतानां प्रणामेन दूर्वादिप्रतिग्रहेण चान्तर्यताम्। न खलु दंष्ट्रिणो नकुलस्य वा दर्शनमहिशतवधं च स्वप्ने प्रशंसन्ति विचक्षणाः।[2]

राजा– अवितथमाह सुवदना। नकुलेन पन्नगशतवधः स्तनांशुका–पहरणं च नियतमनिष्टोदर्कमस्माकं तर्कयामि।

प्रायेणैव हि दृश्यन्ते स्वप्नाः कामं शुभाशुभाः।
शतसंख्या पुनरियं सानुजं स्पृशतीव माम्।।14।।

(अन्वय– कामम् शुभ–अशुभाः स्वप्नाः प्रायेण एव हि दृश्यन्ते, पुनः शत–संख्या इयम् सानुजम् माम् स्पृशति इव।।14।।)

---

1. हला, कहेहि किं एत्थ पसत्थं किं वा असूहसूअअं त्ति।

2. एत्थ णत्थि त्थोअं वि सुहसुअअम्। तदो अलीअं कधअन्ती पिअसहीए अव–राहिणी भविस्सम्। सो दाणी सिणिद्धो जणो जो पुच्छिदो परुसं वि हिदं भणादि। सहि, सव्वं एव एदं असुहणविदेदणम्। ता देव दाणं पणामेण दुब्बादिपडिग्गहेण अ अन्तरीअदु। ण हु दाढिणो णउलस्स वा दंसणं अहिसदवहं अ सिविणए पसंसन्ति विअक्खणाओ।

सौभाग्यवश आधी सुनी हुई उलटी बात के कारण उत्पन्न हुए क्रोध से मैं, माद्रीपुत्र नकुल को मारने के लिए नहीं चला गया। अच्छा ही हुआ कि अधूरी बात में आकर मैंने क्रोधित होकर इसे अपशब्द नहीं कहे, यह भी अच्छा ही हुआ कि मुझ मूर्ख के हृदय को समझाने तथा इसे विश्वास दिलाने के लिए इस कथा का अन्त ही हो गया। इसके अलावा सौभाग्य की बात है कि झूठा दोष लगाने से इस भानुमती से संसार विहीन नहीं हो गया (अर्थात् मैंने इसे मार नहीं दिया)।।13।।

भानुमती– हे सखियों! कहो, कि इसमें क्या प्रशंसनीय है तथा क्या अशुभशूचक है?

सखी और चेटी– (एक दूसरे की ओर देखकर, एक ओर मुख करके) इसमें तो थोडा भी, शुभ की सूचना देने वाला नहीं है, इसलिए असत्य कहकर ही प्रिय सखी की अपराधिनी बनूँगी, किन्तु यदि स्नेही जन से पूछा जाता है तो कठोर होने पर भी हितकर ही कहा जाता है। (प्रकटरूप से) सखि! यह सब तो अशुभ कथन ही है। इसलिए देवों के प्रणाम से एवं दधि, दूर्वा आदि मंगल वस्तुओं के स्पर्श से, इस अमंगल को दूर कीजिए। वास्तव में तो दाढ़ों वाले नेवले अथवा दूसरे किसी को स्वप्न में देखने या फिर सौ साँपों का स्वप्न में मारने को भी विद्वान् लोग अच्छा नहीं बताते हैं।

राजा– सुवदना ने सत्य कहा, वस्तुतः नकुल द्वारा सौ सर्पों का मारा जाना एवं वक्षःस्थल का वस्त्र खींचना, निश्चय ही, अशुभ के सूचक हैं, ऐसा ही हमें भी प्रतीत हो रहा है।

यद्यपि लोगों द्वारा शुभ एवं अशुभ अनेक प्रकार के स्वप्न देखे जाते हैं, किन्तु सौ की यह गिनती तो अनुजों सहित मेरा ही स्पर्श कर रही है।।14।।

शब्दार्थ– दिष्ट्या–सौभाग्य से, अर्धम्–आधा, रुषा–क्रोध से, प्रत्याययितुम्–विश्वास दिलाने के लिए, गता–गयी, जातम्–हुआ, प्रशस्तम्–प्रशंसनीय, हला– अरी सखी, अन्योन्यम्–आपस में, अवलोक्य–देखकर।

(वामाक्षिस्पन्दनं सूचयित्वा) आः! कथं ममापि नाम दुर्योधनस्यानिमित्तानि हृदयक्षोभमावेदयन्ति। (सावष्टम्भम्) अथवा भीरुजनहृदयप्रकम्पनेषु का गणना दुर्योधनस्यैवं विधेषु विषयेषु? गीतश्चायमर्थोऽगिरसा–

ग्रहाणां चरितं स्वप्नोऽनिमित्तान्युपयाचितम्।
फलन्ति काकतालीयं तेभ्यः प्राज्ञा न बिभ्यति।।15।।

(अन्वय– ग्रहाणाम् चरितम्, स्वप्नः, अनिमित्तानि उपयाचितम्, काकतालीयम् फलन्ति, तेभ्यः प्राज्ञाः न बिभ्यति।।15।।)

तद्भानुमत्या स्त्रीस्वभावसुलभामलीकाशंकामपनयामि।

भानुमती– हला सुवदने! पश्य तावदुदयगिरिशिखरान्तरविमुक्तरथवरो विगलितसन्ध्यारागप्रसन्नदुरालोकमण्डलो जातो भगवान् दिवसनाथः।[1]

सखी– सखि, रोषानीतकनककान्तिसदृशेन लताजालान्तरापतितकिरणनिवहेन पिंजरितोद्यानभूमिभागः पूरितप्रतिज्ञ इव रिपुदुष्प्रेक्षणीयो जातो भगवान्सहस्रकिरणः। तत्समयस्ते कुसुमचन्दनगर्भेणाऽर्घेण पर्युपस्थातुम्।[2]

भानुमती– हंजे तरलिके! उपनय मेऽर्घ्यभाजनं यावद्भगवतः सहस्ररश्मेः सपर्यां निर्वर्तयामि।[3]

चेटी– यद्देवी आज्ञापयति। (इति निष्क्रम्य, पुनः प्रविश्य) देवि एतदर्घभाजनम्। तन्निवर्तयतु भगवतः सहस्ररश्मेः सपर्याम्।[1]

---

1. हला सुवअणे पेक्ख दाव उदअगिरिसिहरन्तरविमुक्करहवरो विअलि असंझाराअप्पसण्णदुरालोअमण्डलो जादो भअवं दिवहणाहो।

2. सहि रोसाण्णिअकण्णकन्तिसरिसेण लदाजालन्तरा पडिदकिरणनिवहेण पिंजरिदोज्जाणभूमिभाओ पूरिदपदिण्णो विअरि उदुप्पेक्खणिज्जो जादो भअवं सहस्सकिरणो। ता समओ दे कुसुमचन्दगब्भेण अग्घेणपज्जुवट्– ठादुम्।

3. हंजे तरलिए! उवणेहि मे अग्घभाअणं जाव भअवदो सहस्सरस्सिणो सबरिअं निव्वट्ठेमि।

(बायीं आँख का फड़कना सूचित करके) आः! क्या **अपशकुन** मुझ दुर्योधन के हृदय में भी क्षोभ को उत्पन्न कर रहे हैं। (गर्वपूर्वक) अथवा इसप्रकार के विषयों में डरपोक लोगों के हृदय को प्रकम्पित करने वाले अपशकुनों की गिनती, दुर्योधन के लिए क्या अर्थ रखती है? महर्षि अंगिरा ने इस विषय में कहा भी है कि–

ग्रहों की गति, स्वप्न, अपशकुन एवं दिव्य उत्पात, ये सभी काकतालीय न्याय के अनुसार ही फल प्रदान करते हैं, इसलिए उनसे विद्वान् लोग भयभीत नहीं होते हैं।।15।।

अतः स्त्रीजनों के स्वभाव के अनुरूप भानुमती की इस झूठी शंका को मैं अभी दूर कर देता हूँ।

भानुमती–सखि, सुवदने! देखो तो भगवान् दिवसनाथ, उदयाचल के शिखर के बीच में छोड़े गए, सुन्दर रथ वाले, सन्ध्याकालीन लालिमा के विगलित होने के कारण, अत्यधिक निर्मल प्रकाश के पुँज वाले हो गए हैं।

सखी– सखि! स्वर्ण की कान्ति के समान, अरुणिमा से युक्त लतासमूह के बीच में पड़ने वाले, रश्मिजाल से उद्यान की भूमि को शुभ बताने वाले, शत्रुओं द्वारा दिखायी न देने योग्य, भगवान् सहस्र रश्मि मानो अपनी परिक्रमा पूरी कर चुके हैं। इसलिए पवित्र चन्दन युक्त अर्घ्य द्वारा आपके पूजन करने का समय हो गया है।

भानुमती– सखि, तरलिके! मेरा अर्घ्यपात्र ले आओ, जिससे मैं भगवान् भास्कर की पूजा कर सकूँ।

चेटी– जैसी देवी की आज्ञा **(यह कहकर निकल जाती है, फिर से प्रवेश करके)** स्वामिनि! यह अर्घ्यपात्र है, इसलिए आप भगवान् सहस्ररश्मि की पूजा सम्पन्न कीजिए।

---

[1] . जं देवी आणवेदि। भट्टिनि! एवं अग्घभाअणं। ता ण्बिट्टीअदु भअवदो सहस्स–रस्सिणो सवरिआ।

राजा– अयमेव साधुतरोऽवसरः प्रियासमीपं गन्तुम्।

(इत्युपसर्पति)

सखी– (विलोक्यात्मगतम्) कथं महाराजः समागतः। हन्त! कृतोऽस्याः प्रियसख्या नियमभंगो राज्ञा।[1]

भानुमती– (दिनकराभिमुखीभूय) भगवन् अम्बरमहासरएकसहस्रपत्र, पूर्वदिशावधूमुखमण्डनकुङ्कुमविशेषक, सकलभुवनैकरत्नप्रदीप! अत्र स्वप्नदर्शने यत्किमप्यत्याहितं तद्भगवतः प्रणामेन सभ्रातृकस्याऽऽर्यपुत्रस्य कुशलपरिणामि भवतु। (अर्घ्यं दत्त्वा) हंजे तरलिके! उपनय मे कुसुमानि यावदपरासामपि देवतानां सपर्यां निर्वर्तयामि।[2] (इति हस्तौ प्रसारयति)

(राजा संज्ञया परिजनमुत्सार्य पुष्पाणि स्वयमुपनयति, स्पर्शसुखमभिनीय कुसुमानि भूमौ पातयति च।)

भानुमती– (सरोषम्) अहो! प्रमादः परिजनस्य।[3]

(परिवृत्य राजानमवलोक्य ससाध्वसं लज्जां नाटयति)

राजा– देवि! अनिपुणः परिजनोऽयमेवंविधे सेवावकाशे। तत्प्रभवत्यनुशासने देवी। अयि प्रिये!

विकिर धवलदीर्घापांगसंसर्पि चक्षुः
परिजनपथवर्तिन्यत्र किं सम्भ्रमेण।
स्मितमधुरमुदारं देवि! मामालपोच्चैः
प्रभवति मम पाण्योरंजलिः सेवितुं त्वाम्।।16।।

(**अन्वय–** किम् सम्भ्रमेण परिजन–पथ–वर्तिनि अत्र धवल–दीर्घ–अपांग–संसर्पि चक्षुः विकिर, देवि! माम् स्मित–मधुरम् उदारम् उच्चैः आलप, मम पाण्योः त्वाम् सेवितुम् अंजलिः प्रभवति।।16।।)

---

1. कहं महाराओ समाअदो। हन्त! किदो से पिअसहीए णिअमभंगो रण्णा।

2. भअव! अंबरमहासरेक्कहस्सपत्त! पुव्वदिसाबहूमुहमण्डणकुंकुमविसेसअ, सअलभुवणेक्करअणप्पदीव एत्थ सिबिणअदंसणे जं किं बि अच्चाहिदं तं भअवदो पणामेण सभादुअस्स अज्जउत्तरस कुसलपरिणामि होदु। (अर्घ्य दत्त्वा) हंजे तरलिए! उवणेहि मे कुसुमाइं जाव अवराणं वि देवदाणं सवरिअं णिब्बट्टेमि।

3. अहो प्पमादो परिजनस्य।

राजा– यही प्रिया के पास जाने का उपयुक्त अवसर है।

(ऐसा कहकर आगे बढ़ता है)

सखी– (देखकर, मन में) क्या महाराज आ गए हैं? हाय, तब तो प्रिय सखी का व्रत राजा के द्वारा तोड़ दिया गया है।

भानुमती– (सूर्य की ओर मुख करके) हे भगवन्! आकाशरूपी विशाल जलाशय के प्रमुख कमल! पूर्व दिशारूपी वधू के मुख को अलंकृत करने वाले, कुमकुम के तिलक! सम्पूर्ण भुवन के एकमात्र रत्न प्रदीप! इस स्वप्न–दर्शन में जो भी अमंगल हो, उसे आप श्रीभगवान् के प्रणाम द्वारा भाइयों सहित, आर्यपुत्र के लिए कुशल परिणाम वाला बना दीजिए। (अर्घ्य देकर) हंजे, तरलिके! मेरे लिए पुष्प ले आओ, जिससे मैं दूसरी देवियों की पूजा भी कर लूँ। (यह कहकर हाथ फैलाती है)

(राजा संकेत से परिजनों को हटाकर पुष्प स्वयं ले लेता है और सुख के स्पर्श का अभिनय करके, पुष्पों को भूमि पर गिरा देता है)

भानुमती– (क्रोधपूर्वक) अहो! दासीवर्ग की लापरवाही?

राजा– देवि! आपका यह सेवक इसप्रकार की सेवा करने में निपुण नहीं है। इसलिए देवी मुझे दण्डित करने में समर्थ हैं। अयि प्रिये!

घबराहट से बस करो, सेवकों के मार्ग पर चलने वाले, धवल विशाल अपांग भागपर्यन्त फैले हुए, नेत्रों को मेरी ओर डालो, देवि! मुझसे मन्द मुस्कान युक्त, उदार एवं स्पष्ट शब्दों वाला वार्तालाप करो, मेरे हाथों का अंजलि पुट तुम्हारी सेवा के लिए तत्पर है।।16।।

शब्दार्थ– साधुतरः–सर्वाधिक उपयुक्त, गन्तुम्–जाने के लिए, उपसर्पति–पास जाती है, विलोक्य–देखकर, समागतः–आ गए हैं, हन्त–दुःखसूचक अव्यय, दिनकर–सूर्य, अभिमुखीभूय–की ओर मुख करके, अत्याहितम्–अनिष्ट, भवतु–होवे, उपनय–लाओ, उत्सार्य–हटाकर, उपनयति–ले जाती है, प्रसारयति–फैलाती है, अभिनीय–अभिनय करके, पातयति–गिरा देता है।

भानुमती– आर्यपुत्र, अभ्यनुज्ञातायास्त्वयास्ति मे कस्मिन्नपि नियमेऽभिलाषः।[1]

राजा– श्रुतविस्तार एवास्मि भवत्याः स्वप्नवृत्तान्तं प्रति। तदलमेव प्रकृतिसुकुमारमात्मानं खेदयितुम्।

भानुमती– आर्यपुत्र, अतिमात्रं मां शंका बाधते। तदनुमन्यतां मामार्यपुत्रः।[2]

राजा– (सगर्वम्) देवि, अलमनया शंकया। पश्य–

किं नो व्याप्तदिशां प्रकम्पितभुवामक्षौहिणीनां फलं
किं द्रोणेन किमंगराजविशिखैरेवं यदि क्लाम्यसि।
भीरु! भ्रातृशतस्य मे भुजवनच्छायासुखोपस्थिता
त्वं दुर्योधनकेसरीन्द्रगृहिणी शंकास्पदं किं तव ।।17।।

(अन्वय– यदि एवम् क्लाम्यसि, नः व्याप्त–दिशाम् प्रकम्पित–भुवाम् अक्षौहिणीनाम् किम् फलम्? द्रोणेन किम्? अंगराज–विशिखैः किम्? भीरु! त्वम् मे भ्रातृ–शतस्य भुज–वन–च्छाया–सुख–उपस्थिता दुर्योधन–केसरीन्द्र–गृहिणी, तव किम् शंकास्पदम् ।।17।।)

भानुमती– आर्यपुत्र! नहि किमपि मे शंकाकारणं युष्मासु सन्निहितेषु। किन्त्वार्यपुत्रस्यैव मनोरथसम्पत्तिमभिनन्दामि।[3]

राजा– अयि सुन्दरि! एतावन्त एव मनोरथा यदहं दयितया संगतः स्वेच्छया विहरामीति। पश्य–

प्रेमाऽऽबद्धस्तिमितनयनाऽऽपीयमानाब्जशोभं
लज्जायोगादविशदकथं मन्दमन्दस्मितं वा।
वक्त्रेन्दुं ते नियममुषितालक्तकाग्राधरं वा
पातुं वांछा परमसुलभं किं नु दुर्योधनस्य।।18।।

---

1. अज्जउत्त, अब्भणुण्णादाए तुए अत्थि मे कस्सिं बि णिअमे अहिलासो।
2. अज्जउत्त, अदिमात्तं मे संका बाहेइ। ता अणुमण्णदु मं अज्जउत्तो।
3. अज्जउत्त, ण हि किं बि मे संकाकालणं तुम्हेसु सण्णिहिदेसु। किन्तु अज्जउत्तस्स एव्व मणोरहसंपत्ति अहिणंदामि।

भानुमती– आर्यपुत्र! आपकी आज्ञा लेकर मुझे कोई भी व्रत (नियम) करने की अभिलाषा है।

राजा– मैंने तुम्हारे स्वप्न को विस्तारपूर्वक सुन लिया है। इसलिए स्वभाव से कोमल स्वयं को पीड़ा देने की आवश्यकता नही है।

भानुमती– आर्यपुत्र! मुझे अत्यधिक शंका व्याकुल कर रही है। इसलिए आप मुझे व्रत करने की अनुमति प्रदान कीजिए।

राजा– (गर्वपूर्वक) देवि! शंका करने से बस करो, देखो–

यदि तुम इसप्रकार व्याकुल होती हो, तो दिशाओं को व्याप्त करने वाली, भूमि को कम्पित कर देने वाली, हमारी अक्षौहिणी सेनाओं का क्या फल है? आचार्य द्रोण से क्या लाभ है? हे भीरु! तुम तो सौ भाइयों वाले मुझ दुर्योधन केसरीन्द्र की भुजारूपी वन की छाया में सुख से निवास करने वाली मेरी पत्नी हो, तुम्हारे लिए शंका का भला क्या स्थान है?।।17।।

भानुमती– आर्यपुत्र! आपके समीप होने पर मेरे लिए कोई शंका का स्थान नहीं है, ऐसा करके तो मैं आर्यपुत्र के मनोरथों का ही अभिनन्दन कर रही हूँ।

राजा– अरी, सुन्दरि! मेरी तो केवल इतनी ही कामनाएँ हैं कि मैं प्रिया के साथ स्वेच्छापूर्वक विहार करूँ। देखो,

प्रेम से बँधे हुए निश्चल नेत्रों से तुम्हारे मुख–कमल की शोभा का पान करने वाले, लज्जा के कारण अस्पष्ट वार्तालाप करने वाले, अथवा मन्द–मन्द मुस्कुराने वाले, व्रत का पालन करने के कारण, अलक्तक रस से रहित अधरों से युक्त, दुर्लभ तुम्हारे मुखरूपी चन्द्र का पान करने की मेरी अभिलाषा है, क्योंकि मुझ दुर्योधन के लिए इसके अलावा दूसरी क्या इच्छा हो सकती है, जो मेरे लिए दुर्लभ हो?।।18।।

(**अन्वय**– प्रेम–आबद्ध–स्तिमित–नयन–आपीयमान–अब्ज–शोभम् लज्जा–योगात् अविशद–कथम् वा, मन्द–मन्द–स्मितम् वा, ते नियन्त्र उषित–आलक्तक–अग्र–अधरम् परम् असुलभम् ते वक्त्र–इन्दुम्, पातुम् वांछा, किम् नु दुर्योधनस्य।।18।।)

(नेपथ्ये महान् कलकलः! सर्वे आकर्णयन्ति)

भानुमती– (सभयं राजानं परिष्वज्य) **परित्रायताम् परित्रायतामार्यपुत्रः।**[1]

राजा– (समन्तादवलोक्य) **प्रिये, अलं सम्भ्रमेण। पश्य–**

दिक्षु व्यूढाङ्घ्रिपांगस्तृणजटिलचलत्पांशुदण्डोऽन्तरिक्षे
झांकारी शर्करालः पथिषु विटपिनां स्कन्धकार्षैः सधूमः।
प्रासादानां निकुंजेष्वभिनवजलदोद्गारगम्भीरधीर–
श्चण्डारम्भः समीरो वहति परिदिशं भीरु! किं सम्भ्रमेण।

(**अन्वय**– भीरु! दिक्षु व्यूढ–अङ्घ्रि–पांगः अन्तरिक्षे, तृण–जटिल–चलत्–पांशु–दण्डः, पथिषु झांकारी शर्करालः विटपिनाम् स्कन्ध–कार्षैः सधूमः प्रासादानाम् निकुंजेषु अभिनव–जलद–उद्गार–गम्भीर–धीरः चण्ड–आरम्भः समीरः परि–दिशम् वहति, सम्भ्रमेण किम् ?।।19।।)

सखी– **महाराज, प्रविशतु एनं दारुपर्वतप्रसादम्। उद्वेगकारी खल्वयमुत्थितपरुषरजःकलुषीकृतनयनविदलिततरुवरशब्दविन्नस्त मन्दुरापरिभ्रष्टवल्लभतुरंगमपर्याकुलीकृतजनपद्धतिर्भीषणः समीरणाऽऽसारः।**[2]

राजा– (सहर्षम्) **उपकारि खल्विदं वात्याचक्रं सुयोधनस्य। यस्य प्रसादादयत्नपरित्यक्तनियमया देव्या सम्पादितोऽस्मन्मनोरथः। कथमिति।**

न्यस्ता न भ्रकुटिर्न बाष्पसलिलैराच्छादिते लोचने
नीतं नाननमन्यतः सशपथं नाहं स्पृशन्वारितः।

---

[1]. परित्ताअदु परित्ताअदु अज्जउत्तो।

[2]. महाराअ, पविसदु एदं दारुपव्वअप्पासादम्। उव्वेअकारी क्खु अअं उत्थिद–पस्सरअ कुलसीकिंदणअणो उन्मूलिदतरुवरसद्दवित्तत्थमन्दुरापरिब्भट्ठवल्लहतुलं–गमपज्जाउलीकिदजणपद्धई भीसणो ससीरणासाओ।

(नेपथ्य में महान् कलकल होता है, सभी सुनते हैं)

भानुमती– (भयपूर्वक राजा का आलिंगन करके) आर्यपुत्र! रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए।

राजा– (चारों ओर देखकर) प्रिये! घबराहट से बस करो। देखो,

चारों ओर वृक्षों की शाखाओं को फैला देने वाला, आकाश में घासफूस से युक्त दण्ड के आकार की धूल को उड़ाने वाला, झाँय, झाँय शब्द करता हुआ, मार्गों में रेत तथा कंकड़ों से युक्त, वृक्षों के तनों को परस्पर रगड़ने के कारण, निकलते हुए धुएँ से युक्त, ऊँचे–ऊँचे भवनों के कुँजों में, नए मेघ के समान गम्भीर ध्वनि वाला, हे भीरु! यह भयंकर वायु चारों ओर प्रवाहित हो रहा है, इसमें भयभीत होने की क्या आवश्यकता है?।।19।।

सखी– महाराज! इस दारुपर्वत वाले महल में प्रवेश कीजिए, क्योंकि उद्वेग उत्पन्न करने वाला, धूल को उड़ाकर, नेत्रों को व्याकुल कर देने वाला, उखाड़े गए विशाल वृक्षों के शब्द से व्याकुल हुए घुड़साल के उत्कृष्ट घोड़ों के इधर–उधर भागने के जन–मार्गों को आकुलित कर देने वाला, भयंकर वायु का यह वेग उठ खड़ा हो गया है।

राजा– (प्रसन्नतापूर्वक) यह झंझावात वास्तव में मुझ सुयोधन का उपकार करने वाला है, जिसकी कृपा से बिना प्रयत्न किए ही अपने व्रतरूप नियम को छोड़कर देवी भानुमती ने मेरा मनोरथ पूरा कर दिया है, क्योंकि–

इस तन्वंगी ने न तो भौंहों को टेढ़ा किया, न ही दोनों नेत्रों को अश्रुओं से आच्छादित ही किया और न ही अपने मुख को दूसरी ओर घुमाया तथा मेरा स्पर्श करते हुए, शपथ दिलाकर ऐसा करने से मना भी नहीं किया, अपितु भयवश अपने पयोधरों को वक्षःस्थल पर गड़ा कर आलिंगन करना आरम्भ कर दिया। इसलिए इसके व्रत को तोड़ने वाला, यह भयंकर वायु क्या मेरा मित्र नहीं है?।।20।।

तन्व्या मग्नपयोधरं भयवशादाबद्धमालिंगितं
भङ्क्ताऽस्या नियमस्य भीषणमरुन्नायं वयस्यो नु मे।।20

(**अन्वय–** तन्व्या भ्रुकुटिः न न्यस्ता, बाष्प–सलिलैः लोचने न आच्छादिते, आननम् अन्यतः न नीतम्, स्पृशन् अहम् स–शपथम् न वारितः, भय–वशात् मग्न–पयोधरम् आलिंगितम् आबद्धम्, अस्या नियमस्य भङ्क्ता, अयम् भीषण–मरुत् नु मे वयस्यः।।20।।)

तत्सम्पूर्णमनोरथस्य मे कामचारः सम्प्रति विहारेषु। तदितो दारु–पर्वतप्रासादमेव गच्छामः।

(सर्वे वात्याबाधां रूपयन्तः यत्नतः परिक्रामन्ति)

राजा–

कुरु घनोरु पदानि शनैः शनै–
रयि! विमुंच गतिं परिवेपिनीम्।
सुतनु! बाहुलतोपनिबन्धनं मम
निपीडय गाढमुरःस्थलम्।।21।।

(**अन्वय–** घनोरु! पदानि शनैः शनैः कुरु, अयि! परिवेपिनीम् गतिम् विमुंच, सुतनु! बाहुलता–उप–निबन्धनम् मम उरः स्थलम् गाढम् निपीडय।।21।।)

(प्रवेशं रूपयित्वा) **प्रिये, अलब्धावकाशः समीरणः संवृतत्वाद् गर्भगृहस्य। विश्रब्धमुन्मीलय चक्षुरुन्मृष्टरेणुनिकरम्।**

भानुमती– (सहर्षम्) **दिष्ट्योत्पातसमीरणसारो न बाधते।**[1]

सखी– महाराज! आरोहणसम्भ्रमनिःसहं प्रियसख्या ऊरुयुगलम्। तत्कस्मादिदानीं महाराज आसनवेदीं न भूषयति।[2]

राजा– (देवीमवलोक्य) **भवति! अनल्पमोवाऽपकृतं वात्यासम्भ्रमेण। तथाहि–**

---

[1]. दिट्ठिआ उप्पादसमीरणासारो ण बाधेइ।

[2]. महाराअ! आरोहणसंभमणिस्सहं पिअसहीए ऊरुजुअलं। ता कीस दाणीं महाराओ आसणवेदी ण भूसेदि।

इसलिए मेरा मनोरथ पूरा हो गया है। अब मैं विहार करने में स्वतन्त्र हूँ। इसलिए हम दारुपर्वत वाले महल की ओर ही चलते हैं।

(सभी आँधी की बाधा का अभिनय करते हुए यत्नपूर्वक घूमते हैं)

राजा– हे घनी जँघाओं वाली! अपने कदम धीरे–धीरे रखो, कम्पनयुक्त गति का परित्याग कर दो। हे सुन्दरि! अपनी बाहुलताओं से गलबहियाँ डालकर, मेरे वक्षःस्थल का प्रगाढ़ आलिंगन करो।।21।।

(प्रवेश का अभिनय करके)

प्रिये! दीवारों से घिरे होने के कारण, महल के भीतरी प्रकोष्ठ में वायु को प्रवेश नहीं मिल पा रहा है। इसलिए विश्वासपूर्वक धूल के समूह को पोंछकर अपने नेत्रों को खोल लो।

भानुमती– (प्रसन्नतापूर्वक) सौभाग्य से झंझावातरूपी वायु यहाँ पीड़ित नहीं कर रहा है।

सखी– महाराज! दारुपर्वत पर चढ़ने के कारण प्रिय सखी की दोनों जँघाएँ असह्य पीड़ा का अनुभव कर रही हैं। इसलिए महाराज इस समय आसन वेदी को सुशोभित क्यों नहीं कर रहे हैं?

राजा– (देवी को देखकर) समादरणीया! इस आँधी ने आपको कुछ कम कष्ट नहीं दिया है, क्योंकि–

शब्दार्थ– सम्प्रति–इस समय, कुरु–करो, विमुंच–छोड़ो, निपीडय–दबाओ, अवलोक्य–देखकर, तत्–तो, इसलिए, इतः–इधर, वात्याः–आँधी की, रूपयन्तः–अभिनय करते हुए, परिक्रामन्ति–घूमते हैं, उरु–जँघा, शनैः शनैः–धीरे–धीरे, परि–वेपिनीम्–कम्पन करने वाली, सुतनु–तन्वंगि!, उन्मीलय–खोल दो, विश्रब्धम्–विश्वासपूर्वक, निश्चिन्त होकर, उन्मृष्ट–पोंछकर, रेणुनिकरम्–धूल के समूह को, सहर्षम्–हर्षपूर्वक, बाधते–बाधित नहीं कर रहा है, भूषयति–सुशोभित कर रहे हैं, अपकृतम्–अपकार, कष्ट को।

रेणुर्बाधां विधत्ते तनुरपि महतीं नेत्रयोरायतत्त्वा–
दुत्कम्पोऽल्पोऽपि पीनस्तनभरितमुरः क्षिप्तहारं दुनोति।
ऊर्वोर्मन्देऽपि याते पृथुजघनभराद्वेपथुर्वर्धतेऽस्या
वात्याखेदं मृगाक्ष्याः सुचिरमवयवैर्दत्तहस्ताकरोति।।22।।

(अन्वय– तनुः अपि रेणुः अस्याः नेत्रयोः आयतत्त्वात् महतीम् बाधाम् विधत्ते, अल्पः अपि उत्कम्पः पीन–स्तन–भरितम् उरः क्षिप्त–हारम् दुनोति, मन्दे अपि याते पृथु–जघन–भरात् ऊर्वोः वेपथुः वर्धते, मृगाक्ष्याः अवयवैः दत्तहस्ता वात्या सुचिरम् खेदम् करोति।।22।।)

(सर्वे उपविशन्ति)

राजा– तत्किमित्यनास्तीर्णं कठिनशिलातलमध्यास्ते देवी। यतः–

लोलांशुकस्य पवनाकुलितांशुकान्तं
त्वद्दृष्टिहारि मम लोचनबान्धवस्य।
अध्यासितुं तव चिरं जघनस्थलस्य
पर्याप्तमेव करभोरु! ममोरुयुग्मम्।।23।।

(अन्वय– करभोरु! पवन–आकुलित–अंशु–कान्तम् त्वत् दृष्टि–हारि मम उरु–युग्मम् लोल–अंशुकस्य मम लोचन–बान्धवस्य तव जघन–स्थलस्य चिरम् अध्यासितुम् पर्याप्तम् एव।।23।।)

(प्रविश्य पटाक्षेपेण सम्भ्रान्तः)

कंचुकी– देव, भग्नं भग्नम्।

(सर्वे साकूतं पश्यन्ति)

राजा– केन?

कंचुकी– देव! भीमेन।

राजा– कस्य?

कंचुकी– भवतः।

राजा– आः, किं प्रलपसि?

भानुमती– आर्य, किमनर्थं मन्त्रयसे।[1]

---

[1] . अज्ज, किं अणत्थं मन्तेसि।

दोनों नेत्रों के बड़े–बड़े होने के कारण धूलि के छोटे कण भी अत्यधिक बाधा उत्पन्न कर रहे हैं। थोड़ा सा कम्पन भी स्थूल स्तनों के कारण भारी वक्षःस्थल को हार पहनने पर कष्ट पहुँचा रहा है। इसीप्रकार धीरे चलने पर भी विशाल जघनभार से दोनों जँघाओं में कम्पन बढ़ रहा है। अतः इस मृगनयनी के अंगों का अवलम्ब प्राप्त करके, यह झंझावात बहुत देर तक खेद उत्पन्न कर रहा है।।22।।

(सभी बैठते हैं)

राजा– तो क्या देवी भानुमती कठोर शिलातल पर बिना कुछ बिछाए ही बैठ गयी हैं?

हे करभोरु! वायु से हिलते हुए वस्त्र के छोर वाली, तुम्हारी दृष्टि को आकर्षित करने वाली, मेरी दोनों जँघा, चंचल वस्त्रों वाले मेरे, दोनों नेत्रों को आकृष्ट करने वाले, तुम्हारे दोनों जघन स्थलों का चिरकाल तक सेवन करने के लिए पर्याप्त हैं।।23।।

(पर्दा हटाकर प्रवेश करके घबराहट के साथ)

कंचुकी– महाराज! टूट गया, टूट गया।

(सभी भयपूर्वक देखते हैं)

राजा– किसने तोड़ दिया?

कंचुकी– महाराज! भीमसेन ने तोड़ दिया।

राजा– किसका?

कंचुकी– आपका।

राजा– आः! कैसा प्रलाप कर रहे हो?

भानुमती– आर्य! अनर्थ क्यों सोच रहे हो?

शब्दार्थ– आयतत्त्वात्–विशाल होने से, महतीम्–अत्यधिक, विधत्ते–धारण कर रहा है, उत्कम्पः–कम्पन, दुनोति–पीड़ित कर रहा है, वेपथुः–कम्पन, वर्धते–बढ़ रहा है, उपविशन्ति–बैठते हैं, यतः–क्योंकि, करभोरु–करभ के समान उरु वाली, (करभ–हाथ में अँगूठे सहित नीचे के भाग अथवा केले के तने को कहते हैं, कवियों ने स्त्री की जँघा की उपमा के लिए इसे उपमानरूप में ग्रहण किया है।)

राजा– धिक्प्रलापिन्! वृद्धापसद! कोऽयमद्य ते व्यामोहः?

कंचुकी– देव! न खलु कश्चिद्व्यामोहः। सत्यमेव ब्रवीमि।

भग्नं भीमेन भवतो मरुता रथकेतनम्।
पतितं किंकिणीक्वाणबद्धाक्रन्दमिव क्षितौ।।24।।

(अन्वय– भीमेन मरुता भवतः रथ–केतनम् भग्नम्, किंकिणी–क्वाण–बद्ध–आक्रन्दम् इव क्षितौ पतितम् ।।24।।)

राजा– यदि बलवत्समीरणवेगात्कम्पिते भुवने भग्नः स्यन्दकेतुः। तत्किमित्युद्धतं प्रलपसि 'भग्नं भग्नमि' ति।

कंचुकी– देव! न किंचित्। किन्तु 'शमनार्थमस्याऽनिमित्तस्य विज्ञापयितव्यो देवं इति स्वामिभक्तिर्मां मुखरयति।

भानुमतीः–आर्यपुत्र! परिहार्यतामेतदनिमित्तं प्रसन्नब्राह्मणवेदा–नुघोषेण होमेन च।[1]

राजा– (सावज्ञम्) ननु गच्छ। पुरोहितसुमित्राय निवेदय!

कंचुकी– यदाज्ञापयति देवः। (इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

प्रतीहारी– (सोद्वेगमुपसृत्य) जयतु जयतु महाराजः। महाराज! एषा खलु जामातुः सिन्धुराजस्य माता दुःशला च प्रतीहारभूमौ तिष्ठतः।[2]

राजा– (किंचिद्विचिन्त्यात्मगतम्) किं 'जयद्रथमाता दुःशला चे'ति। कच्चिदभिमन्युवधामर्षितैः पाण्डुपुत्रैर्न किंचिदत्याहितमाचेष्टितं भवेत्। (प्रकाशम्) गच्छ, प्रवेशय शीघ्रम्।

प्रतीहारी– यन्महाराज आज्ञापयति।[3]

(इति निष्क्रान्ता)

(ततः प्रविशति सम्भ्रान्ता जयद्रथमाता दुःशला च)

---

1. अज्जउत्त! पडिहरीअदु एदं अणिमित्तं पस्सण्णबह्मणवेआणुघोसेण होमेण अ।

2. जअदु जअदु महाराओ। महाराअ! एसा क्खु जामादुणो सिन्धुराअस्स मादा दुस्सला अ पडिहारभूमीए चिट्ठदि।

3. जं महाराओ आणवेदि।

राजा– हे व्यर्थ प्रलाप करने वाले! तुम्हें धिक्कार है। नीच वृद्ध! आज तेरी बुद्धि का यह कैसा व्यामोह है?

कंचुकी– महाराज! निश्चय ही, कोई बुद्धि का व्यामोह नहीं है। मैं सत्य ही कह रहा हूँ।

भयंकर वायु ने आपके रथ की ध्वजा को तोड़ दिया है और वह बजती हुई छोटी–छोटी घण्टियों की ध्वनि के समान क्रन्दन करती हुई, भूमि पर गिर गयी है।।24।।

राजा– यदि बलवान् वायु के वेग से, तीनों भुवनों को कँपा देने से, रथ की पताका टूट गयी है, तो इसप्रकार उद्धत प्रलाप क्यों कर रहा है? टूट गयी, टूट गयी।

कंचुकी– महाराज! अन्य कुछ नहीं, किन्तु 'इस अपशकुन के शमन के लिए मुझे आपको कह देना चाहिए,' यह स्वामी–भक्ति ही मुझे बोलने के लिए प्रेरित कर रही है।

भानुमती– आर्यपुत्र! यह अपशकुन, ब्राह्मणों को दान आदि से प्रसन्न करके, वेद–पाठादि से और होम द्वारा दूर कर दीजिए।

राजा– (तिरस्कारपूर्वक) निश्चय ही, तुम जाओ और पुरोहित सुमित्र से इसे निवेदन करो।

कंचुकी– महाराज की जैसी आज्ञा।

(यह कहकर निकल जाता है) (प्रवेश करके)

प्रतीहारी– (घबराहट के साथ पास जाकर) जय हो, महाराज की जय हो। महाराज! ये दामाद सिन्धुराज जयद्रथ की माता तथा पत्नी दुःशला सिंहद्वार पर स्थित हैं।

राजा– (कुछ सोचकर मन में) क्या जयद्रथ माता और दुःशला आयी हैं? कहीं अभिमन्यु के वध के कारण क्रुद्ध पाण्डवों ने कुछ अनर्थ तो नहीं कर दिया है। (प्रकट में) जाओ, शीघ्र प्रवेश कराओ।

प्रतीहारी– जैसी महाराज की आज्ञा।

(यह कहकर निकल जाती है)

(उसके बाद घबरायी हुई जयद्रथ की माता तथा दुःशला प्रवेश करती है)

(उभे सास्रं दुर्योधनस्य पादयोः पततः)

माता– परित्रायतां परित्रायतां कुरुनाथः।[1]

(दुःशला रोदिति)

राजा– (ससम्भ्रममुत्थाप्य) अम्ब! समाश्वसिहि, समाश्वसिहि। किमत्याहितम्। अपि कुशलं समरांगणेष्वप्रतिरथस्य जयद्रथस्य?

माता– जात, कुतः कुशलम्।[2]

राजा– कथमिव?

माता– (साशंकम्) अद्य खलु पुत्रवधामर्षोद्दीपितेन गाण्डीविना–ऽनस्तमिते दिवसनाथे तस्य वधः प्रतिज्ञातः।[3]

राजा–(सस्मितम्) इदं तदश्रुकारणमम्बाया दुःशलायाश्च। पुत्रशोकादुत्तप्तस्य किरीटिन प्रलपितेरेवमवस्था। अहो मुग्धत्वमबलानां नाम। अम्ब, कृतं विषादेन। वत्से दुःशले! अलमश्रुपातेन। कुताश्चाऽयं तस्य धनंजयस्य प्रभावो दुर्योधनबाहुपरिघरक्षितस्य महारथजयद्रथस्य विपत्तिमुत्पादयितुम्।

माता– जात, जात! ते हि पुत्रबन्धुवधामर्षोद्दीपितकोपानला अनपेक्षितशरीरा वीराः परिक्रामन्ति।[4]

राजा– (सोपहासम्) एवमेतत्। सर्वजनप्रसिद्धैवामर्षिता पाण्डवा–नाम्। पश्य–

हस्ताकृष्टविलोलकेशवसना दुःशासनेनाज्ञया
पांचाली मम राजचक्रपुरतो गौर्गौरिति व्याहृता।
तस्मिन्नेव स किं नु गाण्डीवधरो नासीत्पृथानन्दनो
यूनः क्षत्रियवंशजस्य कृतिनः क्रोधास्पदं किं न तत्।।25

---

1. पडित्ताअदु पडित्ताअदु कुलुणाहो।
2. जाद, कुदो कुसलम्।
3. अज्ज क्खु पुत्तवहामरिसुद्दीबिदेण गाण्डीविणा अणत्थमिदे दिवहणाहे तस्स वहो पडिण्णादो।
4. जाद, जाद! दे हि पुत्तबन्धुवहामरिसुद्दीविदकोबाणला अणपेक्खिदसरीरा वीरा परिक्कामन्ति।

(दोनों ही अश्रुओं के साथ दुर्योधन के पैरों में गिर जाती हैं)

माता– हे कौरवों के स्वामी! रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए।

(दुःशला रोती है)

राजा– (घबराहट के साथ उठकर) हे माता! धैर्य धारण कीजिए, धैर्य धारण कीजिए। क्या अनिष्ट हो गया है? क्या युद्ध के मैदान में अद्वितीय महारथी जयद्रथ का कुशल तो है?

माता– हे पुत्र! भला कुशल कहाँ है?

राजा– वह क्यों भला?

माता– (आशंकापूर्वक) वस्तुतः आज ही पुत्रवध से क्रुद्ध होकर, गाण्डीव धनुर्धारी अर्जुन ने सूर्यास्त से पूर्व उस जयद्रथ के वध की प्रतिज्ञा की है।

राजा– (मन्द मुस्कानपूर्वक) तो माता और दुःशला के अश्रुओं का यह कारण है। पुत्रशोक से अत्यधिक व्याकुल हुए, किरीटी के प्रलापों से ही आपकी यह दशा हुई है। वस्तुतः अबलाओं का भोलापन धन्य है। माता! विषाद से बस करो। पुत्रि दुःशले! अश्रुपात से बस करो, क्योंकि इस धनंजय की सामर्थ्य, दुर्योधन की भुजारूपी कृपाण से रक्षा किए गए, जयद्रथ के लिए विपत्ति उत्पन्न करने की भला कैसे हो सकती है?

माता– पुत्र, हे पुत्र! क्योंकि उद्दीप्त क्रोधानल वाले, वे पाण्डव वीरपुत्र बन्धुओं के मारे जाने के कारण, अपने शरीरों की परवाह किए बिना युद्ध के मैदान में इधर–उधर घूम रहे हैं।

राजा– (उपहासपूर्वक) तो ऐसा है। पाण्डवों का क्रोध करना तो सभी लोगों में प्रसिद्ध है। देखो,

मेरी आज्ञा से दुःशासन ने अपने हाथों से द्रौपदी के केश तथा वस्त्रों को खींचा था और राजसमूह के सामने मैं गाय हूँ, मैं गाय हूँ। उसने इसप्रकार कहा था। उस अवसर पर क्या गाण्डीव धनुष को धारण करने वाला ,पृथापुत्र अर्जुन वहाँ नहीं था। क्षत्रिय वंश में उत्पन्न युवा पुत्र के क्रोध के लिए क्या इतना पर्याप्त नहीं था।।25।।

(अन्वय– मम आज्ञया दुःशासनेन हस्त–आकृष्ट–विलोल–केश–वसना पांचाली, राज–चक्र–पुरतः, गौः, गौः, इति व्याहृता, तस्मिन् गाण्डीव–धरः पृथा–नन्दनः एव सः किम् नु न आसीत्? यूनः कृतिनः क्षत्रिय–वंशजस्य तत् क्रोध–आस्पदम् न किम्? ।।25।।)

माता– असमाप्तप्रतिज्ञाभरेणात्मवधस्तेन प्रतिज्ञातः।[1]

राजा– यद्येवमलमानन्दस्थानेऽपि ते विषादेन। ननु वक्तव्यमुत्सन्नः सानुजो युधिष्ठिर इति। अन्यच्च मातः! का शक्तिरस्ति धनंजयस्याऽन्यस्य वा कुरुशतपरिवारवर्धितमहिम्नः कृपकर्णद्रोणाश्वत्थामादि–महारथपराक्रमद्विगुणीकृतनिरावरणविक्रमस्य नामाऽपि ग्रहीतुं ते तनयस्य। अयि सुतपराक्रमाऽनभिज्ञे!

> **धर्मात्मजं प्रति यमौ च कथैव नास्ति**
> **मध्ये वृकोदरकिरीटभृतोर्बलेन।**
> **एकोऽपि विस्फुरितमण्डलचापचक्रं**
> **कः सिन्धुराजमभिषेणयितुं समर्थः।।26।।**

(अन्वय– धर्मात्मजम्, यमौ च प्रति कथा एव न अस्ति, वृकोदर–किरीट–भृतोः मध्ये एकः अपि कः विस्फुरित–मण्डल–चाप–चक्रम् सिन्धुराजम् बलेन अभिषेणयितुम् समर्थः? ।।26।।)

भानुमती– आर्यपुत्र! यद्यप्येवं तथापि 'गुरुकृतप्रतिज्ञाभार' इति स्थानं खलु शंकायाः।[2]

माता– जाते! साधु, कालोचितं त्वया मन्त्रितम्।[3]

राजा– आः ममाऽपि नाम दुर्योधनस्य शंकास्थानं पाण्डवाः। पश्य–

> **कोदण्डज्याकिणांकैरगणितरिपुभिः कंकटोन्मुक्तदेहैः**
> **शिलष्टान्योन्यातपत्रैः सितकमलवनभ्रान्तिमुत्पादयद्भिः।**
> **रेणुग्रस्तार्कभासां प्रचलदसिलतादन्तुराणां चमूना–**
> **माक्रान्ता भ्रातृभिर्मे दिशि समरे कोटयः सम्पतन्ति।।।27**

(अन्वय– कोदण्ड–ज्या–किणांकैः अगणित–रिपुभिः कंकट–उन्मुक्त–देहैः शिलष्ट–अन्योन्य–आतपत्रैः सित–कमलवन–भ्रान्तिम्,

---

1. असमत्तसपडिण्णाभरेण अप्पवहो तेण पडिण्णादो।
2. अज्ज उत्त, जहबि एव्वं तहबि 'गुरुकिदपडिण्णाभारोह्लाणं' क्खु संकाए।
3. जादे साहु, कालोइदं तुए मंदिदं।

माता– प्रतिज्ञा पूर्ण न कर पाने पर, उसने अपना वध करने का संकल्प किया है।

राजा– यदि ऐसा है तो आनन्द के स्थान पर तुम्हें दुःखी नहीं होना चाहिए। तुम्हें तो यही कहना चाहिए कि अपने अनुजों के साथ युधिष्ठिर नष्ट हो गए। हे माता! दूसरी बात यह भी है कि सौ कौरवों के परिवार वालों से जिसकी महिमा बढ़ी हुई है, ऐसे कृपाचार्य, कर्ण और द्रोणाचार्य जैसे महारथियों के पराक्रम से दुगनी बढ़ी हुई शक्ति द्वारा पराक्रम के आवरण को भी छिन्न–भिन्न कर देने वाले, तुम्हारे पुत्र जयद्रथ को मारने की तो बात ही क्या, उसका नाम तक भी ले पाने में वे समर्थ नहीं हैं। हे अपने पुत्र के पराक्रम को न जानने वाली!

युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव का तो कहना ही क्या? वृकोदर तथा किरीटी के बीच में से भी कोई इतना समर्थ नहीं है कि जो चंचल वर्तुलाकार धनुष से युक्त, सिन्धुराज जयद्रथ के बल के सामने, युद्ध करने में समर्थ हो सके।।26।।

भानुमती– आर्यपुत्र! यद्यपि ऐसा ही है फिर भी दृढ़ प्रतिज्ञा करने वाले धनंजय निश्चय ही सन्देह के योग्य हैं।

माता– पुत्रि! तुमने ठीक और समयोचित कहा है।

राजा– आः! क्या मुझ दुर्योधन के लिए भी पाण्डव शंका के स्थान हैं? देखो,

युद्ध करते रहने से धनुष की डोरी को खींचने के कारण, जिनके गड्ढे पड़ गए हैं, जो असंख्य शत्रुओं से भी डरते नहीं हैं, जो कवच से शरीर को ढ़के हुए हैं, युद्ध की यात्रा में, जिनके छत्र परस्पर टकराने के कारण, शुभ्र कमलवन होने का भ्रम उत्पन्न कर देते हैं, ऐसे मेरे भाइयों से युक्त, उठी हुई धूलि से सूर्य के तेज को आच्छादित करने वाली, चलती हुई असिलताओं से ऊँची–नीची सेनाओं की श्रेणियाँ, चारों ओर से घिरी हुई होने पर भी, प्रत्येक दिशा में चारों ओर गिर रही हैं।।27।।

उत्पादयद्भिः, मे भ्रातृभिः रेणु–ग्रस्त–अर्क–भासाम् प्रचलत् असि–लता-दन्तुराणाम् चमूनाम् कोटयः समरे आक्रान्ताः दिशि सम्पतन्ति।।27)

अपि च भानुमति! विज्ञातपाण्डवप्रभावे, किन्त्वमप्येवमाशंकसे। पश्य–

दुःशासनस्य हृदयक्षतजाऽम्बुपाने
दुर्योधनस्य च यथा गदयोरुभंगे।
तेजस्विनां समरमूर्धनि पाण्डवानां
ज्ञेया जयद्रथवधेऽपि तथा प्रतिज्ञा।।28।।

(अन्वय– तेजस्विनाम् पाण्डवानाम् समर–मूर्धनि दुःशासनस्य हृदय–क्षतजा–अम्बु–पाने गदया दुर्योधनस्य च उरु–भंगे यथा प्रतिज्ञा तथा जयद्रथ–वधे अपि ज्ञेया।।28।।)

कः कोऽत्र भोः! जैत्रं मे रथमुपकल्पय तावत्। यावदहमपि तस्य प्रगल्भपाण्डवस्य जयद्रथपरिरक्षणेनैव मिथ्याप्रतिज्ञावैलक्ष्यसम्पादितम्-शस्त्रपूतं मरणमुपदिशामि।

(प्रविश्य)

कंचुकी– देव!

उद्घातक्वणितविलोलहेमघण्टः
प्रालम्बद्विगुणितचामरप्रहासः।
सज्जोऽयं नियमितवल्गिताकुलाश्वः
शत्रूणां क्षपितमनोरथो रथस्ते।।29।।

(अन्वय– उद्घात–क्वणित–विलोल–हेम–घण्टः, प्रालम्ब–द्विगुणित–चामर–प्रहासः, नियमित–वल्गित–आकुलाश्वः, शत्रूणाम् क्षपित-मनोरथः, अयम् ते रथः सज्जः।।29।।)

राजा– देवि! प्रविश त्वमभ्यतरमेव।

(यावदहमपि तस्य प्रगल्भस्य पाण्डवस्य' इत्यादि पठन् परिक्रामति)

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ इति द्वितीयोऽङ्कः ॥

और भी, पाण्डवों के प्रभाव को जानने वाली, हे भानुमति! तुम भी इसप्रकार की आशंका क्यों कर रही हो? देखो,

तेजस्वी पाण्डवों द्वारा युद्धभूमि में दुःशासन के वक्षःस्थल को विदीर्ण करके, खून पीने और गदा द्वारा दुर्योधन की जँघा को तोड़ने में जिसप्रकार की प्रतिज्ञा की गयी थी, वैसी ही प्रतिज्ञा जयद्रथ वध में भी तुम्हें समझनी चाहिए।।28।।

अरे! यहाँ कौन है? जरा मेरा विजयी–रथ तैयार करो, तब तक मैं भी उस धृष्ट पाण्डुपुत्र अर्जुन की प्रतिज्ञा को, जयद्रथ की रक्षा करके प्रतिज्ञा के झूठा हो जाने पर लज्जा के कारण की जाने वाली अस्त्रहीन मृत्यु के लिए कहूँ।

(प्रवेश करके)

कंचुकी– महाराज,

आघातों के कारण बज रही, चंचल सोने की घण्टियों वाला, लटकने के कारण दुगुने चामर के प्रकाश से युक्त, नियन्त्रित किए जाने से विशेष गति के कारण व्याकुल घोड़ों वाला, शत्रुओं के मनोरथों को नष्ट करने वाला, आपका यह रथ तैयार है।।29।।

राजा– हे देवि! तुम अन्दर जाओ।

(यावदहमपि तस्य प्रगल्भस्य पाण्डवस्य' इत्यादि पूर्व वाक्य को पढ़ते हुए घूमता है)

(इसप्रकार सभी निकल जाते हैं)

॥ इसप्रकार महाकवि भट्टनारायण विरचित वेणीसंहार के द्वितीय अङ्क का डॉ. राकेश शास्त्री, बाँसवाड़ा **द्वारा किया हुआ हिन्दी अनुवाद पूर्ण हुआ॥**

।श्रीः।।

तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति विकृतवेषा राक्षसौ)

राक्षसी– (विकृतं विहस्य। सपरितोषम्)

हतमानुषमांसशोणितैः कुम्भसहस्रं वसाभिः संचितम्।
अनिशं च पिबामि शोणितं समरं वर्षशतं भवतु।।1।।[1]

(अन्वय– हत–मानुष–मांस–शोणितैः, वसाभिः संचितम् कुम्भ-सहस्रम् अनिशम् शोणितम् पिबामि, समरम् च वर्ष–शतम् भवतु।।1।।)

(नृत्यन्ती सपरितोषम्) **यदि सिन्धुराजवधदिवस इव दिवसे दिवसे समरकर्म प्रतिपद्यतेऽर्जुनस्ततः पर्याप्तभरितकोष्ठागारं मांसशोणितैर्मे गृहं भविष्यति।** (परिक्रम्य दिशोऽवलोक्य) **अथ क्व खलु गतो मे रुधिरप्रियो भविष्यति। तद्यावदस्मिन् समरे प्रियं भर्त्तारं रुधिरप्रियमन्विष्ये।** (परिक्रम्य) **भवतु। शब्दापयिष्ये तावत्। अरे! रुधिरप्रिय! रुधिरप्रिय! इत एहि।**[2]

(ततः प्रविशति तथाविधो राक्षसः)

राक्षसः– (भ्रमणं नाटयन्)

प्रत्यग्रहतानां मांसं यद्युष्णं रुधिरं च लभ्येत।

---

1 . हदमाणुशमंशशोणिदेहिं कुम्भशहश्शं वशाहिं शंचिदम्।
अणिशं अ पिबामि शोणिअं शमलं वलिशशदं हुबीअदु।।1।।

2 . जइ सिन्धुलाअवहदिअहे विअ दिअहे दिअहे शमलकम्म पडिवज्जइ अज्जुणो तदो पज्जत्तभलिदकोट्टागाले मंशशोणिएहिं मे गेहे हुबीअदि। अह कहिं क्खु गदे मे लुहिलप्पिए हुबीअदि। ता जाव इमस्सि शमले पिअभत्तालं लुहिलप्पिआ अण्णे शामि। होदु। शद्दावइश्शं दाव। अले लुहिलप्पिआ लुहिलप्पिआ लुहिलप्पिआ, इदो एहि।

। श्रीः ।।

तृतीय अङ्कः

(उसके बाद विकृत वेष वाली राक्षसी प्रवेश करती है)

राक्षसी– (विकराल रूप में हँसकर, संतोषपूर्वक)

युद्ध में मारे गए लोगों के मांस, मेदा और रक्त से हजारों घड़े भर लिए गए हैं और मैं रात–दिन निरन्तर रुधिर पी रही हूँ। यह युद्ध सैंकड़ों वर्षों तक इसीप्रकार चलता रहे।।1।।

(नाचती हुई संतोष के साथ) यदि सिन्धुराज के वध वाले, दिन के समान, अर्जुन युद्ध–कर्म को प्रतिदिन करे, तो मेरा घर मांस एवं रुधिर से परिपूर्ण कोठी–कुठलों वाला हो जाएगा। **(घूमकर चारों ओर देखकर)** इसके अलावा न जाने मेरा रुधिर प्रिय कहाँ पर होगा? तो जब तक इस युद्ध में ही अपने प्रिय स्वामी रुधिरप्रिय को ढूढ़ती हूँ। तब तक पुकारती हूँ। अरे! रुधिरप्रिय, रुधिरप्रिय! यहाँ आओ।

(इसके बाद उसीप्रकार का राक्षस प्रवेश करता है)

राक्षस– (घूमने का अभिनय करता हुआ)

यदि अभी–अभी मारे गए लोगों का मांस एवं गरम खून मिल जाए, तो मेरी यह थकान क्षणमात्र में ही दूर हो जाए।।2।।

शब्दार्थ– ततः–उसके बाद, विकृतवेषा–विकृतवेष वाली, विहस्य–हँसकर, संचितम्–एकत्र किया हुआ, अनिशम्–निरन्तर, पिबामि–पीता हूँ, भवतु–होवे, क्व–कहाँ, भविष्यति–होगा, अस्मिन्–इसमें, अन्विष्ये–खोजूँ, परिक्रम्य–घूमकर, एहि–आओ, शब्दापयिष्ये–पुकारूँगी, तथाविधः–उसप्रकार का, प्रत्यग्र–शीघ्र ही, समरकर्म–युद्धकार्य।

तदेष मम परिश्रमः क्षणमात्रमेव लघु नश्येत्।।2।।[1]

(अन्वय– यदि प्रत्यग्र–हतानाम् मांसम् च उष्णम् रुधिरम् लभ्येत तत् मम एषः परिश्रमः क्षण–मात्रम् एव लघु नश्येत्।।2।।)

(राक्षसी पुनर्व्याहरति)

राक्षसः– (आकर्ण्य) **अरे का मां शब्दायते। कथं प्रिया मे वसागन्धा।** (उपसृत्य) **वसागन्धे, कस्मान्मां शब्दायसे।**[2]

रुधिरासवपानमत्तिके रणहिण्डनस्खलद्गात्रिके।
शब्दायसे कस्मान्मां प्रिये पुरुषसहस्रं हतं श्रूयते।।3।।[3]

(अन्वय– रुधिर–आसव–पान–मत्तिके! रण–हिण्डन–स्खलद्-गात्रिके! प्रिये! कस्मात् माम् शब्दायसे? पुरुष–सहस्रम् हतम् श्रूयते।।3)

राक्षसी– **अरे रुधिरप्रिय! इदं खलु मया तवकारणात्प्रत्यग्रहतस्य कस्यापि राजर्षेः शरीरवयवहृतं प्रभूतवसास्निग्धं कोष्णं नवरुधिरमग्रमासं चाऽऽनीतम्। तत्पिबैतत्।**[4]

राक्षसः– (सपरितोषम्) **साधु, वसागन्धे, साधु! सुष्ठुं शोभनं त्वया कृतम्, यत्कोष्णं कोष्णं रुधिरमानीतम्। बलवदस्मि पिपासितः। तदुपनय।**[5]

राक्षसी–अरे रुधिरप्रिय! ईदृशेऽपि नाम हतनरगजतुरंगमशोणित-वसासमुद्रदुःसंचरे समरांगणे परिभ्रमंस्त्वं पिपासितोऽसीत्याश्चर्यम्।[1]

---

[1]. पच्चग्गहदाणं मंशए जइ उण्हे लुहिले अ लब्भइ।
ता एशे महु पलिश्शमे क्खणमेत्तं एव्व लहु णश्शइ।।2।।

[2]. अले के मं शद्दावेदि। 'विलोक्य, कहं पिआ मे वशागन्धा। (उपसृत्य) वशागन्धे, कीश मं शद्दावेशि।

[3]. लुहिलाशवपाणमत्तिए लणहिण्डन्तखलन्तगत्तिए।
शद्दाअशि कीश मं पिए! पुलिशशहश्शं हदं शुणीअदि।।3।।

[4]. अले लुहिलप्पिआ! एदं क्खु मए तुह कालणादो पच्चग्गहदश्श कश्शवि लाएसिणो शलीलावयवदुहं प्पहूदवशाशिणिग्धं कोण्हं णवलुहिलं अग्गमंशं अ आण- द्रम्। ता पिबाहि णम्।

[5]. शाहु वशागन्धे, शाहु! शुट्ठु शोहणं तुए किदम्, जं कोशिणं कोशिणं लुहिलं आणीदम्। बलिअह्मि पिवाशिए। ता उवणेहि।

(राक्षसी फिर से पुकारती है)

राक्षस– **(सुनकर)** अरे! यह कौन मुझे पुकार रही है? **(देखकर)** क्या प्रिया वसागन्धा है? **(पास जाकर)** वसागन्धे! मुझे क्यों पुकार रही हो?

हे रुधिररूपी मदिरा का पान करने में मत्त, युद्ध में पर्याप्त समय तक विचरण करने वाली प्रिये! मुझे क्यों पुकार रही हो, हजारों लोग युद्ध में मारे गए, सुने जा रहे हैं।।3।।

राक्षसी– अरे रुधिरप्रिय! वस्तुतः मैं यह तुम्हारे निमित्त तत्काल मारे गए, किसी राजर्षि के शरीर के अवयवों से निकाला गया, अधिक वसा के कारण थोड़ा चिकना, थोड़ा–थोड़ा गरम ताजा रुधिर लायी हूँ, तुम इसे पी लो।

राक्षस– **(संतोषपूर्वक)** साधु वसागन्धे! साधु, तुमने बहुत ही अच्छा किया, जो थोड़ा–थोड़ा गरम रुधिर ले आयी हो, क्योंकि मैं बहुत प्यासा हूँ। तो लाओ।

राक्षसी– अरे, रुधिरप्रिय! इसप्रकार के हाथी, घोड़ों तथा मनुष्यों के रुधिर एवं वसा के सागर में मुश्किल से चलने योग्य समरांगण में भी घूमते हुए भी तुम प्यासे हो, यह तो अत्यधिक आश्चर्यजनक है।

शब्दार्थ– तत्–तो, एषः–यह, मम–मेरा, व्याहरति–पुकार रही है, माम्–मुझे, आकर्ण्य–सुनकर, शब्दायसे–पुकार रही हो, कस्मात्–किसलिए, खलु–निश्चय ही, हतम्–मरे हुए, अपि–भी, उपनय–लाओ, कृतम्–किया, ईदृशे–इसप्रकार के, परि–भ्रमन्–घूमते हुए, पिपासितः–प्यासा, बलवद्–अत्यधिक, अस्मि–हूँ, त्वम्–तुम, समरांगणे–युद्ध क्षेत्र में,

(प्रस्तुत राक्षस–राक्षसी संवाद के माध्यम से महाकवि ने युद्धक्षेत्र में अनेक वीरों के मरने की सूचना दी है, जो **प्रवेशक** के रूप में प्रयुक्त हुई है। विष्कम्भक के समान ही यह भी दो अंकों के बीच में नीच पात्रों द्वारा प्रयुक्त किया जाता है, इसमें पूर्व में घटित घटनाओं की जानकारी दी जाती है)

---

[1]. अले लुहिलप्पिआ, एदिशे वि णाम हदणलगअतुलंगमशोणि अवशाश मुद्दु श्शंचले शमलांगणे पडिब्भमन्ते तुमं पिबाशिएशित्ति अच्चलिअम्।

राक्षसः– (सक्रोधम्) अरे वसागन्धे! ननु पुत्रघटोत्कचशोकसन्तप्त-हृदयां स्वामिनीं हिडिम्बादेवीं प्रेक्षितुं गतोऽस्मि।[1]

राक्षसौ– रुधिरप्रिय! अद्यापि स्वामिन्या हिडिम्बादेव्या घटोत्कच-शोको नोपशाम्यति।[2]

राक्षसः– वसागन्धे, कुतोऽस्या उपशमः? केवलमभिमन्युशोकसमान दुःखया सुभद्रादेव्या याज्ञसेन्या च कथं कथमपि समाश्वास्यते।[3]

राक्षसी–रुधिरप्रिय! गृहाणैतद्धस्तिशिरःकपालसंचितमग्रमांसो-पदंशम्। पिबाहि शोणितासवम्।[4]

राक्षसः– (तथा कृत्वा) वसागन्धे, अथ कियत्प्रभूतं त्वया संचितं रुधिरमग्रमांसं च?[5]

राक्षसी– अरे रुधिरप्रिय, पूर्वसंचितं त्वमपि जानास्येव। नवसंचितं शृणु तावत्। भगवदत्तशोणितैः कुम्भः सिन्धुराजवसाभिः कुम्भौ द्वौ द्रुपदमत्स्याधिपभूरिश्रवः सोमदत्तबाह्लीकप्रमुखाणां नरेन्द्राणामन्येषामपि प्राकृतपुरुषाणां रुधिरमांसस्य घटा अपिनद्धमुखाः सहस्रसंख्याः सन्ति मे गेहे।[6]

---

1. अले वशागंधे! णं पुत्तघडुक्कअशोअशन्तत्तहिअअं शामिणीं हिडिम्बादेवीं पेक्खिदुं गदह्मि।

2. लुहिलप्पिआ! अज्जवि शामिणीए हिडिम्बादेवीए घडुक्कअशोए ण उपशम्मइ।

3. वशागन्धे, कुदो शे उवशमे केवलं अहिमण्णुशोअशमाणदुक्खाए शुभद्दादेवीए जण्णशेणीए अ कधं कधं वि शमाश्शाशीअदि।

4. लुहिलप्पिआ। गेण्ह एदं हत्थिशिलक्कवालशंचिअ अग्गमं शोवदंशम्। पिबाहि शोणिआशवम्।

5. वशागन्धे, अह किअप्पहूदं दुए शंचिअं लुहिलं अग्गमंशं अ?

6. अले लुहिलप्पिआ, पूव्वशंचिअं तुमं वि जाणाशि जेव्व। णवशंचिअं शिणु दाव। भअदत्तशोणिएहिं कुम्मं, शिन्धुलाअवशाहिं कुम्भे दुवे, दुवदमच्छाहिवभूलिश्शव-शोमदत्तबहि्लअप्पमुहाणं णलिन्दाणं अण्णाणं वि पाकिदपुलिशाणं लुहिलवशा मंशस्स घटा अविणद्धमुहा सहस्सशंखा शन्ति मे गेहे।

राक्षस– **(क्रोधपूर्वक)** अरी, वसागन्धे! वास्तव में तो मैं पुत्र घटोत्कच के शोक से व्याकुल हृदय वाली, स्वामिनी हिडिम्बा देवी को देखने के लिए चला गया था।

राक्षसी– हे रुधिर प्रिय! क्या अब भी स्वामिनी हिडिम्बा देवी का घटोत्कच विषयक शोक शान्त नहीं हो रहा है?

हे वसागन्धे! उन्हें भला शान्ति कैसी? केवल अभिमन्यु के शोक से समान दुःख वाली, सुभद्रा देवी और द्रौपदी द्वारा येन केन प्रकारेण उन्हें धैर्य बँधाया जा रहा है।

राक्षसी– हे रुधिरप्रिय! यह हाथी के सिररूपी कपाल में इकट्ठे किए हुए, उत्तम मांस और रुधिर रूपी मदिरा को तुम पी लो।

राक्षस– **(वैसा करके)** वसागन्धे! तुमने कितना रुधिर एवं श्रेष्ठ मांस इकट्ठा कर लिया है।

राक्षसी– अरे रुधिरप्रिय! पहले एकत्र किए हुए को तो तुम जानते ही हो, इसलिए नए इकट्ठे किए हुए को सुनो, भगदत्त के रक्त से एक घड़ा, सिन्धुराज की चर्बी से दो घड़े, मत्स्यराज द्रुपद, भूरिश्रवा, सोमदत्त, बाह्लीक आदि राजाओं के रक्त तथा वसा से खुले मुँह वाले एक हजार घड़े मेरे घर में भरे हुए रखे हैं।

शब्दार्थ– प्रेक्षितुम्–देखने के लिए, अद्यापि–आज भी, उपशाम्यति–शान्त हो रहा है; उपशमः–शान्ति, समाश्वास्यते–आश्वासन दिया जा रहा है, गृहाण–ग्रहण करो, संचितम्–एकत्र किया हुआ, शृणु–सुनो, अन्येषाम्–दूसरों का, सक्रोधम्–क्रोध के साथ, कुतः–कहाँ से, कथम्–कैसे, क्यों, अपि–भी, अथ–इसके बाद, त्वया–तुम्हारे द्वारा, अग्रमांसम्–श्रेष्ठ मांस को, याज्ञसेन्या–द्रौपदी द्वारा, जानासि–जानते हो, नव–नया, उपदंशम्–श्रेष्ठ मांसरूपी खाद्यपदार्थ, शोणित–रक्त, आसवम्–मदिरा, कियत्–कितना।

राक्षसः— (सपरितोषमालिंग्य) साधु सुगृहिणि, साधु। अनेन ते सुगृहिणीत्वेनाद्य स्वामिन्या हिडिम्बादेव्याः संविधानेन प्रनष्टं मे जन्म—दारिद्र्यम्।[1]

राक्षसी— रुधिरप्रिय, कीदृशं स्वामिन्या संविधानं कृतम्।[2]

राक्षसः— वसागन्धे, अद्याऽहं स्वामिन्या हिडिम्बादेव्या सबहुमान—माहूयाऽऽज्ञप्तः यथा— रुधिरप्रिय, अद्यप्रभृति त्वया आर्यपुत्रभीमसेनस्य पृष्ठतोऽनुपृष्ठं समर आहिण्डितव्यमिति तत्तस्यानुमार्गगामिनो हतमानुष—शोणितनददर्शनप्रणष्टबुभुक्षापिपासस्येहैव मे स्वर्गलोको भविष्यति। त्वमपि विस्रब्धो भूत्वा रुधिरवसाभिः कुम्भसहस्रं संचिनु।[3]

राक्षसी—रुधिरप्रिय, किन्निमित्तं कुमारभीमसेनस्य पृष्ठत आहिण्ड्यते।[4]

राक्षसः— वसागन्धे! तेन हि स्वामिना वृकोदरेण दुःशासनस्य रुधिरं पातुं प्रतिज्ञातम्। तच्चास्माभिः राक्षसैरनुप्रविश्य पातव्यम्।[5]

राक्षसौ— (सहर्षम्) साधु स्वामिनि, साधु। सुसंविधानो मे भर्ता त्वया कृतः।[6]

(नेपथ्ये महान्कलकलः। उभावाकर्णयतः)

---

[1]. शाहु शुग्घलिणीए, शाहु। इमिणा दे शुग्घलिणीत्तणेण अज्ज शामिणीए हिडिम्बादेवीए शम्बिहाणेण प्पणट्टं मे जम्मदालिदम्।

[2]. लुहिलप्पिआ, केलिशे शामिणीए शविहाणए किदे।

[3]. वशागन्धे, अज्ज अहं शामिणीए हिडिम्बादेवीए शबहुमाणं शद्दावलि आणत्ते जहा—लुहिलप्पिआ, अज्जप्पहुदि तुए अज्जउत्तभीमशेणश्श पिट्ठदोऽणुपिट्ठं शमले आहिण्डिदव्वं त्ति। ता तश्श अणुमग्गगामिणो हओमाणुशशोणिअणइदश्शण प्पणट्ठ—बुभुक्खापिवाशश्श इव एव्व मे शग्गलोआ हुविअदि। तुमं वि वीशद्धा भविअ लुहि—लवशाहि कुम्भहश्शं शंचेहि।

[4]. लुहिलप्पिआ, किंणिमित्तं कुमालभीमशेणश्शपिट्ठदो आहिण्डीअदि।

[5]. वशागन्धे! तेण हि शामिणा विओदलेण दुश्शाशणश्श लुहिलं पादुं पडिण्णादम्। तं च अम्हेहिं लक्खशेहिं अणुप्पवशिअ पादव्वम्।

[6]. शाहु, शामिणीए! शाहु। शुशंविहाणे मे भत्ता तुए किदे।

राक्षस– **(संतोषपूर्वक आलिंगन करके)** साधु सुगृहिणि! साधु। तुम्हारे इस सुगृहिणीभाव से और स्वामिनी हिडिम्बा देवी के उपाय से तो आज मेरा जन्मभर का दारिद्र्य ही दूर हो गया है।

राक्षसी– हे रुधिरप्रिय! स्वामिनी ने भला कैसा उपाय किया है?

राक्षस– हे वसागन्धे! मैं आज स्वामिनी हिडिम्बा देवी द्वारा अत्यधिक सम्मानपूर्वक बुलाकर आज्ञा दिया गया हूँ कि– 'आज से तुम्हें युद्धभूमि में आर्यपुत्र भीमसेन के पीछे–पीछे घूमना है।' इसलिए उनके पीछे–पीछे रहने पर मारे जाते हुए, लोगों की रुधिर की नदी को देखने मात्र से नष्ट हुई भूख एवं प्यास वाले व्यक्ति के समान, यहीं पर मुझे स्वर्गलोक का आनन्द प्राप्त हो जाएगा और तुम भी निश्चिन्त होकर, रक्त एवं मज्जा के हजारों घड़ों को भर लो।

राक्षसी– रुधिरप्रिय! तुम किसकारण कुमार भीमसेन के पीछे घूमते रहते हो?

राक्षस– वसागन्धे! उसी कारण, जो उन स्वामी वृकोदर द्वारा दुःशासन के खून को पीने की, जो प्रतिज्ञा की गयी है। इसलिए वह तो हमारे जैसे राक्षसों द्वारा शरीर में प्रवेश करके ही पीना है।

राक्षसी– **(हर्षपूर्वक)** साधु, स्वामिनि! साधु। आपने तो मेरे पति को शुभकार्य में नियोजित कर दिया है।

(नेपथ्य में महान् कलकल ध्वनि होती है, दोनों सुनते हैं)

शब्दार्थ– सपरितोषम्–संतोषपूर्वक, आलिंग्य–आलिंगन करके, सुगृहिणीत्वेन–श्रेष्ठ गृहिणीभाव से, प्रनष्टम्–दूर हो गया, कीदृशम्–कैसा, अद्यप्रभृति–आज से लेकर, आहूय–बुलाकर, अनुपृष्ठम्–पीछे–पीछे, आहिण्डितव्यम्–घूमना चाहिए, भूत्वा –होकर, विस्रब्धः–निश्चिन्त हुआ, संचिनु–एकत्र करो, समरे–युद्ध में, किम्– क्या, निमित्त–कारण, वृकोदरेण–भीमसेन द्वारा, पृष्ठतः–पीछे, पातुम्–पीने के लिए, प्रतिज्ञातम्–प्रतिज्ञा की है, साधु–श्रेष्ठ, अच्छा, शोभन, **नेपथ्ये**–पर्दे के पीछे से, भर्ता–स्वामी, उभौ–दोनों, आकर्णयतः–सुनते हैं।

राक्षसी– (आकर्ण्य, ससम्भ्रमम्) **अरे रुधिरप्रिय! किं नु खल्वेष महान्कलकलः श्रूयते।**[1]

राक्षसः– (दृष्ट्वा) **वसागन्धे! एष खलु धृष्टद्युम्नेन द्रोणः केशेष्वाकृष्यासिपत्रेण व्यापाद्यते।**[2]

राक्षसी– (सहर्षम्) **रुधिरप्रिय! एहि। वयमपि गत्वा द्रोणस्य रुधिरं पिबामः।**[3]

राक्षसः–(सभयम्) **वसागन्धे, ब्राह्मणशोणितं खल्वेतत् गलं दहद्दहत प्रविशति। तत्किमेतेन?**[4]

(नेपथ्ये पुनः कलकलः)

राक्षसी– **रुधिरप्रिय, पुनरप्येष महान्कलकलः श्रूयते।**[5]

राक्षसः–(नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) **(वसागन्धे एष खल्वश्वत्थामा-कृष्टासिपत्र इत एवागच्छति। कदाचिद् द्रुपदसुतरोषेणावामपि व्यापादयिष्यति। तदेहि स्वामिन्या हिडिम्बादेव्या आज्ञप्तिं कुर्मः।**[6]

राक्षसी– **एवं करवाव।**[7]

(इति निष्क्रान्तौ)

प्रवेशकः

---

1 . अले लुहिलप्पिआ! किं णु क्खु एशे महन्ते कलअले शुणीअदि।

2 . वशागन्धे, एशे क्खु धिट्ठज्जुण्णेण दोणे केशेशु आकड्डिअ अशिवत्तेण वावदीअदि।

3 . लुहिलप्पिआ! एहि! अम्हे वि गच्छिअ दोणश्शलुहिलं पिबम्ह।

4 . वशागन्धे, बह्मणशोणिअं क्खु एदं गलअं दहन्ते दहन्ते पविशदि। ता किं एदिणा।

5 . लुहिलप्पिआ! पुणोवि एशे महन्ते कलअले शुणीअदि।

6 . वशागन्धे! एशे क्खु अश्शत्थामे आकड्डिदाशिवत्ते इदो एव्व आअच्छदि। कदावि दुवदशुदलोशेण अम्हे वि वावादइश्शइ। ता एहि शामिणीए हिडिम्बादेवीए आणत्तिं कलेम्हि।

7 . एवं करेम्ह।

राक्षसी– (सुनकर घबराहट के साथ) हे रुधिरप्रिय! यह महान् कोलाहल भला क्या सुनायी पड़ रहा है?

राक्षस– (देखकर) वसागन्धे! यह धृष्टद्युम्न द्वारा द्रोणाचार्य के केश पकड़कर, उन्हें खींचकर तलवार से मारा जा रहा है।

राक्षसी– (प्रसन्नतापूर्वक) रुधिरप्रिय! आओ, हम भी द्रोणाचार्य के रुधिर को पीते हैं।

राक्षस– (भयपूर्वक) वसागन्धे! निश्चय ही, ब्राह्मण का यह रक्त गले को जलाते हुए प्रवेश करेगा, तो फिर इससे क्या लाभ?

(नेपथ्य में फिर से कलकल ध्वनि होती है)

राक्षसी– रुधिरप्रिय! फिर से यह महान् कलकल सुनायी दे रहा है?

राक्षस– (नेपथ्य की ओर देखकर) वसागन्धे! यह अश्वत्थामा तलवार खींचकर इधर ही आ रहा है। कहीं धृष्टद्युम्न के प्रति क्रोध से हमें ही न मार डाले, इसलिए चलते हैं, देवी हिडिम्बा के आदेश का पालन करें।

राक्षसी– हम दोनों ऐसा ही करते हैं।

(ऐसा कहकर दोनों निकल जाते हैं)

प्रवेशक

शब्दार्थ– महान्–बहुत बड़ा, कलकलः–कोलाहल, श्रूयते–सुनायी दे रहा है, आकृष्य–खींचकर, असिपत्रेण–तलवार द्वारा, व्यापाद्यते–मारा जा रहा है, एहि–आओ, वयम्–हम, अपि–भी, गत्वा–जाकर, पिबामः–पीते हैं, शोणितम्–रक्त, खलु–निश्चय ही, दहद्दहत्–जलते जलते, प्रविशति–प्रवेश करता है, पुनः–फिर से, अवलोक्य–देखकर, आकृष्ट–खींचकर, इतः–इधर, एव–ही, आगच्छति–आ रहा है, कदाचित्–कहीं, द्रुपदसुतः–द्रुपद का पुत्र, रोषेण–क्रोध से, व्यापादयिष्यति–मार डालेगा, तत्–तो, आज्ञप्तिम्–आज्ञा को, कुर्मः–करते हैं।

(ततः प्रविशत्याकृष्टखड्गः कलकलमाकर्णयन्नश्वत्थामा)

अश्वत्थामा–

महाप्रलयमारुतक्षुभितपुष्करावर्तक–
प्रचण्डघनगर्जितप्रतिरवानुकारी मुहुः।
रवः श्रवणभैरवः स्थगितरोदसीकन्दरः
कुतोऽद्य समरोदधेरयमभूतपूर्वः पुरः।।4।।

(अन्वय– महा–प्रलय–मारुत–क्षुभित–पुष्कर–आवर्तक–प्रचण्ड–घन–गर्जित–प्रतिरव–अनुकारी स्थगित–रोदसी–कन्दरः, श्रवण–भैरवः, समर–उदधेः अभूत–पूर्वः पुरः अयम् रवः, मुहुः अद्य कुतः?।।4।।)

(विचिन्त्य) ध्रुवं गाण्डीविना सात्यकिना वृकोदरेण वा यौवनदर्पादतिक्रान्तमर्यादेन परिकोपितस्तातः। यतः समुल्लंघ्यशिष्यप्रियतामात्मप्रभावसदृशमाचेष्टते। तथाहि–

यद्दुर्योधनपक्षपातसदृशं युक्तं यदस्त्रग्रहे
रामाल्लब्धसमस्तहेतिगुरुणो वीर्यस्य यत्साम्प्रतम्।
लोके सर्वधनुष्मतामधिपतेर्यच्चानुरूपं रुषः
प्रारब्धं रिपुघस्मरेण नियतं तत्कर्म तातेन मे।।5।।

(अन्वय– यत् दुर्योधन–पक्षपात–सदृशम्, यत् अस्त्र–ग्रहे च युक्तम्, यत् रामात् लब्ध–समस्त–हेति गुरुणः, वीर्यस्य साम्प्रतम्, यत् लोके सर्व–धनुष्मताम् अधिपतेः च रुषः अनुरूपम्, रिपु–घस्मरेण मे तातेन तत् कर्म नियतम् प्रारब्धम्।।5।।)

(पृष्ठतो विलोक्य) **तत्कोऽत्र। रथमुपनयतु। अथवाऽलमिदानीं मम रथप्रतीक्षया अनया। सशस्त्र एवास्मि, सजलजलधरप्रभाभासुरेण सुप्रग्रहविमलकलधौतत्सरुणाऽमुना खड्गेन। यावत्समरभुवमवतरामि।** (परिक्रम्य वामाक्षिस्पन्दनं सूचयित्वा) **आ! कथं ममापि नामऽश्वत्थाम्नः समरमहोत्सवप्रमोदनिर्भरस्य तातविक्रमदर्शनलालसस्यानिमित्तानि समर–गमनविघ्नमुत्पादयन्ति। भवतु। गच्छामि।**

(सावष्टम्भं परिक्रम्याग्रतो विलोक्य)

(उसके बाद तलवार खींचकर, कलकल ध्वनि को सुनते हुए अश्वत्थामा प्रवेश करता है)

अश्वत्थामा– **महान् प्रलयकारी वायु से क्षुभित पुष्करावर्तक नामक प्रलयंकारी मेघों के गर्जन का अनुकरण करने वाला, पृथ्वी एवं आकाश की कन्दराओं में गूँजने वाला, कानों को भयंकर प्रतीत होने वाला, युद्ध रूपी सागर से उत्पन्न अभूतपूर्व यह कोलाहल आज सामने ही भला कहाँ से उठ रहा है।।4।।**

(सोचकर) निश्चय ही, गाण्डीवधारी अर्जुन, सात्यकि अथवा वृकोदर ने यौवनाभिमान के कारण अपनी मर्यादा का परित्याग करके, पिताजी को क्रोधित कर दिया है, वस्तुतः वे ही अपनी शिष्यप्रियता का उल्लंघन करके, अपने प्रभाव के अनुकूल कार्य कर रहे हैं, क्योंकि–

जो दुर्योधन के पश्चात्ताप के अनुकूल है एवं जो अस्त्र ग्रहण करने पर उचित है तथा जो परशुराम से प्राप्त की गयी, सम्पूर्ण शस्त्र विद्या के गौरव के योग्य है, जो संसार में सभी धनुर्धारियों के स्वामी के क्रोध के अनुरूप है, वस्तुतः शत्रुओं का संहार करने वाले, मेरे पिताजी ने वही कर्म आरम्भ कर दिया है।।5।।

(पीछे की ओर देखकर) अरे! यहाँ कौन है? जरा रथ ले आओ। अथवा इस रथ की प्रतीक्षा करना मेरे लिए व्यर्थ है, क्योंकि मेघ की कान्ति के समान, सरलता से पकड़े जाने योग्य, चमचमाते हुए, सुनहरी मूठ वाले, इस खड्ग से युक्त होने से, शस्त्रयुक्त तो मैं हूँ ही। इसलिए तब तक मैं युद्धभूमि में उतरता हूँ।

(घूमकर, बायीं आँख के स्पन्दन को सूचित करके)

आः! क्या युद्धरूपी महोत्सव के आनन्द पर निर्भर रहने वाले, पिताश्री के पराक्रम को देखने के इच्छुक, मुझ अश्वत्थामा को भी, अपशकुन संग्रामभूमि में जाने में विघ्न उत्पन्न कर सकते हैं? ठीक है, जाता हूँ।

(अभिमानपूर्वक घूमकर, सामने देखकर)

कथमवधीरितक्षात्रधर्माणामुज्झितसत्पुरुषोचितलज्जावगुण्ठनानां[1] विस्मृतस्वामिसत्कारलघुचेतसां द्विरदतुरंगमचरणचारिणामगणितकुलयशः सदृशपराक्रमव्रतानां रणभूमेः समन्तादपक्रामतामयं महान्नादो बलानाम् (निरूप्य) हा हा धिक्कष्टम्। कथमेते महारथाः कर्णादयोऽपि समरात् पराङ्मुखा भवन्ति। (साशंकम्) कथं नु ताताधिष्ठितानामपि बलानामियमवस्था भवेत्। भवतु सस्तम्भयामि। भोः भोः कौरवसेनासमुद्रवेलापरिपालनमहामहीधरा नरपतयः, कृतं कृतममुना समरपरित्यागसाहसेन।

यदि समरमपास्य नास्ति मृत्यो–
र्भयमिति युक्तमितोऽन्यतः प्रयातुम्।
अथ मरणमवश्यमेव जन्तोः
किमिति मुधा मलिनं यशः कुरुध्वे।।6।।

(**अन्वय–** यदि समरम् अपास्य मृत्योः भयम् इति न अस्ति इतः अन्यतः प्रयातुम् युक्तम्, अथ जन्तोः मरणम् अवश्यम् एव, यशः मुधा किम् इति मलिनम् कुरुध्वे।।6।।)

अपि च

अस्रज्वालाऽवलीढ़प्रतिबलजलधेरन्तरौर्वायमाणे,
सेनानाथे स्थितेऽस्मिन्मम पितरि गुरौ सर्वधन्वीश्वराणाम्
कर्णऽलं सम्भ्रमेण व्रज कृप समरं मुंच हार्दिक्यशंकां
ताते चापद्वितीये वहति रणधुरं को भयस्याऽवकाशः।।7।

(**अन्वय–** अस्र–ज्वाला–अवलीढ़–प्रतिबल–जलधेः, अन्तः और्वायमाणे, अस्मिन् सर्व–धनु–ईश्वराणाम् गुरौ, मम पितरि सेना–नाथे स्थिते, कर्ण! अलम् सम्भ्रमेण, कृप समरम् व्रज, हार्दिक्य–शंकाम् मुंच, चाप–द्वितीये ताते रण–धुरम् वहति, भयस्य कः अवकाशः।।7।।)

(नेपथ्ये)

कुतोऽद्यापि ते तातः।

---

[1]. महाकवि की विशेषता रही है कि वे एक पंक्ति से भी अधिक लम्बा समस्त पद प्रयोग करते हैं, प्रस्तुत अंश इसके प्रमाणरूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

यह क्या? क्षत्रियजनोचित धर्म का परित्याग करके, साधुजनों के लिए उपयुक्त लज्जारूपी आवरण को हटाकर, स्वामी के सत्कार को भुलाए हुए, अपने कुल की कीर्ति के समान, पराक्रम विषयक व्रत को स्वीकार न करने वाले, नीच अश्वारोही, गजारोही और पैदल रणभूमि से चारों ओर भागने वाले, सैन्यसमूह का यह कोलाहल हो रहा है।

(भलीप्रकार देखकर) हाय, हाय, धिक्कार है, कष्ट की बात है। ये कर्ण आदि महारथी भी युद्ध से भागे जा रहे हैं, **(सन्देह के साथ)** पिताजी से संरक्षित सेना की भी यह स्थिति हो सकती है? ठीक है, इन्हें रोकता हूँ। अरे! कौरवसेनारूपी सागर की सीमा की रक्षा करने वाले, महान् पर्वत जैसे राजाओं! इसप्रकार युद्धभूमि का परित्याग करने का साहस करना उचित नहीं है।

यदि युद्धक्षेत्र से भागकर मृत्यु का भय नहीं है, तो यहाँ से अन्यत्र जाना ठीक है, किन्तु जब संसार में प्राणी का निधन होना अनिवार्य ही है, तो फिर व्यर्थ में अपनी कीर्ति को मलिन क्यों कर रहे हो?।।6।।

और भी,

अस्त्ररूपी ज्वालाओं से व्याप्त, शत्रुओं की सेनारूपी समुद्र के मध्य में वडवानल के समान, विचरण करने वाले, धनुर्धारियों के गुरु और सेनापति, मेरे पिता के इस युद्ध में अवस्थित होने पर भी, हे कर्ण! तुम्हारा सन्देह करना व्यर्थ है। हे कृपाचार्य! युद्धभूमि में जाइए। हे हृदिकापुत्र, कृतवर्मन्! शंका का परित्याग कर दो, क्योंकि धनुर्मात्र सहायक मेरे पिताश्री के युद्ध के भार को धारण करने पर, भला अब भय का अवसर कहाँ है?।।7।।

(नेपथ्य में)

अब तुम्हारे पिताश्री कहाँ हैं?

अश्वत्थामा– (श्रुत्वा) किं ब्रूथ– 'कुतोऽद्यापि ते तातः' इति (सरोषम्) आः क्षुद्राः समरभीरवः, कथमेवं प्रलपतां वः सहस्रधा न विदीर्णमनया जिह्वया।

दग्धुं विश्वं दहनकिरणैर्नोदिता द्वादशार्काः
वाता वाता दिशि दिशि न वा सप्तधा सप्त भिन्नाः।
छन्नं मेघैर्न गगनतलं पुष्करावर्तकाद्यैः,
पापं पापाः! कथयत कथं? शौर्यराशेः पितुर्मे।।8।।

(अन्वय– द्वादश–अर्काः दहन–किरणैः विश्वम् दग्धुम् न उदिताः, सप्तधाः भिन्नाः वाताः दिशि दिशि न वाताः, वा सप्त पुष्कर–आवर्तक–आद्यैः मेघैः, गगन–तलम् न छन्नम्, पापाः! शौर्य–राशेः मे पितुः पापम् कथम् कथयत? ।।8।।)

(प्रविश्य सम्भ्रान्तः सप्रहारः)

सूतः– परित्रायतां, परित्रायतां कुमारः। (इति पादयोः पतति)

अश्वत्थामा– (विलोक्य) अये, कथं तातस्य सारथिरश्वसेनः! आर्य! ननु त्रैलोक्यत्राणक्षमस्य सारथिरसि। किं मत्तः शिशुजनात् परित्राणमिच्छसि?

सूतः– (उत्थाय, सकरुणम्) कुतोऽद्यापि ते तातः!

अश्वत्थामा– (सावेगम्) किं तातो नामाऽस्तमुपगतः?

सूतः– अथ किम्?

अश्वत्थामा– हा तात! हा तात!

(इति मोहमुपगम्य पतितः)

सूतः– कुमार, समाश्वसिहि, समाश्वसिहि।

अश्वत्थामा– (लब्धसंज्ञः उत्थाय, सास्रम्) हा तात, सुतवत्सल! हा लोकत्रयैकधनुर्धर! हा जामदग्न्याऽस्त्रसर्वस्वप्रतिग्रहप्रणियन्! क्वासि? प्रयच्छ मे प्रतिवचनम्।

अश्वत्थामा– **(सुनकर)** क्या कर रहे हो? 'तुम्हारे पिताजी अब कहाँ हैं?' **(आक्रोशपूर्वक)** अरे! निकृष्ट, युद्धकातरों! इसप्रकार प्रलाप करने वाले तुम लोगों की, इस जीभ के हजारों टुकड़े क्यों नहीं हो गए?

बारह सूर्य अपनी जला डालने वाली, किरणों से विश्व को भस्म करने के लिए उदित क्यों नहीं हो गए? सात भागों में विभाजित, सात प्रकार की वायु चारों ओर प्रवाहित क्यों नहीं होने लगी? आकाशतल, पुष्पकरावर्तक आदि प्रलयंकारी बादलों से आच्छादित तो नहीं हो गया? अरे! पापियों, शौर्य की राशि, मेरे पिताश्री के विषय में तुम लोग, इस प्रकार की पापपूर्ण बात भला कैसे कह रहे हो?।।8।।

(प्रवेश करके, भयभीत हुआ तथा चोट खाया हुआ)

सूत– रक्षा कीजिए, कुमार! रक्षा कीजिए।

(यह कहकर पैरों में गिर पड़ता है)

अश्वत्थामा– **(देखकर)** अरे! क्या पिताश्री का सारथि अश्वसेन है? आर्य! आर्य! आप तो तीनों लोकों की रक्षा करने में समर्थ, पिताजी के सारथी हैं? मुझ बालक से आप क्या रक्षा चाह रहे हैं?

सूत– **(उठकर दुःखी होकर)** हे कुमार! अब आपके पिताश्री कहाँ हैं?

अश्वत्थामा– **(आवेगपूर्वक)** क्या पिताश्री नहीं रहे?

सूत– और क्या?

अश्वत्थामा– हा तात! हा तात!

(यह कहकर मूर्च्छित होकर गिर पड़ता है)

सूत– कुमार! धैर्य धारण कीजिए, धैर्य धारण कीजिए।

अश्वत्थामा– (होश में आकर, उठकर, अश्रुपूर्वक) हा तात! हा पुत्र वत्सल! हाय तीनों लोकों के एकमात्र धनुर्धर! हाय परशुराम की समस्त अस्त्रविद्या को ग्रहण करने के प्रेमी! आप कहाँ हैं? मुझे प्रत्युत्तर दीजिए।

सूतः– आयुष्मन्! अलमत्यन्तशोकावेगेन। वीरपुरुषोचितां विपत्तिमुपगते पितरि त्वमपि तदनुरूपेणैव वीर्येण शोकसागरमुत्तीर्य सुखी भव।

अश्वत्थामा– (अश्रूणि प्रमृज्य) आर्य, कथय कथय, कथं तादृग्भुजवीर्यसागरस्तातोऽपि नामास्तमुपगतः ?

किं शिष्यात् गुरुदक्षिणां गुरुगदां भीमप्रियः प्राप्तवान्।

सूतः– शान्तं पापम्, शान्तं पापम्।

अश्वत्थामा–

अन्तेवासिदयालुरुज्झितनयेनाऽऽसादितो जिष्णुना।

सूतः– कथमेवं भविष्यति।

अश्वत्थामा–

गोविन्देन सुदर्शनस्य निशितं धारापथं प्रापितः।

सूतः– एतदपि नास्ति।

अश्वत्थामा–

शंके नापदमन्यतः खलु गुरोरेभ्यश्चतुर्थादहम्।।9।।

(अन्वय– किम् भीम–प्रियः शिष्यात् गुरु–गदाम् गुरु–दक्षिणाम् प्राप्तवान्। अन्तेवासि–दयालुः उज्झित–नयेन जिष्णुना आसादितः गोविन्देन सुदर्शनस्य निशितम् धारा–पथम् प्रापितः, एभ्यः चतुर्थात् अन्यतः खलु अहम् न गुरोः आपदम् शंके।।9।।)

सूतः– कुमार,

एतेऽपि तस्य कुपितस्य महास्त्रपाणेः,
किं धूर्जटेरिव तुलामुपयान्ति संख्ये।
शोकोपरुद्धहृदयेन यदा तु शस्त्रं
त्यक्तं तदाऽस्य विहितं रिपुणाऽतिघोरम्।।10।।

(अन्वय– एते अपि कुपितस्य धूर्जटेः इव महा–अस्त्र–पाणेः तस्य संख्ये तुलाम् उपयान्ति किम्? यदा तु शोक–उपरुद्ध–हृदयेन शस्त्रम् त्यक्तम्, तदा रिपुणा अस्य अति–घोरम् विहितम्।।10।।)

अश्वत्थामा– किं पुनः कारणं शोकस्याऽस्त्रपरित्यागस्य वा।

सूत– आयुष्मन्! अत्यधिक शोक के आवेग से बस करो। पिताश्री के वीर पुरुषों के योग्य आपत्ति में पड़ने पर, आप भी उनके अनुसार ही पराक्रम प्रदर्शित करके, इस शोकरूपी सागर को पार करके सुखी हो जाइए।

अश्वत्थामा– (अश्रु पोंछकर) आर्य अश्वसेन! कहिए, कहिए, भला इसप्रकार कैसे बाहु पराक्रम के समुद्रस्वरूप पिताश्री अस्त हो गए?

क्या भीमप्रिय पिताश्री ने अपने प्रिय शिष्य भीम की भारी गदा से गुरुदक्षिणा लेकर स्वर्ग को प्राप्त कर लिया?

सूत– पाप शान्त हो, पाप शान्त हो।

अश्वत्थामा– क्या अपने शिष्यों पर दया करने वाले, पिताश्री गुरु मर्यादा का परित्याग करके, अर्जुन द्वारा मारे गए?

सूत– भला ऐसा कैसे हो सकता है?

अश्वत्थामा– क्या श्रीकृष्ण ने अपने सुदर्शन की तीक्ष्ण धार के मार्ग में पिताश्री को पहुँचा दिया?

सूत– यह भी नहीं है।

अश्वत्थामा– तब तो इन तीनों के अलावा चौथे व्यक्ति से तो पिताजी के मृत्युरूपी संकट के उत्पन्न होने में मुझे सन्देह है।।9।।

सूत– कुमार!

भीम, अर्जुनादि ये सब भी क्या क्रुद्ध शिव के समान, धनुर्धारी उस युद्ध में आचार्यप्रवर की बराबरी करने में समर्थ थे? किन्तु जिस समय शोक से व्याकुल हृदय वाले, आचार्य प्रवर ने अपने शस्त्र को त्याग दिया, तभी शत्रु ने इनके साथ अत्यधिक भयानक कृत्य कर दिया।।10।।

अश्वत्थामा– तो फिर भला शोक का या अस्त्र को त्याग करने का क्या कारण था?

सूतः– ननु कुमार एव कारणम्।

अश्वत्थामा– कथमहमेव नाम।

सूतः– (अश्रूणि विमुच्य) श्रूयताम्।

'अश्वत्थामा हत' इति पृथासूनुना स्पष्टमुक्त्वा
स्वैरं शेषे 'गज' इति किल व्याहृतं सत्यवाचा।
तच्छ्रुत्वाऽसौ दयिततनयः प्रत्ययात्तस्य राज्ञः
शस्त्राण्याजौ नयनसलिलं चापि तुल्यं मुमोच।।11।।

(**अन्वय**– 'अश्वत्थामा हत' इति सत्य–वाचा पृथा–सूनुना स्पष्ट उक्त्वा शेषे स्वैरम् 'गज' इति व्याहृतम् किल, दयित–तनयः असौ त श्रुत्वा, तस्य राज्ञः प्रत्ययात् आजौ शस्त्राणि, नयन–सलिलम् च अ तुल्यम् मुमोच।।11।।)

अश्वत्थामा– हा तात! हा सुतवत्सल! हा वृथा मदर्थपरित्यक्त-जीवित! हा शौर्यराशे! हा शिष्यप्रिय! हा युधिष्ठिरपक्षपातिन्।

(इति रोदिति)

सूतः– कुमार, अलमत्यन्तपरिदेवनकार्पण्येन।

अश्वत्थामा–

श्रुत्वा वधं मम मृषा सुतवत्सलेन,
तात! त्वया सह शरैरसवो विमुक्ताः।
जीवाम्यहं पुनरहो भवता विनाऽपि,
क्रूरेऽपि तन्मयि मुधा तव पक्षपातः।।12।।

(**अन्वय**– तात! सुत–वत्सलेन त्वया मम मृषा वधम् श्रुत्वा, शरै सह असवः (अपि) विमुक्ताः, अहो अहम् पुनः भवता विना अपि जीवामि तत् क्रूरे अपि मयि तव पक्षपातः मुधा।।12।।)

(इति मोहमुपगतः)

सूतः– समाश्वसितु, समाश्वसितु कुमारः।

(ततः प्रविशति कृपः)

कृपः– (सोद्वेगं निःश्वस्य)

सूत– निश्चय ही, कुमार ही कारण थे।

अश्वत्थामा– क्या वास्तव में, मैं ही कारण था?

सूत– (अश्रु बहाकर) सुनिए–

'अश्वत्थामा मारा गया' इसप्रकार सत्यवादी पृथापुत्र युधिष्ठिर द्वारा स्पष्टरूप से कहे जाने पर, शेष 'हाथी' वाक्य को धीरे से कह दिया गया, तब निश्चय ही, पुत्रप्रेमी वे आचार्य प्रवर यह सुनकर, उस राजा युधिष्ठिर के वचनों पर विश्वास करके, युद्ध में अस्त्र का परित्याग कर, नेत्रों से अश्रु बहाने लगे।।11।।

अश्वत्थामा– हा तात! हाय पुत्रवत्सल! हा मेरे लिए व्यर्थ ही अपना जीवन परित्याग करने वाले! (यह कहकर रोने लगता है)

सूत– कुमार! अत्यधिक विलापरूपी कायरता से बस कीजिए।

अश्वत्थामा– हे तात! पुत्रवत्सल! आपने मेरे वध की झूठी बात सुनकर, बाण छोड़ने के साथ ही, अपने प्राणों तक को छोड़ दिया, किन्तु मैं आपके बिना भी जीवित हूँ। वस्तुतः आश्चर्य है कि इतने क्रूर मुझ पर भी आप व्यर्थ ही पक्षपात (स्नेह) करते थे।।12।।

सूत– धैर्य धारण करें, कुमार! धैर्य धारण करें।

(उसके बाद कृपाचार्य प्रवेश करते हैं)

कृपाचार्य– (उद्वेगपूर्वक लम्बा श्वास लेकर)

शब्दार्थ– ननु–निश्चय ही, कथम्–कैसे, एव–ही, विमुच्य–छोड़कर, बहाकर, श्रूयताम्–सुनिए, हतः–मारा गया, इति–इसप्रकार, पृथासूनुना–युधिष्ठिर द्वारा, स्वैरम् –धीरे से, व्याहृतम्–कहा, किल–निश्चय ही, श्रुत्वा–सुनकर, आजौ–युद्ध में, नयन–सलिलम्–नेत्रों से,अश्रुओं को, तुल्यम्–समान, मुमोच–छोड़ा, वृथा–व्यर्थ, परित्यक्त–छोड़ना, रोदिति–रोता है, मृषा–झूठा, सह–साथ, विमुक्ताः–छोड़ा, तव–तेरा, उपगतः–प्राप्त हो गया, सोद्वेगम्–उद्वेगपूर्वक, निश्वस्य–लम्बा श्वास लेकर, मम–मेरा।

धिक्सानुजं कुरुपतिं धिगजातशत्रुं
धिग्भूपतीन्विफलशस्त्रभृतो धिगस्मान्।
केशग्रहः खलु तदा द्रुपदात्मजाया
द्रोणस्य चाद्य लिखितैरिव वीक्षितो यैः।।13।।

(अन्वय– स–अनुजम् कुरु–पतिम् धिक्, अजात–शत्रुम् धिक् विफल–शस्त्र–भृतः भूपतीन् धिक्, अस्मान् धिक्, यः तदा द्रुपद-आत्मजायाः द्रोणस्य च केश–ग्रहः लिखितैः इव वीक्षितः, अद्य खलु (तान् अपि) धिक्।।13।।)

तत्कथं नु खलु वत्समद्य द्रक्ष्याम्यश्वत्थामानम् । अथवा हिमवत् सारगुरुचेतसि ज्ञातलोकस्थितौ तस्मिन्न खलु शोकावेगमहमाशंके। किन्त्वसदृशं पितुः पराभवमुपश्रुत्य न जाने किं व्यवस्यतीति।

अथवा–

एकस्य तावत्पाकोऽयं दारुणो भुवि वर्तते।
केशग्रहे द्वितीयेऽस्मिन् नूनं निःशेषिताः प्रजाः।।14।।

(अन्वय– एकस्य तावत् अयम् दारुणः पाकः भुवि वर्तते, अस्मिन् द्वितीये केश–ग्रहे नूनम् प्रजाः निःशेषिताः।।14।।)

(विभाव्य) तदयं वत्सस्तिष्ठति। यावदुपसर्पामि (उपसृत्य ससम्भ्रमम्) वत्स, समाश्वसिहि समाश्वसिहि।

अश्वत्थामा– (संज्ञां लब्ध्वा, सास्रम्) हा तात, सकलभुवनैकगुरो! (आकाशे) युधिष्ठिर! युधिष्ठिर!

आजन्मनो न वितथं भवता किलोक्तं
न द्वेक्षि यज्जनमतस्त्वमजातशत्रुः।
ताते गुरौ द्विजवरे मम भाग्यदोषात्
सर्वं तदेकपद एव कथं निरस्तम्।।15।।

(अन्वय– किल भवता आजन्मनः वितथम् न उक्तम्, यत् जनम् न द्वेक्षि, अतः त्वम् अजातशत्रुः, गुरौ द्विजवरे मम ताते भाग्य–दोषात् एक–पदे एव तत् सर्वम् कथम् निरस्तम्?।।15।।)

अनुजों सहित कुरुराज दुर्योधन को धिक्कार है, अजातशत्रु युधिष्ठिर को धिक्कार है, विफल शस्त्रों वाले राजाओं को धिक्कार है, अरे! आज तो हम सभी महारथियों को भी धिक्कार है, जो उस भरी सभा में द्रौपदी का तथा युद्धभूमि में द्रोणाचार्य का केश पकड़कर खींचा जाना चित्र लिखित के समान देखते रहे, (विरोध में कुछ न कह सके)।।13।।

अब तो मैं अश्वत्थामा को भला कैसे देख पाऊँगा? अथवा हिमालय के सार के समान गम्भीर हृदय वाले एवं लोक मर्यादा के विशेषज्ञ, उस वत्स अश्वत्थामा में भी मैं शोकोद्वेग की आशंका कर रहा हूँ, किन्तु अनुचित पितृवध को सुनकर तो वह न जाने क्या कर डालेगा? अथवा,

एक केश ग्रहण का कठोर परिणाम तो यह (महाभारत) **हो रहा है, तब दूसरा केशग्रहण करने पर तो निश्चय ही, प्रजा का विनाश हो जाएगा।।14।।**

(भलीप्रकार देखकर) तो यह वत्स विराजमान है, तब तक इसके पास चलता हूँ। (पास जाकर, घबराहट के साथ) वत्स! धैर्य धारण करो, धैर्य धारण करो।

अश्वत्थामा– (होश में आकर, अश्रुपूर्वक) हा तात! सभी भुवनों के एकमात्र गुरु! (आकाश में) युधिष्ठिर, युधिष्ठिर!

आपने बाल्यकाल से कभी असत्य नहीं बोला और कभी किसी से द्वेष भी नहीं किया। इसीलिए आप हमेशा ही अजातशत्रु बने रहे, किन्तु फिर भी आचार्य, एक उत्तम ब्राह्मण, मेरे पिता के लिए आपने सत्य सम्भाषण, गुरुसम्मान एवं ब्राह्मण का अवध्य विषयक ज्ञान, ये सभी मेरे भाग्य के दोष से कैसे छोड़ दिए?।।15।।

सूतः– कुमार! एष ते मातुलः पार्श्वे शारद्वतस्तिष्ठति!

अश्वत्थामा– (पार्श्वे विलोक्य, सबाष्पम्) मातुल,

गतो येनाद्य त्वं सह रणभुवं सैन्यपतिना
य एकः शूराणां गुरुसमरकण्डूनिकषणः।
परीहासाश्चित्राः सततमभवन्येन भवतः
स्वसुः श्लाघ्यो भर्ता क्व नु खलु स ते मातुल गतः।16

(अन्वय– मातुलः! येन सैन्य–पतिना सह त्वम् अद्य रण–भुवम् गतः, यः एकः शूराणाम् गुरु–समर–कण्डू–निकषणः, येन भवतः सततम् चित्राः परीहासाः अभवन्, सः ते स्वसुः श्लाघ्यः, भर्ता क्व नु खलु गतः।16।।)

कृपः– परिगतपरिगन्तव्य एव भवान्। तदलमत्यन्तशोकावेगेन।

अश्वत्थामा– मातुल! परित्यक्तमेव मया परिदेवनम्। एषोऽहं सुतवत्सलं तातमेवाऽनुगच्छामि।

कृपः– वत्स! अनुपपन्नमीदृशं व्यवसितं भवद्विधानाम्।

सूतः– कुमार, अलमतिसाहसेन।

अश्वत्थामा– आर्य! किमुच्यते?

मद्वियोगभयात्तातः परलोकमितो गतः।
सहिष्ये विरहं तस्य वत्सलस्य कथं पितुः।।17।।

(अन्वय– मत् वियोग–भयात् तातः इतः परलोकम् गतः, वत्सलस्य तस्य पितुः विरहम् कथम् सहिष्ये?।।17।।)

कृपः– वत्स, यावदयं संसारस्तावत्प्रसिद्धैवेयं लोकयात्रा यत्पुत्रैः पितरो लोकद्वयेऽप्यनुवर्तनीया इति। पश्य–

निवापाऽजलिदानेन केतनैः श्राद्धकर्मभिः।
तस्योपकारे शक्तस्त्वं किं जीवन्किमुतान्यथा।।18।।

(अन्वय– निवाप–अंजलि–दानेन केतनैः श्राद्ध–कर्मभिः तस्य उपकारे त्वम् किम् जीवन् शक्तः किम् उत अन्यथा (शक्तः?)।।18।।)

सूतः– आयुष्मन्, यथैव मातुलस्ते शारद्वतः कथयति तत्तथा।

सूत– कुमार! ये आपके पास में मामा शारद्वत विराजमान हैं।

अश्वत्थामा– (पास में देखकर, अश्रुपूर्वक) मामा जी,

जिन सेनापति के साथ आज आप युद्धभूमि में गए थे, जो अकेले ही शूरवीरों की उत्कृष्ट युद्धरूपी खुजली को दूर करने में समर्थ थे, जिनके साथ आपके हमेशा ही विचित्र प्रकार के हासपरिहास होते रहते थे, हे मामा जी! वे आपके भगिनीपति प्रशंसनीय आचार्य आज कहाँ चले गए हैं?।। 16।।

कृपाचार्य– पीड़ा विषयक बात को तो तुम जानते ही हो। इसलिए अत्यधिक शोक के आवेग से बस करो।

अश्वत्थामा– मामा जी! मैंने विलाप करना तो छोड़ ही दिया है। इसलिए मैं तो पुत्रवत्सल पिताश्री का ही अनुगमन करता हूँ।

कृपाचार्य– पुत्र! आप जैसे वीर पुरुषों का इसप्रकार का निश्चय उचित नहीं है।

सूत– कुमार! इस दुःसाहस से बस करो।

अश्वत्थामा–आर्य! यह आप क्या कह रहे हैं?

मेरे वियोग से व्याकुल हुए पिताश्री इस संसार से परलोक को प्रस्थान कर गए हैं। इसलिए पिताजी का प्रिय मैं भला पिताजी के वियोग को कैसे सहन कर पाऊँगा?।।17।।

कृपाचार्य– पुत्र! जब तक यह संसार है, तब तक यही लोकाचार प्रसिद्ध रहेगा। 'पुत्रों द्वारा इस लोक एवं परलोक में भी पितरों का अनुवर्तन किया जाना चाहिए।' देखो,

जलांजलि प्रदान करना इत्यादि कर्मों द्वारा तथा श्राद्ध आदि के माध्यम से उनका उपकार करने में तुम जीवित रहकर अथवा फिर आत्महत्या करने में समर्थ हो।।18।।

सूत– आयुष्मन्! जैसा आपके मामा जी कह रहे हैं, तुम्हें उसी प्रकार करना चाहिए।

अश्वत्थामा– आर्य! सत्यमेवेदम्। किन्त्वतिदुर्वहत्वाच्छोकभारस्य न शक्नोमि तातविरहितः क्षणमपि प्राणान्धारयितुम्। तद्गच्छामि तमेवोद्देशं यत्र तथाविधमपि पितरं द्रक्ष्यामि। (इत्युत्तिष्ठन्खड्गमालोक्य, विचिन्त्य) कृतमद्यापि शस्त्रग्रहणविडम्बनया। (सास्रमंजलिं बद्ध्वा) भगवन् शस्त्र!

गृहीतं येनासीः परिभवभयान्नोचितमपि,
प्रभावाद्यस्याऽऽसीन्न खलु तव कश्चिन्नविषयः।
परित्यक्तं येन त्वमसि सुतशोकान्न तु भयाद्
विमोक्ष्ये शस्त्र! त्वामहमपि यतः स्वस्ति भवते।।19।।

(**अन्वय–** येन परिभव–भयात् न उचितम् अपि गृहीतम् आसीः, यस्य प्रभावात् कश्चित् तव विषयः न आसीत्, इति न खलु, येन त्वम् सुत–शोकात्, न तु भयात् परित्यक्तम् असि, हे शस्त्र! अहम् अपि त्वाम् विमोक्ष्ये, यतः भवते स्वस्ति।।19।।)

(इत्युत्सृजति)

(नेपथ्ये) **भो भो राजानः! कथमिह भवन्तः सर्वे क्षत्रियगुरो–र्भारद्वाजस्याऽसदृशं परिभवममुना नृशंसेन प्रयुक्तमुपेक्षन्ते।**

अश्वत्थामा–(आकर्ण्य, सक्रोधं शनैः शनैः शस्त्रं स्पृशन्) **किं गुरो–र्भारिद्वाजस्य परिभवः?**

(पुनर्नेपथ्ये)

आचार्यस्य त्रिभुवनगुरोर्न्यस्तशस्त्रस्य शोकाद्
द्रोणस्याऽऽजौ नयनसलिलक्षालिताऽऽर्द्राननस्य।
मौलौ पाणिं पलितधवले न्यस्य कृत्वा नृशंसं
धृष्टद्युम्नः स्वशिविरमयं याति सर्वे सहध्वम्।।20।।

(**अन्वय–** आजौ शोकात् न्यस्त–शस्त्रस्य नयन–सलिल–क्षालित–आर्द्र–आननस्य त्रिभुवन–गुरोः आचार्यस्य द्रोणस्य पलित–धवले मौलौ पाणिम् न्यस्य नृशंसम् कृत्वा, अयम् धृष्टद्युम्नः स्व–शिविरम् याति, सर्वे सहध्वम्।।20।।)

अश्वत्थामा– (सक्रोधं सकम्पं च कृपसूतौ द्रष्टा) **किं नामेदम्।**

अश्वत्थामा–आर्य, यह सत्य ही है, किन्तु शोक का भार अत्यधिक दुर्वह होने से पिताश्री से बिछुड़कर मैं क्षणभर के लिए भी जीवित रहने में असमर्थ हूँ। इसलिए उसी स्थान पर जा रहा हूँ, जहाँ उस अवस्था में पिताजी को देख सकूँ।

(इसप्रकार कहकर, उठता हुआ खड्ग देखकर, सोचकर)

अब शास्त्र धारण करने का आडम्बर व्यर्थ है।

(अश्रुपूर्वक अंजलि बाँधकर)

हे भगवन् शस्त्र!

जिन पिताश्री ने शत्रु द्वारा तिरस्कार के भय से अनुचित होते हुए भी तुम्हें धारण किया था, जिसके प्रभाव से कोई भी तुम्हारा लक्ष्य नहीं बन सका हो, ऐसा नहीं था। उन्हीं के द्वारा तुम शत्रुभय से नहीं, अपितु मेरे शोकवश छोड़ दिए गए, इसलिए हे शस्त्र! मैं भी तुम्हें त्याग रहा हूँ, तुम्हारा कल्याण होवे।।19।।

(ऐसा कहकर शस्त्र छोड़ता है)

(नेपथ्य में)

अरे, अरे राजाओं! आप लोग क्षत्रिय गुरु भारद्वाज द्रोण के प्रति इस क्रूर धृष्टद्युम्न द्वारा किए गए, इस अनुचित तिरस्कार को भला कैसे सहन कर रहे हो?

अश्वत्थामा– (सुनकर, क्रोधपूर्वक, धीरे–धीरे शस्त्र को स्पर्श करते हुए) क्या गुरु भारद्वाज का तिरस्कार?

(फिर से नेपथ्य में)

युद्ध में शोक से शस्त्र का त्याग किए हुए, अश्रुओं से भीगे हुए मुख वाले, तीनों भुवनों के गुरु आचार्य द्रोण के वृद्धावस्था से श्वेत सिर पर हाथ डालकर, क्रूरकर्म करके, यह धृष्टद्युम्न अपने शिविर को जा रहा है, तुम सब यह भला कैसे सहन कर रहे हो?।।21।।

अश्वत्थामा–(क्रोध एवं कम्पनपूर्वक कृपाचार्य तथा सारथि को देखकर) क्या यह सत्य है? कि,

प्रत्यक्षमात्तधनुषां मनुजेश्वराणां,
प्रायोपवेशसदृशं व्रतमास्थितस्य,
तातस्य मे पलितमौलिनिरस्तकाशे,
व्यापारितं शिरसि शस्त्रमशस्त्रपाणेः।।21।।

(अन्वय– आत्त–धनुषाम् मनुजेश्वराणाम् प्रत्यक्षम् प्राय–उपवेश–सदृशम् व्रतम् आस्थितस्य, अशस्त्र–पाणेः मे तातस्य पलित–मौलि–निरस्त–काशे, शिरसि शस्त्रम् व्यापारितम्।।21।।)

कृपः– वत्स! एवं किल जनः कथयति।

अश्वत्थामा– (सूतं प्रति) किं तातस्य दुरात्मना परिमृष्टमभूच्छिरः।

सूतः– (सभयम्) कुमार! आसीदयं तस्य तेजोराशेर्देवस्य नवः परिभवावतारः।

अश्वत्थामा– हा तात! हा पुत्रप्रिय! मम मन्दभागधेयस्य कृते शस्त्रपरित्यागात्तथाविधेन क्षुद्रेणाऽऽत्मा परिभावितः। (विचिन्त्य)

अथवा–

परित्यक्ते देहे रणशिरसि शोकार्तमनसा,
शिरः श्वा काको वा द्रुपदतनयो वा परिमृशेत्।
स्फुरद्दिव्याऽस्त्रौघद्रविणमदमत्तस्य च रिपो–
र्मयैवाऽयं पादः शिरसि निहितस्तस्य सहसा।।22।।

(अन्वय– रण–शिरसि शोक–आर्त–मनसा देहे परित्यक्ते श्वा काकः वा, द्रुपद–तनयः वा, शिरः परिमृशेत्, स्फुरत्–दिव्य–अस्त्र–औघ–द्रविण–मद–मत्तस्य च तस्य, रिपोः शिरसि सहसा मया एव अयम् पादः निहितः।।22।।)

आः दुरात्मन्पांचालाऽपसद!

तातं शस्त्रग्रहणविमुखं निश्चयेनोपलभ्य
त्यक्त्वा शंकां खलु विदधतः पाणिमस्योत्तमांगे।
अश्वत्थामा करधृतधनुः पाण्डुपांचालसेना
तूलोत्क्षेपप्रलयपवनः किं न यातः स्मृतिं ते।।23।।

धनुर्धारी राजाओं के सामने, व्रत धारण किए हुए प्रायः भूखे ही, अस्त्र–शस्त्र विहीन मेरे पिताश्री के श्वेत केश वाले सिर पर, शस्त्र का प्रहार किया गया?।।21।।

कृपाचार्य– पुत्र! लोग ऐसा ही कहते हैं।

अश्वत्थामा– (सारथि के प्रति) क्या उस दुष्ट ने पिताजी का स्पर्श भी किया?

सूत– कुमार! तेजोराशि उन आचार्य जी का यह प्रथम तिरस्कार था।

अश्वत्थामा– हा तात! हा पुत्रवत्सल! मुझ मन्दभाग्य के कारण शस्त्र का परित्याग करने से उस नीच ने उसप्रकार आपकी आत्मा का तिरस्कार किया। (विचार करके) अथवा,

युद्ध में शोक से व्याकुल होने से देहत्याग करने पर, कुत्ता, कौआ अथवा द्रुपद का पुत्र कोई भी सिर को छुए, दीपित होते हुए दिव्य अस्त्रसमूह रूपी धनमद में पागल बने हुए, उस शत्रु धृष्टद्युम्न ने पिताजी के सिर का ही स्पर्श नहीं किया, अपितु अकस्मात् मेरे सिर पर ही पैर रख दिया है।।22।।

आः! दुरात्मन्, नीच पांचाल!

पिताश्री को शस्त्र धारण करने से विमुख निश्चय वाला समझकर निःशंक होकर, इनके सिर पर हाथ रखते हुए, वस्तुतः तुझे, धनुष हाथ में पकड़े पाण्डवों एवं पांचाल राजाओं की सेनारूपी रुई को उड़ा देने वाला, प्रलयकालीन पवन, यह अश्वत्थामा स्मृतिपथ में नहीं आया?।।23।।

शब्दार्थ– आत्त–धारण किए हुए, मनुजेश्वर–राजा, शिरसि–सिर पर, व्यापारितम्–प्रहार किया, कथयति–कह रहा है, सभयम्–भयपूर्वक, आसीत्–था, अयम्–यह, नवः–नया, पहला, परिभवावतारः–तिरस्कार किया, हा–दुःखसूचक अव्यय, मन्दभागधेयस्य–मन्दभाग्य के, कृते–लिए, तथाविधेन–उसप्रकार से।

(अन्वय– तातम् शस्त्र–ग्रहण–विमुखम् निश्चयेन उपलभ्य, शंकाम् त्यक्त्वा, अस्य उत्तमांगे पाणिम् विदधतः खलु, ते कर–धृत–धनुः पाण्डु–पांचाल–सेना–तूला–उत्क्षेप–प्रलय–पवनः अश्वत्थामा किम् स्मृतिम् न यातः? ।।23।।)

युधिष्ठिर! युधिष्ठिर! अजातशत्रो! अमिथ्यावादिन्! धर्मपुत्र! सानुजस्य ते किमनेनापकृतम्। अथवा किमनेनाऽलीकप्रकृतिजिह्मचेतसा। अर्जुन! सात्यके! बाहुशालिन्वृकोदर! माधव! युक्तं नाम भवतां सुराऽसुरमनुजलोकैकधनुर्धरस्य द्विजन्मनः परिणतवयसः सर्वाचार्यस्य विशेषतो मम पितुरमुना द्रुपदकुलकलंकेन मनुजपशुना स्पृश्यमानमुत्तमांगमुपेक्षितुम्। अथवा सर्व एवैते पातकिनः। किमेतैः–

कृतमनुमतं दृष्टं वा यैरिदं गुरुपातकं
मनुजपशुभिर्निर्मर्यादैर्भवद्भिरुदायुधैः
नरकरिपुणा सार्धं तेषां सभीमकिरीटिना–
मयमहमसृङ्मेदोमांसैः करोमि दिशां बलिम्।।24।।

(अन्वय– यैः निर्मर्यादैः मनुज–पशुभिः उत्–आयुधैः भवद्भिः इदम् गुरु–पातकम् कृतम्, अनुमतम्, दृष्टम् वा, नरक–रिपुणा सार्धम् सभीम–किरीटिनाम् तेषाम् असृङ्–मेदः–मांसैः अयम् अहम् दिशाम् बलिम् करोमि ।।24।।)

कृपः– वत्स! किं न सम्भाव्यते भारद्वाजतुल्ये बाहुशालिनि दिव्यास्त्रग्रामकोविदे भवति।

अश्वत्थामा– भो भोः! पाण्डवमत्स्यसोमकमागधाद्याः क्षत्रियापसदाः!

पितुर्मूर्ध्नि स्पृष्टे ज्वलदनलभास्वत्परशुना,
कृतं यद्रामेण श्रुतिमुपगतं तन्न भवताम्।
किमद्याऽश्वत्थामा तदरिरुधिरासारविघसं,
न कर्म क्रोधान्धः प्रभवति विधातुं रणमुखे।।25।।

(अन्वय– पितुः मूर्ध्नि स्पृष्टे, ज्वलत्–अनल–भास्वत्–परशुना, रामेण यत् कृतम्, तत् भवताम् श्रुतिम् न उपगतम्? क्रोध–अन्धः

हे युधिष्ठिर! युधिष्ठिर, हे अजातशत्रो! हे असत्य न बोलने वाले, धर्मराज के पुत्र, भाइयों सहित इन्होंने तुम्हारा क्या अपकार किया था? अथवा मिथ्या स्वभाव वाले, कुटिल चित्त सम्पन्न इस युधिष्ठिर से भी क्या कहना है? अरे अर्जुन, सात्यकि, बाहुबली भीम, माधव, देवताओं, दानवों और मनुष्यों के लोक में अद्वितीय धनुर्धर ब्राह्मण, वृद्धावस्था को प्राप्त, सभी के आचार्य एवं विशेषरूप से मेरे पिताश्री का, द्रुपद के कुल के कलंकरूप, मनुष्यरूपधारी पशु धृष्टद्युम्न द्वारा आप सभी के देखते–देखते, सिर के स्पर्श की उपेक्षा किया जाना क्या उचित था? अथवा ये सब भी तो पापी हैं, इसलिए इनसे भी क्या कहना?

अमर्यादित, मनुष्यों में नीच, शस्त्रधारी, आप जिन लोगों द्वारा यह भयंकर पाप किया गया है, इसका समर्थन किया है या फिर इसे देखा भी है, नरक के शत्रु श्रीकृष्ण सहित, भीम, अर्जुन आदि उन सभी पापियों के रक्त, मज्जा, मांस से यह मैं अश्वत्थामा दिशाओं को बलि प्रदान कर रहा हूँ।। 24।।

कृपाचार्य– वत्स! भारद्वाज के समान, बाहुबली, दिव्य अस्त्रों के समूह में निपुण आपमें सभी कुछ सम्भव है।

अश्वत्थामा– अरे! अरे! पाण्डव, मत्स्य, सोमक, मागध आदि नीच क्षत्रियों!

पिताश्री के सिर का स्पर्श करने पर, जलती हुई अग्नि के समान, दीप्त परशु वाले, जामदग्नि ने जो कर्म किया था, वह क्या आप लोगों ने नहीं सुना है? आज क्रोध से अन्धा हुआ अश्वत्थामा युद्धभूमि में शत्रुओं के रुधिर वर्षणरूप पितृतर्पण कर्म करने के लिए क्या समर्थ नहीं है?।।25।।

शब्दार्थ– उपलभ्य–प्राप्त करके, त्यक्त्वा–त्याग करके, यातः–गया, अपकृतम् –अपकार को, द्विजन्मनः–ब्राह्मण का, अमुना–इसके द्वारा, मनुजपशुना– मनुष्यों में पशु द्वारा, स्पृश्यमानम्–स्पर्श करने वाले को, उत्तमांगम्–सिर को, उपेक्षितुम्–उपेक्षा करने के लिए, एते–ये, पातकिनः–पापी, निर्मर्यादैः–मर्यादा रहितो द्वारा, अनुमतम्–अनुमति दी गयी, असृङ्–रक्त, करोमि–कर रहा हूँ।

अश्वत्थामा अद्य रणमुखे अरि–रुधिर–आसार–विघसं, तत् कर्म विधातुं प्रभवति न किम्? ।।25।।)

(सूतमुद्दिश्य) सूतः! गच्छ त्वं सर्वोपकरणैः सांग्रामिकैः सर्वायुधैरुपेतं महाहवलक्षणं नामाऽस्मत्स्यन्दनमुपनयः।

सूतः– यदाज्ञापयति कुमारः।

(इति निष्क्रान्तः)

कृपः– वत्स! अवश्यप्रतिकर्तव्येऽस्मिन्दारुणे निकाराग्नौ सर्वेषामस्माकं कोऽन्यस्त्वामन्तरेण शक्तः प्रतिकर्तुम्। किन्तु–

अश्वत्थामा– किमतः परम्।

कृपः– सेनापत्येऽभिषिच्य भवन्तमिच्छामि समरभुवमवतारयितुम्।

अश्वत्थामा– मातुल! परतन्त्रमिदमकिंचित्करं च।

कृपः– वत्स! न खलु परतन्त्रं नाकिंचित्करं च। पश्य–

भवेदभीष्ममद्रोणं धार्तराष्ट्रबलं कथम्।
यदि तत्तुल्यकक्ष्योऽत्र भवान्धुरि न युज्यते।।26।।

(अन्वय– यदि अत्र तत्–तुल्य–कक्ष्यः भवान् धुरि न युज्यते, अभीष्मम् अद्रोणम् धार्तराष्ट्र–बलम् कथम् भवेत्? ।।26।।)

कृतपरिकरस्य भवादृशस्य त्रैलोक्यमपि न क्षमं परिपन्थीभवितुं किं पुनर्युधिष्ठिरबलम्। तदेवं मन्ये परिकल्पिताभिषेकोपकरणः कौरवराजो नचिरात्त्वामेवाभ्युदीक्षमाणस्तिष्ठतीति।

अश्वत्थामा– यद्येवं त्वरते मे परिभवाऽनलदह्यमानमिदं चेतस्तत प्रतीकारजलावगाहनाय। तदहं गत्वा तातवधविषण्णमानसं कुरुपतिं सेनापत्यस्वयंग्रहणप्रणयसमाश्वासनया मन्दसन्तापं करोमि।

शब्दार्थ– अद्य–आज, विधातुम्–करने के लिए, उद्दिश्य–लक्ष्य करके, गच्छ–जाओ, स्यन्दनम्–रथ को, उपनय–लाओ, निक्रान्तः–निकल जाता है, अभिषिच्य–अभिषेक करके, अवतारयितुम्–उतारने के लिए, पश्य–देखो।

(सारथि को लक्ष्य करके) हे सारथि! जाओ और सभी प्रकार के उपकरणों एवं युद्ध सम्बन्धी सभी आयुधों से युक्त, भयंकर युद्ध के लक्षणों वाला हमारा रथ ले आओ।

सूत– कुमार की जो आज्ञा। **(यह कहकर निकल जाता है)**

कृपाचार्य–वत्स! अनिवार्यरूप से बदला लेने योग्य, इस तिरस्कार रूपी अग्नि में हम सभी लोगों में तुम्हारे अलावा प्रतिकार करने में भला दूसरा कौन समर्थ है? किन्तु,

अश्वत्थामा– तो फिर इससे अधिक क्या?

कृपाचार्य– मैं तो सेनापति पद पर अभिषिक्त करके, आपको युद्ध भूमि में उतारना चाहता हूँ।

अश्वत्थामा– मातुलश्री! यह तो पराधीन एवं व्यर्थ ही है।

कृपाचार्य– वत्स! यह न तो पराधीनता है और न ही बेकार है, देखो–

यदि भीष्म एवं द्रोणाचार्य की श्रेणी वाले आप, इस युद्ध में सेनापति पद पर अभिषिक्त नहीं किए जाते हैं, तो फिर भीष्म तथा द्रोण से विहीन कौरव सेना, वास्तविक सेना भला कैसे हो सकती है?।।26।।

इसके अलावा युद्ध करने के लिए सन्नद्ध, आप जैसे वीर के अलावा तीनों लोकों में कोई समर्थ भी नहीं है, फिर युधिष्ठिर की सेना का तो कहना ही क्या? इसलिए मैं मानता हूँ कि अभिषेक करने की सामग्री तैयार किए हुए, कौरवराज अविलम्ब तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहे हैं।

अश्वत्थामा– यदि ऐसा है तो तिरस्काररूपी अग्नि से व्याकुल मेरा हृदय, उससे बदला लेने की शीघ्रता कर रहा है। इसलिए पिताश्री के वध से दुःखी हृदय कुरुपति के सेनापति पद को स्वयं ग्रहण करने का आग्रह करने की प्रणय सान्त्वना द्वारा, मैं अपने सन्ताप को कम करना चाहता हूँ।

कृपः– वत्स! एवमिदम्! अतस्तमेवोद्देशं गच्छावः।

(इति परिक्रामतः)

(ततः प्रविशतः कर्णदुर्योधनौ)

दुर्योधनः– अंगराज!

तेजस्वी रिपुहतबन्धुदुःखपारं,
बाहुभ्यां व्रजति धृतायुधप्लवाभ्याम्।
आचार्यः सुतनिधनं निशम्य संख्ये
किं शस्त्रग्रहणसमये विशस्त्र आसीत्।।27।।

(अन्वय– तेजस्वी धृत–आयुध–प्लवाभ्याम् बाहुभ्याम् रिपु–हत–बन्धु–दुःख–पारम् व्रजति आचार्यः संख्ये सुत–निधनम् निशम्य शस्त्र–ग्रहण–समये, विशस्त्रः किम् आसीत्।।27।।)

अथवा सूक्तमिदमभियुक्तैः 'प्रकृतिर्दुस्त्यजेति'। यतः शोकान्धमनसा तेन विमुच्य क्षत्रधर्मकार्कश्यं द्विजातिधर्मसुलभो दैन्यपरिग्रहः कृतः।

कर्णः– राजन्! कौरवेश्वर! न खल्विदमेवम्।

दुर्योधनः– कथं तर्हि।

कर्णः– एवं किल द्रोणस्याऽभिप्राय आसीत्–यथाऽश्वत्थामा मया पृथिवीराज्येऽभिषेक्तव्य इति। तस्याभावाद वृद्धस्य मे ब्राह्मणस्य वृथा शस्त्रग्रहणमिति तथा कृतवान्।

दुर्योधनः– (सशिरः कम्पम्) एवमिदम्।

कर्णः– एतदर्थं च कौरवपाण्डवपक्षपातप्रवृत्तमहासंग्रामस्य राजकस्य परस्परक्षयमपेक्षमाणेन तेन प्रधानपुरुषवध उपेक्षा कृता।

दुर्योधनः– उपपन्नमिदम्।

कृपाचार्य– वत्स! यह ऐसा ही है। इसलिए हम दोनों उसी स्थान पर चलते हैं।

(ऐसा कहकर दोनों घूमते हैं)

(उसके बाद कर्ण और दुर्योधन दोनों प्रवेश करते हैं)

दुर्योधन– अंगराज!

तेजस्वी आचार्य आयुधरूपी प्लव हाथ में लेकर, शत्रु द्वारा मारे गए, यह कथन बन्धुओं को शोक के तट पर पहुँचाने वाला है, किन्तु आचार्य जी पुत्र के निधन को सुनकर, युद्धभूमि में शस्त्र धारण करने की अपेक्षा शस्त्रविहीन क्यों हो गए?।।27।।

अथवा नीतिज्ञ विद्वानों ने ठीक ही कहा है कि व्यक्ति अपने स्वभाव को अत्यधिक कठिनता से छोड़ पाता है। यही कारण है कि शोक से अन्धे हृदय वाले, आचार्य ने भी क्षत्रियधर्म के लिए उचित कर्कशता का परित्याग करके, ब्राह्मण–सुलभ दीनता को स्वीकार कर लिया।

कर्ण– हे राजन्! कौरवपति! वास्तव में यह ऐसा नहीं है।

दुर्योधन– तो फिर क्या है?

कर्ण– निश्चय ही, द्रोण का यह अभिप्राय था कि–'अश्वत्थामा को मुझे महाराज पद पर अभिषिक्त करना था।' इसलिए उसके न रहने से मुझ ब्राह्मण का शस्त्र धारण करना व्यर्थ है। इसीलिए उन्होंने शस्त्र का परित्याग कर दिया।

दुर्योधन– (सिर हिलाते हुए) यह ऐसा ही है।

कर्ण– और इसीलिए कौरव–पाण्डवों के पक्षपात में लगे हुए, राजसमूह के महासंग्राम में आपस में विनाश की अपेक्षा करते हुए, उन्होंने प्रमुख वीरों के वध के प्रति उपेक्षा की।

दुर्योधन– यही उचित है।

कर्णः— अन्यच्च राजन्! द्रुपदेनाऽप्यस्य बाल्यात्प्रभृत्यभिप्रायवेदि न स्वराष्ट्रे वासो दत्तः।

दुर्योधनः— साधु, अंगराज! साधु! निपुणमभिहितम्।

कर्णः— न चाऽयं ममैकस्याऽभिप्रायः। अन्येऽभियुक्ता अपि नैवेदन्यथा मन्यन्ते।

दुर्योधनः— एवमेतत्। कः सन्देहः?

दत्त्वाऽभयं सोऽतिरथो बध्यमानं किरीटिना।
सिन्धुराजमुपेक्षेत नैवं चेत्कथमन्यथा।।28।।

(अन्वय— एवम् न चेत् अन्यथा कथम् अति–रथः सः अभयं दत्त्वा किरीटिना बध्यमानम् सिन्धुराजम् उपेक्षेत।।28।।)

कृपः— (विलोक्य) वत्स! एष दुर्योधनः सूतपुत्रेण सहास्य न्यग्रोधच्छायायामुपविष्टस्तिष्ठति। तदुपसर्पावः। (तथा कृत्वा)

उभौ— विजयतां विजयतां कौरवेश्वरः।

दुर्योधनः— (दृष्ट्वा) अये! कथं कृपोऽश्वत्थामा च।

(आसनादवतीर्य कृपं प्रति)

गुरो अभिवादये। (अश्वत्थानममुद्दिश्य)

आचार्य पुत्र!

एह्यस्मदर्थंहततात! परिष्वजस्व,
क्लान्तैरिदं मम निरन्तरमंगमंगैः।
स्पर्शस्तवैष भुजयोः सदृशः पितुस्ते,
शोकेऽपि यो महति निवृत्तिमादधाति।।29।।

(अन्वय— अस्मद अर्थम् हततात! एहि, क्लान्तैः अंगैः इदम् मम अंगम् निरन्तरम् परिष्वजस्व, तव भुजयोः एषः स्पर्शः ते पितुः सदृशः यः महति शोके अपि निवृत्तिम् आदधाति।।29।।)

(आलिङ्ग्य पार्श्वं उपवेशयति)

(अश्वत्थामा बाष्पमुत्सृजति)

कर्ण– हे राजन्! इसके अलावा बाल्यकाल से ही इनके अभिप्राय को समझने वाले, द्रुपद ने भी इसीलिए इन्हें अपने राज्य में निवास प्रदान नहीं किया।

दुर्योधन– साधु, अंगराज! साधु। तुमने बिल्कुल ठीक कहा।

कर्ण– यह मुझ अकेले का ही विचार नहीं है, अपितु दूसरे नीतिज्ञ लोग भी इस विचार को अन्यथा नहीं मानते हैं।

दुर्योधन– यह ऐसा ही है, इसमें क्या सन्देह है?

यदि ऐसा न होता तो अतिरथी द्रोण, जयद्रथ को निर्भय बनाकर, अर्जुन द्वारा मारे जाते हुए, उसकी उपेक्षा भला क्यों करते?।।28।।

कृपाचार्य– (देखकर) वत्स! सूतपुत्र कर्ण के साथ यह दुर्योधन, इस बरगद की छाया में विराजमान हैं। इसलिए हम दोनों पास चलते हैं। **(वैसा करके)**

दोनों– महाराज कौरवेश्वर की जय हो, विजय हो।

दुर्योधन– (देखकर) अरे! क्या कृपाचार्य और अश्वत्थामा हैं? (आसन से उतरकर, कृपाचार्य के प्रति) हे गुरो! मैं आपको प्रणाम करता हूँ (अश्वत्थामा को लक्ष्य करके)

हमारे लिए पितृवध को सहन करने वाले, आचार्यपुत्र! आओ और क्लेशयुक्त अंगों से इस मेरे शरीर का निरन्तर आलिंगन करो, क्योंकि तुम्हारी भुजाओं का यह स्पर्श तुम्हारे पिता के समान ही है, जो महान् लोक में भी शान्ति प्रदान करने वाला है।।29।।

(आलिंगन करके पास में बैठा देता है)

(अश्वत्थामा आँसू छोड़ता है)

शब्दार्थ– अन्यत् च–और भी, प्रभृति–लेकर, दत्तः–प्रदान किया, अभिहितम्–कहा, दत्वा–देकर, चेत्–यदि, उपविष्टः–बैठा हुआ, उपसर्पावः–पास जाते हैं, अवतीर्य–उतरकर, परिष्वजस्व–आलिंगन करो।

कर्णः– द्रौणायने! अलमत्यर्थमात्मानं शोकानले प्रक्षेप्तुम्।

दुर्योधनः– आचार्यपुत्र! को विशेष आवयोरस्मिन्व्यसनमहार्णवे। पश्य–

तातस्तव प्रणयवान्स पितुः सखा मे,
शस्त्रे यथा तव गुरुः स तथा ममापि।
किं तस्य देहनिधने कथयामि दुःखं
जानीहि तद् गुरुशुचा मनसा त्वमेव।।30।।

(अन्वय– सः तव तातः मे पितुः प्रणयवान् सखा, सः यथा शस्त्रे तव गुरुः तथा मम अपि, तस्य देह–निधने किम् दुःखम् कथयामि गुरु–शुचा मनसा तत् त्वम् एव जानीहि ।।30।।)

कृपः– वत्स! यथाह कुरुपतिस्तथैवेतत्।

अश्वत्थामा– राजन्! एवं पक्षपातिनि त्वयि युक्तमेव शोकभारं लघूकर्तुम्। किन्तु–

मयि जीवति मत्तातः केशग्रहमवाप्तवान्।
कथमन्ये करिष्यन्ति पुत्रेभ्योऽपुत्रिणः स्पृहाम्।।31।।

(अन्वय– मयि जीवति मत् तातः! केश–ग्रहम् अवाप्तवान्, अन्ये अपुत्रिणः पुत्रेभ्यः स्पृहाम् कथम् करिष्यन्ति? ।।31।।)

कर्णः– द्रौणायने! किमत्र क्रियते यदनेनैव सर्वपरिभवपरित्राणहेतुना शस्त्रमुत्सृजता तादृशीमवस्थामात्मा नीतः।

अश्वत्थामा– अंगराज! किमाह भवान्किमत्र क्रियत इति। श्रूयतां यत्क्रियते।

यो यः शस्त्रं बिभर्ति स्वभुजगुरुमदः पाण्डवीनां चमूनां
यो यः पांचालगोत्रे शिशुरधिकवया गर्भशय्यां गतो वा।
यो यस्तत्कर्मसाक्षी चरति मयि रणे यश्च यश्च प्रतीपः
क्रोधान्धस्तस्य तस्य स्वयमपि जगतामन्तकस्यान्तकोऽहम्।

(अन्वय– पाण्डवीनाम् चमूनाम् स्व–भुज–गुरु–मदः यः यः शस्त्रम् बिभर्ति, पांचाल–गोत्रे यः यः शिशुः, अधिक–वयाः गर्भ–शय्याम् गतः वा,

कर्ण– हे द्रोणपुत्र! स्वयं को अत्यधिक शोक की अग्नि में डालने से बस करो।

दुर्योधन– आचार्यपुत्र! इस महान् विपत्ति के सागर में हम दोनों एक समान ही हैं, देखो–

वे तुम्हारे पिताश्री हमारे पिताजी के प्रणयवान् मित्र थे तथा वे शस्त्र विद्या में जिसप्रकार तुम्हारे गुरु थे, उसीप्रकार मेरे भी थे, उनके निधन पर मुझे कितना दुःख है, यह मैं क्या कहूँ? आप स्वयं अपने दुःखी मन से ही समझ लें।।30।।

कृपाचार्य– वत्स! जैसा कुरुपति कह रहे हैं, यह वैसा ही है।

अश्वत्थामा– राजन्! इसप्रकार के पक्षपाती आपमें, शोक के भार को कम करना उचित ही है, किन्तु–

मेरे जीवित रहते हुए, मेरे पिताजी ने केशग्रहण को प्राप्त किया, तो फिर दूसरे पुत्रहीन व्यक्ति, पुत्रवान् होने की कामना भला क्यों करेंगे?।।31।।

कर्ण– हे द्रोणपुत्र! इस विषय में क्या किया जाए? क्योंकि सभी को परिभव से बचाने के कारणरूप तुम्हारे पिताजी ने स्वयं ही अस्त्र को छोड़ते हुए, स्वयं को उस प्रकार की इस दशा में पहुँचा दिया।

अश्वत्थामा– अंगराज! आपने क्या कहा? 'इस विषय में क्या किया जाए?' सुनिए, मेरे द्वारा जो किया जा सकता है–

पाण्डव पक्ष की सेनाओं के बीच में, अपनी भुजाओं के भारी मद वाले, जो–जो वीर शस्त्र धारण करने वाले हैं, पांचाल गोत्र में जो–जो बालक, युवक अथवा गर्भ में स्थित हैं और जिस–जिसने पिताजी के इस वधकर्म को देखा है, रणभूमि में मेरे पराक्रम करने पर, जो जो विपरीत युद्ध करने वाले हैं, अधिक क्या? क्रोध से अन्धा हुआ मैं इस युद्ध में यमराज का भी अन्त करने वाला हूँ।।32।।

यः यः तत् कर्म साक्षी, मयि रणे चरति, यः च यः च प्रतीपः, क्रोध–अन्धः अहम् जगताम् अन्तकस्य अपि तस्य तस्य स्वयम् अन्तकः (अस्मि)।।32।।)

अपि च। भो जामदग्न्यशिष्य कर्ण!

देशः सोऽयमरातिशोणितजलैर्यस्मिन्ह्रदाः पूरिताः
क्षत्रादेव तथाविधः परिभवस्तातस्य केशग्रहः।
तान्येवाऽहितशस्त्रघस्मरगुरूण्यस्त्राणि भास्वन्ति मे,
यद्रामेण कृतं तदेव कुरुते द्रौणायनिः क्रोधनः।।33।।

(अन्वय– यस्मिन् ह्रदाः अराति–शोणित–जलैः पूरिताः, सः अयम् देशः, तथा–विधः तातस्य केशग्रहः परिभवः क्षत्रात् एव, तानि एव अहित–शस्त्र–घस्मर–गुरूणि भास्वन्ति मे अस्त्राणि, यत् रामेण कृतम् तत् एव क्रोधनः द्रौणायनिः कुरुते ।।33।।)

दुर्योधनः– आचार्यपुत्र! तस्य तथाविधस्याऽनन्यसाधारणस्य ते वीरभावस्य किमन्यत्सदृशम्।

कृपः– राजन्! सुमहान्खलु द्रोणपुत्रेण वोढुमध्यवसितः समरभरः। तदहमेवं मन्ये भवता कृतपरिकरोऽयमुच्छेत्तुं लोकत्रयमपि समर्थः। किं पुनर्यौधिष्ठिरबलम्। अतोऽभिषिच्यतां सेनापत्ये।

दुर्योधनः– सुष्ठु, युज्यमानभिहितं युष्माभिः, किन्तु प्राक्प्रतिपन्नोऽयमर्थोऽङ्गराजस्य।

कृपः– राजन्! असदृशपरिभवशोकसागरे निमज्जन्तमेनमंगराज–स्याऽर्थे नैवोपेक्षितुं युक्तम्। अस्याऽपि तदेवाऽरिकुलमनुशासनीयम्। अतः किमस्य पीडा न भविष्यति।

अश्वत्थामा– राजन् कौरवेश्वर! किमद्यापि युक्ताऽयुक्तविचारणया।

प्रयत्नपरिबोधितः स्तुतिभिरद्य शेषे निशा–
मकेशवमपाण्डवं भुवनमद्य निःसोमकम्।
इयं परिसमाप्यते रणकथाऽद्य दोःशालिना–
मपैतु नृपकाननातिगुरुरद्य भारो भुवः।।34।।

और भी, हे परशुराम के शिष्य कर्ण!

यह वही देश है, जिसमें शत्रुओं के रुधिररूपी जल से जलाशयों को भरा गया था, जमदग्नि के समान ही मेरे पिताश्री का केश ग्रहण क्षत्रिय द्वारा ही किया गया है, मेरे अस्त्र भी परशुराम के अस्त्रों के समान ही, शत्रुओं के शस्त्रों को खा जाने वाले, भयंकर एवं देदीप्यमान हैं। (अधिक कहने से क्या?) **पिता के वध के प्रतिकार में जो कर्म जामदग्न्य परशुराम ने किया था, वैसा ही क्रूरकर्म द्रोणपुत्र अश्वत्थामा भी क्रोध से करने जा रहा है।।33।।**

दुर्योधन– आचार्य पुत्र! उसप्रकार के अनन्य साधारण वीर तुम्हारे लिए, दूसरा क्या करने योग्य हो सकता है?

कृपाचार्य– राजन्! द्रोणपुत्र द्वारा निश्चय किया गया, यह समर भार वस्तुतः अत्यधिक महान् है, इसलिए मैं ऐसा मानता हूँ, कि आपके द्वारा सन्नद्ध किया गया यह, युधिष्ठिर सम्बन्धी सैन्यबल की तो बात ही क्या? अपितु यह तो त्रिभुवन को भी नष्ट करने में समर्थ है। इसलिए आप इन्हें **सेनापति पद** पर अभिषिक्त कर दें।

दुर्योधन– अच्छा है, आपने ठीक ही कहा है, किन्तु यह पद अंगराज कर्ण के लिए पहले ही निश्चित किया जा चुका है।

कृपाचार्य– राजन्! अनुचित शोकरूपी सागर में डूबे हुए, इन अश्वत्थामा की, अंगराज के कारण उपेक्षा करना उचित नहीं है, क्योंकि इनके द्वारा भी तो विनाश उन्हीं शत्रुओं का होगा। इसलिए क्या इससे इन्हें पीड़ा नहीं होगी?

अश्वत्थामा– हे राजन्, हे कौरवेश्वर! क्या आज भी उचित–अनुचित पर विचार करना है?

आज ही आप सूत एवं मागधों द्वारा स्तुतिगान कर जगाए जाने के लिए सोएँगे। आज ही संसार केशवहीन, पाण्डवशून्य तथा चन्द्रवंश से विहीन हो जाएगा। आज ही बाहुवीरों की कथा समाप्त हो जाएगी। आज ही नृपरूपी वन का पृथ्वी का अत्यन्त दुर्वह भार दूर हो जाएगा।।34।।

(अन्वय– अद्य स्तुतिभिः प्रयत्न–परिबोधितः, निशाम् शेषे, अद्य भुवनम् अकेशवम्, अपाण्डवम् निःसोमकम् च, अद्य दोःशालिनाम् इयम् रण–कथा परि–समाप्यते, अद्य नृप–कानन–अति–गुरुः भुवः भारः अपैतु।।34।।)

कर्णः– (विहस्य) द्रौणात्मज! वक्तुं सुकरमिदं दुष्करमध्यवसितुम्। बहवः कौरवबलेऽस्य कर्मणः शक्ताः।

अश्वत्थामा– अंगराज! एवमिदम्। बहवः कौरवबलेऽत्र शक्ताः, किन्तु दुःखोपहतः शोकावेगवशाद् ब्रवीमि न पुनर्वीरजनाधिक्षेपेण।

कर्णः– मूढ़! दुःखितस्याऽश्रुपातः कुपितस्य चाऽऽयुधद्वितीयस्य संग्रामाऽवतरणमुचितं नैवविधां प्रलापाः।

अश्वत्थामा– (सक्रोधम्) अरे रे राधागर्भभारभूत! सूतापसद! ममापि नामाश्वत्थाम्नो दुःखितस्याश्रुभिः प्रतिक्रियामुपदिशसि न शस्त्रेण। पश्य–

निर्वीर्यं गुरुशापभाषितवशात्किं मे तवेवाऽऽयुधं,
सम्प्रत्येव भयाद्विहाय समरं प्राप्तोऽस्मि किं त्वं यथा।
जातोऽहं स्तुतिवंशकीर्तनविदां किं सारथीनां कुले
क्षुद्राऽरातिकृताऽप्रियं प्रतिकरोम्यस्रेण नास्त्रेण यत्।।35।

(अन्वय– मे आयुधम् तव इव गुरु–शाप–भाषित–वशात् किम् निर्वीर्यम्? यथा त्वम् सम्प्रति एव भयात् समरम् विहाय प्राप्तः, (तथा) किम् (प्राप्तः) अस्मि? स्तुति–वंश–कीर्तन–विदाम् सारथीनाम् कुले अहम् जातः किम्? यत् क्षुद्र–आराति–कृत–अप्रियम् अस्रेण करोमि, अस्त्रेण न प्रति (करोमि)।।35।।)

कर्णः– (सक्रोधम्) अरे रे वाचाट! वृथाशस्त्रग्रहणदुर्विदग्ध! वटो!

निर्वीर्यं वा सवीर्यं वा मया नोत्सृष्टमायुधम्।
यथा पांचालभीतेन पित्रा ते बाहुशालिना।।36।।

(अन्वय– निर्वीर्यम् वा, स–वीर्यम् वा, मया आयुधम् न उत्सृष्टम्, यथा पांचाल–भीतेन बाहु–शालिना ते पित्रा (उत्सृष्टम्)।।36।।)

अपि च –

कर्ण– (हँसकर) हे द्रोणपुत्र! कहना आसान है, किन्तु कर पाना अत्यन्त मुश्किल है। कौरव सेना में बहुत से लोग इस काम को करने में समर्थ हैं।

अश्वत्थामा– अंगराज! यह ऐसा ही है कि कौरव सेना में बहुत से लोग शक्तिशाली हैं, किन्तु दुःख से पीड़ित शोक के आवेग के कारण ही मैं ऐसा कह रहा हूँ, वीरों पर आक्षेप नहीं कर रहा हूँ।

कर्ण– मूर्ख! दुःखी व्यक्ति का आँसू बहाना, क्रुद्ध एवं शस्त्रधारी का युद्ध में उतरना ठीक होता है, इसप्रकार का प्रलाप करना नहीं।

अश्वत्थामा– (क्रोधपूर्वक) अरे, रे, राधा के गर्भ के भारस्वरूप! नीच सूत! मुझ दुःखी अश्वत्थामा को आँसू बहाकर, प्रतिक्रिया करने की शिक्षा दे रहा है, शस्त्र से नहीं। देख,

मेरा शस्त्र क्या तुम्हारे आयुध के समान गुरु के शाप के कारण शक्तिहीन हो गया है?, जिसप्रकार तुम अभी भयभीत होकर युद्ध छोड़कर भाग आए हो, क्या मैं भी वैसा ही कायर हूँ? क्या मैं तुम्हारे समान वंशजों के स्तुतिगान करने वाले, सूत–मागधों के वंश में उत्पन्न हुआ हूँ? जो नीच शत्रुओं द्वारा किए गए, अप्रिय कर्म के लिए, इसका प्रतिकार अस्त्र से न करके, आँसुओं से करूँ?।।35।।

कर्ण– (क्रोधपूर्वक) अरे, रे व्यर्थ बकवाद करने वाले! व्यर्थ ही शस्त्र ग्रहण करने के कारण मूर्ख बालक!

बलहीन या बल से युक्त मैंने, धृष्टद्युम्न से भयभीत, बाहुशाली तुम्हारे पिता के समान शस्त्र का परित्याग नहीं किया है।।36।।

और भी,

शब्दार्थ– प्रयत्नपरिबोधितः–प्रयत्नपूर्वक जगाया गया, अपैतु–दूर होवे, विहस्य–हँसकर, वक्तुम्–कहने के लिए, बहवः–बहुत से, ब्रवीमि–कहता हूँ, मूढ–मूर्ख, जातः–उत्पन्न हुआ, अस्रेण–आँसुओं से, उत्सृष्टम्–छोड़ा।

सूतो वा सूतपुत्रो वा यो वा को वा भवाम्यहम्।
दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम्।।37।।

(अन्वय– सूतः वा, सूत–पुत्रः वा, यः वा कः वा अहम् भवामि, कुले जन्म तु दैवायत्तम्, पौरुषम् मदायत्तम्।।37।।)

अश्वत्थामा– (सक्रोधम्) अरे रे रथकारकुलकलंक! अरे राधा–गर्भभारभूत! आयुधानभिज्ञ! तातमप्यधिक्षिपसि। अथवा–

स भीरुः शूरो वा प्रथितभुजसारस्त्रिभुवने
कृतं यत्तेनाऽऽजौ प्रतिदिनमियं वेत्ति वसुधा।
परित्यक्तं शस्त्रं कथमिति स शस्त्रवृतधरः
पृथासूनुः साक्षी त्वमसि रणभीरो! क्व नु तदा।।38।।

(अन्वय– सः भीरुः, शूरः वा, त्रिभुवने प्रथित–भुज–सारः, तेन आजौ प्रतिदिनम् यत् कृतम्, इयम् वसुधा वेत्ति, शस्त्रम् कथम् परित्यक्तम्, इति सः शस्त्र–वृत–धरः पृथा–सूनुः साक्षी, रणभीरो! तदा त्वम् क्व नु असि?।।38।।)

कर्णः– (विहस्य) एवं भीरुरहम्। त्वं पुनर्विक्रमैकरसः स्वपितरम–नुस्मृत्य न जाने किं करिष्यसीति महान्मे संशयो जातः। अपि च रे मूढ!

यदि शस्त्रमुज्झितमशस्त्रपाणयो
न निवारयन्ति किमरीनुदायुधान्।
यदनेन मौलिदलनेऽप्युदासितं
सुचिरं स्त्रियेव नृपचक्रसन्निधौ।।39।।

(अन्वय– यदि शस्त्रम् उज्झितम् (तेन किम्) अशस्त्र–पाणयः, उत् आयुधान् अरीन् न निवारयन्ति किम्? यत् अनेन नृप–चक्र–सन्निधौ मौलि–दलने अपि स्त्रिया इव सुचिरम् उदासितम्।।39।।)

अश्वत्थामा– (सक्रोधं सकम्पं च) दुरात्मन्! राजवल्लभप्रगल्भ! सूतापसद! असम्बद्धप्रलापिन्!

कथमपि न निषिद्धो दुःखिना भीरुणा वा
द्रुपदतनयपाणिस्तेन पित्रा ममाऽद्य।

मैं सूत हूँ या सूतपुत्र हूँ, जो कुछ भी हूँ। कुल में जन्म ग्रहण करना तो भाग्य के अधीन है, जबकि पौरुष करना ही मुझ पर निर्भर है।।37।।

अश्वत्थामा– (क्रोधपूर्वक) अरे, रे! सारथियों के वंश के कलंक! राधा के गर्भ के भाररूप! शस्त्रों से अनभिज्ञ! पिताजी पर भी आक्षेप कर रहे हो? ? अथवा–

वे डरपोक थे या वीर थे, किन्तु तीनों लोकों में उनका भुजबल प्रसिद्ध था, युद्ध में उन्होंने रोज़ाना ही जो पराक्रम प्रदर्शित किया, इसे सारी वसुधा जानती है, उन्होंने शस्त्र का परित्याग क्यों किया? इस बात के साक्षी शस्त्रव्रती युधिष्ठिर हैं। हे युद्धभीरु! जब पिताश्री ने शस्त्र त्याग किया, उस समय तुम कहाँ पर थे?।। 38।।

कर्ण– (हँसकर) ऐसा ही है, मैं तो डरपोक हूँ और तुम पराक्रम से अनुराग करने वाले हो एवं अपने पिता को याद करके न जाने तुम क्या कर डालोगे? यह महान् संशय भी मेरे मन में उत्पन्न हो गया है और भी हे मूर्ख!

यदि उन्होंने शस्त्र त्याग भी दिया था, तो भी क्या निःशस्त्र व्यक्ति, शस्त्र उठाने वाले, शत्रुओं के आक्रमण को क्या रोकते नहीं है? जैसी कि इन्होंने राजाओं के समूह के समक्ष सिर के काटे जाने पर भी स्त्री के समान बड़ी देर तक उदासीनता ही दिखायी।।39।।

अश्वत्थामा– (क्रोध एवं कम्पनपूर्वक) हे दुरात्मन्! राजाओं के मुँह लगे चाटुकार! नीच सूत! व्यर्थ बकवाद करने वाले!

मेरे उन पिताश्री ने दुःखी होकर अथवा डरकर किसी भी कारण द्रुपद पुत्र का हाथ नहीं रोका, आज बाहुबल के अभिमान से फूले हुए, तेरे सिर पर मैं अपना बायाँ पैर मार रहा हूँ, तू इसे रोक ले।।40।।

शब्दार्थ– वा–अथवा, दैवायत्तम्–भाग्य के अधीन, अधिक्षिपसि–आक्षेप लगा रहे हैं, आजौ–युद्ध में, वेत्ति–जानती है, तदा–तब, क्व–कहाँ, अनुस्मृत्य–याद करके, मे–मुझे, नृपचक्र–राजाओं का समूह।

तव भुजबलदर्पाध्मायमानस्य वामः
शिरसि चरण एष न्यस्यते वारयैनम्।।40।।

(अन्वय– तेन मम पित्रा दुःखिना भीरुणा वा कथम् अपि द्रुपद–तनय–पाणिः न निषिद्धः, अद्य भुज–बल–दर्प–अध्मायमानस्य तव शिरसि एषः वामः चरणः न्यस्यते, एनम् वारय।।40।।)

(इति तथा कर्तुमुत्तिष्ठति)

कृपदुर्योधनौ– वत्स! मर्षय, मर्षय। (इति निवारयतः)

(अश्वत्थामा चरणप्रहारं नाटयति)

कर्णः– (सक्रोधमुत्थाय, खड्गाकृष्य) **अरे दुरात्मन्! वाचाट! ब्रह्म-बन्धो! आत्मश्लाघिन्!**

जात्या काममवध्योऽसि चरणं त्विममुद्धृतम्।
अनेन लूनं खड्गेन पतितं द्रक्ष्यसि क्षितौ।।41।।

(अन्वय– जात्या कामम् अवध्यः असि, इमम् उद्धृतम् चरणम् तु अनेन खड्गेन लूनम् क्षितौ पतितम् द्रक्ष्यसि ।।41।।)

अश्वत्थामा– अरे मूढ! किं नाम 'जात्या काममवध्योऽहम्'। इयं सा जातिः परित्यक्ता।

(इति यज्ञोपवीतं छिनत्ति। पुनश्च सक्रोधम्)

अद्य मिथ्याप्रतिज्ञोऽसौ किरीटी क्रियते मया।
शस्त्रं गृहाण वा त्यक्त्वा मौलौ वा रचयांजलिम्।।42।।

(अन्वय– अद्य असौ किरीटी मया मिथ्या–प्रतिज्ञः क्रियते, शस्त्रम् गृहाण वा, त्यक्त्वा वा, मौलौ अंजलिम् रचय ।।42।।)

(उभावपि खड्गमाकृष्याऽन्योन्यं प्रहर्तुमुद्यतौ।
कृपदुर्योधनो निवारयतः)

दुर्योधनः– सखे! आचार्यपुत्र! शस्त्रग्रहणेनाऽलम्।

कृपः– वत्स! सूतपुत्र! शस्त्रग्रहणेनाऽलम्।

अश्वत्थामा– मातुल, मातुल! किं निवारयसि? अयमपि तात–निन्दाप्रगल्भः सूतापसदो धृष्टद्युम्नपक्षपात्येव।

(ऐसा कहकर वैसा करने के लिए उठता है)

कृपाचार्य एवं दुर्योधन– वत्स! क्षमा करो, क्षमा करो।

(ऐसा कहकर दोनों रोकते हैं)

(अश्वत्थामा चरण प्रहार का अभिनय करता है)

कर्ण– (क्रोधपूर्वक उठकर, तलवार खींचकर) अरे दुरात्मन्! वाचाल! ब्रह्मबन्धु! आत्मप्रशंसक!

जाति से तो तू नितान्त अवध्य है, किन्तु उठाए गए इस पैर को तो तू इस तलवार से कटा हुआ, भूमि पर गिरा हुआ देखेगा।।41।।

अश्वत्थामा– अरे, मूर्ख! क्या कहते हो, 'मैं जाति के कारण अवध्य हूँ?' यह लो मैंने वह जाति त्याग दी।

(ऐसा कहकर यज्ञोपवीत को तोड़ देता है, फिर से क्रोधपूर्वक)

आज उस अर्जुन की प्रतिज्ञा को मेरे द्वारा मिथ्या किया जा रहा है, इसलिए तू शस्त्र ग्रहण कर या फिर उसे छोड़कर सिर पर अंजलि बना (हाथ जोड़)।।42।।

(दोनों ही तलवार खींचकर परस्पर प्रहार करने के लिए उद्यत होते हैं, कृपाचार्य एवं दुर्योधन दोनों ही रोकते हैं)

दुर्योधन– हे मित्र! हे आचार्यपुत्र! शस्त्रग्रहण करने से बस करो।

कृपाचार्य– पुत्र! सूतपुत्र! शस्त्रग्रहण करने से बस करो।

अश्वत्थामा– मामा, मामा! आप क्यों रोक रहे हैं? पिताजी की निन्दा करने में निपुण, यह नीचसूत भी धृष्टद्युम्न का ही पक्षपाती है।

शब्दार्थ– निषिद्धः–रोका गया, न्यस्यते–रखा जा रहा है, वारय–रोको, उत्तिष्ठति–उठता है, कर्तुम्–करने के लिए, मर्षय–क्षमा कीजिए, निवारयतः–रोकते हैं, नाटयति–अभिनय करता है, उत्थाय–उठकर, आकृष्य–खींचकर, वाचाट–वाचाल, बकवादी, अवध्यः–न मारने योग्य, परित्यक्ता–छोड़ दी गयी, छिनत्ति–तोड़ता है, असौ–वह, मया–मेरे द्वारा, गृहाण–ग्रहण करो, त्यक्त्वा–त्यागकर, रचय–बनाओ।

कर्णः— राजन्! न खल्वहं निवारयितव्यः।

उपेक्षितानां मन्दानां धीरसत्त्वैरवज्ञया।
अत्रासितानां क्रोधान्धैर्भवत्येषा विकत्थना।।43।।

(अन्वय— धीर–सत्त्वैः, क्रोध–अन्धैः, अत्र असितानाम् अवज्ञ उपेक्षितानाम्, मन्दानाम्, एषा विकत्थना भवति ।।43।।)

अश्वत्थामा— राजन्! मुंच, मुंचैनम्। आसादयतु मद्भुजान्तरनिष्पे सुलभमसूनामवसादनम्। अन्यच्च राजन्! स्नेहेन वा कार्येण वा यत्त्व ताताधिक्षेपकारिणं दुरात्मानं मत्तः परिरक्षितुमिच्छसि तदुभयमपि व्यर्थि ते। पश्य—

पापप्रियस्तव कथं गुणिनः सखाऽयं
सूतान्वयः शशधराऽन्वयसम्भवस्य।
हन्ता किरीटिनमहं नृप! मुंच कुर्यां
क्रोधादकर्णमपृथात्मजमद्य लोकम्।।44।।

(अन्वय— नृप! गुणिनः शशधर–अन्वय–सम्भवस्य, तव पापप्रि सूत–अन्वयः, अयम् कथम् सखा? अहम् किरीटिनम् हन्ता, मुंच, अ क्रोधात् लोकम् अकर्णम् अपृथा–आत्मजम् कुर्याम् ।।44।।)

(इति प्रहर्तुमिच्छति)

कर्णः— (खड्गमुद्यम्य) अरे वाचाट! ब्राह्मणाधम! अयं न भवति राजन् मुंच, मुंच। न खल्वहं वारयितव्यः। (इति हन्तुमिच्छति)

(दुर्योधनकृपौ निवारयतः)

दुर्योधनः— कर्ण! गुरुपुत्र! कोऽप्यमद्य युवयोर्व्यामोहः।

कृपः— वत्स! अन्यदेव प्रस्तुतमन्यत्राऽऽवेग इति कोऽयं व्यामोहः स्वबलव्यसनं चेदमस्मिन्काले राजकुलस्याऽस्य युष्मत्त एव भवतीति वाम पन्थाः।

अश्वत्थामा— मातुल! न लभ्यतेऽस्य कटुप्रलापिनो रथकारकुल-कलंकस्य दर्पः शान्तयितुम्।

कृपः— वत्स! अकालः खलु स्वबलप्रधानविरोधस्य।

कर्ण– राजन्! निश्चय ही, आपको मुझे रोकना नहीं चाहिए।

धैर्यशाली एवं क्रोध से अन्धे हुए लोगों द्वारा, यदि शत्रु को उपेक्षा से या शस्त्र से भयभीत नहीं किया जाता है, तो वह तिरस्कृत एवं नीच लोगों को बढ़ावा देने वाला होता है।।43।।

अश्वत्थामा– राजन्! इसे छोड़ दीजिए, जिससे यह मेरी भुजाओं के बीच में पिसकर सरलतापूर्वक प्राणों के अन्त को प्राप्त कर सके। यदि आप स्नेहवश या फिर स्वार्थवश, पिताजी के निन्दक, इस दुष्ट को मुझसे बचाना चाहते हैं, तो ये दोनों ही बातें आपके लिए व्यर्थ हैं, देखिए–

हे राजन्! अनेक गुणों से युक्त चन्द्रवंश में उत्पन्न हुए आपका, सूतवंश में उत्पन्न यह पापी कर्ण भला मित्र कैसे हो सकता है? मैं ही अर्जुन का वध करने में समर्थ हूँ। इसलिए आप मुझे छोड़ दीजिए, क्योंकि क्रुद्ध हुआ मैं आज इस संसार को कर्ण एवं अर्जुन दोनों से ही रहित कर दूँगा।।44।।

(यह कहकर प्रहार करना चाहता है)

कर्ण– (तलवार उठाकर) अरे वाचाल! नीच ब्राह्मण! यह नहीं होगा, राजन्! आप इसे छोड़ दीजिए, छोड़ दीजिए। मुझे भी आपको नहीं रोकना चाहिए। **(ऐसा कहकर मारना चाहता है)**

दुर्योधन– कर्ण! गुरुपुत्र! आज यह तुम दोनों का कैसा व्यामोह है?

कृपाचार्य– वत्स! शत्रुओं पर किया जाने योग्य यह आवेश, अपने पक्ष पर ही किया जाने का तुम्हारा यह कैसा पागलपन है? यदि तुम्हें अपनी शक्ति के विनाश की ही व्यसन है तो आज तुम दोनों से कुरु कुल का भाग्य ही विपरीत हो गया है।

अश्वत्थामा–मामा! कटुप्रलापी और सूतकुल के कलंक, इस कर्ण के अहंकार को चकनाचूर करने का तो अवसर फिर प्राप्त नहीं होगा।

कृपाचार्य– हे पुत्र! वस्तुतः अपनी सेना के प्रमुख वीरों से विरोध करने का यह समय नहीं है।

अश्वत्थामा– मातुल, यद्येवम्।

अयं पापो यावन्न निधनमुपेयादरिशरैः
परित्यक्तं तावत्प्रियमपि मयाऽस्त्रं रणमुखे।
बलानां नाथेऽस्मिन्परिकुपितभीमार्जुनभये
समुत्पन्ने राजा प्रियसखाबलं वेत्तु समरे।।45।।

(अन्वय– यावत् अयम् पापः, अरि–शरैः निधनम् न उपेयात् तावत् रण–मुखे मया प्रियम् अपि अस्त्रम् परित्यक्तम्, अस्मिन् बलानाम् नाथे समरे परिकुपित–भीम–अर्जुन–भये समुत्पन्ने राजा प्रिय–सखा-बलम् वेत्तु।।45।।)

(इति खड्गमुत्सृजति)

कर्णः– (विहस्य) कुलक्रमागतमेवैतद्भवादृशां यदस्त्रपरित्यागो नाम।

अश्वत्थामा– ननु रे अपरित्यक्तमपि भवादृशैरायुधं चिरपरित्यक्तमेव निष्फलत्वात्।

कर्णः– अरे मूढ!

धृतायुधो यावदहं तावदन्यैः किमायुधैः।
यद्वा न सिद्धमस्त्रेण मम तत्केन सेत्स्यति।।46।।

(अन्वय– अहम् यावत् धृत–आयुधः, तावत् अन्यैः आयुधैः किम्? वा यत् मम अस्त्रेण न सिद्धम्, तत् केन सेत्स्यति।।46।।)

(नेपथ्ये)

आः दुरात्मन्, द्रौपदीकेशाम्बराकर्षणमहापातकिम्, धार्तराष्ट्रापसद, चिरस्य खलु कालस्य मत्सम्मुखीनमागतोऽसि। क्षुद्रपशो! क्वेदानीं गम्यते। अपि च। भो भो ! राधेयदुर्योधनसौबलप्रभृतयः पाण्डवविद्वेषिणश्चापपाणयो मानधनाः! श्रृण्वन्तु भवन्तः।

कृष्टा येन शिरोरुहे नृपशुना पांचालराजात्मजा
येनाऽस्याः परिधानमप्यपहृतं राज्ञां गुरूणां पुरः।
यस्योरःस्थलशोणितासवमहं पातुं प्रतिज्ञातवान्,
सोऽयं मद्भुजपंजरे निपतितः संरक्ष्यतां कौरवाः।।47।।

अश्वत्थामा– मामा जी! यदि ऐसा है तो,

जब तक यह पापी शत्रुओं के बाणों द्वारा नहीं मार दिया जाता है, तब तक मैंने युद्ध में अपने प्रिय अस्त्र का भी परित्याग कर दिया। इस कर्ण के नेतृत्व वाले संग्राम में क्रुद्ध भीम एवं अर्जुन द्वारा भय उत्पन्न किए जाने के अवसर पर राजा, अपने प्रियमित्र कर्ण को ही अपनी सामर्थ्य समझ लें।।45।।

(ऐसा कहकर तलवार छोड़ता है)

कर्ण– (हँसकर) यह अस्त्र का त्याग तो आपके कुलक्रम से ही चला आ रहा है।

अश्वत्थामा– अरे, नीच! तेरे जैसे लोगों का हमेशा शस्त्र धारण करना भी तो गुरुशाप से निष्फल होने से, पूर्णरूप से शस्त्र के परित्याग जैसा ही है।

कर्ण– अरे मूर्ख!

जब तब मैं शस्त्र को धारण किए हुए हूँ, तब तक किसी दूसरे शूरवीर की कोई आवश्यकता नहीं है अथवा जो कार्य मेरे शस्त्र से सिद्ध नहीं हो सकता है, वह भला किससे सिद्ध होगा?।।46।।

(नेपथ्य में)

आः दुरात्मन्! द्रौपदी के केश एवं वस्त्र खींचने का महापाप करने वाले! नीच धृतराष्ट्र पुत्र! निःसन्देह तू बहुत समय के बाद मेरे सामने आया है। अरे नीच पशु! अब कहाँ जा रहा है? और भी, अरे कर्ण, दुर्योधन, शकुनि आदि पाण्डव द्रोहियों! तथा स्वाभिमानी धनुर्धारियों! आप सभी लोग सुन लीजिए–

पशु के समान नीच, जिसके द्वारा पांचालराज की पुत्री केश पकड़कर खींची गयी थी, जिसने इस द्रौपदी का वस्त्र भी राजाओं एवं गुरुजनों के सामने खींचा था, जिसके वक्षःस्थल की रुधिररूपी मदिरा को पीने की मैंने प्रतिज्ञा की थी, वही यह दुःशासन मेरी भुजारूपी पिंजरे में पड़ा हुआ है। हे कौरवों! इसे बचा लो।।47।।

(अन्वय– नृ–पशुना येन पांचालराज–आत्मजा शिरोरुहे कृष्टा, येन अस्याः परिधानम् अपि राज्ञाम् गुरूणाम् पुरः अपहृतम्, यस्य उरः-स्थल–शोणित–आसवम् पातुम् अहम् प्रतिज्ञातवान्, सः अयम् मद्-भुज–पंजरे निपतितः, कौरवाः संरक्ष्यताम् ।।47।।)

(सर्वे आकर्णयन्ति)

अश्वत्थामा– (सोत्प्रासम्) अंगराज! सेनापते! जामदग्न्यशिष्य! द्रोणोपहासिन्! भुजबलपरिरक्षितसकललोक! (धृतायुधः (3/46) इति पठित्वा) इदं तदासन्नतरमेव संवृत्तम्। रक्षैनं साम्प्रतं भीमाद् दुःशासनम्।

कर्णः– आः का शक्तिर्वृकोदरस्य मयि जीवति दुःशासनस्य छायामप्याक्रमितुम्। युवराज! न भेतव्यं, न भेतव्यम्। अयमहमागतोऽस्मि।

(इति निष्क्रान्तः)

अश्वत्थामा– राजन् कौरवनाथ! अभीष्ममद्रोणं सम्प्रति कौरवबलमालोडयन्तौ भीमार्जुनौ राधेयेनैवं विधेनान्येन वा न शक्यते निवारयितुम्। अतः स्वयमेव भ्रातुः प्रतीकारपरो भव।

दुर्योधनः– आः! का शक्तिरस्ति दुरात्मनः पवनतनयस्याऽन्यस्य वा मयि जीवति शस्त्रपाणौ वत्सस्य छायामप्याक्रमितुम्। वत्स! न भेतव्यं न भेतव्यम्। कः कोऽत्र भोः! रथमुपनय।

(इति निष्क्रान्तः)

(नेपथ्ये कलकलः)

अश्वत्थामा– (अग्रतो विलोक्य, ससम्भ्रमम्) मातुल! हा धिक्, कष्टं कष्टम्। एष भ्रातुः प्रतिज्ञाभंगभीरुः किरीटी समं दुर्योधनराधेयौ शरवर्षैर्दुर्वारैरभिद्रवति। हा कष्टं कष्टम्। सर्वथा पीतं दुःशासनशोणितं भीमसेनेन। न खलु विषहे दुर्योधनाऽनुजस्यैनां विपत्तिमवलोकयितुम्। अनृतमनुमतं नाम। मातुल! शस्त्रं शस्त्रम्।

सत्यादप्यनृतं श्रेयो धिक्स्वर्गं नरकोऽस्तु मे।
भीमाद् दुःशासनं त्रातुं त्यक्तमत्यक्तमायुधम् ।।48।।

(सभी सुनते हैं)

अश्वत्थामा– (उपहासपूर्वक) अंगराज! हे सेनापते! परशुराम शिष्य! द्रोण का उपहास करने वाले! भुजबल से सम्पूर्ण संसार की रक्षा करने वाले! **(धृतायुधः 3/46 इत्यादि को पढ़कर)** यह वही अवसर आ गया है, अब भीम से इस दुःशासन को बचाओ।

कर्ण– अरे! मेरे जीवित रहते हुए वृकोदर की क्या सामर्थ्य है कि वह युवराज की छाया को भी छू सके। हे युवराज! मत डरो, मत डरो। यह मैं आ ही गया हूँ। **(यह कहकर निकल जाता है)**

अश्वत्थामा– राजन्! कौरवनाथ! भीष्म एवं द्रोण से रहित कौरव सेना को मथते हुए भीम, अर्जुन, अब राधेय कर्ण अथवा इसीप्रकार के किसी दूसरे द्वारा रोके नहीं जा सकते हैं, इसलिए आप ही अपने भाई को बचाने का प्रयास करो।

दुर्योधन– आः! दुष्टात्मा वायुपुत्र भीम की क्या हिम्मत है, जो शस्त्र धारण किए हुए, मेरे जीवित रहते, मेरे भाई की छाया को भी छू सके। वत्स! डरो मत, डरो मत। अरे! यहाँ कौन है, रथ ले आओ।

(यह कहकर निकल जाता है)

(नेपथ्य में कलकल होता है)

अश्वत्थामा– (आगे देखकर, वेगपूर्वक) मामाजी! धिक्कार है, हाय कष्ट है। यह भाई की प्रतिज्ञा के भंग होने से डरा हुआ अर्जुन, इस दुर्योधन एवं कर्ण को भयंकर बाणों की वर्षा से रोक रहा है। हाय, कष्ट है, कष्ट है। भीम ने तो दुःशासन का रक्त पी ही लिया। निःसन्देह दुर्योधन के छोटे भाई दुःशासन की इस विपत्ति को देखना भी मैं सहन नहीं कर पा रहा हूँ। मेरी प्रतिज्ञा भले ही झूठी हो जाए। हे मामा! शस्त्र दीजिए, शस्त्र लाइए।

सत्य से असत्य ही श्रेयष्कर है, स्वर्ग को भी धिक्कार है, मुझे भले ही नरक की प्राप्ति हो जाए, त्यागा हुआ भी शस्त्र, वस्तुतः भीम से दुःशासन को बचाने के लिए बिना त्यागा हुआ ही है।।48।।

(अन्वय– सत्यात् अपि अनृतम् श्रेयः, स्वर्गम् धिक्, मे नरक अस्तु, त्यक्तम् (अपि) आयुधम् भीमात् दुःशासनम् त्रातुम् अत्यक्त ।।48।।)

(इति खड्गं ग्रहीतुमिच्छति)

(नेपथ्ये)

महात्मन्! भारद्वाजसूनो! न खलु सत्यवचनमुल्लंघितपूर्वमु ल्लंघयितुमर्हसि।

कृपः– वत्स! अशरीरिणी भारती भवन्तमनृतादभिरक्षति।

अश्वत्थामा– कथमियममानुषी वाङ् नानुमनुते संग्रामावतरणं मम। आः, सर्वथा पाण्डवपक्षपातिनो देवाः। सर्वथा पीतं दुःशासनशोणितं भीमेन। भोः कष्टं कष्टम्।

दुःशासनस्य रुधिरे पीयमानेऽप्युदासितम्।
दुर्योधनस्य कर्ताऽस्मि किमन्यत्प्रियमाहवे।।49।।

(अन्वय– दुःशासनस्य रुधिरे पीयमाने अपि, (मया) उदासितम्, आहवे दुर्योधनस्य किम् अन्यत् प्रियम् कर्ता अस्मि।।49।।)

मातुल! राधेयक्रोधवशादनार्यमस्माभिराचरितम्। अतस्त्वमपि तावदस्य राज्ञः पार्श्ववर्ती भव।

कृपः– गच्छाम्यहमत्र प्रतिविधातुम्। भवानपि शिविरसन्निवेशमेव प्रतिष्ठताम्।

(उभौ परिक्रम्य निष्क्रान्तौ)

॥ इति तृतीयोऽङ्कः ॥

(यह कहकर तलवार को ग्रहण करना चाहता है)

(नेपथ्य में)

हे महात्मन्! भारद्वाजपुत्र! वस्तुतः इससे पहले आपने अपनी प्रतिज्ञा का उल्लंघन नहीं किया है। इसलिए तुम्हें अब भी उसका अतिक्रमण नहीं करना चाहिए।

कृपाचार्य– वत्स! यह अशरीरिणी वाणी आपको असत्य आचरण करने से रोक रही है।

अश्वत्थामा– यह दिव्य वाणी मुझे युद्ध में जाने की अनुमति क्यों नहीं दे रही है? आः! देवता भी सबप्रकार से पाण्डवों के पक्षपाती हो गए हैं और भीम ने दुःशासन का रक्त पी ही लिया है। अरे! अत्यधिक कष्ट है, कष्ट है–

दुःशासन का रक्त पिए जाने पर भी जब मैं उदासीन बना रहा, तो युद्ध में दुर्योधन का दूसरा क्या प्रिय करूँगा?।।49।।

मामा जी, राधेय कर्ण पर क्रुद्ध होने के कारण हमने अनुचित ही कर दिया है। इसलिए अब आप ही इन राजा दुर्योधन के पास चले जाइए।

कृपाचार्य– ठीक है, मैं ही प्रतिकार करने के लिए जाता हूँ। आप भी शिविर के पास में ही बने रहें।

(दोनों घूमकर निकल जाते हैं)

॥ इसप्रकार महाकवि भट्टनारायण विरचित वेणीसंहार के तृतीय अङ्क का डॉ. राकेश शास्त्री, बाँसवाड़ा **द्वारा किया हुआ हिन्दी अनुवाद पूर्ण हुआ॥**

।। श्रीः ।।

चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशति प्रहारमूर्छितं रथस्थं दुर्योधनमपहरन्सूतः)

(सूतः ससम्भ्रमं परिक्रामति)

(नेपथ्ये)

भो भो! बाहुबलाऽवलेपप्रवर्त्तितमहासमरदोहदाः कौरवपक्षपातापणी कृतप्राणद्रविणसंचया नरपतयः! संस्तभ्यन्तां संस्तभ्यन्ताम्, निहत-दुःशासनपीतावशेषशोणितस्नपितबीभत्सवेषवृकोदरदर्शनभयपरिस्खलत् प्रहरणानि रणात्प्रद्रवन्ति बलानि।

सूतः– (विलोक्य) कथमेष धवलचपलचारुचामरचुम्बितकनक-कमण्डलुना शिखरावबद्धवैजयन्तीसूचितेन हतगजवाजिनरकलेवरसहस्र-संमर्दविषमोद्घातकृतकलकलकिंकिणीजालमालिना रथेन शरवर्षस्तम्भित-परचक्रपराक्रमप्रसरः प्रद्रुतमात्मबलमाश्वासयन्कृपः किरीटिनाऽभियुक्त-मंगराजमनुसरति हन्त! जातमस्मद्‌बलानामवलम्बनम्।

(नेपथ्ये कलकलानन्तरम्)

शब्दार्थ– प्रहारमूर्च्छितम्–प्रहार से मूर्च्छित, अपहरन्–ले जाते हुए, ससम्भ्रमम् –घबराहटपूर्वक, परिक्रामति–घूमता है, अवलेप–अहंकार, समरदोहदाः–युद्ध के अभिलाषी, संस्तभ्यन्ताम्–रोकिए, शोणित–रक्त, खून, बीभत्स–भयंकर, प्रहरणानि–शस्त्रों को, प्रद्रवन्ति–भाग रहे हैं, विलोक्य–देखकर, गज–हाथी, वाजिन–घोड़े, सम्मर्द–भीड़, समूह, अनुसरति–अनुसरण करता है।

।। श्रीः ।।

चतुर्थ अङ्क

(उसके बाद प्रहार से मूर्च्छित, रथ में विद्यमान दुर्योधन को लिए हुए सूत प्रवेश करता है)

(सूत घबराहटपूर्वक घूमता है)

(नेपथ्य में) अरे! रे, बाहुबल के अहंकार से आरम्भ किए गए, महान् संग्राम के अभिलाषी कौरवों के पक्षपात के कारण, अपनी प्राणरूपी धनराशि को दाँव पर लगा देने वाले, राजाओं! मारे गए, दुःशासन के पीने से बचे हुए, रुधिर से आप्लावित भयंकर वेश को धारण करने वाले, भीम को देखने से उत्पन्न भय के कारण, परिस्खलित आयुधों वाली, रथ से भाग रही सेनाओं को रोकिए, रोकिए।

सूत– (देखकर) धवल, चंचल, सुन्दर चामरों से युक्त, स्वर्ण कमण्डलु वाले, शिखर पर फहराती हुई विजय–पताका से सूचित हजारों हाथी, घोड़े तथा मनुष्यों के शरीरों से रगड़ने के कारण, ऊँचे–नीचे गड्ढ़े पड़ जाने से बजती हुई, छोटी–छोटी घण्टिकाओं के समूह से सुशोभित रथ में बैठे हुए, बाणों की वर्षा से शत्रुओं की सेना के वेग को रोकने वाले, भाग रही अपनी सेना को ढाढ़स बँधाते हुए, कृपाचार्य, अर्जुन द्वारा घेरे गए अंगराज कर्ण का अनुसरण कर रहे हैं। प्रसन्नता का विषय है कि हमारी सेनाओं के लिए एक सहारा हो गया है।

(नेपथ्य में कलकल ध्वनि के बाद)

भो भोः! अस्मद्दर्शनभयस्खलितकार्मुककृपाणतोमरशक्तयः कौरव-चमूभटाः! पाण्डवपक्षपातिनश्च योधाः! न भेतव्यं न भेतव्यम्। अयमहं निहतदुःशासनपीवरोरःस्थलक्षतजासवपानमदोद्धतो रभसगामी स्तोकावशिष्टप्रतिज्ञामहोत्सवः कौरवराजस्य द्यूतनिर्जितो दासः पार्थमध्यमो भीमसेनः सर्वान्भवतः साक्षीकरोमि। श्रूयताम्–

राज्ञो मानधनस्य कार्मुकभृतो दुर्योधनस्याऽग्रतः
प्रत्यक्षं कुरुबान्धवस्य मिषतः कर्णस्य शल्यस्य च।
पीतं तस्य मयाऽद्य पाण्डववधूकेशाम्बराकर्षिणः
कोष्णं जीवत एव तीक्ष्णकरजक्षुण्णादसृग्वक्षसः ।।1।।

(अन्वय– मानधनस्य कार्मुक–भृतः राज्ञः , दुर्योधनस्य अग्रतः कुरु–बान्धवस्य प्रत्यक्षम्, कर्णस्य शल्यस्य च मिषतः, पाण्डव–वधूकेश-अम्बर–आकर्षिणः तस्य जीवतः एव, मया अद्य तीक्ष्ण–करज–क्षुण्णात् वक्षसः कोष्णम् असृक् पीतम् ।।1।।)

सूतः– (श्रुत्वा सभयम्) अये! कथमासन्न एवाऽसौ दुरात्मा कौरवराजपुत्रमहावनोत्पातमारुतो मारुतिः। अनुपलब्धसंज्ञश्च महाराजः। भवतु। सुदूरमपहरामि स्यन्दनम्। कदाचिद् दुःशासन इवाऽस्मिन्नप्ययमनार्योऽनार्यमाचरिष्यति। (त्वरितं परिक्रम्यावलोक्य च) अये! अयमसौ सरसीसरोज– विलोलनसुरभिशीतलमातरिश्वसंवाहितसान्द्रकिसलयो न्यग्रोधपादपः। उचिता विश्रामभूरियं समरव्यापारखिन्नस्य वीरजनस्य अत्रस्थश्चायम– यत्नापवीजिततालवन्तेन हरिचन्दनच्छटाशीतलेनाऽप्रयत्नसुरभिणा दशा– परिणामयोग्येन सरसीसमीरणेनामुना च गतक्लमो भविष्यति महाराजः। (ऊर्ध्वमवलोक्य) लूनकेतुश्चायं रथोऽनिवारित एव प्रवेक्ष्यति छायाम्। (इति प्रवेशं रूपयित्वा) कः कोऽत्र भोः छत्रं व्यजनं चामरं च शीघ्रमुपनयतु।

अरे! अरे! हमें देखने से उत्पन्न हुए भय के कारण, जिनके धनुष, कृपाण, तोमर तथा शक्तियाँ गिर रही हैं, ऐसे कौरव सेना के वीरों! एवं पाण्डवों के पक्षपाती योद्धाओं! आपको डरना नहीं चाहिए, डरना नहीं चाहिए। दुःशासन के पुष्ट वक्षःस्थल के रुधिररूपी आसव का पान करने से मतवाला, शीघ्रगामी, कुछ शेष प्रतिज्ञारूपी महोत्सव वाला, कौरवराज का जुए में जीता हुआ सेवक, पार्थ से मध्यम पाण्डव मैं भीमसेन आप सभी को साक्षी बना रहा हूँ, सुनिए–

मान ही है धन जिसका, ऐसे धनुर्धारी राजा दुर्योधन के समक्ष, कौरव पक्षपाती कर्ण तथा शल्य के सामने, देखते हुए, पाण्डव वधू द्रौपदी के केश एवं वस्त्रों को खींचने वाले, दुःशासन का उसके जीवित रहते हुए ही, आज मैंने अपने तीक्ष्ण नाखूनों से फाड़े गए, वक्षःस्थल से कुछ–कुछ गर्म खून पी लिया है।।1।।

सूत– (सुनकर, भयपूर्वक) अरे! क्या यह दुष्ट कौरवराजपुत्र रूपी महान् वन में उपद्रव उत्पन्न करने वाले, पवन के समान पवनपुत्र भीम पास ही आ गया है? जबकि यहाँ पर महाराज अभी तक बेहोश हैं। अस्तु, रथ को दूर ले जाता हूँ। कहीं ऐसा न हो कि दुःशासन के समान, इनके प्रति भी यह अनार्य दुष्टतापूर्ण व्यावहार कर बैठे।

(अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक घूमकर और देखकर) अहो! यह तो तालाब पर हिल रहे कमलों से सुगन्धित एवं शीतल पवन द्वारा हिलाए गए, घने किसलय दलों वाला वटवृक्ष है। इसलिए यह युद्धकर्म से थके हुए, वीर पुरुष के विश्राम के योग्य स्थान है। यहाँ रहने पर पंखे के डुलाए बिना ही श्वेत चन्दन की छटा से शीतलरस के बिना प्रयत्न के ही सुगन्धित, चैतन्य प्रदान करने योग्य, इस तालाब की ओर चलने वाली वायु द्वारा महाराज की थकावट दूर हो जाएगी। **(ऊपर देखकर)**

साथ ही, कटी हुई ध्वजा वाला यह रथ, बिना किसी रुकावट के इसकी छाया में प्रविष्ट हो जाएगा। **(प्रविष्ट होने का अभिनय करके)** अरे यहाँ कौन है? छत्र, पंखा और चामर तो शीघ्र ले आओ।

(समन्तादवलोक्य) कथं न कश्चिदत्र परिजनः। नूनं तथाविधस्य वृकोदरस्य दर्शनादेवं विधस्य च स्वामिनस्त्रासेन शिविरसन्निवेशमेव प्रविष्टः। कष्ट भोः! कष्टम्।

दत्त्वा द्रोणेन पार्थादभयमपि न संरक्षितः सिन्धुराजः,
क्रूरं दुःशासनेऽस्मिन्हरिण इव कृतं भीमसेनेन कर्म।
दुःसाध्यामप्यरीणां लघुमिव समरे पूरयित्वा प्रतिज्ञां
नाहं मन्ये सकामं कुरुकुलविमुखं दैवमेतावताऽपि।।2।।

(अन्वय– पार्थात् अभयम् दत्त्वा अपि, द्रोणेन सिन्धुराजः न संरक्षितः, भीमसेनेन हरिणे इव अस्मिन् दुःशासने क्रूरम् कर्म कृतम्, समरे अरीणाम् दुःसाध्याम् अपि प्रतिज्ञाम् लघुम् इव पूरयित्वा, कुरु–कुल–विमुखम् दैवम् एतावता अपि सकामम् न अहम् मन्ये ।।2।।)

(राजानमवलोक्य) कथमद्याऽपि चेतनां न लभते महाराजः? भो कष्टम्। (निश्वस्य च)

मदकलितकरेणु भज्यमाने
विपिन इव प्रकटैकशालशेषे।
हतसकलकुमारके कुलेऽस्मिंस्त्व–
मपि विधेरवलोकितः कटाक्षैः।।3।।

(अन्वय– मद–कलित–करेणु भज्यमाने, प्रकट–एक–शाल–शेषे, विपिने इव हत–सकल–कुमारके अस्मिन् कुले, त्वम् अपि विधेः कटाक्षैः अवलोकितः ।।3।।)

(आकाशे लक्ष्यं बद्ध्वा) ननु भो हतविधे! भरतकुलविमुख!

अक्षतस्य गदापाणेरनारूढस्य संशयम्।
एषाऽपि भीमसेनस्य प्रतिज्ञा पूर्यते त्वया!।।4।।

(अन्वय– गदा–पाणेः अक्षतस्य संशयम् अनारूढस्य भीमसेनस्य एषा अपि प्रतिज्ञा त्वया पूर्यते।।4।।)

दुर्योधनः– (शनैरुपलब्धसंज्ञः) आः ! का शक्तिरस्ति पवनतनयस्य दुरात्मनो वृकोदरहतकस्य मयि जीवति दुर्योधने प्रतिज्ञां पूरयितुम्?।

(चारों ओर देखकर) क्या यहाँ कोई भी परिजन नहीं है? निश्चय ही, उसप्रकार के भीमसेन को देखने मात्र से एवं इसप्रकार के महाराज के त्रास से सभी शिविर के पास चले गए हैं। अरे! कष्ट है, महान् कष्ट है।

पार्थ से बचाने के लिए कहकर भी, आचार्य द्रोण, सिन्धुराज जयद्रथ को बचा नहीं सके तथा भीमसेन ने हरिण के समान इस दुःशासन पर क्रूरकर्म कर दिया। युद्ध में शत्रुओं की भी दुःसाध्य प्रतिज्ञा को तिनके के समान पूरा करके, कुरुवंश के विमुख बना हुआ भाग्य, मेरे विचार से तो इतना अनिष्ट करके भी अभी तक पूर्णमनोरथ वाला नहीं हुआ है।।2।।

(राजा को देखकर) क्या अब भी महाराज होश में नहीं आए हैं? अरे! कष्ट है (लम्बी श्वास लेकर)–

मतवाले हाथियों द्वारा नष्ट किए गए वन में बचे हुए एकमात्र शाल के वृक्ष के समान, पाण्डवों द्वारा सभी कुमारों को नष्ट किए जाने से एकमात्र बचे हुए, कौरवकुल में तुम भी प्रतीत होता है कि दुर्भाग्य की कुदृष्टि से देखे गए हो।।3।।

(आकाश की ओर देखकर) अरे! हतभाग्य! भरतकुल विमुख! ऐसा प्रतीत हो रहा है कि **गदा हाथ में लिए हुए, पात्र के अभाव में ही निश्चितरूप से भीमसेन की यह दूसरी प्रतिज्ञा भी तुम्हारे द्वारा पूरी की जा रही है।।4।।**

दुर्योधन– (धीरे–धीरे होश में आकर) आः! पवनपुत्र दुष्ट वृकोदर की क्या सामर्थ्य है, जो मुझ दुर्योधन के जीवित रहते हुए, अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर सके?

शब्दार्थ–कश्चित्–कोई, परिजनः–सेवक, त्रासेन–डर से, दत्वा–देकर, पूरयित्वा–पूरा करके, एतावता–इतने, मन्ये–मानता हूँ, विपिने–वन में, सकल–सभी, अवलोकितः–देखा गया, बद्ध्वा–बाँधकर, हतविधे–दुर्भाग्य।

वत्स दुःशासन! न भेतव्यं न भेतव्यम्। अयमहमागतोऽस्मि। ननु, सूत! प्रापय रथं तमेवोद्देशं यत्र वत्सो मे दुःशासनः।

सूतः– आयुष्मन्! अक्षमाः सम्प्रति वाहास्ते रथमेनमुद्वोढुम्। (अपवार्य) मनोरथं च।

दुर्योधनः– (रथादवतीर्य सगर्वं साकूतं च) कृतं स्यन्दनगमन-कालातिपातेन ।

सूतः– (सवैलक्ष्यं सकरुणं च) मर्षयतु मर्षयत्वायुष्मन्।

दुर्योधनः– धिक्सूत! किं रथेन? केवलमरातिविमर्दसंघट्टसंचारी दुर्योधनः खल्वहम्। तदगदामात्रसहायः समरभुवमवतरामि।

सूतः– आयुष्मन् एवमेतत्, कः सन्देहः?

दुर्योधन– यद्येवं किमेवं भाषसे? पश्य–

बालस्य मे प्रकृतिदुर्ललितस्य पापः,
पापं व्यवस्यति समक्षमुदायुधोऽसौ।
अस्मिन्निवारयसि किं व्यवसायिनं मां ?
क्रोधो न नापि करुणा न च तेऽस्ति लज्जा!।।5।।

(अन्वय– उत्–आयुधः असौ पापः मे समक्षम्, प्रकृति–दुर्ललितस्य बालस्य पापम् व्यवस्यति, अस्मिन् व्यवसायिनम् माम् किम् निवारयसि? ते क्रोधः न, न अपि करुणा, न च लज्जा अस्ति।।5।।)

सूतः–(सकरुणः पादयोर्निपत्य) एतद्विज्ञापयामि आयुष्मन्! सम्पूर्ण-प्रतिज्ञेन निवृत्तेन भवितव्यमिदानीं दुरात्मना वृकोदरहतकेन। अत एवं ब्रवीमि।

दुर्योधनः– (सहसा भूमौ पतन्) हा वत्स दुः शासन! हा मदाज्ञा विरोधितपाण्डव! हा विक्रमैकरस! हा मदंकदुर्ललित! हा अरातिकुल–गजघटामृगेन्द्र! हा युवराज! क्वासि ? प्रयच्छ मे प्रतिवचनम् ।

वत्स! दुःशासन, डरो मत, डरो मत। मैं आ गया हूँ। अरे सूत! रथ को उसी स्थान पर पहुँचाओ, जहाँ पर मेरा प्रिय अनुज दुःशासन है।

सूत– हे आयुष्मन्! आपके घोड़े अब इस रथ को वहन करने एवं **(एक ओर मुख करके)** आपका मनोरथ पूरा करने में समर्थ नहीं हैं।

दुर्योधन– (रथ से उतरकर गर्व एवं अभिमानपूर्वक) रथ से जाने के लिए विलम्ब करना व्यर्थ है।

सूत– **(लज्जित होकर, करुणापूर्वक)** आयुष्मन्! क्षमा कीजिए, क्षमा कीजिए।

दुर्योधन– हे सूत! तुम्हें धिक्कार है। अब रथ से क्या लाभ? शत्रुओं का मर्दन करके, युद्धक्षेत्र में भ्रमण करने वाला, मैं अकेला दुर्योधन हूँ। इसलिए गदामात्र हाथ में लेकर मैं युद्धभूमि में उतर रहा हूँ।

सूत– आयुष्मन्! यह ऐसा ही है।

दुर्योधन– यदि ऐसा है तो फिर इसप्रकार क्यों कह रहे हो? देखो,

शस्त्र उठाए हुए वह पापी मेरे समक्ष, स्वभाव से कोमल बालक दुःशासन पर अत्याचार करे और उससे बदला लेने का उद्यम करने से तुम मुझे रोक रहे हो? इस पर तुम्हें क्रोध, करुणा एवं लज्जा नहीं आती है?।।5।।

सूत– (करुणापूर्वक चरणों में गिरकर) आयुष्मन्! मैं यह निवेदन कर रहा हूँ कि उस दुरात्मा नीच वृकोदर द्वारा अब प्रतिज्ञा को पूरा किया जा चुका है, इसीलिए मैं ऐसा कह रहा हूँ।

दुर्योधन– **(अकस्मात् भूमि पर गिरते हुए)** हाय! वत्स, दुःशासन! हाय मेरी आज्ञा से पाण्डवों का विरोध करने वाले, हा एकमात्र पराक्रमी! हाय मेरी गोद में कठिनता से पाले गए, हा शत्रुदल रूपी गजसमूह में सिंह के समान, युवराज! तुम कहाँ हो? मुझे प्रत्युत्तर दो।

(इति निःश्वस्य मोहमुपगतः)

सूतः– राजन्! समाश्वसिहि समाश्वसिहि।

दुर्योधनः– (संज्ञां लब्ध्वा । निःश्वस्य)

युक्तो यथेष्टमुपभोगसुखेषु नैव
त्वं लालितोऽपि हि मया न वृथाऽग्रजेन।
अस्यास्तु वत्स! तव हेतुरहं विपत्ते–
र्यत्कारितोऽविनयं न च रक्षितोऽसि।।6।।

(**अन्वय–** वत्स! त्वम् वृथा अग्रजेन मया यथेष्टम्, उपभोग-सुखे न एव युक्तः, न हि लालितः अपि, अस्याः तव विपत्तेः तु अहम् हेतु यत् अविनयम् कारितः असि, अस्य न च रक्षितः (असि) ।।6।।)

(इति पुनः पतति)

सूतः– आयुष्मन्! समाश्वसिहि समाश्वसिहि।

दुर्योधनः– धिक्सूत! किमनुष्ठितं भवता?

रक्षणीयेन सततं बालेनाऽऽज्ञानुवर्तिना।
दुःशासनेन भ्रात्राऽहमुपहारेण रक्षितः।।7।।

(**अन्वय–** सततम् रक्षणीयेन आज्ञा–अनुवर्तिना बालेन उपहारेण भ्रात्रा दुःशासनेन अहम् रक्षितः।।7।।)

सूतः– महाराज! मर्मभेदिभिरिषुतोमरशक्ति प्रासवर्षैर्महारथानाम- पहतचेतनत्वान्निश्चेतनः कृतो महाराज इत्यपहृतो मया रथः।

दुर्योधनः– सूत! विरूपं कृतवानसि–

तस्यैव पाण्डवपशोरनुजद्विषो मे
क्षोदैर्गदाऽशनिकृतैर्न विबोधितोऽस्मि।
तामेव नाधिशयितो रुधिरार्द्रशय्यां
दौःशासनीं यदहमाशु वृकोदरो वा।।8।।

(**अन्वय–** यत् तस्य एव मे अनुज–द्विषः पाण्डव–पशोः गदा- अशनि–कृतैः क्षोदैः न विबोधितः अस्मि, ताम् एव दौःशासनीम् रुधिर- आर्द्र–शय्याम् अहम् वृकोदरः वा आशु न अधिशयितः ।।8।।)

(ऐसा कहकर लम्बी श्वास छोड़ता हुआ मूर्च्छित हो जाता है)

सूत– राजन्! धैर्य धारण कीजिए, धैर्य धारण कीजिए।

दुर्योधन– (होश में आकर, लम्बी श्वास लेकर)

हे वत्स! निष्फलरूप से अग्रज कहलाने वाले, मुझ दुर्योधन ने तुम्हें उपभोग सुखों को भोगने का अवसर ही प्रदान नहीं किया एवं न ही उचितरूप से तुम्हारा लालन पालन ही किया, अपितु तुम्हारी इस विपत्ति का तो कारण भी मैं ही हूँ, जो तुम्हारे द्वारा द्रौपदी को निर्वसना करवाया, किन्तु तुम्हारी रक्षा न कर सका।।6।।

(ऐसा कहकर फिर से गिर जाता है)

सूत– आयुष्मन्! धैर्य धारण कीजिए, धैर्य धारण कीजिए।

दुर्योधन– सूत! तुम्हें धिक्कार है। तुम्हारे द्वारा यह क्या कर दिया गया?

निरन्तर रक्षा करने योग्य, आज्ञा का पालन करने वाले, भ्राता दुःशासन ने अपने प्राणों की भेंट देकर मेरी रक्षा की है।।7।।

सूत– महाराज! शत्रुओं द्वारा मर्मभेदी बाण, तोमर, शक्ति एवं भालों की वर्षा करके, महारथियों के बेहोश कर दिए जाने से और महाराज के मूर्च्छित होने से रथ को मैं यहाँ ले आया था।

दुर्योधन– हे सूत! तुमने यही तो अनुचित किया है–

जो मेरे अनुज के शत्रु उस पाण्डवरूपी पशु के गदारूपी वज्र से किए गए, प्रहारों द्वारा मैं यदि होश में नहीं आ सका अथवा दुःशासन की उसी रुधिर से भीगी शय्या पर मैं या वृकोदर शीघ्र ही सुलाया नहीं जा सका।।8।।

शब्दार्थ– लब्ध्वा–प्राप्त करके, लालितः–पाला गया, पतति–गिरता है, धिक्–धिक्कार है, सततम्–निरन्तर, अपहृतः–अपहरण किया गया, विरूपम्–अनुचित।

(निःश्वस्य नभो विलोक्य)

ननु भो हतविधे! कृपाविरहित! भरतकुलविमुख!

अपि नाम भवेन्मृत्युर्न च हन्ता वृकोदरः।

सूतः– शान्तं पापं, शान्तं पापम्। महाराज! किमिदम्?

दुर्योधनः–

घातिताऽशेषबन्धोर्मे किं राज्येन जयेन वा।।9।।

(अन्वय– अपि नाम मृत्युः भवेत् न च हन्ता वृकोदरः (स्यात्) अशेष–बन्धोः घातिताः, किम् राज्येन, जयेन वा।।9।।)

(ततः प्रविशति शरप्रहारव्रणबद्धपट्टिकालङ्कृतकायः सुन्दरकः)

सुन्दरकः– आर्याः! अपि नामास्मिन्नुद्देशे सारथिद्वितीयो दृष्टो युष्माभिर्महाराजदुर्योधनो न वेति ?। (निरूप्य) कथं न कोऽपि मन्त्रयते? भवतु। एतेषां बद्धपरिकराणां पुरुषाणां समूहो दृश्यते। अत्र गत्वा प्रक्ष्यामि।[1] (परिक्रम्य विलोक्य च) कथमेते खलु स्वस्वामिनो गाढप्रहाराऽऽहतस्य घनसन्नाहजालदुर्भेद्यमुखैः कंकवदनैर्हृदयाच्छल्यान्युद्धरन्ति। तन्न खल्वेते जानन्ति। भवतु। अन्यतो विचेष्यामि। (अग्रतोऽवलोक्य किंचित्परिक्रम्य) इमे खल्वपरे प्रभूततराः संगता वीरमनुष्या दृश्यन्ते। तदत्र गत्वा प्रक्ष्यामि। (उपगम्य) हंहो! जानीथ यूयं कस्मिन्नुद्देशे कुरुनाथो वर्तत इति?। कथमेतेऽपि मां प्रेक्ष्याधिकतरं रुदन्ति। तन्न खल्वेतेऽपि जानन्ति। हा! अतिकरुणं खल्वत्र वर्तते।[2]

---

[1]. अज्जा! अवि णाम इमस्सिं उद्देसे सारहिदुइओ दिट्ठो तुम्मेहि महाराजदुज्जोहणो ण वेत्ति?। कहं ण कोवि मन्तेदि!। होदु। एदाणं बद्धपरिअराणं पुरिसाणं समूहो दीसइ एत्थ गुदअ पुच्छिस्सम्।

[2]. कहं एदे क्खु ससामिणो गाढप्पहारादस्स घणसण्णाहजालदुब्भे– ज्जमुहेहिं कंकवदनेहिं हिअआदो सल्लाइं उद्धरन्ति। ता ण क्खु एदे जाणन्ति। होदु। अण्णदो विचिणइस्सम्। इमे क्खु अवरेप्प हूददरा संगदा वीरमणुस्सा दीसन्ति। ता एत्थ गदुअ पुच्छिस्सम्। हंहो! जाणह तुम्हे कस्सिं उद्देसे कुरुणाहो वट्टइ त्ति? कहं एदे वि मं पेक्खिअ अहिअदरं रोअन्दि। ता ण क्खु एदे वि जाणन्ति। (दृष्ट्वा) हा! अदिकरुणं क्खु एत्थ वट्टइ।

(लम्बी श्वास लेकर, आकाश में देखकर) कृपा से रहित, भरतकुल के विमुख, अरे! दुष्ट विधाता!

मेरी मृत्यु भले ही हो जाए, किन्तु मेरा हन्ता वृकोदर न होवे।

सूत– पाप शान्त हो, पाप शान्त हो, महाराज! यह क्या है?

दुर्योधन– अपने सभी भाइयों के मरवा डालने वाले, मुझे अब राज्य अथवा विजय प्राप्त करने से क्या लाभ?।।9।।

(उसके बाद बाणों के आघात से घावों पर पट्टियाँ बाँधे हुए सुन्दरक प्रवेश करता है)

सुन्दरक– हे आर्यो! क्या आपने इस स्थान पर सारथि के साथ महाराज दुर्योधन को देखा है अथवा नहीं। **(देखकर)** क्या कोई नहीं बता रहा है? ठीक है, यह युद्ध करने के लिए सन्नद्ध लोगों का समूह दिखायी दे रहा है, यहाँ जाकर पूछता हूँ। **(घूमकर और देखकर)** गहरी चोट खाए हुए, अपने स्वामी के बने कवचरूपी जाल के कारण दुर्भेद्य बाण निकालने वाले यन्त्रों से, ये लोग तो वक्षःस्थल से बाण निकाल रहे हैं, इसलिए ये तो नहीं जानते होंगे।

ठीक है, दूसरी जगह ढूँढ़ता हूँ **(सामने देखकर कुछ घूमकर)** ये दूसरे इकट्ठे हुए वीर लोग दिखायी दे रहे हैं, तो यहाँ पर चलकर पूछता हूँ। **(पास जाकर)** अरे! क्या आप लोग जानते हैं कि कुरुपति कहाँ हैं? क्या ये भी मुझे देखकर अत्यधिक रो रहे हैं, तब तो ये भी नहीं जानते हैं **(देखकर)** हाय! निश्चय ही, यह तो अत्यन्त कारुणिक दृश्य है।

शब्दार्थ– हन्ता–मारने वाला, घातिताः–मारने वाला, उद्देशे–प्रदेश में, दृष्टः– देखा गया, वा–अथवा, मन्त्रयते–मन्त्रणा कर रहा है, भवतु–ठीक है, प्रक्ष्यामि–पूछूँगा, परिक्रम्य–घूमकर, शल्याणि–बाणों को, जानन्ति–जानते हैं, विचेष्यामि–ढूँढ़ता हूँ, गत्वा–जाकर, इति–इसप्रकार, ऐसा, माम्–मुझको, रुदन्ति–रोते हैं, जानन्ति–जानते हैं।

एषा वीरमाता समरविनिहतं पुत्रकं श्रुत्वा रक्तांशुकनिवसनया समग्रभूषणया वध्वा सहाऽनुम्रियते। (सश्लाघम्) साधु वीरमातः! साधु अन्यस्मिन्नपि जन्मनि जन्मान्तरेऽनिहतपुत्रका भविष्यसि। भवतु, अन्यतः प्रक्ष्यामि। (अन्यतो विलोक्य) अयमपरो बहुप्रहारनिहतकायोऽकृतव्रणबन्ध एव योधसमूह इमं शून्यासनं तुरंगममुपालभ्य रोदिति। नूनमेतेषामत्रैव स्वामी व्यापादितः। तन्न खल्वेतेऽपि जानन्ति। भवतु। अन्यतो गत्वा प्रेक्ष्यामि।[1] (सर्वतो विलोक्य)

कथं सर्व एवाऽवस्थानुरूपं व्यसनमनुभवन्भागधेयविषमशीलतया पर्याकुलो जनः। तत्किमिदानीमत्र प्रेक्ष्यामि। कं वोपालप्स्ये? भवतु स्वमेवात्र विचेष्यामि। (परिक्रम्य) भवतु। दैवमिदानीमुपालप्स्ये। हंहो दैव! एकादशानामक्षौहिणीनां नाथो, ज्येष्ठो भ्रातृशतस्य, भर्ता गांगेय-जयद्रथद्रोणाऽङगराजशल्यकृपकृतवर्माऽश्वत्थामाप्रमुखस्य राजचक्रस्य सकलपृथ्वीमण्डलैकनाथो महाराजदुर्योधनोऽप्यन्विष्यते, अन्विष्यमाणोऽपि न ज्ञायते, कस्मिन्नुद्देशे वर्तत इति।[2]

---

[1]. एसा वीलमादा समलविणिहदं पुत्तअं सुणिअ रत्तं सुअणिवसणाए समग्गभूसणाए बहुए सह अणुमरेदि। साहु वीरमादे! साहु। अण्णस्सिं वि जम्मन्तरे अणिहदपुत्तआ हुविस्ससि। होदु। अण्णदो पुच्छिस्सम्। अअं अवरो बहुप्पहारणिहदकाओ अकिदव्वणबन्धो एव्व जोहसमूहो इमं सुण्णासणं तुलंगमं उवालहिअ रोइदि। णूणं एदाणं एत्थ एव्व सामी वावादिदो। ता ण क्खु एदे वि जाणन्दि । होदु । अण्णदो गदुअ पुच्छिस्सम्, कहं सव्वो एव्व अवत्थाणुरूवं व्वसणं अणुभवन्तो भाअधेअविसमसीलदाए पज्जाउलो जणो। ता कं दाणीं एत्थ पुच्छिस्सम्? कं वा उवालहिस्सम्। होदु। सअं एव्व एत्थ विचिणइस्सम्। होदु। देव्वं दाणीं उवालहिस्सम्। हंहो देव्व! एआदसाणं अक्खोहिणीणं णाहो, जेट्ठो भादुसदस्स, भत्ता गांगेअजयद्दथ-द्दोणअंगराअसल्लकिवकिदवम्मअस्सत्था मप्पहुस्स राअचक्कस्स सअलप्पुहवीमण्डले-कक्णाहो महाराअ दुज्जोहणो वि अण्णेसीअदि। अण्णेसीअन्तो वि ण जाणीअदि करिंस उद्देसे वट्टइ त्ति, (विचिन्त्य निःश्वस्य च) अहवा किं एत्थ देव्वं उवालहामि।

[2]. जदो तस्स क्खु एदं णिब्भच्छिअविउरवअणवीअस्स, अवधीरिदपि दामह हिदो वदेसंकुरस्स, सउणिहद अप्पोच्छाणादिविरूढमूलस्स, जदुगेह जूदविससाहिणो सम्भूदचिर आलसम्बद्धावेरालवालस्स पांचाली केसग्गह णकुसुमस्स फलं परिणमदि।

यह वीरमाता युद्ध में पुत्रों का मारा जाना सुनकर, रक्तांशुक धारण किए हुए, सभी प्रकार के आभूषणों से युक्त वधू के साथ मरने के लिए जा रही है। **(प्रशंसा करते हुए)** धन्य हो, वीरमाता! धन्य हो। दूसरे जन्म में निश्चय ही, तुम्हें पुत्रवध का शोक भोगना नहीं पड़ेगा। ठीक है, दूसरे स्थान पर पूछता हूँ। **(दूसरी ओर देखकर)** अनेक प्रहारों से घायल शरीर वाला, घावों पर पट्टी बाँधे बिना ही योद्धाओं का दूसरा यह समूह, शून्य आसन वाले, घोड़े को उपालम्भ देकर रो रहा है। निश्चय ही, इसका स्वामी यहाँ मारा गया है, तो निश्चय ही, ये भी नहीं जानते हैं। ठीक है, दूसरी जगह जाकर खोजूँगा।

(चारों ओर देखकर) क्या सभी लोग अपनी अवस्था के अनुरूप दुःखों का अनुभव करते हुए, प्रतिकूल दैव के कारण भयभीत हैं, इसलिए यहाँ भला किससे पूछूँ? या फिर किसे उलाहना दूँ? ठीक है, स्वयं ही चलकर यहाँ देखता हूँ। **(घूमकर)** अच्छा तो अब भाग्य को ही कोसता हूँ। हा दैव! ग्यारह अक्षौहिणी सेना के सेनाध्यक्ष, सौ भाइयों के बड़े भाई, भीष्म, जयद्रथ, द्रोण, कर्ण, शल्य, कृपाचार्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा आदि राजाओं के समूह के स्वामी, सम्पूर्ण भूमण्डल के एकमात्र भर्ता, महाराज दुर्योधन भी खोजे जा रहे हैं। ढूँढ़े जाने पर भी न जाने किस स्थान पर हैं? यह पता नहीं चल पा रहा है।

शब्दार्थ– समरविनिहतम्–युद्ध में मारे गए, श्रुत्वा–सुनकर, रक्त–लाल, अंशुक–रेशमी वस्त्र, अनुम्रियते–पीछे मरा जा रहा है, जन्मनि–जन्म में, भविष्यसि–होओगी, प्रक्ष्यामि–पूछूँगा, उपालभ्य–उलाहना, रोदिति–रो रहा है, व्यापादितः–मारा गया, विचेष्यामि–खोजूँगा, एकादश–ग्यारह, अक्षौहिणी–विशिष्ट संख्यायुक्त हाथी, घोड़े, रथी तथा पैदल सेना।

(अन्यतोऽवलोक्य) अम्मो! जहा एत्थं एसो विविहरदिणप्पहा ससंबलिदसूरकिरणप्पसूद सक्कचावसहस्ससं पूरिदपूदिसामुहो लूणकेदुवंसो रहो दीसइ।

(अन्यतो विलोक्य)

अथवा किमत्र दैवमुपालभे। यतस्तस्य खल्विदं निर्भत्सितविदुर-वचनबीजस्याऽवधीरितपितामहहितोपदेशांकुरस्य, शकुनिहतकप्रोत्साहनादि–विरूढमूलस्य जतुगृहद्यूतविषशाखिनः संभूतचिरकाल सम्बद्धवैराल-वालस्य पांचालीकेशग्रहणकुसुमस्य फलं परिणमिति।

अम्मो! यथाऽत्रैष विविधरत्नप्रभासंवलितसूर्यकिरणप्रसूतशक्रचाप-सहस्रसंपूरितदिङ्मुखो लूनकेतुवंशो रथो दृश्यते, तदहं तर्कयाम्य-वश्यमेतेन महाराजदुर्योधनस्य विश्रामोद्देशेन भवितव्यम्। यावन्नि-रूपयामि। (उपगम्य दृष्ट्वा निःश्वस्य च) कथमेकादशानामक्षौहिणीनां नायको भूत्वा महाराजो दुर्योधनः प्राकृतपुरुष इवाऽश्लाघनीयायां भूमावुपविष्टस्तिष्ठति। अथ वा तस्य खल्विदं पांचालीकेशग्रहकुसुमस्य फलं परिणमति। (उपगम्य दृष्ट्वा च) जयतु जयतु महाराजः।[1]

सूतः– (विलोक्य) आयुष्मन्! समरात्सुन्दरकः प्राप्तः।

दुर्योधनः– (विलोक्य) अये सुन्दरक! कच्चित्कुशलमंगराजस्य?

सुन्दरकः– देव! कुशलं शरीरमात्रेण।[2]

दुर्योधनः– (ससम्भ्रमम्) सुन्दरक! किं किरीटिनाऽस्य निहता धौरेयकाः, हतः सारथिर्भग्नो वा रथः ?

सुन्दरकः– देव! न भग्नो रथः। अस्य मनोरथोऽपि।[3]

दुर्योधनः– (सरोषम्) अरे! किमेवमस्पष्टकथितैराकुलमपि मे मनः पर्याकुलयसि। तदलं सम्भ्रमेण। अशेषतो विस्पष्टं कथ्यताम्।

---

[1]. ता अहं तकेमि अवस्सं एदिणा महाराअ दुज्जोहणस्स विस्सामुद्दे सेण होदव्वम्। याव निरूपेमि। (उपगम्य दृष्ट्वा निःश्वस्य च) कधं एआदहणं अक्खोहिणीणं णअको भविअ महाराओ दुज्जोहणो पइदपुरिसो विअ असलाहणीए भूमीए उवविट्ठो चिट्ठदि। अधवा तस्स क्खु एदं पंचालीकेसग्गहकुसुममस्स फलं परिणमदि। (उपसृत्य दृष्ट्वा च) जअदु जअदु महाराओ।

[2]. देव कुसलं सरीरमेत्तेण।

[3]. देव! ण भग्गो रहो। से मणोरहो वि।

(दूसरी ओर देखकर)

अथवा अब भाग्य को उलाहना देने से क्या लाभ? यह तो विदुर के वचनों के **तिरस्काररूप बीज** का, पितामह के हितकारी उपदेश पर ध्यान न देने रूपी **अंकुर का**, दुष्ट शकुनि के प्रोत्साहन रूपी वृद्धि को प्राप्त होने वाली **जड़** का, लाक्षागृह एवं जुए रूपी **विषवृक्ष** का, उत्पन्न हुए लम्बे समय से जुड़े हुए वैररूपी **आलवाल** (थाँवले) का एवं द्रौपदी के केश ग्रहणरूपी **फूल का फल** है। अरे! जो यहाँ अनेक रत्नों की कान्ति से युक्त, सूर्य की किरणों से उत्पन्न, हजारों इन्द्रधनुषों से दिशाओं को व्याप्त किए हुए, टूटे हुए ध्वज–दण्ड वाला, रथ दिखायी दे रहा है। इसलिए अनुमान करता हूँ कि अवश्य ही, यह महाराज का विश्रामस्थल होगा। तो देखूँ, **(पास जाकर, देखते हुए लम्बा श्वास लेकर)** भला कैसे ग्यारह अक्षौहिणी सेना के स्वामी होकर, महाराज दुर्योधन सामान्य व्यक्ति के समान, उबड़–खाबड़ (अप्रशस्त) भूमि पर बैठे हुए हैं अथवा यह उसी द्रौपदी के केश पकड़ने के **फूल का फल** प्रदर्शित हो रहा है। (पास जाकर, देखकर) जय हो, महाराज की जय हो।

सूत– (देखकर) आयुष्मन्! युद्धभूमि से सुन्दरक आया है।

दुर्योधन– (देखकर) अरे! सुन्दरक। अंगराज कुशल तो हैं?

सुन्दरक– महाराज! शरीरमात्र से कुशल हैं।

दुर्योधन– (घबराकर) सुन्दरक! क्या अर्जुन ने इसके घोड़े मार दिए हैं? सारथि को मार दिया अथवा रथ को नष्ट कर डाला है?

सुन्दरक– महाराज! रथ ही नहीं, अपितु उनका तो मनोरथ भी नष्ट कर डाला।

दुर्योधन– (क्रोधपूर्वक) अरे! इसप्रकार अस्पष्ट कहकर, व्याकुल हुए मेरे मन को अधिक व्याकुल क्यों कर रहा है? इसलिए घबराहट से बस करो, सभी कुछ स्पष्टरूप से कहो।

सुन्दरकः– यद्देव आज्ञापयति। अये! दिष्ट्या देवस्य मुकुटमणिप्रभावेणापनीता मे रणप्रहारवेदना। शृणोतु देवः। अस्तीदानीं कुमारदुःशासनवध[1] (इत्यर्धोक्ते मुखमाच्छाद्य शंकां नाटयति)

सूतः– सुन्दरक! कथय। कथितमेव दैवेन।

दुर्योधनः– कथ्यताम् । श्रुतमस्माभिः।

सुन्दरकः– (स्वगतम्) कथं दुःशासनवधः श्रुतो देवेन। शृणोतु देवः। अद्य तावत्कुमारदुःशासनवधामर्षितेन स्वामिनांगराजेन कृतकुटिलभृकुटीभंगभीषणललाटपट्टेनाऽविज्ञातसन्धानमोक्षेण शिलीमुखसंघातवर्षिणाऽभियुक्तः स दुराचरो दुःशासनवैरीमध्यमपाण्डवो भीमसेनहतकः।[2]

उभौ– ततस्ततः?

सुन्दरकः– ततो देव! उभयबलमिलद्दीप्यमानकरितुरगपदातिसमुद्भूतधूलिनिकरेण पर्यस्तगजघटासंघातेन च विस्तीर्यमाणेनान्धकारेणान्धीकृतमुभयबलम्। न खलु गगनतलं लक्ष्यते।[3]

उभौ– ततस्ततः?

सुन्दरकः– ततो देव! दूराकृष्टधनुर्गुणाच्छोटनटंकारगम्भीरभीषणेनाऽन्धकारेण ज्ञायते 'गर्जितं प्रलयजलधरेणेति।[4]

---

1. जं देवो आणवेदि। अए दिट्ठिआ देवस्स मउडमणिप्पहावेण अव णीदा मे रणप्पहारवेअणा। (इति साटोपं परिक्रम्य) सुणादु देवो। अज्ज दाव कुमालदुस्साणवह

2. कधं दुस्सासणबहो सुदो देवेण। (प्रकाशम्) सुणादु देवो। अत्थि दाणीं कुमालदुस्सासणवहामरिसिदेण सामिणा अंगराएण किदकुडिलभि उडीभंगभीसण ललाडवट्टेण अविण्णद संधाणमोक्खेण सिलीमुह संघाद वरिसिणा अभिजुत्तो सो दुराआरो दुस्सासणबैरिओ मज्झमपण्डवो भीमसेणहदओ।

3. तदो देव! उहअबलमिलन्तदीप्पन्तकरितुरअपदादिसमुद्धूदधूलिणि अरेण पज्जथगअधडा संघादेण अ वित्थरन्तेण अन्धआरेण अन्धीकिदं उहअबलम्। ण खु गगणतलं लक्खीअदि।

4. तदो देव! दूराकट्टि अधणु ग्गुणाच्छोडणटंकारगम्भीरभीसणेण अन्धआरेण जाणाअति–गज्जिदं पलअ जलहरेण त्ति।

सुन्दरक– जैसी महाराज की आज्ञा। सौभाग्य से महाराज की मुकुट की मणियों के प्रताप से मेरी युद्ध में किए गए प्रहारों की पीड़ा दूर हो गयी है। **(यह कहकर तेजी से घूमकर)** महाराज! सुनिए। आज कुमार दुःशासन के वध....

(आधा कहकर, मुँह को ढ़ककर शंका का अभिनय करता है)

सूत– सुन्दरक! कहो, यह तो विधाता ने ही कह दिया है।

दुर्योधन– कहो, हमने सुन लिया है।

सुन्दरक– **(अपने मन में)** क्या दुःशासन के वध का समाचार महाराज ने सुन लिया है? (प्रकट में) महाराज सुनिए। इसके बाद, कुमार दुःशासन के वध से क्रुद्ध, टेढ़ी भौंहों के कारण भयंकर ललाट वाले, महाराज अंगराज कर्ण ने इसप्रकार बाणों के समूह की वर्षा करके, उस दुःशासन के शत्रु, दुराचारी, दुष्ट मध्यम पाण्डव भीमसेन पर आक्रमण कर दिया, जिनका धनुष चढ़ाना एवं छोड़ा जाना तक दिखायी नहीं दे रहा था।

दोनों– उसके बाद, उसके बाद।

सुन्दरक– तत्पश्चात् हे देव! दोनों सेनाओं के मिल जाने से, दीप्यमान हाथी, घोड़े तथा पैदल सैनिकों द्वारा उठाए गए धूलि–समूह से फैले हुए, गजघटा समूह द्वारा फैलाए गए, अन्धकार से अन्धा बनाया गया गगनतल, वास्तव में दिखायी तक नहीं दे रहा था।

दोनों– उसके बाद, उसके बाद।

सुन्दरक– हे देव! उसके बाद, कान तक खींचे हुए, धनुष की डोरी को छोड़ने से उत्पन्न टंकार के गम्भीर एवं भयंकर घोष एवं अन्धकार से मानो प्रलयकालीन मेघ का गर्जन हो रहा था।

शब्दार्थ– यत्–जो, दिष्ट्या–सौभाग्य से, अपनीता–दूर हो गयी, रणप्रहार–वेदना–युद्ध में प्रहारों की पीड़ा। शृणोतु–सुनिए, देवः–महाराज, अस्ति–है, कथय–कहो, दैवेन–भाग्य द्वारा, श्रुतम्–सुन लिया, निकरेण–समूह द्वारा, हतक–नीच, लक्ष्यते–दिखायी दे रहा था, ज्ञायते–पता चल रहा था।

दुर्योधनः– ततस्ततः?

सुन्दरकः– ततो देव! द्वयोरपि तयोरन्योऽन्यसिंहनादगर्जितपिशुनं विविधपरिमुक्तप्रहरणाहतकवचसंगलितज्वलनविद्युल्लतं, बहलरुधिर-बिन्दुखद्योतभासुरगम्भीरस्तनितचापजलधरप्रसरच्छरधारासहस्रवर्षदुर्दर्शं जातं समरदुर्दिनम्।[1]

दुर्योधनः– ततस्ततः?

सुन्दरकः–ततो देव! एतस्मिन्नन्तरे ज्येष्ठस्य भ्रातुः परिभवशंकिना धनंजयेन वज्रनिर्घातनिर्घोषविषमरसितध्वजाग्रस्थितमहावानरस्तुरंगम-संवाहनव्यापृतवासुदेवशंखचक्रासिगदालांछितचटुलचतुर्बाहुदण्डदुर्दर्शन-आपूरितपांचजन्यदेवदत्ततारररसितप्रतिरवभरितदशदिशामुखकुहरो धावित-स्तमुद्देशं रथवरः।[2]

दुर्योधनः– ततस्ततः?।

सुन्दरकः– ततो भीमसेनधनंजयाभ्यामभियुक्तं पितरं प्रेक्ष्य ससम्भ्रमं विगलितमवधूय रत्नशीर्षकमाकर्णाकृष्टकठिनकोदण्डजीवो दक्षिणहस्तो-त्क्षिप्तशरपुंखविघट्टनत्वरायितसारथिकस्तं देशमुपगतः कुमारवृषसेनः।[3]

दुर्योधनः– (सावष्टम्भम्) ततस्ततः?।

सुन्दरकः– ततश्च देव! तेनाऽऽगच्छतैव कुमार वृषसेनेन विदलिताऽसिलताश्यामलस्निग्धपुंखैः कठिनकंकपत्रैः कृष्णवर्णैः शाण-

---

[1]. तदो देव! दोहिणं वि ताणं अण्णोण्णसिंहणादगज्जिदपिसुणं विविह परिमुक्क प्पहरणाहद कवअ संगलिदज्जलण विज्जुल्लअं बहललुहिल बिन्दुखज्जो अभासुर गम्भीर त्थणि अचापजलहरप्पसरन्तरसरधारासहस्स वरिसदुदंस्सं जादं समरदुद्दिणं।

[2]. तदो देव! एदस्सिं अन्तरे जेट्ठस्स भादुणो परिभअ संकिणा धणंज एण वज्जणिग्घादणिग्घोसविसमरसिदधअअग्गट्ठिदमहावाणरो, तुरंग मसंबाहणवापिदवासुदेव संखचक्कासिगदालंच्छिदचटुलचउब्बाहुदण्डदुद्द सणो, आपूरिअपंचजण्णदेअअत्त ताररसिदप्पदिरवभरिद्दसदिसामुहकुहरो धाविदो तं उद्देसं रहवरो।

[3]. तदो भीमसेणधणंजएहिं अभिजुत्तं पिदरं पेक्खिअ ससम्भमं विअलिअं अवधूणिअ रअणसीसअं आकण्णाकड्ढिदकठिणकोदण्डजीओ दाहिणह त्तुक्खित्तसरपुंखविघट्टण तुवराइ दसारहीओ तं देसं उवगदो कुमाल विससेणो।

दुर्योधन– उसके बाद, उसके बाद।

सुन्दरक– उसके पश्चात् हे देव! वहाँ पर उन दोनों में परस्पर सिंहनाद के समान भयंकर गर्जन करने वाला, विविध प्रकार से छोड़े गए, शस्त्रों के प्रहार से निकलने वाली अग्निरूपी विद्युल्लता वाला, अत्यधिक रुधिररूपी जुगनुओं से प्रकाशित, गम्भीर ध्वनि से युक्त धनुषरूपी बादलों से निकलने वाली, हजारों बाणोंरूपी धाराओं की वर्षा के कारण, दिखायी पड़ने में भी मुश्किल युद्धरूपी दुर्दिन हो गया।

दुर्योधन– उसके बाद, उसके बाद।

सुन्दरक– उसके बाद हे देव! इसी बीच ज्येष्ठ भ्राता भीमसेन की पराजय की आशंका से, धनंजय ने बिना बादलों के ही वज्रपात की ध्वनि के समान, विषम ध्वनि वाला, ध्वज के अग्रभाग पर विशाल वानर से युक्त, शंख, चक्र, गदा एवं तलवार से सुशोभित, चंचल, चार भुज–दण्डों से युक्त, भगवान् वासुदेव द्वारा पांचजन्य तथा देवदत्त शंखों की उच्च ध्वनि की प्रतिध्वनि से दशों दिशाओं के मुखरूपी गुफाओं को आपूरित करते हुए, अश्वों को हाँके जाने वाले, उत्तम रथ को उसी स्थान को लक्ष्य करके दौड़ा दिया।

दुर्योधन– उसके बाद, उसके बाद।

सुन्दरक– उसके पश्चात् भीमसेन और धनंजय से पिता को घिरा हुआ देखकर, वेग के कारण सिर से खिसके हुए, रत्नों से जड़े हुए मुकुट का भी तिरस्कार करके, कान तक कठोर धनुष की प्रत्यंचा को खींचकर, दाहिने हाथ से उठाए गए, बाणों की पूँछ को कुरेद कर, सारथि को शीघ्रता के लिए प्रेरित करके, **कुमार वृषसेन** उसी स्थान पर आ गए।

दुर्योधन– (गर्वपूर्वक) उसके बाद, उसके बाद।

सुन्दरक– और उसके बाद हे देव! आते ही कुमार वृषसेन ने टूटी हुई असिलता के समान, श्यामल और स्निग्ध पंखों से कठोर कंक पत्र वाले, काले रंग की कसौटी के पत्थर पर घिसे हुए बाण के

शिलानिशितश्यामलशल्यबन्धैः कुसुमित इव तरुर्मुहूर्तेन शिलीमुखैः प्रच्छादितो धनंजयस्य रथवरः।[1]

उभौ– (सहर्षम्) ततस्ततः?

सुन्दरकः– ततो देव! तीक्ष्णनिक्षिप्तनिशितभल्लबाणवर्षिणा धनंजयेनेषद्विहस्य भणितम्– 'अरे रे वृषसेन! पितुरपि तावत्ते न युक्तं मम कुपितस्याभिमुखं स्थातुम्, किं पुनर्भवतो बालस्य! तद् गच्छ। अपरैः कुमारैः सह गत्वा युध्यस्व। एवं वाचं निशम्य गुरुजनाधिक्षेपेणोद्दीपित–कोपोपरक्तमुखमण्डलविजृम्भितभृकुटीभंगभीषणेन चापधारिणा कुमार–वृषसेनेन मर्मभेदकैः परुषविषमैः श्रुतिपथकृतप्रणयैर्निर्भर्त्सितो गाण्डीवी बाणैर्न पुनर्दुष्टवचनैः।[2]

दुर्योधनः– साधु वृषसेन! साधु। सुन्दरक! ततस्ततः।

सुन्दरकः– ततश्च देव! निशितशराभिघातवेदनोपजातमन्युना किरीटिना चण्डगाण्डीवजीवाशब्दनिर्जितवज्रनिर्घातघोषेण बाणनिपतन–प्रतिषिद्धदर्शनप्रसरेण प्रस्तुतं शिक्षाबलानुरूपं किमप्याश्चर्यम्।[3]

दुर्योधनः– (साकूतम्) ततस्ततः?

---

1 . तदो अ देव! तेण आअच्छन्तेण एव्व कुमालविससेसेण विदलिदा सिलदासामल सिणिद्धपुंखेहि कठिणकंकवत्तेहिं किसणवणणेहिं साण सिलाणिसिदसामलसल्लबन्धेहिं कुसुमिदो विअ तरु मुहुत्तएण सिली मुहेहिं पच्छादिदो धणंजअस्स रहबरो।

2 . तदो देव! तीक्खविक्खित्तणिसिदभल्लबाणवरिसिणा धणंजएण ईसि विहसिअ भणिदम्– 'अरे रे विससेण! पिदुणो वि दाव दे ण जुत्तं मह कुविदस्स अभिमुहं ठादुं। किं उण भवदो वालस्स ता गच्छ। अवरेहिं कुमारेहिं सह गदुअ आओधेहि। एव्वं वाअं णिसमिअ गुरुअणाहिक्खेवेण उद्दीविअकोवोवरत्तमुहमण्डलविअम्भि अभिउडिभंगभीसणेण चावधारिणा कुमालविससेणेण मम्मभेदएहिं परुसविसमेहिं सुदिवहकिदप्पणएहिं णिब्भच्छिो गण्डीवी बाणेहिं ण उण दुट्ठवअणेहिं।

3 . तदो अ देव! णिसिदसराभिघादवेअणोपजादमण्णुणा किरीटिणा चण्डगणडीव जीआसद्दणिज्जिदवज्जणिग्घादघोसेण बाणणिपडणपडिसि द्धदंसणप्पसरेण पत्थुदं सिक्खाबलाणुरूबं किं वि अच्चरिअम्।

फलकों से क्षण भर में ही धनंजय का रथ उसीप्रकार आच्छादित कर दिया, **जैसे–** पुष्पों से लदा हुआ वृक्ष भौंरों के कारण काला दिखायी देने लगता है।[1]

दोनों– (प्रसन्नतापूर्वक) उसके बाद, उसके बाद।

सुन्दरक– उसके पश्चात् हे महाराज! तेजी से फैंके गए, तीक्ष्ण भालों एवं बाणों की वर्षा करने वाले, धनंजय ने किंचित् मुस्कुराकर कहा कि– अरे! ओ, वृषसेन! तुम्हारे तो कुपित हुए पिता भी मेरे समक्ष ठहरने में समर्थ नहीं हैं, फिर तुम जैसे बालक का तो कहना ही क्या? इसलिए जाओ, दूसरे कुमारों के साथ जाकर युद्ध करो। इस बात को सुनकर गुरुजनों की निन्दा से उद्दीप्त क्रोध के कारण, पूरी तरह लाल मुखमण्डल एवं भृकुटि के भंग से भयंकर प्रतीत होने वाले, धनुर्धारी कुमार वृषसेन ने मर्मभेदी कठोर तथा विषम बाणों को कानों तक खींच कर, जोरदार वर्षा करते हुए गाण्डीवी अर्जुन की भर्त्सना की, बस अपशब्दों द्वारा निन्दा नहीं की।

दुर्योधन– साधु, वृषसेन! साधु। सुन्दरक! उसके बाद क्या हुआ?

सुन्दरक– और उसके बाद महाराज! वहाँ पर तीक्ष्ण बाणों के प्रहार से हो रही पीड़ा से उत्पन्न क्रोध वाले, किरीटी अर्जुन ने, भयंकर गाण्डीव की प्रत्यंचा के शब्द से वज्रपात शब्द को भी तिरस्कृत करने वाले, बाणों की निरन्तर वृष्टि से, कुछ भी दिखायी न पड़ने वाला, धनुर्विद्या एवं पराक्रम के अनुरूप आश्चर्यजनक युद्धकर्म प्रारम्भ कर दिया।

दुर्योधन– **(घबराकर)** उसके बाद, उसके बाद।

---

[1]. महाकवि की उपमाओं की मौलिकता दर्शनीय है।

सुन्दरकः– ततश्च देव! तत्तादृशं प्रेक्ष्य शत्रोः समरव्यापार-चतुरत्वमविभाविततूणीरमुखधनुर्गुणगमनाऽऽगमनशरसन्धानमोक्षचटुलकर-तलेन कुमारवृषसेनेनापि सविशेषं प्रस्तुतं समरकर्म।[1]

दुर्योधनः– ततस्ततः?

सुन्दरकः– ततश्च देव! अत्रान्तरे विमुक्तसमरव्यापारो मुहूर्त-विश्रामितवैरानुबन्धो द्वयोरपि कुरुराजपाण्डवबलयोः 'साधु कुमारवृषसेन! साधु' इति कृतकलकलो वीरलोकोऽवलोकयितुं प्रवृत्तः।[2]

दुर्योधनः– (सविस्मयम्) ततस्ततः?

सुन्दरकः–ततश्च देव! अवधीरितसकलधानुष्कचक्रपराक्रमशालिनः सुतस्य तथाविधेन समरकर्मारम्भेण हर्षरोषकरुणाशंकासंकटे वर्तमानस्य स्वामिनोऽंगराजस्य निपतिता शरपद्धतिर्भीमसेने बाष्पपर्याकुलादृष्टिः कुमारवृषसेने।[3]

दुर्योधनः– (सभयम्) ततस्ततः?

सुन्दरकः– ततश्च देव! उभय बलप्रवृत्त साधुकारमर्षितेन शरवर्ष प्रज्वलितेन गाण्डविना तुरगेषु सारथावपि रथवरे धनुष्यपि जीवायामपि नरेन्द्र लांछने सितात पत्रे च व्यापारितः समं शिलीमुखासारः।[4]

दुर्योधनः– (सभयम्) ततस्ततः?

---

1. तदो अ देव! तं तारिसं पेक्खिअ सत्तुणो समरव्वावारचउरत्तणं अविभाविअतूणीर मुहधणुग्गुणगमणागमणसरसंधाणमोक्खचडुलकरअलेण कुमाल विससेणेण वि सविसेसं पत्थुदं समलकम्म।

2. तदो अ देव! एत्थन्तरे विमुक्कसमरव्वावारो मुहुत्तविस्सामिद वेराणुबन्धो दोणं वि कुरुराअपण्डवबलाणं साहु कुमाल विससेण ! साहु! त्ति किदकलअलो वीरलोओ अवलोइदुं वउत्तो।

3. तदो अ देव! अवहीरिदसअलधाणुक्कचक्कपराक्कमसालिणो सुदस्स तहाविहेण समलकम्मालम्भेण हरिसरोसकरुणासंकासंकडे वट्टमाणस्स सामिणो अंगराअस्स णिवडिआ सरपद्धइ भीमसेणो, बाष्पपज्जाउला दिट्ठी कुमालविससेणो।

4. तदो अ देव! उभअबलप्पउत्तसाहुकारामरिसिदेण सरवरिसज्जलिदेण गाण्डी विणा तुरगेसु सारहि वि रहवरे धणुं वि जीआइं वि णालिन्द लांछणे सिदादवत्ते अ व्वावारिदो समं सिलीमुहासारो।

सुन्दरक– और उसके पश्चात् हे देव! शत्रु के इसप्रकार युद्धकर्म को देखकर, युद्ध व्यापार के चातुर्य को, जिसमें धनुष पर कब बाण चढ़ाया गया और कब उसे छोड़ दिया गया? यह दिखायी न पड़ने वाले, बाण को चढ़ाने तथा छोड़ने में चंचल हाथों वाले, कुमार वृषसेन ने भी विशेष युद्धकौशल को प्रदर्शित करना आरम्भ कर दिया।

दुर्योधन – उसके बाद, उसके बाद।

सुन्दरक– और उसके बाद हे देव! युद्ध–व्यापार को बीच में ही छोड़कर, क्षणभर के लिए वैरभाव को भुलाकर, कौरव एवं पाण्डव दोनों सेनाओं के शूरवीर, 'धन्य है, कुमार वृषसेन! धन्य है,' इसप्रकार कोलाहल करते हुए युद्ध को देखने में प्रवृत्त हो गए।

दुर्योधन– (विस्मयपूर्वक) उसके बाद, उसके बाद।

सुन्दरक– और उसके बाद हे देव! सम्पूर्ण धनुर्धारी वर्ग को तिरस्कृत करने वाले, पराक्रमी पुत्र के इसप्रकार के युद्धकौशल को देखकर, हर्ष, क्रोध, करुणा एवं शंका के संकट में पड़े हुए स्वामी अंगराज के बाणों की वर्षा भीमसेन पर और अश्रुपूर्ण, व्याकुल दृष्टि कुमार वृषसेन पर पड़ी।

दुर्योधन– (भयपूर्वक) और उसके बाद।

सुन्दरक– और उसके बाद हे देव! दोनों सेनाओं द्वारा दिए गए, साधुवाद से क्रुद्ध, बाणों की वृष्टि से प्रज्वलित, गाण्डीवी अर्जुन ने अश्व, सारथी, रथ, धनुष, राजचिह्न, एवं श्वेत छत्र पर शीघ्र ही बाणों की वृष्टि आरम्भ कर दी।

दुर्योधन– (भयपूर्वक) उसके बाद, उसके बाद।

शब्दार्थ– शिलीमुखैः–बाणों द्वारा, भौंरों द्वारा, आच्छादितः–ढ़का हुआ, तीक्ष्ण–तीखे, निशित–बाण, निक्षिप्त–गिराए गए, भल्ल–भाले, भणितम्–कहा गया, स्थातुम्–ठहरने के लिए, युध्यस्व–युद्ध करो, निशम्य–सुनकर, अधिक्षेपेण–तिरस्कार से, चाप–धनुष, निर्भर्त्सितः–भर्त्सना की, शर–बाणों के, अभिघात–आघात से, वेदना –पीड़ा के, उपजात–उत्पन्न होने वाले, मन्युना–क्रोध से।

सुन्दरकः– ततश्च देव! विरथो लूनगुणकोदण्डः परिभ्रमण-व्यापारमात्रप्रतिषिद्धशरसम्पातो मण्डलाग्रेण विचरितुं प्रवृत्तः कुमार-वृषसेनः।[1]

दुर्योधनः– (साशंकम्) ततस्ततः?

सुन्दरकः–ततश्च देव! सुतरथविध्वंसेनामर्षितेन स्वामिनाऽङ्ग-राजेनाऽगणितभीमसेनाभियोगेन परिमुक्तो धनंजयस्योपरि शिलीमुख-सारः। कुमारवृषसेनोऽपि परिजनोपनीतमन्यं रथमारुह्य पुनरपि प्रवृत्तो धनंजयेन सहाऽऽयोधितुम्।[2]

उभौ– साधु वृषसेन! साधु। ततस्ततः?

सुन्दरकः– ततो देव! भणितं च कुमारेण– 'रे रे ताताधिक्षेपमुखर! मध्यमपाण्डव! मम शरास्तव शरीरमुज्झित्वाऽन्यस्मिन्न निपतन्ति' इति भणित्वा शरसहस्रैः पाण्डवशरीरं प्रच्छाद्य सिंहनादेन गर्जितुं प्रवृत्तः।[3]

दुर्योधनः– (सविस्मयम्) अहो! बालस्य पराक्रमो मुग्धस्वभावस्या-ऽपि ततस्ततः ?।

सुन्दरकः– ततश्च देव! तं शरसम्पातं समवधूय, निशितशराभि-घातजातमन्युना किरीटिना गृहीता रथोत्संगात् क्वणत्कनककिंकिणी-जालझंकारविराविणी मेघोपरोधविमुक्तनभस्तलनिर्मलानिशितश्यामल-स्निग्धमुखी विविधरत्नप्रभाभासुरभीषणरमणीयदर्शना शक्तिर्विमुक्ता कुमाराभिमुखी।[1]

---

1 . तदो अ देव! विरहो लूणगुणकोदण्डो परिब्भमणव्वावारमेत्त पडिसिद्धसरसम्पादो मण्डलाग्गेण विअरिदुं पउत्तो कुमालविससेणो।

2 . तदो अ देव! सुदरहबिद्धं सेणामरिसिदेण सामिणा अंगराएण अगणि अभीमसेणाभिजोएण पडिमुक्को धणंजअस्स उवरि सिलीमुहा सारो। कुमाल विससेणो वि परिजणोवणदं अण्णं रहं आरुहिअ पुणो वि पउत्तो धणंजएण सह आओधेदुम्।

3 . तदो देव। भणिदं च कुमालेण– 'रे रे तादाहिक्खेवमुहल मज्डमपण्डव ! मह सरा तुह सरीरं उज्झिअ अणणरिसं ण णिवडन्ति' त्ति, भणिअ सरसहस्सेहिं पण्डवसरीरं पच्छादिअ सिंहणादेण गज्जिदुं पउत्तो।

सुन्दरक– और उसके पश्चात् हे देव! रथविहीन, धनुष की प्रत्यंचा कटा हुआ, कुमार वृषसेन केवल पैंतरे बदले हुए ही युद्ध में बाण–वृष्टि से बचता हुआ, मण्डल बनाकर, घूमने लगा।

दुर्योधन– (शंकित होकर) उसके बाद, उसके बाद।

सुन्दरक– और उसके बाद हे महाराज! पुत्र के रथ के विनष्ट होने से क्रुद्ध, स्वामी अंगराज कर्ण, भीमसेन के आक्रमण की परवाह किए बिना ही, धनंजय के ऊपर बाणों की वर्षा करने में जुट गए और कुमार वृषसेन भी सेवक द्वारा लाए गए, दूसरे रथ पर आरूढ़ होकर, फिर से धनंजय के साथ युद्ध करने में प्रवृत्त हो गए।

दुर्योधन– साधु, वृषसेन! साधु, उसके बाद क्या हुआ?

सुन्दरक– उसके बाद महाराज! कुमार ने कहा कि– 'पिताजी पर आक्षेप करने में मुखर! मध्यम पाण्डव! मेरे बाण तुम्हारे शरीर को छोड़कर अन्यत्र नहीं गिरेंगे।' यह कहकर हजारों बाणों से अर्जुन के शरीर को आच्छादित करके, सिंहनाद के समान गर्जन करने में प्रवृत्त हो गया।

दुर्योधन– (विस्मयपूर्वक) अहो! भोले–भाले स्वभाव वाले, बालक का पराक्रम धन्य है। उसके पश्चात् क्या हुआ?

सुन्दरक– और उसके बाद हे राजन्! उन बाणों की वर्षा की परवाह न करके, तीक्ष्ण बाणों के प्रहार से कुपित हुए, अर्जुन ने रथ के अन्दर बजती हुई, सोने की घण्टियों के जाल से छन–छन करती हुई, बादलों के आवरण से रहित, नभोमण्डल के समान निर्मल, तीक्ष्ण, श्यामल, स्निग्ध, फलक वाली, अनेक प्रकार के रत्नों की कान्ति से दीपित, भयंकर एवं मनोरम प्रतीत होने वाली, **शक्ति** को उठाया और कुमार वृषसेन की ओर छोड़ दिया।

---

[1]. तदो अ देव! तं समलसम्पादं समवधूणिअ णिसिदसराभिघादजा दमण्णुणा किरीटिणा गहिदा रहुच्छंगादो कणन्तकणअकिंकिणीजालझंकार विराहइणी मेहोबरोह विमुक्कणहत्थलणिम्मला णिसिदसामलसिणिद्ध मुही विविहरअणप्पहाभासुर भीसणरणि ज्जदंसणा सत्ती विमुक्का कुमालाहिमुही।

दुर्योधनः– (सविषादम्) अहह! ततस्ततः?

सुन्दरकः– ततो देव! प्रज्वलन्तीं शक्तिं प्रेक्ष्य विगलितमंगराजस्य हस्तात्सशरं धनुर्हृदयाद्वीरसुलभ उत्साहो, नयनाद्बाष्पसलिलमपि। रसितं च सिंहनादं वृकोदरेण। 'दुष्करं दुष्करं' मित्याक्रन्दितं कुरुबलेन।[1]

दुर्योधनः– (सविषादम्) ततस्ततः।

सुन्दरकः– ततो देव! कुमारवृषसेनेनाकर्णपूरितैर्निशितक्षुर प्रबाणैः सुचिरं निघ्यायार्धपथ एव भागीरथीवाऽऽगच्छन्ती यथा भगवता विषमलोचनेन तथा त्रिधा कृता शक्तिः।[2]

दुर्योधनः– साधु वृषसेन! साधु, ततस्ततः।

सुन्दरकः– ततश्च देव! एतस्मिन्नन्तरे कृतकलकलमुखरेण वीरलोकसाधुवादेनाऽन्तरितः समरतूर्यनिर्घोषः। सिद्धचारणगणविमुक्त-कुसुमप्रकरेण प्रच्छादितं समरांगणम्।[3]

दुर्योधनः– अहो! बालस्य पराक्रमः। ततस्ततः?

सुन्दरकः– ततश्च देव! भणितं च स्वामिनाऽंगराजेन– 'भो वीर वृकोदर! असमाप्तस्तव ममापि समरव्यापारः। तदनुमन्यस्व मां मुहूर्तम्। प्रेक्षावहे तावत्क्षणमात्रं मम वत्सस्य तव भ्रातुश्च धनुर्वेदशिक्षाचतुरत्वम्। तवाप्येतत्प्रेक्षणीयम्' इति।[4]

---

[1]. तदो देव! पज्जलन्तीं सत्तिं पेक्खिअ विअलिअं अंगराअस्स हत्थादो ससरं धणु हिअआदो बीरसुलहो उच्छाहो, णअणादो बाप्पसलिलं पि। रसिदं अ सिंहणादं विओदलेण। 'दुक्कलं दुक्कलं' त्ति आकन्दिदं कुरुबलेण।

[2]. तदो देव! कुमालविससेणेण आकण्णपूरिदेहिं णिसिदक्खुर प्पबाणेहिं सुचिरं णिज्झइअ अद्धपहे एव्व भाईरहि विअ आअच्छन्ती जधा भअवदा विसमलोअणेण तधा तिधा किदा सत्ती।

[3]. तदो अ देव! एदस्सिं अन्तले किदकलकलमुहरेण बीरलो असाहुबादेण अन्त-रिदो समरतूरणिग्घोसो। सिद्धचालणगणबिमुक्क कुसुमप्पअरेण पच्छादिदं समलं-गणम्।

[4]. तदो अ देव! भणिअं सामिणा अंगराएण– 'भो वीर विकोदल! असमत्तो तुह मह वि समलव्वावारो । ता अणुमण्णा मं मुहुत्तअम्। पेक्खामहे दाव खणामत्तं मह वस्सस्स तुह भादुणो अ धणुव्वेदविद्दाचउरत्तणम्। तुह वि एदं पेक्खणिज्जं त्ति।

दुर्योधन– (विषादपूर्वक) अत्यन्त दुःख है, उसके बाद क्या हुआ?

सुन्दरक– तत्पश्चात् देव! चमचमाती हुई उस शक्ति को देख कर, अंगराज के हाथों से बाणों समेत धनुष और हृदय से वीर सुलभ उत्साह एवं नेत्रों से अश्रुजल सभी एक साथ गिर पड़े तथा वृकोदर सिंह के समान गरजने लगा और कौरव सेना 'बुरा हुआ', 'बुरा हुआ' चिल्लाने लगी।

दुर्योधन–(दुःख के साथ) उसके बाद, उसके बाद क्या हुआ?

सुन्दरक– उसके बाद, महाराज! कुमार वृषसेन ने थोड़ी देर तक ध्यान करके, अपने कान तक प्रत्यंचा को खींचकर, तीक्ष्ण अग्रभाग से युक्त फल वाले बाणों से बीच में ही उस शक्ति के तीन टुकड़े, उसी प्रकार कर दिए, जैसे– तीन नेत्रों वाले भगवान् शिव ने बीच में ही भागीरथी गंगा को तीन भागों में विभाजित कर दिया था।

दुर्योधन– साधु, वृषसेन, साधु। तत्पश्चात् क्या हुआ?

सुन्दरक– उसके बाद, हे राजन्! इसी बीच वीरसमूह द्वारा प्रदान किए गए, साधुवाद के कोलाहल से युद्ध की वाद्यध्वनि छिप गयी। सिद्ध एवं चारणों के समूह द्वारा बरसाए गए पुष्पों के ढेर से समरांगण पूर्णरूप से ढ़क गया।

दुर्योधन– आश्चर्य है, बालक का पराक्रम। फिर क्या हुआ?

सुन्दरक– और उसके बाद, हे देव! स्वामी अंगराज ने कहा कि– हे वीर! वृकोदर! तुम्हारा और हमारा युद्ध तो अभी समाप्त नहीं हुआ है। इसलिए तुम क्षणभर के लिए युद्ध को रोकने की मुझे अनुमति प्रदान करो, क्योंकि थोड़ी देर तक अपने पुत्र वृषसेन तथा तुम्हारे भाई अर्जुन के धनुर्विद्या विषयक कौशल को हम दोनों ही देख लेवें और तुम्हें भी इसे देखना चाहिए।

शब्दार्थ– अहह–दुःखसूचक अव्यय, ततः–उसके बाद, प्रेक्ष्य–देखकर, आक्रन्दितम्–चिल्लाना, रुदन, विषमलोचनेन–त्रिनेत्र भगवान् शिव, कृता–कर दी, अनन्तरे–बीच में, अन्तरितः–छिप गयी, निर्घोषः–ध्वनि।

दुर्योधनः— ततस्ततः?

सुन्दरकः— ततो देव! विश्रमितायोधनव्यापारौ मुहूर्तविश्रमितनिज वैरानुबन्धौ द्वावपि प्रेक्षकौ जातौ भीमसेनाऽंगराजौ।[1]

दुर्योधनः— (साभिप्रायम्) ततस्ततः?

सुन्दरकः— ततश्च देव! एतस्मिन्नन्तरे शक्तिखण्डनामर्षितेन गाण्डीविना एवं भणितम्— 'अरे रे दुर्योधनप्रमुखाः!'[2]

(इत्यर्धोक्तौ लज्जां नाटयति।)

दुर्योधनः— सुन्दरक! कथ्यताम्। परवचनमेतत्।

सुन्दरकः— शृणोतु देवः! 'अरे दुर्योधनप्रमुखाः कुरुबलसेनाप्रभवः! अविनयनौकर्णधारकर्ण! युष्माभिर्मम परोक्षं बहुभिर्महारथैः परिवृत्यैकाकी मम पुत्रकोऽभिमन्युर्व्यापादितः। अहं पुनर्युष्माकं प्रेक्षमाणानामेवैतं कुमार वृषसेनं स्मर्तव्यशेषं करोमि'। इति भणित्वा सगर्वमास्फालितमनेन वज्र-निर्घातघोषभीषणजीवारवं गाण्डीवम्। स्वामिनाऽपि सज्जीकृतं काल-पृष्ठम्।[3]

दुर्योधनः— (सावहित्थम्) ततस्ततः?

सुन्दरकः—ततश्च देव! प्रतिषिद्धभीमसेनसमरकर्मारम्भेण गाण्डीविना विरचिते अंगराजवृषसेनरथकूलंकषे द्वे बाणनद्यौ। ताभ्यामपि

---

[1]. तदो देव! विस्समिदाओधनव्वावारा मुहुत्तविस्समिदणिअवेराणुबन्धा दुवे वि पेक्खआ जादा भीमसेणांगराआ।

[2]. तदो अ देव! एदस्सिं अन्तरे सत्तिखण्डणामरिसिदेण गण्डीविणा एवं भणिअम्- 'अरे रे दुज्जोहणप्पमुहा–।

[3]. सुणादु देवो। 'अरे दुज्जोहणप्पमुहा कुरुवलसेणापहुवो! अविणअणोकण्णाधार कण्ण! तुह्मेहिं मह परोक्खं बहुहिं महारहेहिं पडिवारिअ एआई मह पुत्तओ अहिमण्णु व्वावादिदो अहं उण तुह्माणं पेक्खन्ताणं एव्व एदं कुमालविससेणं सुमरिदव्वसेसं करोमि' त्ति भणिअ सगव्वं आप्फालिदं णेण वज्जणिग्घादघोसभीसणजीआरवं गण्डीवम्। सामिणा वि सज्जीकिदं कालपुट्ठम्।

दुर्योधन– उसके बाद, उसके बाद।

सुन्दरक– हे देव! उसके बाद, क्षणभर के लिए वैर भाव को भुला कर युद्ध कार्य बन्द करके, भीमसेन एवं अंगराज दोनों ही तमाशबीन बन गए।

दुर्योधन– (उत्सुकतापूर्वक) उसके बाद क्या हुआ?

सुन्दरक– राजन्! उसके पश्चात् शक्ति के टुकड़े हो जाने के कारण क्रुद्ध अर्जुन ने इसप्रकार कहा कि–'हे दुर्योधन आदि प्रमुखों!..

(इसी अपूर्ण बात में लज्जा का अभिनय करके)

दुर्योधन– सुन्दरक! कहो, कहो, यह तो दूसरे का कथन है।

सुन्दरक– राजन्! सुनिए। 'अरे दुर्योधन प्रमुख कौरव सेनाध्यक्षों! अविनयरूपी नाव के कर्णधार कर्ण! आप सभी अनेक महारथियों ने मेरे पीछे अकेले घेरकर मेरे पुत्र अभिमन्यु को मार डाला था, किन्तु मैं आप सभी लोगों के देखते–देखते हुए, कुमार वृषसेन को स्मृतिमात्र शेष कर रहा हूँ।' ऐसा कहकर अभिमानपूर्वक उन्होंने वज्रपात शब्द के समान, भयंकर शब्द करने वाले, गाण्डीव धनुष से 'टंकार' शब्द किया तथा स्वामी अंगराज ने भी अपना **कालपृष्ठ नामक धनुष** तैयार कर लिया।

दुर्योधन–(घबराहट के साथ) उसके बाद, उसके बाद।

सुन्दरक– और उसके पश्चात् हे देव! भीमसेन के युद्ध कर्म को रोक देने वाले, अर्जुन ने अंगराज कर्ण तथा वृषसेन के रथरूपी तटों पर प्रवाहित होने वाली दो बाणरूपी नदियों को प्रवाहित कर दिया तथा उन दोनों कर्ण एवं वृषसेन ने भी परस्पर स्नेह के कारण, अपने धनुर्विद्या कौशल के साथ, मध्यम पाण्डव व दुष्ट अर्जुन पर आक्रमण कर दिया।

शब्दार्थ– विश्रमितयोधनव्यापार–युद्ध व्यापार को विश्राम देकर, मुहूर्तम्–क्षणभर के लिए, एतस्मिन्–इसी, अन्तरे–बीच में, परवचनम्–दूसरे के वचन, एतत्–यह, कथ्यताम्–कहो, नाटयति–अभिनय करता है, एकाकीम्–अकेले को, व्यापादितः –मार दिया था, भणित्वा–कहकर, **कालपृष्ठम्–अर्जुन के धनुष का नाम।**

द्वाभ्यामन्योन्यस्नेहदर्शितशिक्षाविशेषाभ्यामभियुक्तः स दुराचारो मध्यम-पाण्डवः।[1]

दुर्योधनः– ततस्ततः ?

सुन्दरकः– ततश्च देव! गाण्डीविना तारस्सितज्यानिर्घोषमात्र-विज्ञातबाणवर्षेण तथाऽऽचरितं पत्रिभिर्यथा न नभस्तलं, न स्वामी, न रथो, न धरणी, न कुमारी, न केतुवंशो, न बलानि, न सारथिर्न तुरंगमा, न दिशो, न वीरलोकश्च लक्ष्यते।[2]

दुर्योधनः– (सविस्मयम्) ततस्ततः?

सुन्दरकः– ततश्च देव! क्षणमात्रमेवातिक्रान्ते शरवर्षे सहर्षसिंहनादे पाण्डवबले, सविषादविमुक्ताक्रन्दे कौरवबले, समुत्थितो महान्कलकलो 'हा हतः कुमारवृषसेनो हा हत' इति।[3]

दुर्योधनः– (सबाष्परोधम्) ततस्ततः?

सुन्दरकः– ततश्च देव! महत्या वेलया प्रेक्ष्य हतसारथितुरंगं लूनातपत्रचापचामरकेतुवंशं स्वर्गप्रभ्रष्टमिव सुरकुमारमेकेनैव हृदय-मर्मभेदिना शिलीमुखेन भिन्नदेहं रथमध्ये पर्यस्तं कुमारं प्रेक्षे।[4]

---

[1]. तदो अ देव! पडिंसिद्धभीमसेणसमलकम्मालम्भेण गण्डीविणा विरइदा अंगरा अविससेणरहकूलंकसाओ दुवे बाणणदीओ। तेहिं वि दुवेहिं अण्णोण्णदत्ति दसिक्खाविसेसेहिं अभिजुत्तो सो दुराआरो मज्झमपण्डवो।

[2]. तदो अ देव! गण्डीविणा तारस्सिदजीआणिग्घो समेत्तविण्णादबाण वरिसेण तह आअरिदं पत्तिहिं जह ण णहत्तलं, ण सामी, ण रहो, ण धरणी, ण कुमालो, ण केदु वंसो, ण बलाइं, ण सारही, ण तुलंगमा, ण दिसाओ, ण वीरलोओ, अ लक्खी अदि।

[3]. तदो अ देव! क्खणमेत्तं एव्व अदिक्कन्ते सरवरिसे सहरिस सिंहणादे पण्डवबले सविसादमुक्काकन्दे कौरवबले समुत्थिदो महन्तो कलअलो हा हदो कुमालविससेणो हा हदो' त्ति।

[4]. तदो अ देव! महन्तीए बेलाए पेक्खिअ हदसारहितुलंगं लूणाद वत्तचाव चामरकेदुवंसं सग्गप्पब्भट्टं विअ सुलकुमालं एक्केण ज्जेव हिअअमम्मभेदिणा सिली मुहेण भिण्णदेहं रहमज्झे पल्लत्थं कुमालं प्पेक्खे।

दुर्योधन– उसके बाद, उसके बाद।

सुन्दरक– और उसके बाद हे राजन्! भयंकर शब्द करने वाली, प्रत्यंचा के निर्घोषमात्र से बाण–वृष्टि करने वाले, गाण्डीवधारी अर्जुन ने ऐसा घमासान युद्ध किया कि बाणों से ढ़क जाने के कारण, न आकाश, न अंगराज, न रथ, न पृथ्वी, न कुमार, न ध्वजदण्ड, न सेनाएँ, न सारथी, न घोड़े, न दिशाएँ एवं न वीरों का समूह, यह सब दिखायी ही नहीं दे रहा था।

दुर्योधन– (विस्मयपूर्वक) उसके बाद क्या हुआ?

सुन्दरक– उसके पश्चात् हे महाराज! क्षणमात्र में ही बाणों की वर्षा समाप्त होने पर, पाण्डवों की सेना में हर्षपूर्वक सिंहनाद एवं कौरवों की सेना में विषादपूर्वक महान् हाहाकार 'हाय! मारा गया, हाय, कुमार वृषसेन मारा गया' उठ खड़ा हुआ।

दुर्योधन–(नेत्रों के अश्रुओं को रोकते हुए) उसके बाद क्या हुआ?

सुन्दरक– उसके पश्चात् हे महाराज! मैंने सारथी एवं घोड़ों से रहित, छत्र, धनुष, चामर, ध्वजदण्ड विहीन, स्वर्ग से गिरे हुए देवताओं के पुत्र के समान, एक ही हृदय मर्मभेदी बाण द्वारा छिन्न शरीर युक्त, कुमार वृषसेन को रथ में पड़े हुए देखा।

शब्दार्थ– लक्ष्यते–दिखायी दे रहा था, सविस्मयम्–आश्चर्यपूर्वक, समुत्थितः –उठा, प्रेक्ष्य–देखकर, हतः–मारा गया, स्वर्गप्रभ्रष्टम्–स्वर्ग से गिरे हुए, इव–समान।

(महाकवि ने सुन्दरक द्वारा किए गए युद्ध–वर्णन में कर्ण के पुत्र वृषसेन द्वारा किए गए शौर्यपूर्ण युद्ध का उल्लेख विस्तारपूर्वक किया है, जिसमें वृषसेन का चरित्र उभरकर आया है, साथ ही, इसका नियोजन विशेषरूप से इसलिए भी किया गया है, क्योंकि महाकवि अभिमन्यु के वध का बदला भी अर्जुन के माध्यम से वे दिलाना चाहते थे, क्योंकि अनेक कौरव महारथियों ने मिलकर अकेले अभिमन्यु का वध इससे पूर्व में कर दिया था।)

राजा– सुन्दरक! अलमिदानीं कथितेन। (सास्रम्) हा वत्स वृषसेन! क्वासि? देहि मे प्रतिवचनम्। (इति मोहमुपागतः)

सूतः– समाश्वसिहि समाश्वसिहि।

राजा– (उत्थाय सकरुणम्) हा वत्स वृषसेन! हा मदंकदुर्ललित! हा मदाज्ञाकारक! हा गदायुद्धप्रिय! हा शौर्यसागर! हा राधेयकुलप्ररोह! हा प्रियदर्शन! हा दुःशासननिर्विशेष! हा सर्वगुरुवत्सल! प्रयच्छ मे प्रतिवचनम्।

पर्याप्तनेत्रमचिरोदितचन्द्रकान्त–
मुद्भिद्यमाननवयौवनरम्यशोभम्।
प्राणापहारपरिवर्तितदृष्टि दृष्टं
कर्णेन तत्कथमिवाऽऽननपंकजं ते!।।10।।

(अन्वय– कर्णेन ते पर्याप्त–नेत्रम् अचिर–उदित–चन्द्र–कान्तम् उद्भिद्यमान–नव–यौवन–रम्य–शोभम् तत् (ते) आनन–पंकजम् प्राण–अपहार–परिवर्तित–दृष्टिः (तत्) कथम् इव दृष्टम्।।10।।)

सूत– आयुष्मन्! अलमत्यन्तदुःखावेगेन।

दुर्योधनः– सूत! पुण्यवन्तो हि दुःख भाजो भवन्ति। अस्माकं पुनः–

प्रत्यक्षं हतबन्धूनामेतत्परिभवाग्निना।
हृदयं दह्यतेऽत्यर्थं कुतो दुःखं कुतो व्यथा?।।11।।

(अन्वय– प्रत्यक्षम् हत–बन्धूनाम् परिभव–अग्निना एतत् हृदयम् अति अर्थम् दह्यते, कुतः दुःखम्? कुतः व्यथा?।।11।।)

(इति मोहमुपागतः)

सूतः– समाश्वसितु, समाश्वसितु, महाराजः!

(इति पटान्तेन बीजयति)

दुर्योधनः– (लब्धसंज्ञः) भद्र सुन्दरक! ततो वयस्येन किं प्रतिपन्न–मंगराजेन?

दुर्योधन– सुन्दरक! अब कहने से बस करो। **(अश्रुपूर्वक)** हाय! वत्स, वृषसेन। तुम कहाँ हो? मुझे प्रत्युत्तर प्रदान करो।

(यह कहकर मूर्च्छित हो जाता है)

सूत– महाराज! धैर्य धारण कीजिए, धैर्य धारण कीजिए।

दुर्योधन– (उठकर करुणापूर्वक) हाय, वत्स, वृषसेन! हाय मेरी गोद में कठिनता से पले हुए, हाय! मेरी आज्ञा का पालन करने वाले, हाय गदायुद्ध प्रिय! हाय! पराक्रम के सागर! हाय! राधेय कुल के अंकुर! हाय! प्रियदर्शन! हाय! दुःशासन से भी अधिक प्रिय! हाय! सभी गुरुजनों के प्रिय! मुझे प्रत्युत्तर दो।

बड़ी–बड़ी आँखों वाले, शीघ्र उदित चन्द्रमा के समान सुन्दर, प्रस्फुटित हो रहे नवीन यौवन से रमणीय शोभा वाले तथा मृत्यु के बाद सर्वथा विपरीत दिखायी देने वाले, तुम्हारे मुख को कर्ण ने भला कैसे देखा होगा?।। 10।।

सूत– आयुष्मन्! अत्यधिक दुःख से बस कीजिए।

दुर्योधन– हे सूत! पुण्यवान् लोग ही दुःखों के भागी होते हैं। फिर हमारे तो,

नेत्रों के सामने ही मारे गए भाई–बन्धुओं वाले, पराभवरूपी अग्नि से हमारा यह हृदय अत्यधिक जल रहा है, ऐसे में दुःख और पीड़ा की तो बात ही क्या है?।।11।।

(यह कहकर मूर्च्छित हो जाता है)

सूत– महाराज! धैर्य धारण कीजिए, धैर्य धारण कीजिए।

दुर्योधन– (होश में आकर) भाई सुन्दरक! उसके बाद मित्र अंगराज कर्ण ने क्या निश्चय किया है?

शब्दार्थ– सास्रम्–अश्रुपूर्वक, देहि–दो, मे–मुझे, प्रतिवचनम्–प्रत्युत्तर, मोहम्–मूर्च्छा को, उपागतः–प्राप्त हो गया, प्रयच्छ–दो, मे, आननपंकजम्– मुखरूपी कमल को, प्राणापहारपरिवर्तितदृष्टिः–प्राणों के निकलने से उलटी हुई दृष्टि वाले।

सुन्दरकः–ततश्च देव! तथाविधस्य पुत्रस्य दर्शनेन संकलितमश्रुजातमुज्झित्वाऽनपेक्षितपरप्रहरणाभियोगेन स्वामिनाऽभियुक्तो धनंजयः। तं च सुतवधाऽमर्षोद्दीपितपराक्रमं विमुक्तजीविताशं तथा परिक्रामन्तं प्रेक्ष्य नकुलसहदेवपांचालप्रमुखैरन्तरितो धनंजयस्य रथवरः।[1]

दुर्योधनः– ततस्ततः?

सुन्दरकः– ततो देव! अर्जुनचापमहाप्रलयपयोधरनिःसृतशरधारा–सहस्रपूरितेषु दिङ्मुखेषु शल्येन भणितः स्वाम्यंगराजो यथा– 'अंगराज! हततुरंगमो मथितचक्रनेमिकूबरस्ते रथः, तन्न युक्तं भीमार्जुनाभ्यामभि–योक्तुम्'। इति भणित्वा परिवर्तितो रथोऽवतारितः स्वामी स्यन्दनाद् बहु–प्रकारं च समाश्वासितः।[2]

दुर्योधनः– ततस्ततः?

सुन्दरकः– ततश्च स्वामिना सुचिरं विलप्य परिजनोपनीतमन्यं रथं प्रेक्ष्य दीर्घनिःश्वस्य मयि दृष्टिर्विनिक्षिप्ता– 'सुन्दरक! एहीति' भणितं च। ततोऽहमुपगतः स्वामिसमीपम्। ततोऽपनीय शीर्षस्थानात्पट्टिकां शरीरसंगलितैः शोणितबिन्दुभिर्दिग्धवदनं बाणं कृत्वाऽभिलिख्य प्रेषितो देवस्य संदेशः।[3]

---

[1]. तदो अ देव! तधाविधस्स पुत्तस्स दंसणेण संगलिदं अस्सुजादं उज्झिअ अणवेक्खिदपरप्पहरणाभिओएण सामिणा अभिजुत्तो धणंजओ। तं अ सुदवहामरि–सुददीविदपरक्कमं विमुक्कजीविदासं तह परिक्कमन्तं पेक्खिअ णउलसहदेवपंचाल–प्पमुहेहिं अन्तरिदो धणंजअस्स रहवरो।

[2]. तदो देव! अज्जुण चावमहाप्पलअपओहरणिस्स रिदसरधारा सहस्सेहिं पूरिदेसु दिसामुहेसु सल्लेण भणिदो सामी अंगराओ, जहा अंगिराअ! हदतुलंगमो मथिद चक्कणेमिकूवरो दे रहो, ता ण जुत्तं भीमाज्जुणोहिं अहिजोदिअम्'। त्ति भणिअ पडिवट्टिदो रहो, ओदारिदो सामी सन्दणादो, बहुप्पआरं अ समस्सासिदो।

[3]. तदो अ सामिणा सुइरं विलपिअ परिअणोवणीदं अण्णं रहं पेक्खिअ दीहं निस्ससिअ मइ दिट्ठी विणिक्खिविदा। 'सुन्दरअ! एहि त्ति भणिदं अ। तदो अहं उवगदो सामिसमीवम्। तदो अवणीअ सीसट्ठाणादो 'पट्टिअं सरीर संगलिदेहिं सोणिअविंदुहिं दिद्धवअणं बाणं कदुअ अहिलिहिअ प्पेसिदो देवस्स सन्देसो।

सुन्दरक– उसके पश्चात् हे देव! उसप्रकार अपने सामने ही पुत्र को मारा हुआ देखकर, प्रवाहित हो रहे अश्रुओं को पोंछकर, शत्रुओं के आयुधों की परवाह किए बिना ही, महाराज कर्ण ने अर्जुन पर आक्रमण कर दिया। पुत्रवध के क्रोध के कारण वृद्धि को प्राप्त हुए, पराक्रम वाले, जीवित रहने के प्रति निराश कर्ण को उसप्रकार आक्रमण करते हुए देखकर, नकुल, सहदेव एवं पांचाल आदि अनेक वीरों ने अर्जुन के रथ को चारों ओर से घेर लिया।

दुर्योधन– उसके बाद क्या हुआ?

सुन्दरक– तत्पश्चात् हे राजन्! अर्जुन के धनुषरूपी महाप्रलय काल के मेघ से निकली हुई हजारों बाणों की धाराओं से दिशाओं के प्रपूरित हो जाने पर, शल्य ने कर्ण से कहा कि– हे अंगराज! तुम्हारे रथ के घोड़े मारे जा चुके हैं तथा रथ की धुरी एवं कूबर आदि भी विनष्ट हो गए हैं। इसलिए भीम एवं अर्जुन के साथ युद्ध करना, अभी ठीक नहीं है।' यह कहकर रथ को लौटा दिया और स्वामी अंगराज को रथ से उतार कर, अनेक प्रकार से उन्हें धैर्य बँधाया।

दुर्योधन– उसके बाद क्या हुआ?

सुन्दरक– और उसके पश्चात् स्वामी ने बहुत देर तक विलाप करके, सेवक द्वारा लाए हुए दूसरे रथ को देखकर, लम्बी श्वास खींचकर, मेरी ओर दृष्टि डाली तथा 'सुन्दरक! इधर आओ,' इसप्रकार कहा। उसके बाद मैं स्वामी के पास गया, तब उन्होंने सिर के घाव की पट्टी को हटाकर, टपक रहे खून के बिन्दुकणों में बाण को भिगोकर, आपके लिए सन्देश लिखकर भेजा है।

शब्दार्थ–उज्झित्वा–छोड़कर, प्रेक्ष्य–देखकर, दिङ्–दिशा, भणितः–कहा गया, नेमि–पहिए की परिधि, अभियोक्तुम्–युद्ध करने के लिए, स्यन्दनात्–रथ से, विलप्य–विलाप करके, मयि–मेरे ऊपर, विनिक्षिप्ता–विशेषरूप से डाली, एहि–आओ, भणितम्–कहा, उपगतः–पास गया, अपनीय–दूर करके।

(इति पट्टिकामर्पयति। दुर्योधनो गृहीत्वा वाचयति)

यथा– 'स्वस्ति, महाराजदुर्योधनं समरांगणात्कर्ण एतद् वृत्तं कण्ठे गाढमालिंग्य विज्ञापयति–

'अस्त्रग्रामविधौ कृती न समरेष्वस्यास्ति तुल्यः पुमान्
भ्रातृभ्योऽपि ममाऽधिकोऽयममुना जेयाः पृथासूनवः'।
यत्संभावित इत्यहं न च हतो दुःशासनारिर्मया,
त्वं दुःखप्रतिकारमेहि भुजयोर्वीर्येण बाष्पेण वा।।12।।

(अन्वय– अयम् 'अस्त्र–ग्राम–विधौ कृती, समरेषु अस्य तुल्यः पुमान् न अस्ति, भ्रातृभ्यः अपि अयम् मम अधिकः, अमुना पृथा–सूनवः जेयाः, इति यत् अहम् (त्वया) संभावितः, दुःशासन–अरिः च मया न हतः, (तत्) त्वम् भुजयोः वीर्येण, बाष्पेण वा दुःख–प्रतिकारम् एहि।।12।।)

दुर्योधनः– वयस्य कर्ण! किमिदं भ्रातृशतवधदुःखितं मामपरेण वावशल्येन घट्टयसि? भद्र सुन्दरक! अथेदानीं किमारम्भोऽगराजः?

सुन्दरकः– देव! अद्याप्यारम्भः पृच्छ्यते! अपनीतरशरीरावरण आत्मवधकृतनिश्चयः पुनरपि पार्थेन सह समरं मार्गयते।[1]

दुर्योधनः– (आवेगादासनादुत्तिष्ठन्) सूत! रथमुपनय। सुन्दरक! त्वमपि मद्वचनात्त्वरिततरं गत्वा वयस्यमंगराजं प्रतिबोधय। अलमति साहसेन। अभिन्न एवाऽयमावयोः संकल्पो न खलु भवानेको जीवित–परित्यागाकांक्षी। किन्तु–

हत्वा पार्थान्सलिलमशिवं बन्धुवर्गाय दत्त्वा
मुक्त्वा बाष्पं सह कतिपयैर्मन्त्रिभिश्चारिभिश्च।
कृत्वाऽन्योन्यं सुचिरमपुनर्भावि गाढोपगूढं
संत्यक्ष्यावो हततनुमिमां दुःखितौ निवृतौ च।।13।।

---

[1]. देव! अज्ज वि आरम्भो पुच्छीअदि? अवणदसरीरावरणो अप्पवहकि दणिच्चओ पुणो वि पत्थेण सह समलं मग्गदि।

(यह कहकर चिट्ठी देता है और दुर्योधन उसे लेकर बाँचता है)

जैसे– 'कल्याण हो, युद्धभूमि से कर्ण, महाराज दुर्योधन का प्रगाढ़ आलिंगन करके, यह निवेदन करता है कि–

यह कर्ण अस्त्रों के प्रहार में अत्यधिक कुशल है, युद्ध में इसके समान दूसरा कोई व्यक्ति नहीं है, भाइयों से भी यह मुझे अधिक प्रिय है, इसी के द्वारा पाण्डुपुत्रों पर विजय प्राप्त की जा सकती है। आपने इसप्रकार मुझसे अनेक सम्भावनाएँ की थीं, किन्तु मैं दुःशासन के शत्रु का वध नहीं कर सका हूँ। इसलिए आप स्वयं अपनी भुजाओं के पराक्रम से अथवा आँसू बहाकर इस दुःख का प्रतिकार कीजिए।।12।।

दुर्योधन– मित्र कर्ण! यह सौ भाइयों के वध से दुःखी, मुझे अपने वाक्–शल्य द्वारा क्यों पीड़ित कर रहे हो? भाई सुन्दरक! अब अंगराज क्या कर रहे हैं?

सुन्दरक– राजन्! आज भी आरम्भ पूछ रहे हैं, शरीर के कवच उतारकर आत्मवध का निश्चय किए हुए, वे फिर से पार्थ के साथ युद्ध करने की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

दुर्योधन–(आवेगपूर्वक आसन से उठता हुआ) हे सूत! रथ लाओ। सुन्दरक! तुम भी जाकर मेरे वचनों से मित्र अंगराज को ढाढ़स बँधाओ कि वे अधिक साहस न करें। केवल आपका ही नहीं, अपितु हम दोनों का एक जैसा ही विचार है, केवल अकेले आप ही जीवन त्याग करने के इच्छुक नहीं हैं, किन्तु–

पाण्डवों का संहार करके तथा बन्धुवर्ग को अशिव जल की अंजलि प्रदान करके और मारे जाने से बचे हुए कुछ मन्त्रियों एवं शत्रुओं के साथ, अश्रु बहाकर आपस में पुनर्जन्म न होने विषयक लम्बे समय तक प्रगाढ़ आलिंगन करके दुःखी और शत्रु–वध से सुखी होते हुए, इस निकृष्ट शरीर का परित्याग कर देंगे।।13।।

(अन्वय– पार्थान् हत्वा, बन्धु–वर्गाय अशिवम् सलिलम् दत्त्वा, कतिपयैः मन्त्रिभिः च अरिभिः सह बाष्पम् मुक्त्वा, अन्योन्यम् अपुनः–भावि सुचिरम् गाढ–उपगूढम् च कृत्वा, दुःखितौ निवृतौ च (सन्तौ), इमाम् हत–तनुम् सन्त्यक्ष्यावः । ।13 । ।)

अथवा शोकं प्रति मया न किंचित्संदेष्टव्यम्।

वृषसेनो न ते पुत्रो, न मे दुःशासनोऽनुजः।
त्वां बोधयामि किमहं त्वं मां संस्थापयिष्यसि? । ।14 । ।

(अन्वय– वृषसेनः ते पुत्रः न, दुःशासनः मे अनुजः न, अहम् त्वाम् किम् बोधयामि? त्वम् माम् संस्थापयिष्यसि? । ।14 । ।)

सुन्दरकः– यद्देव आज्ञापयति।[1] (इति निष्क्रान्तः)

दुर्योधनः– अये नेमिध्वनिरिव!

सूतः– (कर्णं दत्त्वा) आयुष्मन्! एष सद्य एव संवर्धितो नेमिध्वनिः श्रूयते।

दुर्योधनः– तथा तर्कयामि यत् नूनं परिजनोपनीतो रथः। गच्छ त्वं रथं सज्जीकुरु।

सूतः– यदाज्ञापयति देवः। (इति निष्क्रम्य पुनः प्रविशति)

दुर्योधनः– (विलोक्य) किमिति नारूढोऽसि?

सूतः– एष खलु तातोऽम्बा च संजयाधिष्ठितं रथमारुह्य देवस्य समीपमुपगतौ।

दुर्योधनः– किं नाम तातोऽम्बा च सम्प्राप्तौ?। कष्टम्! अतिबीभ–त्समाचरितं दैवेन। सूत! गच्छ त्वं, स्यन्दनं तूर्णमुपहर। अहमपि तातदर्शनं परिहरन्नेकान्ते तिष्ठामि।

सूतः– देव! त्वमेकशेषबान्धवावेतौ कथमिव न समाश्वासयसि?

दुर्योधनः– सूत! कथमिव समाश्वासयामि विमुखभागधेयः? पश्य–

---

[1]. जं देवो आणवेदि।

अथवा शोक प्रकट करने के प्रति मुझे कोई सन्देश नहीं भेजना है।

वस्तुतः वृषसेन तुम्हारा ही पुत्र नहीं था और न ही दुःशासन मेरा अनुज था, इस सम्बन्ध में तुम्हें भला मैं क्या समझाऊँ? एवं तुम मुझे क्या धैर्य बँधा सकते हो?।।14।।

सुन्दरक– महाराज की जैसी आज्ञा।

(यह कहकर निकल जाता है)

दुर्योधन– शीघ्र ही रथ को उपस्थित करो।

सूत– (कान लगाकर) आयुष्मन्! घोड़ों की हिनहिनाहट से युक्त, रथ के पहियों की ध्वनि सुनायी दे रही है।

दुर्योधन– इससे सोचता हूँ कि निश्चय ही, किसी सेवक द्वारा रथ लाया गया है। जाओ, तुम रथ को तैयार करो।

सूत– महाराज की जैसी आज्ञा।

(ऐसा कहकर निकलकर फिर से प्रवेश करता है)

दुर्योधन– (देखकर) रथ पर आरूढ़ क्यों नहीं हुए?

सूत– निश्चय ही, ये माता जी एवं पिताजी, संजय से अधिष्ठित रथ पर आरूढ़ होकर महाराज के समीप आए हैं।

दुर्योधन– क्या माताजी तथा पिताजी आए हैं। कष्ट है, विधाता ने अत्यधिक भयंकर कर्म किया है। हे सूत! जाओ, तुम शीघ्र ही रथ यहाँ लेकर आओ। मैं भी पिता जी के दर्शन से स्वयं को बचाता हुआ, एकान्त में बैठता हूँ।

सूत– राजन्! परिवार भर में आप ही अकेले, इनके शेष रह गए हैं। इसलिए आप इन्हें धैर्य क्यों नहीं बँधाते हैं?

दुर्योधन– हे सूत! विरुद्ध भाग्य वाला मैं, भला कैसे माता–पिता को धैर्य बँधाऊँ? देखो,

अद्यैवाऽऽवां रणमुपगतौ तातमम्बां च दृष्ट्वा,
घ्रातस्ताभ्यां शिरसि विनतोऽहं च दुःशासनश्च।
तस्मिन्बाले प्रसभमरिणा प्रापिते तामवस्थां
पार्श्वं पित्रोरपगतघृणः किंनु वक्ष्यामि गत्वा?।।15।।

(अन्वय– अद्य एव रणम् उपगतौ, आवाम् तातम्, अम्बाम् च दृष्ट्वा, विनतः अहम् दुःशासनः च ताभ्याम् शिरसि घ्रातः, तस्मिन् बाले अरिणा प्रसभम् ताम् अवस्थाम् प्रापिते, अपगत–घृणः पित्रोः पार्श्वम् गत्वा किम् नु वक्ष्यामि?।।15।।)

सूतः– तथाऽप्यवश्यं वन्दनीयौ गुरू।

(इति निष्क्रान्तौ)

॥ इति चतुर्थोऽङ्कः ॥

आज ही हम दोनों ने, माता–पिता के दर्शन करके युद्ध के लिए प्रस्थान किया था, इन दोनों ने ही विनम्र मेरा और दुःशासन का सिर सूँघकर हमारे लिए मंगल कामना की थी। उस बालक दुःशासन को शत्रु द्वारा इसप्रकार बलपूर्वक इस दशा को पहुँचा दिए जाने पर, निर्लज्ज मैं माता–पिता के पास जाकर क्या कहूँगा?।।15।।

सूत– तो भी माता–पिता की वन्दना अवश्य करनी चाहिए।

(यह कहकर दोनों निकल जाते हैं)

॥ इसप्रकार महाकवि भट्टनारायण विरचित वेणीसंहार के चतुर्थ अङ्क का डॉ. राकेश शास्त्री, बाँसवाड़ा द्वारा किया हुआ हिन्दी अनुवाद पूर्ण हुआ॥

•••

।। श्रीः ।।

अथ पंचमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति रथयानेन गान्धारी संजयो धृतराष्ट्रश्च)

धृतराष्ट्रः– वत्स संजय! कथय, कथय, कस्मिन्नुद्देशे कुरुकुल-काननैकशेषप्रवालो वत्सो मे दुर्योधनस्तिष्ठति? कच्चिज्जीवति वा न वा?

गान्धारी– जात! यदि सत्यं जीवति मे वत्सस्तत्कथय कस्मिन्देशे वर्तते?[1]

संजयः– नन्वेष महाराज एकाक्येव न्यग्रोधच्छायायामुप-विष्टस्तिष्ठति।

गान्धारी– (सकरुणम्) जात! एकाकीति भणसि। किं न खलु साम्प्रतं भ्रातृशतमस्य पार्श्वे नास्ति।[2]

संजयः– तात! अम्ब! अवतरतां स्वैरं रथात्।

(उभाववतरणं नाटयतः)

(ततः प्रविशति सव्रीडमुपविष्टो दुर्योधनः)

संजय– (उपसृत्य) विजयतां महाराजः! नन्वेष तातोऽम्बया सह प्राप्तः, किं न पश्यति महाराजः?

(दुर्योधना वैलक्ष्यं नाटयति)

धृतराष्ट्रः–

शल्यानि व्यपनीय कंकवदनैरुन्मोचिते कंकटे
बद्धेषु व्रणपट्टकेषु शनकैः कर्णे कृतापाश्रयः।
दूरान्निर्जितशात्रवान्नरपतीनालोकयँल्लीलया

---

1 . जाद! जइ सच्चं जीवदि मे वच्छो ता कधेहि कस्सिं देसे बट्टदि?
2 . जाद! एआइ त्ति भणासि । किं णु क्खु सम्पदं भादुसदं से पास्से णत्थि ।

।। श्रीः।।

अथ पंचम अङ्क

(उसके बाद रथयान से गान्धारी, संजय एवं धृतराष्ट्र प्रवेश करते हैं)

धृतराष्ट्र– वत्स! संजय, कहो, कहो, कौरववंशरूपी वन के एक मात्र बचे हुए अंकुर के समान मेरा पुत्र, दुर्योधन कहाँ बैठा हुआ है? वह जीवित भी है या नहीं?

गान्धारी– पुत्र! यदि मेरा पुत्र सचमुच जीवित है, तो कहो वह किस प्रदेश में स्थित है?

संजय– महाराज! निश्चय ही, यह वटवृक्ष की छाया में बैठा हुआ है।

गान्धारी– (करुणापूर्वक) अकेले ही, ऐसा कह रहे हो, क्या इस समय इसके पास इसके सौ भाई नहीं हैं?

संजय– तात! अम्ब! रथ से धीरे उतरिए।

(दोनों रथ से उतरने का अभिनय करते हैं)

(उसके बाद लज्जापूर्वक बैठा हुआ दुर्योधन प्रवेश करता है)

संजय– (पास जाकर) महाराज की जय हो। निश्चय ही, ये माता के साथ पिताजी आए हैं, क्या महाराज इन्हें देख नहीं रहे हैं?

(दुर्योधन लज्जा का अभिनय करता है)

धृतराष्ट्र– **बाण निकालने वाले कंकमुख यन्त्रों द्वारा, बाणरूपी फलक निकालकर, कवच को उतारकर, औषधि से सने घावों पर पट्टियों को बाँधे हुए, कर्ण का धीरे से आश्रय लिए हुए, शत्रुओं के समूह को पराजित करने वाले, राजाओं को दूर से ही लीलापूर्वक देख रहे, 'हे पुत्र! क्या पीड़ा सहन करने योग्य है?' यह भी मुझ पापी द्वारा आपसे नहीं पूछा गया है।।1।।**

'सह्या पुत्रक!वेदने'ति न मया पापेन पृष्टो भवान्।।1।।

(अन्वय– कंक–वदनैः शल्यानि व्यपनीय, कंकटे उन्मोचिते व्रण–पट्टकेषु बद्धेषु, शनकैः कर्णे कृत–अपाश्रयः, निर्जित–शात्रवान् नरपतीन् दूरात् लीलया आलोकयन् ' पुत्रक! वेदना सह्या?' इति पापेन भवान् मया न पृष्टः।।1।।)

(धृतराष्ट्रो गान्धारी च स्पर्शेनोपेत्याऽऽलिंगतः)

गान्धारी– वत्स! अतिगाढ़प्रहारवेदनापर्याकुलस्याऽस्मासु सन्निहितेष्वपि न प्रसरति ते वाणी।[1]

धृतराष्ट्र– वत्स दुर्योधन! किमकृतपूर्वः सम्प्रति मय्यप्ययं व्यवहारः?

गान्धारी– (सकरुणम्) वत्स! यदि त्वमप्यस्मान्नालपसि तत्किमिदानीं वत्सो दुःशासनो दुर्मर्षणोऽन्यो वा आलपिष्यति?[2]

(इति रोदति)

दुर्योधनः– अम्ब!

पापोऽहमप्रतिकृतानुजनाशदर्शी
तातस्य बाष्पपयसां तव चाम्ब! हेतुः।
दुर्जातमत्र विमले भरतान्वये वः
किं मां सुतक्षयकरं सुत इत्यवैषि?।।2।।

(अन्वय– अम्ब! अप्रतिकृत–अनुज–नाश–दर्शी अहम् पापः तातस्य तव च बाष्प–पयसाम् हेतुः, विमले अत्र भरत–अन्वये दुर्जातम् वः सुत–क्षय–करम् माम् सुतः इति, किम् अवैषि?।।2।।)

गान्धारी–जात! अलमलं परिदेवितेन। त्वमपि तावदेकोऽस्यान्धयुगलस्य मार्गोपदेशकः। तच्चिरंजीव। किं मे राज्येन जयेन वा।[3]

---

1. वच्छ! अदिगाढप्पहारवेअणापज्जाउलस्स अम्हेसु सण्णिहिदेसु वि ण प्पसरदि दे वाणी।

2. वच्छ! जइ तुमं वि अम्हे णालबसि ता किं दाणी सम्पदं वच्छो दुस्सासणो दुम्मरिसणो अण्णो वा आलविस्सदि?

3. जाद! अलमलं परिदेविदेण, तुमं वि दाव एक्को इमस्स अन्धजुअलस्स मग्गोवदेसओ। ता चिरं जीव। किं मे रज्जेण जएण वा ?

(धृतराष्ट्र और गान्धारी हाथों से टटोलकर दुर्योधन को पाकर आलिंगन करते हैं)

गान्धारी– पुत्र! अत्यधिक प्रबल प्रहार की पीड़ा से व्याकुल, तुम्हारी वाणी हम लोगों के पास होने पर भी कुछ कह नहीं पा रही है।

धृतराष्ट्र– पुत्र दुर्योधन! इस समय तुम मेरे साथ भी यह ऐसा व्यवहार कर रहे हो, जो पूर्व में कभी नहीं किया गया है।

गान्धारी– (करुणापूर्वक) पुत्र! यदि तुम भी हमसे बात नहीं करते हो, तो क्या दुःशासन अथवा दुर्मर्षण या फिर दूसरे बेटे बात करेंगे?

(यह कहकर रोने लगती है)

दुर्योधन– हे माता! प्रतिकार लिए बिना भाइयों का विनाश देखने वाला पापी मैं, पिताजी और आपके अश्रुजल का कारण हूँ। इस उज्ज्वल भरतकुल में दुःखों से उत्पन्न, तुम्हारे पुत्रों का विनाश करने वाले, मुझ दुर्योधन को तुम अपना पुत्र भला क्यों मान रही हो?।।2।।

गान्धारी– पुत्र! विषाद से बस करो, बस करो। तुम ही तो अकेले इस अन्धी जोड़ी के मार्गदर्शक हो, तो चिरंजीव बनो। मुझे राज्य या विजय से क्या?

कवि के अनुसार महाभारतकाल में युद्ध में लगे हुए, शरीर के बाणों को सायंकाल के समय युद्ध के रुक जाने पर, विशेष यन्त्र द्वारा शरीर से बाहर निकाला जाता था, जिसे यहाँ कंकमुख यन्त्र की संज्ञा दी गयी है, ऐसा प्रतीत होता है कि इस यन्त्र द्वारा शरीर से बाण निकालने पर सम्भवतः पीड़ा कम होती होगी, प्रथम श्लोक में कवि ने उसी ओर संकेत किया है। कंक विशेष प्रकार का मांसभक्षी पक्षी होता है, सम्भवतः यह उसी की चोंच के आकार का होता होगा, तभी इसका नाम **कंकमुख यन्त्र** रखा गया है। प्रस्तुत नाटक में कवि ने मांसभक्षी कंक एवं गृद्ध दोनों पक्षियों का भी उल्लेख किया है।

दुर्योधनः–

मातः! किमप्यसदृशं कृपणं वचस्ते
सुक्षत्रिया क्व भवती ? क्व च दीनतैषा?
निर्वत्सले! सुतशतस्य विपत्तिमेतां
त्वं नानुचिन्तयसि, रक्षसि माममयोग्यम्? ।।3।।

(अन्वय– मातः! ते असदृशम् किम् अपि कृपणम् वचः (अस्ति?) सुक्षत्रिया भवती क्व? एषा दीनता च क्व? निर्वत्सले! सुत–शतस्य एताम् विपत्तिम् त्वम् न अनुचिन्तयसि, माम् अयोग्यम् रक्षसि ?।।3।।)

नूनं विचेष्टितमिदं सुतशोकस्य।

संजयः– महाराजः! किं वाऽयं लोकवादो वितथो 'न घटस्य कूपपतने रज्जुरपि तत्रैव प्रक्षेप्तव्या' इति ?।

दुर्योधनः– अपुष्कलमिदम्। ननूपक्रियमाणाऽभावे किमुपकरणेन?।

(इति रोदिति)

धृतराष्ट्रः– (दुर्योधनं परिष्वज्य) वत्स! समाश्वसिहि। समाश्वासय चाऽस्मानिमामतिदीनां मातरं च।

दुर्योधनः– तात! दुर्लभः समाश्वास इदानीं युष्माकम्। किन्तु–

कुन्त्या सह युवामद्य मया निहतपुत्रया।
विराजमानौ शोकेऽपि तनयाननुशोचतम्।।4।।

(अन्वय– अद्य मया निहत–पुत्रया कुन्त्या सह शोके अपि विराजमानौ युवाम् तनयान् अनुशोचतम्।।4।।)

गान्धारी– जात! एतदेव साम्प्रतं प्रभूतं यत्त्वमपि तावदेको जीवसि। कमन्यमनुशोचिष्यामि। तज्जात! अकालस्ते समरस्य । प्रसीद। एष तेऽञ्जलिः। निवर्त्तस्व समरव्यापारात्। अपश्चिमं कुरुं पितुर्वचनम्।[1]

---

[1]. जाद! एदं एव्वं सम्पदं प्पभूदं जं तुमं वि दाव एक्को जीवसि। कं अण्णं अणुसोचिस्सम ता जाद! अकालो दे समरस्स। प्पसीद। एसो दे अंजली। णिवट्टहि समरव्वावारादो। अपच्छिमं करेहि पिदुणो वअणम्।

दुर्योधन– **हे माता! इसप्रकार कायरता की बातें करना, आपके अनुकूल नहीं है। कहाँ तो आप उत्तम कुल में उत्पन्न क्षत्राणी? और कहाँ यह दीनता? पुत्रस्नेह से रहित! सौ पुत्रों की इस विपत्ति को तुम नहीं सोच रही हो? और अयोग्य मेरी रक्षा कर रही हो?।।3।।**

निश्चय ही, आपकी यह चेष्टा पुत्रों के शोक से उत्पन्न हुई है।

संजय– महाराज! क्या यह कहावत असत्य है? कि 'घड़े के कुएँ में गिर जाने पर, रस्सी को भी वहीं नहीं फैंक देना चाहिए।'

दुर्योधन– यही पर्याप्त नहीं है। वास्तव में तो उपकार करने वाले बन्धुओं के अभाव में, राज्यरूप उपकरण से क्या लाभ?

(यह कहकर रोने लगता है)

धृतराष्ट्र– (दुर्योधन का आलिंगन करके) पुत्र! धैर्य धारण करो। हमें और अत्यधिक दीन इस माता को धैर्य धारण कराओ।

दुर्योधन– पिताजी! इससमय आप लोगों को समझाना अत्यन्त कठिन है, किन्तु–

आज मेरे द्वारा मारे गए पुत्रों वाली कुन्ती के साथ, शोक में विद्यमान होने पर भी, आप दोनों पुत्रों का शोक कर लीजिए।।4।।

गान्धारी– पुत्र! यदि तुम अकेले भी जीवित रहते हो, तो हमारे लिए यही पर्याप्त है। मैं भला दूसरे किसकी चिन्ता करूँगी? इसलिए हे पुत्र! यह तुम्हारे युद्ध करने का समय नहीं है। प्रसन्न होओ। यह मैं तुम्हारे समक्ष हाथ जोड़ रही हूँ। युद्ध के व्यापार से लौट आओ। पिता के वचनों का उल्लंघन नहीं करो।

शब्दार्थ– कृपणम्–कायरता, वचः–वचन, असदृशम्–अनुचित, भवती–आप, निर्वत्सले–हे पुत्र से स्नेह न करने वाली, क्व–कहाँ, अनुचिन्तयसि–बार–बार चिन्तन कर रही हो, रक्षसि–रक्षा कर रही हो, लोकवाद––कहावत, वितथः–असत्य, अयम्–यह, रज्जुः–रस्सी, प्रक्षेप्तव्या–फैंक देनी चाहिए।

धृतराष्ट्रः– वत्स! शृणु वचनं तवाऽम्बाया मम च निहताऽशेष-बन्धुवर्गस्य। पश्य–

दायादा न ययोर्बलेन गणितास्तौ द्रोणभीष्मौ हतौ,
कर्णस्यात्मजमग्रतः शमयतो भीतं जगत्फाल्गुनात्।
वत्सानां निधनेन मे त्वयि रिपुः शेषप्रतिज्ञोऽधुना
मानं वैरिषु मुंच तात! पितरावन्धाविमौ पालय।।5।।

(अन्वय– दायादा ययोः बलेन न गणिताः, तौ द्रोण–भीष्मौ हतौ, कर्णस्य आत्मजम् अग्रतः शमयतः, फाल्गुनात् जगत् भीतम्, मे वत्सानाम् निधनेन रिपुः अधुना त्वयि शेष–प्रतिज्ञः (अस्ति), तात! वैरिषु मानम् मुंच, इमौ अन्धौ पितरौ पालय।।5।।)

दुर्योधनः– तात! अम्ब! समरात्प्रतिनिवृत्त्य किं मया कर्तव्यम्?

गान्धारी– जात! यत्पिता ते विदुरो वा भणिष्यति तदनुतिष्ठ।[1]

संजयः– राजन्! एवमिदम्।

दुर्योधनः– संजय! अद्याऽप्युपदेष्टव्यमस्ति?

संजयः– राजन्! यावत्प्राणिति तावदुपदेष्टव्यभूमिर्विजिगीषुः प्रज्ञावताम्।

दुर्योधनः– (सक्रोधम्) शृणुमस्तावद्भवत एव प्रज्ञावतोऽस्मान्प्रति प्रतिरूपमुपदेशम्।

धृतराष्ट्रः– वत्स! युक्तवादिनि संजये किमत्र क्रोधेन? यदि प्रकृतिमापद्यसे तदहमेव भवन्तं ब्रवीमि। श्रूयताम्–

दुर्योधनः– कथयतु तातः!

धृतराष्ट्रः– वत्स! किं विस्तरेण? संधत्तां भवानिदानीमपि युधिष्ठिरमीप्सितपणबन्धेन।

दुर्योधनः– तात! तनयस्नेहवैक्लव्यादम्बा, बालिशत्वेन संजयश्च काममेवं ब्रवीतु। युष्माकमप्येवं व्यामोहः। अथवा प्रभवति पुत्रनाशजन्मा हृदयज्वरः। अन्यच्च तात! अस्खलितभ्रातृशतो यदाऽहं तदाऽवधीरित–

---

[1]. जाद! जं पिदा दे विउरो वा भणिस्सदि तं अनुचिट्ठ।

धृतराष्ट्र– पुत्र! अपनी माता के तथा मारे गए सभी बन्धुओं वाले मेरे वचनों को सुनो। देखो,

जिसने दो पराक्रमियों के बल के हिस्सेदार (दायदाः) पाण्डवों की भी परवाह नहीं की। वे दोनों भीष्म एवं द्रोण भी मारे गए। सभी के देखते–देखते कर्ण के पुत्र को मारने वाले, अर्जुन (फाल्गुन) से संसार भयभीत है और मेरे पुत्रों के निधन से अब तुम पर शत्रु की प्रतिज्ञा को पूरा किया जाना है। इसलिए हे पुत्र! मान–अपमान को शत्रुओं पर छोड़ दो और इन दोनों अन्धे माता–पिता का पालन करो।।5।।

दुर्योधन– हे तात! हे माते! युद्ध से लौटकर मुझे क्या करना चाहिए?

गान्धारी– हे पुत्र! जो तुम्हारे पिता अथवा विदुर कहें, वही करो।

संजय– राजन्! यह उचित ही है।

दुर्योधन– संजय! क्या अब भी उपदेश देना रह गया है?

संजय– राजन्! जब तक विजय प्राप्त करने का अभिलाषी जीवित रहता है, तब तक विद्वान् लोगों द्वारा वह उपदेश देने योग्य होता है।

दुर्योधन– (क्रोधपूर्वक) तब तो आप जैसे बुद्धिमान् व्यक्ति का उपदेश ही हम सुन लेते हैं।

धृतराष्ट्र– पुत्र! उचित बात कहने वाले, इस संजय पर क्रोध करने से क्या लाभ? यदि तुम शान्त हो जाते हो, तो मैं ही तुमसे कहता हूँ। सुनो–

दुर्योधन– पिताजी, कहिए।

धृतराष्ट्र– पुत्र! विस्तार से क्या? अभी भी आप अभिलषित शर्त को मानकर युधिष्ठिर के साथ सन्धि कर लो।

दुर्योधन– पिताजी, वस्तुतः माता जी पुत्र–स्नेह से व्याकुलता के कारण और संजय मूर्खता से ऐसा कह रहे हैं। आपको भी इसीप्रकार

वासुदेवसामोपन्यासः। सम्प्रति दृष्टपितामहाऽऽचार्याऽनुजराजचक्रविपत्तिः स्वशरीरमात्रस्नेहादुदात्तपुरुषव्रीडावहमसुखावसानं च कथमिव करिष्यति दुर्योधनः सह पाण्डवैः सन्धिम्। अन्यच्च नयवेदिन् संजय!

हीयमानान् किल रिपून्नृपाः सन्दधत्ते कथम्?।
दुःशासनेन हीनोऽहं सानुजः पाण्डवोऽधुना?।।6।।

(अन्वय– किल हीयमानान् रिपून् नृपाः कथम् सन्दधत्ते? अहम् दुःशासनेन हीनः, अधुना पाण्डवः स–अनुजः?।।6।।)

धृतराष्ट्रः– वत्स! एवं गतेऽपि मत्प्रार्थनया किंचिन्न करोति युधिष्ठिरः? अन्यच्च सर्वमेवाऽपकृतं नानुमन्यते।

दुर्योधनः– कथमिव ?

धृतराष्ट्रः– वत्स! श्रूयतां प्रतिज्ञा युधिष्ठिरस्य– 'नाहमेकस्यापि भ्रातुर्विपत्तौ प्राणान् धारयामी' ति। बहुच्छलत्वात्संग्रामस्यानुजनाशमाशंकमानो यदैव भवते रोचते तदैवाऽसौ सज्जः सन्धातुम्।

संजयः– एवमिदम्।

गान्धारी– जात! उपपत्तियुक्तं प्रतिपद्यस्व पितुर्वचनम्।[1]

दुर्योधनः– तात! अम्ब! संजय!

प्रस्तुत अंक में कवि ने पिता धृतराष्ट्र तथा माता गान्धारी एवं पुत्र दुर्योधन के अन्तर्द्वन्द्व की सुन्दर प्रस्तुति की है। दुर्योधन अपने सभी भाइयों को मारने वाले पाण्डवों से बदला लेने के लिए लालायित है, जबकि माता–पिता युद्ध को बन्द करके, इसे सन्धि करने के लिए प्रेरित करते हैं, किन्तु दुर्योधन का स्वाभिमान उसे ऐसा करने से रोकता है। यहाँ पर माता–पिता का यही स्वार्थ है कि सौ पुत्रों के मरने पर भी, केवल दुर्योधन के सहारे वे अपने शेष जीवन को व्यतीत कर लेंगे, किन्तु दुर्योधन अपने शत्रुओं से अपने प्रिय जनों को मारने का बदला लेने हेतु युद्ध करना चाहता है या फिर मृत्यु को अंगीकार करने के लिए उत्सुक है। इसप्रकार कवि ने यहाँ दुर्योधन के चरित्र के किंचित् उज्ज्वल पक्ष को प्रस्तुत किया है।

---

[1]. जाद! उपपत्तिजुत्तं पडिवज्जस्स पिदुणो वअणम्।

का व्यामोह है या फिर पुत्र–नाश से उत्पन्न हृदय–ज्वर आपको भी प्रभावित कर रहा है और भी हे पिताश्री! जिस समय मैं सौ भाइयों से युक्त था, उसी समय वासुदेव के शान्ति–प्रस्ताव को तिरस्कृत कर दिया था, अब जबकि भीष्मपितामह, आचार्य द्रोण, अनुजों एवं कर्ण आदि राजाओं के समूह के विनाश की विपत्ति को देख लेने वाला मैं, दुर्योधन अपने शरीरमात्र के स्नेह के कारण महापुरुषों की लज्जा धारण करने वाली तथा परिणाम में दुःख प्रदान करने वाली, पाण्डवों के साथ सन्धि को भला कैसे कर सकूँगा? और भी, हे नीतिज्ञ संजय!

वास्तव में, क्षीण बल वाले शत्रुओं के साथ राजा लोग भला किसप्रकार सन्धि कर सकते हैं? यों भी अब मैं दुःशासन आदि अनुजों से रहित हूँ तथा पाण्डव लोग इस समय अनुजों से युक्त हैं।।6।।

धृतराष्ट्र– पुत्र! ऐसा होने पर भी मेरी प्रार्थना से क्या युधिष्ठिर सन्धि नहीं करेंगे? इसके अलावा सभी लोग अपकार को मानने के ही पक्षधर नहीं होते हैं।

दुर्योधन– वह कैसे?

धृतराष्ट्र– पुत्र! तुम युधिष्ठिर की प्रतिज्ञा को सुनो, तदनुसार– 'एक भी भाई पर प्राणों की विपत्ति आने पर मैं प्राण धारण नहीं करूँगा।' अत्यधिक छल–प्रपंच के कारण युद्ध से भाइयों के विनाश की आशंका करता हुआ युधिष्ठिर, जब भी तुम चाहोगे, तभी सन्धि करने के लिए वह तैयार है।

संजय– यह ऐसा ही है।

गान्धारी– पुत्र! प्रमाणपूर्वक कहे गए पिता के वचनों का पालन करो।

दुर्योधन– पिताजी! माता जी! संजय!

शब्दार्थ– वासुदेव–श्रीकृष्ण, सामोपन्यासः–शान्ति विषयक प्रस्ताव, सम्प्रति–इस समय, राजचक्र–राजसमूह, उदात्तपुरुष–महापुरुष, श्रेष्ठ व्यक्ति, व्रीड़ा–लज्जा, कथमिव–भला कैसे, करिष्यति–करेगा, नयवेदिन्–नीति को जानने वाले।

एकेनापि विनानुजेन मरणं पार्थः प्रतिज्ञातवान्
भ्रातृणां निहते शते विषहते दुर्योधनो जीवितुम्?
तं दुःशासनशोणिताशनमरिं भिन्नं गदाकोटिना
भीमं दिक्षु न विक्षिपामि कृपणः सन्धिं विदध्यामहम्।।7

(अन्वय– एकेन अपि अनुजेन विना पार्थः मरणम् प्रतिज्ञातवान्, भ्रातृणाम् शते निहते अपि दुर्योधनः जीवितुम् विषहते? दुःशासन-शोणित–अशनम् तम् अरिम् भीमम् गदा–कोटिना भिन्नम्, दिक्षु न विक्षिपामि, कृपणः अहम् सन्धिम् विदध्याम्।।7।।)

गान्धारीः– हा जात दुःशासन! हा दुर्मर्षण। हा विकर्ण! हा वीरशतप्रसविनि गान्धारि, दुःखशतं प्रसूता, न सुतशतम्।[1]

(सर्वे रुदन्ति)

संजयः– (बाष्पमुत्सृज्य) तात! अम्ब! प्रतिबोधयितुं महाराजमिमां भूमिं युवामागतौ। तदात्माऽपि तावत्संस्तभ्यताम्।

धृतराष्ट्रः– वत्स दुर्योधन! एवं विमुखेषु भागधेयेषु त्वयि चाऽमुंचति सहजं मानवबन्धमरिषु त्वदेकशेषजीवितालम्बनेयं तपस्विनी गान्धारी कमवलम्बतां शरणमहं च ?।

दुर्योधनः– श्रूयतां यत्प्रतिपत्तमिदानीं प्राप्तकालम्–

कलितभुवना भुक्तैश्वर्यास्तिरस्कृतविद्विषः
प्रणतशिरसां राज्ञां चूड़ासहस्रकृताऽर्चनाः।
अभिमुखमरीन् संख्ये घ्नन्तो हताः शतमात्मजाः
वहतु सगरेणोढां तातो धुरं सहितोऽम्बया।।8।।

(अन्वय–कलित–भुवनाः, भुक्त–ऐश्वर्याः, तिरस्कृत–विद्विषः, प्रणत-शिरसाम् राज्ञाम्, चूड़ा–सहस्र–कृत–अर्चनाः, संख्ये अरीन् घ्नन्तः अभिमुखम् शतम् आत्मजाः हताः, अम्बया सहितः तातः सगरेण ऊढाम् धुरम् वहतु ।।8।।)

---

[1]. 'हा जाद दुस्सासण, हा दुम्मरिसण, हा विकण्ण, हा वीरसदप्पसविणि गान्धारि दुक्खसदं प्पसूदा ण सुदसदम्।

एक भी अनुज के न रहने पर युधिष्ठिर ने मरने की प्रतिज्ञा की है और सौ भाइयों के मारे जाने पर भी दुर्योधन जीवित रहने में समर्थ है। अनुज दुःशासन का रक्तपान करने वाले, शत्रु भीम को मैं भला गदा के अग्रभाग से विनष्ट करके दिशाओं में न फेंकूँ? और कायर मैं उनसे सन्धि कर लूँ।।7।।

गान्धारी– हाय! पुत्र दुःशासन, हाय दुर्मर्षण! हाय विकर्ण! हाय वीर प्रसविनी गान्धारि! तूने सौ पुत्रों को नहीं, अपितु सौ दुःखों का उत्पन्न किया है।

(सभी रोते हैं)

संजय– (अश्रु पोंछकर) पिताश्री! माताजी! आप दोनों महाराज को धैर्य बँधाने के लिए इस स्थान पर आए थे। इसलिए आप दोनों स्वयं को भी तो धैर्य धारण कराइए।

धृतराष्ट्र– पुत्र दुर्योधन! इसप्रकार भाग्य के विरुद्ध होने पर, तुम्हारे शत्रु पर स्वाभिमान को न्यौछावर न करने पर, एकमात्र तुम ही, जिसके जीवन का आधार रह गए हो, ऐसी बेचारी यह गान्धारी किसका सहारा ग्रहण करे और मैं भी किसकी शरण लूँ?

दुर्योधन– सुनिए, जो इस समय करने का समय है–

सम्पूर्ण संसार की रक्षा करने वाले, ऐश्वर्यों का भोग करने वाले, शत्रुओं को तिरस्कृत करने वाले, नतमस्तक राजाओं के हजारों चूड़ामणियों से पूजा कराने वाले, युद्ध में शत्रुओं का संहार करते हुए, आपके सामने ही सौ पुत्र मारे गए। इसलिए माता सहित पिताजी, राजा सगर द्वारा धारण किए गए, भार के समान ही आप ही इस पृथ्वी के भार को वहन कीजिए।। 8।।

विपर्यये त्वस्याऽधिपतेरुल्लंघितः क्षात्रधर्मः स्यात्।

(नेपथ्ये महान्कलकलः)

गान्धारी— (आकर्ण्य सभयम्) संजय! किमेतद्धाहाकारमिश्रं तूर्यरसितं श्रूयते।[1]

संजयः— अम्ब! भूमिरियमेवंविधानां भीरुजनत्रासजननी महानिनादानाम्।

धृतराष्ट्रः— वत्स संजय! ज्ञायतामतिभैरवः खलु विस्तारी हाहारवः। कारणेनाऽस्य महता भवितव्यम्।

दुर्योधनः— तात! प्रसीद। पराङ्मुखं खलु दैवमस्माकम्। यावदपरमपि किंचिदत्याहितं न श्रावयति तावदेवाऽऽज्ञापय मां संग्रामावतरणाय।

गान्धारी— जात! मुहुर्तकं तावन्मां मन्दभागिनीं समाश्वासय।[2]

धृतराष्ट्रः— वत्स! यद्यपि भवान्समराय कृतनिश्चयस्तथापि रहः परप्रतीघातोपायश्चिन्त्यताम्।

दुर्योधनः—

प्रत्यक्षं हतबान्धवा मम परे हन्तुं न योग्या रहः,
किं वा तेन कृतेन तैरिह कृतं यन्न प्रकाश्यं रणे।

गान्धारी— जात! एकाकी त्वम्, कस्ते साहाय्यं करिष्यति?[3]

दुर्योधनः—

एकोऽहं जगतीत्रयक्षयकरो मातः! कियन्तोऽरयः,
साम्यं केवलमेतु दैवमधुना निष्पाण्डवा मेदिनी।।9।।

(अन्वय— प्रत्यक्षम् हत–बान्धवाः परे रहः, मम हन्तुम् न योग्याः, इह रणे तैः प्रकाश्यम् यत् न कृतम् तेन कृतेन वा किम्? मातः! एकः

---

[1]. किं एदं हाहाकारमिस्सं तूररसिदं सुणीअदि?

[2]. जाद! मुहूत्तअं दाव मं मन्दभाइणीं समस्सासिहि।

[3]. जाद! एआइ तुमम्, को दे सहाअत्तणं करिस्सदि?

इसके विपरीत कार्य करने पर इनके क्षात्रधर्म का उल्लंघन हो जाएगा।

(नेपथ्य में महान् कलकल होता है)

गान्धारी– (सुनकर भयपूर्वक) संजय! क्या यह हाहाकार से युक्त तुरही की आवाज़ सुनायी दे रही है।

संजय– हे माते! महान् हाहाकारों की यह भूमि इसप्रकार के कायरों को भयभीत करने वाली होती है।

धृतराष्ट्र– पुत्र संजय! पता करो, अत्यधिक भयंकर और विस्तार से युक्त यह हाहाकार कैसा है? क्योंकि इसका कारण भी कोई बड़ा ही होना चाहिए।

दुर्योधन– पिताजी! प्रसन्न होइए। वस्तुतः भाग्य हमारे प्रतिकूल है, जब तक यह किसी दूसरे अनिष्ट की सूचना नहीं सुनाता है, तब तक ही मुझे युद्धभूमि में उतरने की आज्ञा प्रदान कीजिए।

गान्धारी– पुत्र! जरा क्षणभर के लिए मुझ मन्दभागिनी को धैर्य तो बँधा दो।

धृतराष्ट्र– पुत्र! यद्यपि तुम युद्ध में जाने का निश्चय कर चुके हो, फिर भी एकान्त में बैठकर शत्रु के संहार का उपाय तो सोच लो।

दुर्योधन– मेरे सामने ही शत्रुओं ने मेरे भाइयों को मार डाला और मैं उन्हें मारने में समर्थ न हो सका। इस युद्ध में उन शत्रुओं ने भीष्म एवं द्रोणादि वीरों का संहार करके, जो पौरुष प्रदर्शित किया है, यदि वैसा नहीं दिखा पाया तो क्या लाभ?

गान्धारी– पुत्र! तुम तो अकेले हो, तुम्हारी सहायता कौन करेगा?

दुर्योधन– हे माता! अकेले ही मैं तीनों लोकों का विनाश करने में समर्थ हूँ। शत्रु कितने ही क्यों न हों, यदि भाग्य अनुकूल हो, तो पृथ्वी पाण्डवों से रहित हो जाएगी।।9।।

अहम् जगती–त्रय–क्षय–करः, अरयः कियन्तः? अधुना केवलम् दैव साम्यम्, एतु मेदिनी निष्पाण्डवाः ।।9।।)

(नेपथ्ये कलकलानन्तरम्)

भो, भो, योधाः! निवेदयन्तु भवन्तः कौरवेश्वराय इदं महत्कदनं प्रवृत्तम्। अलमप्रियश्रवणपराङ्मुखतया। यतः कालानुरूपं प्रतिविधातव्यमिदानीम्। तथाहि–

त्यक्तप्राजनरश्मिरंकिततनुः पार्थांकितैर्मार्गणै–
र्वाहैः स्यन्दनवर्त्मनां परिचयादाकृष्यमाणः शनैः।
वार्तामंगपतेर्विलोचनजलैरावेदयन्पृच्छतां
शून्येनैव रथेन याति शिविरं शल्यः कुरूंछल्ययन्।।10।

(अन्वय– त्यक्त–प्राजन–रश्मिः पार्थ–अंकितैः मार्गणैः अंकित-तनुः, स्यन्दन–वर्त्मनाम् परिचयात् वाहैः शनैः आकृष्यमाणः, पृच्छताम् विलोचन–जलैः अंगपतेः वार्ताम् आवेदयन्, शल्यः कुरून् शल्ययन् शून्येन एव रथेन शिविरम् याति।।10।)

दुर्योधनः– (श्रुत्वा साशंकम्) आः सूत! केनेदमविस्पष्टमशनिपात-दारुणमुद्घोषितम्, ज्ञायताम्। कः कोऽत्र भोः?

(प्रविश्य संभ्रान्तः)

सूतः– हा! हताः स्मः। (इत्यात्मानं पातयति)

दुर्योधनः– अयि! कथय कथय ?।

धृतराष्ट्रसंजयौ– कथ्यतां कथ्यताम्।

सूतः– आयुष्मन्! किमन्यत्–

शल्येन यथा शल्येन मूर्च्छितः प्रविशता जनौघोऽयम्।
शून्यं कर्णस्य रथं मनोरथमिवाधिरूढेन।।11।।

(अन्वय– प्रविशता शल्येन यथा मनोरथम् इव शून्यम् कर्णस्य रथम् अधिरूढेन शल्येन अयम् जन–ओघः मूर्च्छितः।।11।।)

दुर्योधनः– हा वयस्य कर्ण!

(इति मोहमुपगतः)

(नेपथ्य में कोलाहल होने के बाद)

अरे, अरे! योद्धाओं, आप लोग कौरवेश्वर से निवेदन कर दीजिए कि यह महान् भयंकर घटित हो रहा है। इसलिए अप्रिय समाचार सुनने से मुख मोड़ना अब व्यर्थ है, वस्तुतः अब तो समय के अनुरूप ही कार्य करना चाहिए, क्योंकि–

चाबुक एवं लगाम को छोड़े हुए, अर्जुन के बाणों से चिह्नित शरीर से युक्त, रथ के मार्ग से परिचित होने के कारण, घोड़ों द्वारा धीरे–धीरे रथ को ले जाता हुआ, कर्ण के विषय में पूछे जाने पर अश्रु बहाते हुए समाचार बताता हुआ एवं कौरवों को पीड़ित करता हुआ, 'शल्य' खाली रथ लेकर शिविर की ओर जा रहा है।।10।।

दुर्योधन– (सुनकर आशंका के साथ) आः सूत! यह वज्रपात के समान भयंकर उद्घोष भला किसने किया है? पता करो। अरे! यहाँ कोई है?

(प्रवेश करके भयपूर्वक)

सूत– हाय! हम लोग मारे गए।

(ऐसा कहकर स्वयं को गिरा देता है)

दुर्योधन– अरे! कहो, कहो।

धृतराष्ट्र और संजय दोनों– कहिए, कहिए।

सूत– आयुष्मन्! और क्या?

प्रवेश करते हुए, विषैले बाणों के जैसा, शून्य मनोरथ के समान, (कर्ण से शून्य) **कर्ण के रथ पर अधिरूढ़ हुए शल्य द्वारा, लोगों का यह समूह मूर्च्छित हो गया है।।11।।**

दुर्योधन– हाय! मित्र, कर्ण!

(यह कहकर मूर्च्छित हो जाता है)

गान्धारी– जात! समाश्वसिहि समाश्वसिहि।[1]

संजयः– समाश्वसितु देवः, समाश्वसितु ।

धृतराष्ट्रः– भोः! कष्टं कष्टम्।

भीष्मे द्रोणे च निहते य आसीदवलम्बनम्।
वत्सस्य च सुहृच्छूरो राधेयः सोऽप्ययं गतः।।12।।

(अन्वय– भीष्मे द्रोणे च निहते, यः अवलम्बनम् आसीत्, वत्सस्य शूरः सुहृत् च, सः अयम् राधेयः अपि गतः।।12।।)

वत्स! समाश्वसिहि, समाश्वसिहि। ननु भो हतविधे!

अन्धोऽनुभूतशतपुत्रविपत्तिदुःख–
शोच्यां दशामुपगतः सह भार्ययाऽहम्।
अस्मिन्नशेषितसुहृद् गुरुबन्धुवर्गे
दुर्योधनेऽपि हि कृतो भवता निराशः।।13।।

(अन्वय– अन्धः अनुभूत–शत–पुत्र–विपत्ति–दुःखः अहम् भार्यया सह शोच्याम् दशाम् उपगतः, हि अशेषित–सुहृद्–गुरु–बन्धु–वर्गे अस्मिन् दुर्योधने अपि भवता निराशः कृतः।।13।।)

वत्स दुर्योधन! समाश्वसिहि, समाश्वसिहि। समाश्वासय तपस्विनीं मातरं च।

दुर्योधनः– (लब्धसंज्ञः)

अयि कर्ण! कर्णसुखदां प्रयच्छ मे
गिरमुद्गिरन्निव मुदं मयि स्थिराम्।
सतताऽवियुक्तमकृताऽप्रियं कथं
वृषसेनवत्सल! विहाय यासि माम्?।।14।।

(अन्वय– अयि कर्ण! मयि स्थिराम् मुदम् उद्गिरन् इव मे कर्ण–सुखदाम् गिरम् प्रयच्छ, वृषसेन–वत्सल! सतत–अवियुक्तम् अकृत–अप्रियम्, माम् विहाय कथम् यासि?।।14।।)

(इति पुनर्मोहमुपगतः। सर्वे समाश्वासयन्ति)

---

[1]. जाद! समस्सास समस्सस।

गान्धारी– पुत्र! धैर्य धारण करो, धैर्य धारण करो।

संजय– महाराज! धैर्य रखें, धैर्य रखें।

धृतराष्ट्र– अरे! कष्ट है, कष्ट है–

भीष्म एवं द्रोण के मारे जाने पर, जो अवलम्ब बना हुआ था और जो मेरे पुत्र का मित्र तथा योद्धा था, ऐसा वह राधेय कर्ण भी चला गया।।12।।

पुत्र! धैर्य धारण करो, धैर्य धारण करो। निश्चय ही, हे दुर्भाग्य!

नेत्रहीन, सौ पुत्रों के विनाश के दुःख को अनुभव किया हुआ मैं, पत्नी सहित शोचनीय दशा को प्राप्त हो गया हूँ, क्योंकि सम्पूर्ण मित्र एवं बन्धुवर्ग से रहित इस दुर्योधन पर भी तुम्हारे द्वारा मुझे निराश ही किया गया है।।13।।

पुत्र दुर्योधन! धैर्य धारण करो और तपस्विनी माता को भी भलीप्रकार धैर्य बँधाओ।

दुर्योधन– (होश में आकर)

अरे कर्ण! मानो मेरे मन में चिरस्थायिनी प्रसन्नता प्रदान करने वाली और मेरे कानों को सुख प्रदान करने वाली, वाणी में मुझे उत्तर प्रदान करो। हे वृषसेन वत्सल! हमेशा साथ में रहने वाले, कभी भी अप्रिय कार्य न करने वाले, मुझ दुर्योधन को छोड़कर तुम क्यों जा रहे हो?।। 14।।

(यह कहकर फिर से मूर्च्छित हो जाता है। सभी धैर्य बँधाते हैं)

शब्दार्थ– जात–पुत्र, निहते–मरने पर, अवलम्बनम्–सहारा, आसीत्–था, राधेयः–कर्ण, गतः–चला गया, हतविधे–हे दुर्भाग्य, शोच्याम्–शोचनीय को, दशाम्–दशा को, उपगतः– प्राप्त हो गया, हि–क्योंकि, तपस्विनीम्–बेचारी को, प्रयच्छ–प्रदान करो, मुदम्– प्रसन्नता को, मयि–मुझमें, सतत–निरन्तर, विहाय–छोड़कर, इति–इसप्रकार, अशेषित–सम्पूर्ण।

दुर्योधनः–

मम प्राणाधिके तस्मिन्नंगानामधिपे हते।
उच्छ्वसन्नपि लज्जेऽहमाश्वासे तात! का कथा? ।15।

(अन्वय– तात! मम प्राण–अधिके अंगानाम् अधिपे तस्मिन् हते अहम् उच्छ्वसन् अपि लज्जे, आश्वासे का कथा? ।15।)

अपि च –

शोचामि शोच्यमपि शत्रुहतं न वत्सं
दुःशासनं तमधुना न च बन्धुवर्गम्।
येनाऽतिदुःश्रवमसाधु कृतं तु कर्णे
कर्ताऽस्मि तस्य निधनं समरे कुलस्य ।।16।।

(अन्वय– अधुना शत्रु–हतम् शोच्यम् अपि न वत्सम्, तम् दुःशासनम् बन्धु–वर्गम् च न शोचामि, तु येन कर्णे अति–दुःश्रवम् असाधु कृतम्, तस्य कुलस्य समरे निधनम् कर्ता अस्मि।।16।।)

गान्धारी– जात! शिथिलय तावत्क्षणमात्रं बाष्पमोक्षम्।[1]

धृतराष्ट्र– वत्स! क्षणमात्रं परिमार्जयाऽश्रूणि।

दुर्योधनः–

मामुद्दिश्य त्यजन्प्राणान् केनचिन्न निवारितः।
तत्कृते त्यजतो बाष्पं किं मे दीनस्य वार्यते?।।17।।

(अन्वय– माम् उद्दिश्य प्राणान् त्यजन्, केनचित् न निवारितः, तत् कृते बाष्पम् त्यजतः, दीनस्य मे किम् वार्यते?।।17।।)

सूत! केनैतदसंभावनीयमस्मत्कुलान्तकरं कर्म कृतं स्यात्?

सूतः– आयुष्मन्! एवं किल जनः कथयति–

भूमौ निमग्नचक्रश्चक्रायुधसारथेः शरैस्तस्य।
निहतः किलेन्द्रसूनोरस्मत्सेना कृतान्तस्य ।।18।।

(अन्वय– भूमौ निमग्न–चक्रः, चक्र–आयुध–सारथेः, तस्य अस्मत् सेना कृतान्तस्य इन्द्र–सूनोः शरैः निहतः किल।।18।।)

---

[1]. जाद! सिढिलेहि दाव क्खणमेत्तं बाप्पमोक्खम्।

दुर्योधन– हे पिताजी! मेरे प्राणों से भी अधिक प्रिय, अंगराज कर्ण के मारे जाने पर मैं श्वास लेने में भी लज्जा का अनुभव कर रहा हूँ। धैर्य धारण करने की तो बात ही क्या है?।। 15।।

और भी–

अब शत्रुओं द्वारा मारे गए, शोचनीय पुत्र, प्रिय अनुज दुःशासन एवं दूसरे बन्धुवर्ग का मुझे शोक नहीं है, किन्तु जिस दुष्ट ने अत्यन्त कष्टपूर्वक सुना जा सकने वाला, कर्ण का यह अमंगल कार्य किया है। उसके वंश का मैं संग्राम में विनाश करने वाला हूँ।।16।।

गान्धारी– पुत्र! थोड़ी देर के लिए अश्रुप्रवाह को रोक लो।

धृतराष्ट्र– पुत्र! क्षणमात्र के लिए अश्रुओं को पोंछ लो।

दुर्योधन– मुझे लक्ष्य करके, प्राणों को त्यागते हुए, जिस कर्ण को किसी भी व्यक्ति द्वारा रोका नहीं गया। उसके लिए अश्रुओं को त्यागते हुए, मुझ दुःखी को क्यों रोका जा रहा है?।।17।।

हे सूत! हमारे वंश का विनाश करने वाला, यह असम्भव कार्य किसने किया?

सूत– वस्तुतः लोग ऐसा कह रहे हैं–

निश्चय ही, वे रथ का पहिया भूमि में धँस जाने पर, चक्रधारी श्रीकृष्ण द्वारा चलाए जा रहे रथ वाले, हमारी सेना का विनाश करने वाले, इन्द्रपुत्र अर्जुन के बाणों से मारे गए।।18।।

शब्दार्थ– मम–मेरे, हते–मारे जाने पर, उच्छ्वसन्–श्वास लेता हुआ, लज्जे–लज्जित हो रहा हूँ, का–क्या, कथा–बात, आश्वासे–धैर्य के लिए, अपिच–और भी, अधुना–अब, वत्सम्–पुत्र को, शोचामि–शोक करता हूँ, असाधु–अनुचित, अमंगल, निधनम्–विनाश, मृत्यु, समरे–युद्ध में, शिथिलय–रोक लो, बाष्पमोक्षम्–आँसुओं के छोड़ने को, क्षणमात्रम्–क्षणभर के लिए, परिमार्जय–पोंछ लो।

दुर्योधनः– कष्टं भोः कष्टम्।

कर्णाननेन्दुस्मरणात्क्षुभितः शोकसागरः।
वाडवेनेव शिखिना पीयते क्रोधजेन मे।।19।।

(अन्वय– कर्ण–आनन–इन्दु–स्मरणात् क्षुभितः मे शोक–सागरः वाडवेन शिखिना इव क्रोधजेन पीयते ।।19।।)

तात! अम्ब! प्रसीदतम्।

ज्वलनः शोकजन्मा मामयं दहति दुःसहः।
समानायां विपत्तौ मे वरं संशयितो रणः।।20।।

(अन्वय– दुःसहः शोक–जन्मा, अयम् ज्वलनः माम् दहति, मे विपत्तौ समानायाम् संशयितः रणः वरम्।।20।।)

धृतराष्ट्रः– (दुर्योधनं परिष्वज्य रुदन्)

भवति तनय! लक्ष्मीः साहसेष्वीदृशेषु
द्रवति हृदयमेतद्भीममुत्प्रेक्ष्य भीमम्।
अनिकृतिनिपुणं ते चेष्टितं मानशौण्ड!
छलबहुलमरीणां संगरं हा! हतोऽस्मि।।21।।

(अन्वय– तनय! ईदृशेषु साहसेषु लक्ष्मीः भवति, भीमम्, भीमम् उत्प्रेक्ष्य एतत् हृदयम् द्रवति, मानशौण्ड! ते चेष्टितम् अनिकृति–निपुणम्, अरीणाम् संगरम् छल–बहुलम्, हा! हतः अस्मि।।21।।)

गान्धारी– जात! तेनैव सुतशतकृतान्तेन वृकोदरेण समं समरं मार्गयसे?[1]

दुर्योधनः– अम्ब! तिष्ठतु तावद् वृकोदरः।

पापेन येन हृदयस्य मनोरथो मे
सर्वांगचन्दनरसो नयनाऽमलेन्दुः।
पुत्रस्तवाम्ब! तव तात! नयैकशिष्यः
कर्णो हतः सपदि तत्र शराः पतन्तु।।22।।

दुर्योधन– अरे! कष्ट है, अत्यधिक कष्ट है–

---

[1]. जाद तेण एव सु दसदकदन्तेण विओदलेण समं समलं मग्गसि?

मित्र कर्ण के मुखरूपी चन्द्रमा का स्मरण करने से व्याकुल हुआ, मेरा शोकरूपी सागर, वड़वानल के समान, क्रोध से उत्पन्न हुई अग्नि द्वारा पिया जा रहा है।।19।।

पिताजी! माते! आप प्रसन्न रहिए।

अत्यधिक शोक से उत्पन्न, यह अग्नि मुझे जला रही है। इसलिए युद्ध करने एवं न करने इन दोनों समान विपत्ति में संशय होने पर मेरे लिए युद्ध करना ही श्रेष्ठ है।।20।।

धृतराष्ट्र– (दुर्योधन को गले लगाकर रोते हुए)

पुत्र! इसप्रकार के साहसपूर्ण कार्यों में ही लक्ष्मी निवास करती है, किन्तु भयंकर भीम को सोचकर हृदय व्याकुल हो जाता है। हे स्वाभिमानियों में अग्रणी! तुम्हारा कार्य शत्रुओं की वंचना से रहित है, जबकि शत्रुओं के साथ युद्ध करना, छल–प्रपंच से भरा हुआ है। हाय! मैं तो मारा गया।।21।।

गान्धारी– बेटा! उसी सौ पुत्रों का विनाश करने वाले, भीमसेन के साथ युद्ध करना चाह रहे हो?।

दुर्योधन– हे माते! तब तक भीम तो अलग ही रहे–

हे पिताजी! जिस दुष्ट ने मेरे हृदय के मनोरथ को, सभी अंगों को चन्दन के समान आनन्दित करने वाले, नेत्रों के लिए निर्मल चन्द्रमा के समान, तुम्हारे पुत्र, तुम्हारे राजनीति के प्रमुख शिष्य कर्ण का वध किया है, मेरे बाण तो शीघ्रतापूर्वक उसी पर गिरेंगे।।22।।

शब्दार्थ– आनन–मुख, इन्दु–चन्द्रमा, स्मरणात्–स्मरण करने से, क्षुभितः–व्याकुल हुआ, वाडवेन–वड़वानल के द्वारा, इव–समान, क्रोधजेन–क्रोध से उत्पन्न, पीयते–पिया जा रहा है, ज्वलनः–अग्नि, माम्–मुझे, दहति–जला रहा है, परिष्वज्य–आलिंगन करके, रुदन्–रोते हुए, ईदृशेषु–इसप्रकार को में, उत्प्रेक्ष्य–देखकर।

(अन्वय– येन पापेन मे हृदयस्य मनोरथः, सर्वांग–चन्दन–रसः, नयन–अमल–इन्दुः अम्ब! तव पुत्रः, तात! नय तव एक–शिष्यः, कर्णः हतः, तत्र सपदि शराः पतन्तु।।22।।)

सूत! अलमिदानीं कालातिपातेन, सज्जं मे रथमुपहर। भयं चेत्पाण्डवेभ्यस्तिष्ठ। गदामात्रसहाय एव समरभुवमवतरामि।

सूतः– अलमन्यथा संभावितेन! अयमहमागत एव।

(इति निष्क्रान्तः)

धृतराष्ट्रः– वत्स दुर्योधन! यदि स्थिर एवाऽस्मान्दग्धुमयं ते व्यवसायस्तद्यथासन्निहितेषु वीरेषु सेनापतिः कश्चिदभिषिच्यताम्।

दुर्योधनः– नन्वभिषिक्त एव।

गान्धारी– जात! कतरः पुनः स, यत्रेमां हताशामवलम्बिष्ये?[1]

धृतराष्ट्रः– किं वा शल्य उत वाऽश्वत्थामा?।

संजयः– हा कष्टम्।

गते भीष्मे हते द्रोणे कर्णे च विनिपातिते।
आशा बलवती राजन्छल्यो जेष्यति पाण्डवान्।।23।।

(अन्वय– भीष्मे गते, द्रोणे हते, कर्णे च विनिपातिते, राजन्! आशा बलवती, शल्यः पाण्डवान् जेष्यति।।23।।)

दुर्योधनः– किं वा शल्येनोत वाऽश्वत्थाम्ना?

कर्णालिंगनदायी वा पार्थप्राणहरोऽपि वा।
अनिवारितसम्पातैरयमात्माऽश्रुवारिभिः।।24।।

(अन्वय– कर्ण–आलिंगन–दायी वा, पार्थ–प्राण–हरः अपि वा, अनिवारित–सम्पातैः अश्रु–वारिभिः अयम् आत्मा (अभिषिक्तः)।।24।।)

(नेपथ्ये कलकलं श्रुत्वा)

भो भोः कौरवबलप्रधानयोधाः! अलमस्मानवलोक्य भयादितस्ततो गन्तुम्। कथयन्तु भवन्तः कस्मिन्नुद्देशे सुयोधनस्तिष्ठतीति।

(सर्वे ससंभ्रममाकर्णयन्ति)

---

1. जाद! कदरो उण सो, जस्सिं हदासं ओलम्बिस्सम्।

सूत! अब विलम्ब करना व्यर्थ है। तैयार किया हुआ मेरा रथ ले आओ। यदि पाण्डवों का भय हो, तो ठहरो, मैं गदामात्र सहयोगी होकर ही समरभूमि में उतरता हूँ।

सूत– विपरीत सम्भावना से बस कीजिए। यह मैं आ ही गया हूँ।

(इसप्रकार कहकर निकल जाता है)

धृतराष्ट्र– पुत्र, दुर्योधन! यदि हमें जलाने का तुम्हारा दृढ़ निश्चय है तो उपस्थित वीरों में से किसी भी एक को सेनापति पद पर अभिषिक्त कर दो।

दुर्योधन– निश्चय ही, अभिषिक्त किया जा चुका है।

गान्धारी– पुत्र! वह कौन सा व्यक्ति है, जिसपर मैं नष्ट हुई आशा लगाऊँ?

धृतराष्ट्र– क्या वह शल्य है अथवा फिर अश्वत्थामा?

संजय– हाय! कष्ट है–

भीष्मपितामह के चले जाने, द्रोणाचार्य के मारे जाने और कर्ण जैसे महारथियों का निधन होने पर, हे राजन्! अब तो यही बलवती आशा लगी हुई कि शल्य ही पाण्डवों पर विजय प्राप्त करेगा।।23।।

दुर्योधन– शल्य अथवा अश्वत्थामा से क्या?

कर्ण को आलिंगन प्रदान करने वाला अथवा पार्थ के प्राणों का हरण करने वाला या फिर निरन्तर आँसू बहाने वाला, यह मैं स्वयं ही अभिषिक्त हो गया हूँ।।24।।

(नेपथ्य में कोलाहल सुनकर)

अरे! अरे! कौरव सेना के प्रमुख योद्धाओं! हमें देखकर भयपूर्वक इधर–उधर भागने से बस करो। कृपया आप तो यह बताएँ कि सुयोधन भला किस प्रदेश में बैठा हुआ है?

(सभी घबराहटपूर्वक सुनते हैं)

(प्रविश्य सम्भ्रान्तः)

सूतः– आयुष्मन्!

प्राप्तावेकरथारूढौ पृच्छन्तौ त्वामितस्ततः।

सर्वे– कश्च कश्च?

सूतः–

स कर्णारिः स च क्रूरो वृककर्मा वृकोदरः।।25।।

(अन्वय– एक–रथ–आरूढौ इतस्ततः त्वाम् पृच्छन्तौ प्राप्तौ, सः कर्ण–अरिः सः च क्रूरः वृक–कर्मा, वृकोदरः।।25।।)

गान्धारी– (सभयम्) जात! किमत्र साम्प्रतं प्रतिपत्तव्यम्?[1]

दुर्योधनः– अम्ब! ननु सन्निहितैवेयं गदा।

गान्धारी– हा हताऽस्मि, अहं मन्दभागिनी।[2]

दुर्योधनः– अम्ब! अलमिदानीं कार्पण्येन। संजय! रथमारोप्य पितरौ शिविरं प्रतिष्ठस्व। समागतोऽस्माकं शोकाऽपनोदी जनः।

धृतराष्ट्रः– वत्स! क्षणमेकं प्रतीक्षस्व यावदनयोर्भावमुपलभे।

दुर्योधनः– तात! किमनेनोपलब्धेन?। तद्गम्यताम्।

(धृतराष्ट्रो गान्धारी च किंचिद्गत्वा तिष्ठतः)

(ततः प्रविशतो रथाऽऽरूढौ भीमार्जुनौ)

भीमः– भो भोः सुयोधनानुजीविनः! किमिति सम्भ्रमादयथातथं संचरन्ति भवन्तः। कथयत तावदिदमावयोरागमनं स्वामिनस्तस्य कुरुपतेः। अलमावयोः शंकया–

कर्ता द्यूतच्छलानां जतुमयशरणोद्दीपनः सोऽभिमानी
कृष्णाकेशोत्तरीयव्यपनयनमरुत्पाण्डवा यस्य दासाः।
राजा दुःशासनादेर्गुरुरनुजशतस्यांगराजस्य मित्रं,
क्वास्ते दुर्योधनोऽसौ, कथयत न रुषा द्रष्टुमभ्यागतौ स्वः।

---

1 . (सभयं) जाद! किं एत्थ सम्पत्तं पडिपज्जिदव्वं?

2 . हा हदम्हि मन्दभाइणी।

(प्रवेश करके डरा हुआ)

सूतः– आयुष्मन्!

एक ही रथ पर चढ़े हुए, आपको इधर–उधर पूछते हुए, खोजते हुए,

सभी– कौन? कौन?

सूतः– वह कर्ण के शत्रु अर्जुन एवं क्रूरकर्म करने वाला भयंकर वृकोदर दोनों ही आ गए हैं।।25।।

गान्धारी– (भयपूर्वक) हे पुत्र! अब भला क्या करना चाहिए?

दुर्योधन– हे माते! निश्चय ही, यह मेरी गदा तैयार है।

गान्धारी– हाय! मैं मन्दभागिनी तो मारी गयी।

दुर्योधन– हे माते! अब दीनता से कोई लाभ नहीं है? संजय! माता–पिता को रथ पर बैठाकर शिविर में प्रस्थान करो, क्योंकि हमारे शोक को दूर करने वाला आ गया है।

धृतराष्ट्र– वत्स! एक क्षण के लिए प्रतीक्षा करो, जब तक मैं इन दोनों के आशय को समझ लूँ।

दुर्योधन– पिताजी! अब भाव समझने से क्या? आप तो जाइए।

(धृतराष्ट्र और गान्धारी दोनों कुछ दूर जाकर रुक जाते हैं)

(उसके बाद रथ पर आरूढ़ हुए भीम और अर्जुन प्रवेश करते हैं)

भीम– अरे! अरे! सुयोधन के पक्षपातियों! भयभीत हुए, आप लोग इधर–उधर क्यों घूम रहे हैं? जरा आप लोग अपने स्वामी उस कुरुराज को हम दोनों के आने की यह सूचना दे दो। हम दोनों पर शंका से बस करो।

जुए में छलों को करने वाला, लाक्षागृह को जलाने वाला, अभिमानी एवं द्रौपदी के केशों और उत्तरीय को खींचने में वायु के समान, जुए में दास बने हुए पाण्डव लोग जिसे चुपचाप देख रहे थे, दुःशासन आदि सौ भाइयों में बड़े, अंगराज का मित्र, वह दुर्योधन कहाँ है? जरा बताओ। हम दोनों क्रुद्ध होकर नहीं, अपितु यों ही देखने के लिए आए हैं।।26।।

(अन्वय– द्यूतच्छलानाम् कर्ता, जतुमय–शरण–उद्दीपनः, अभिमानी –कृष्णा–केश–उत्तरीय–व्यपनयन–मरुत् सः, पाण्डवाः यस्य दासाः, दुःशासनादेः अनुज–शतस्य गुरुः, अंगराजस्य मित्रम् राजा असौ दुर्योधनः, क्व आस्ते? कथयतः रुषा न, द्रष्टुम् अभ्यागतौ स्वः।।26।।)

धृतराष्ट्रः– संजय! दारुणः खलूपक्षेपः पापस्य।

संजयः– तात! कर्मणा कृतनिःशेषविप्रियाः सम्प्रति वाचा व्यवस्यन्ति।

दुर्योधनः– सूत! कथय गत्वोभयोः'अयं तिष्ठतीति'।

सूतः– यथाऽऽज्ञापयति देवः। (तावुपसृत्य) ननु भो वृकोदराऽर्जुनौ! एष महाराजस्तातेनाऽम्बया च सह न्यग्रोधच्छायायामुपविष्टस्तिष्ठति।

अर्जुनः– आर्य! प्रसीद। न युक्तं पुत्रशोकोपपीडितौ पितरौ पुनरस्मद्दर्शनेन भृशमुद्वेजयितुम्। तद् गच्छावः।

भीमः– मूढ! अनुलंघनीयः सदाचारः। न युक्तमनभिवाद्य गुरून् गन्तुम्। (उपसृत्य) संजय! पित्रोर्नमस्कृतिं श्रावय। अथवा तिष्ठ। स्वयमेव विश्राव्य नामकर्मणी वन्दनीया गुरवः। (इति रथादवतरतः)

अर्जुनः– (उपगम्य) तात! अम्ब!

सकलरिपुजयाऽऽशा यत्र बद्धा सुतैस्ते
तृणमिव परिभूतो यस्य गर्वेण लोकः।
रणशिरसि निहन्ता तस्य राधासुतस्य
प्रणमति पितरौ वां मध्यमः पाण्डवोऽयम्।।27।।

(अन्वय– ते सुतैः सकल–रिपु–जय–आशा यत्र बद्धा,यस्य लोकः गर्वेण तृणम् इव परिभूतः, रण–शिरसि तस्य राधा–सुतस्य निहन्ता, अयम् मध्यमः पाण्डवः पितरौ वाम् प्रणमति।।27।।)

भीमः–

चूर्णिताशेषकौरव्यः क्षीबो दुःशासनाऽसृजा।
भङ्क्ता सुयोधनस्योर्वो भीमोऽयं शिरसाऽंचति।।28।।

धृतराष्ट्रः– संजय! वास्तव में इस पापी का आक्षेप भयंकर है।

संजयः– तात! कर्म द्वारा सभी प्रकार के अप्रिय कार्य करके, अब ये वाणी से आक्षेप करेंगे।

दुर्योधन– हे सूत! उन दोनों से जाकर कहो कि– 'यह यहाँ पर बैठा हुआ है।'

सूत– जैसी महाराज की आज्ञा। (उन दोनों के पास जाकर) अरे! वृकोदर एवं अर्जुन! निश्चय ही, ये महाराज, पिताजी और माताजी के साथ इस वट वृक्ष की छाया में विराजमान हैं।

अर्जुन– आर्य! प्रसन्न होइए। पुत्रशोक से व्याकुल, माता–पिता को फिर से दिखायी देकर, अधिक व्याकुल करना उचित नहीं है। इसलिए आइए, हम दोनों चलते हैं।

भीम– मूर्ख! सदाचार का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। इसलिए गुरुजनों को अभिवादन किए बिना चले जाना ठीक नहीं है। (पास जाकर) संजय! माता–पिता को हमारा प्रणाम सुना दो अथवा ठहरो, हम दोनों ही आकर सुना देते हैं, क्योंकि गुरुजन तो वन्दनीय होते हैं।

(ऐसा कहकर दोनों रथ से उतरते हैं)

अर्जुन– (पास जाकर) पिताजी! माताजी!

तुम्हारे पुत्रों द्वारा सभी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने की जिस पर आशा बाँधी गयी थी, जिसके अहंकार से संसार का तिनके के समान मानकर, तिरस्कार किया जाता था, समरभूमि में उस राधेय कर्ण का मारने वाला, यह मध्यम पाण्डव अर्जुन आप दोनों को प्रणाम कर रहा है।।27।।

भीम–

सभी कौरवों को नष्ट करने वाला, दुःशासन के रुधिर को पीने के कारण, मदमस्त बना हुआ, सुयोधन की जँघाओं को विदीर्ण करने वाला, यह भीम सिर झुकाकर आपको प्रणाम कर रहा है।।28।।

(अन्वय– चूर्णित–अशेष–कौरव्यः दुःशासन–असृजा क्षीबः सुयो-धनस्य ऊर्वोः भङ्क्ता, अयम् भीमः शिरसा अंचति।।28।।)

धृतराष्ट्रः– दुरात्मन् वृकोदर! न तावद्विकत्थयाऽऽत्मानम्, न खल्विदं भवतैव केवलं सपत्नामपकृतम्। यावत्क्षत्रं तावत्समरविजयिनो जिता हताश्च वीराः। तत्किमेवं विकत्थनाभिरस्मानुद्वेजयसि?

भीमः– तात, अलमलं मन्युना।

कृष्णा केशेषु कृष्टा तव सदसि वधूः पाण्डवानां नृपैर्यैः
सर्वे ते क्रोधवह्नौ कृशशलभकुलाऽवज्ञया येन दग्धाः।
एतस्माच्छ्रावयेऽहं न खलु भुजबलश्लाघया नापि दर्पात्
पुत्रैः पौत्रैश्च कर्मण्यतिगुरुणि कृते तात! साक्षी त्वमेव।29

(अन्वय– पाण्डवानाम् वधूः कृष्णा यैः नृपैः तव सदसि केशेषु कृष्टा, येन कृश–शलभ–कुल–अवज्ञया सर्वे ते क्रोध–वह्नौ दग्धाः, एतस्मात् अहम् श्रावये, न खलु भुज–बल–श्लाघया, न अपि दर्पात्, तात! पुत्रैः पौत्रैः च कृते अति–गुरुणि कर्मणि त्वम् एव साक्षी ।। 29।।)

दुर्योधनः– अरे रे मरुत्तनय! किमेवं वृद्धस्य राज्ञः पुरतो निन्दित-व्यमात्मकर्म श्लाघसे। अपि च–

कृष्टा केशेषु भार्या तव, तव च पशोस्तस्य राज्ञस्तयोर्वा
प्रत्यक्षं भूपतीनां मम भुवनपतेराज्ञया द्यूतदासी।
अस्मिन्वैरानुबन्धे वद किमपकृतं तैर्हता ये नरेन्द्राः,
बाह्वोर्वीर्यातिरेकद्रविणगुरुमदं मामजित्वैव दर्पः।।30।।

(अन्वय– भुवनपतेः मम आज्ञया द्यूत–दासी, तव पशोः तव, तस्य च राज्ञः तयोः वा भार्या भूपतीनाम् प्रत्यक्षम् केशेषु कृष्टा, अस्मिन् वैर–अनुबन्धे ये नरेन्द्राः हताः, तैः किम् अपकृतम् वद, बाह्वोः वीर्य-अतिरेक–द्रविण–गुरु–मदम् माम् अजित्वा एव दर्पः।।30।।)

आः दुरात्मन्! एष न भवसि।

(इति सक्रोधमुत्थाय हन्तुमिच्छति)

(धृतराष्ट्रो धृत्वोपवेशयति)

धृतराष्ट्रः– हे दुरात्मन! वृकोदर! अपनी अधिक प्रशंसा मत करो, क्योंकि केवल तुमने अकेले ही शत्रुओं का संहार नहीं किया है। जब तक क्षत्रिय जाति है, तब तब युद्ध–विजयी वीर जीते और मारे जाते रहे हैं।

भीम– हे तात! क्रोध से बस कीजिए, बस कीजिए।

पाण्डवों की वधू द्रौपदी, जिन राजाओं द्वारा आपकी सभा में केश पकड़कर खींची गई, इस अर्जुन ने तुच्छ पतंगों के समान, अवज्ञा करके, उन सभी को क्रोधरूपी अग्नि में जलाकर भस्म कर दिया है। इसीकारण मैं आपको सुना रहा हूँ, अपने भुजबल की प्रशंसा और अभिमान से यह सब मैं आपको नहीं कह रहा हूँ। हे तात! अपने पुत्रों, पौत्रों द्वारा किए गए, शत्रुवध आदि अत्यन्त महान् कार्यों के तो आप स्वयं ही साक्षी हैं। ।29।।

दुर्योधन– अरे! रे! वायुपुत्र! भीम, इसप्रकार वृद्ध महाराज के सामने, अपने निन्दनीय कर्मों की प्रशंसा कर रहे हो? और भी–

सभी लोकों के अधिपति, मेरी आज्ञा से जुए में जीती गयी, तेरी पत्नी को दासी मानकर, पशु के समान तेरे एवं अर्जुन के और उस राजा युधिष्ठिर तथा नकुल–सहदेव के समक्ष, केश पकड़कर खींचा गया। इस शत्रुता के प्रसंग में, जो राजा मारे गए, उन्होंने तुम्हारा क्या अपकार किया था? जरा बताओ। भुजाओं के बलरूपी धन के अभिमान से मत्त हुए, मुझे जीते बिना ही गर्व कर रहे हो?।।30।।

अहो! दुरात्मन्! यह तू अब जीवित नहीं बचेगा।

(इसप्रकार कहकर क्रोधपूर्वक उठकर मारना चाहता है)

(धृतराष्ट्र पकड़कर बैठा देते हैं)

(भीमः क्रोधं नाटयति)

अर्जुनः– (निवारयन्) आर्य! प्रसीद, प्रसीद। किमत्र क्रोधेन।

अप्रियाणि करोत्येष वाचा शक्तो न कर्मणा।
हतभ्रातृशतो दुःखी प्रलापैरस्य का व्यथा।।31।।

(अन्वय– हत–भ्रातृ–शतः, दुःखी एषः वाचा अप्रियाणि करोति कर्मणा न शक्तः, अस्य प्रलापैः का व्यथा।।31।।)

भीमः– अरे रे भरतकुलेन्दुकलंक!

अत्रैव किं न विशसेयमहं भवन्तं
दुःशासनानुगमनाय कटुप्रलापिन्!
विघ्नं गुरुर्न कुरुते यदि मद्गदाग्र–
निर्भिद्यमानरणिताऽस्थीनि ते शरीरे ।।32।।

(अन्वय– कटु–प्रलापिन्! यदि मत्–गदा–अग्र–निर्भिद्यमान–रणित–अस्थीनि ते शरीरे गुरुः विघ्नम् न कुरुते, अत्र एव भवन्तं दुःशासन–अनुगमनाय अहम् न विशसेयम् किम्?।।32।।)

अन्यच्च मूढ!

शोकं स्त्रीवन्नयनसलिलैर्यत्परित्याजितोऽसि
भ्रातुर्वक्षःस्थलविघटने यच्च साक्षीकृतोऽसि।
आसीदेतत्तव कुनृपतेः कारणं जीवितस्य
क्रुद्धे युष्मत्कुलकमलिनीकुंजरे भीमसेने।।33।।

(अन्वय– युष्मत् कुल–कमलिनी–कुंजरे भीमसेने क्रुद्धे,यत् स्त्रीवत् नयन–सलिलैः शोकम् परित्याजितः असि, यत् च भ्रातुः वक्षःस्थल–विघटने साक्षी–कृतः असि, एतत् कु–नृपतेः तव जीवितस्य कारणम् आसीत्।।33।।)

दुर्योधनः– दुरात्मन्! भरतकुलापसद! पाण्डवपशो! नाऽहं भवानिव विकत्थनाप्रगल्भः। किन्तु–

द्रक्ष्यन्ति नचिरात्सुप्तं बान्धवास्त्वां रणांगणे।
मद्गदाभिन्नवक्षोऽस्थिवेणिकाभीमभूषणम्।।34।।

(भीम क्रोध करने का अभिनय करता है)

अर्जुन– (रोकते हुए) आर्य! प्रसन्न होइए। यहाँ पर क्रोध करने से क्या लाभ है?

सौ भाइयों के मारे जाने से दुःखी यह दुर्योधन वाणी के द्वारा ही, अप्रिय कर रहा है, जबकि कर्म करने में यह समर्थ नहीं है। इसलिए इसके प्रलापों से दुःखी होने की आवश्यकता नहीं है। ।31।।

भीम– अरे! रे! भरतकुल के कलंक!

हे कटुप्रलाप करने वाले! यदि मेरी गदा के अग्रभाग से तोड़ी गयी, चरमराती हुई तेरे शरीर की हड्डियों वाले, तेरे शरीर पर, गुरुजन विघ्न नहीं करते तो, आज ही तुझे दुःशासन का अनुगमन करने के लिए, क्या मैं मार चुका नहीं होता? ।।32।।

और भी हे मूर्ख!

तेरे वंशरूपी कमलिनी लता के लिए मतवाले हाथी के समान, मुझ भीम के क्रुद्ध होने पर, जो स्त्रियों के समान आँसू बहाकर तूने अपने शोक को हलका किया है और भाई दुःशासन के वक्षःस्थल को विदीर्ण करने में तू साक्षी रहा है, यही दुष्ट नृपति, तेरे जीवित रहने का कारण था। ।33।।

दुर्योधन– हे दुरात्मन्! भरतकुलकलंक! नीच पाण्डव! मैं तुम्हारे समान आत्मप्रशंसा करने में निपुण नहीं हूँ, किन्तु–

तेरे बन्धु लोग रणभूमि में मेरी गदा से विदीर्ण हुए, वक्षःस्थल की हड्डियों की माला से भयानकरूप से सजे हुए, तुझे शीघ्र ही सोया हुआ देखेंगे। ।34।।

शब्दार्थ– निवारयन्–रोकते हुए, प्रसीद–प्रसन्न होइए, अत्र–इस विषय में, विशसेयम्–मार चुकना, युष्मत्–तुम्हारे, कुंजर–हाथी, स्त्रीवत्–स्त्री के समान, परित्याजितः–परित्याग दिया, हलका कर दिया, विघटने–विदीर्ण करने में।

(अन्वय– बान्धवाः त्वाम् रणांगणे मत्–गदा–भिन्न–वक्षः–अस्थि–वेणिका–भीम–भूषणम् न–चिरात् सुप्तम् द्रक्ष्यन्ति।।34।।)

भीमः– (विहस्य) **यद्येवं श्रद्धत्ते भवांस्तदा प्रत्यासन्नमेव कथयामि।**

पीनाभ्यां मद्भुजाभ्यां भ्रमितगुरुगदाऽऽघातसंचूर्णितोरोः
क्रूरस्याधाय पादं तव शिरसि नृणां पश्यतां श्वः प्रभाते।
त्वन्मुख्यभ्रातृचक्रोद्दलनगलदसृक्चन्दनेनाऽऽनखाग्रं
स्त्यानेनार्द्रेण चाऽऽक्तः स्वयमनुभविता भूषणं भीममस्मि।

(अन्वय– श्वः प्रभाते नृणाम् पश्यताम्, पीनाभ्याम् मत् भुजाभ्याम् भ्रमित–गुरु–गदा–आघात–संचूर्णित–उरोः क्रूरस्य तव शिरसि पादम् आधाय, स्त्यानेन आर्द्रेण च त्वत् मुख्य–भ्रातृ–चक्र–उद्दलन–गलत्–असृक्–चन्दनेन आनखाग्रम् च आक्तः स्वयम् भीमम् भूषणम् अनुभविता अस्मि।।35।।)

(नेपथ्ये)

भो भो भीमसेनार्जुनौ! एष खलु निहताशेषाऽरातिचक्र आक्रान्त–परशुरामाऽभिरामयशाः, प्रतापतपितदिङ्मण्डलः स्थापितस्वजनः श्रीमान्–जातशत्रुर्देवो युधिष्ठिरः समाज्ञापयति।

उभौ– किमाज्ञापयत्यार्यः?

(पुनर्नेपथ्ये)

कुर्वन्त्वाप्ता हतानां रणशिरसि जना वह्निसाद्देहभारा–
नश्रून्मिश्रं कथंचिद्ददतु जलममी बान्धवा बान्धवेभ्यः।
मार्गन्तां ज्ञातिदेहान्हतनरगहने खण्डितान्गृध्रकंकै–
रस्तं भास्वान्प्रयातः सह रिपुभिरयं संह्रियन्तां बलानि।।

(अन्वय– आप्ताः जनाः रण–शिरसि हतानाम् देहभारान् वह्निसात् कुर्वन्तु, अमी बान्धवाः बान्धवेभ्यः अश्रून् मिश्रम् जलम् कथंचित् ददतु गृध्र–कंकैः खण्डितान् ज्ञाति–देहान् हत–नर–गहने मार्गन्ताम्, अयम् भास्वान् रिपुभिः सह अस्तम् प्रयातः, बलानि संह्रियन्ताम्।।36।।)

उभौ– यदाज्ञापयत्यार्यः। (इति निष्क्रान्तौ)

भीमः– (हँसकर) यदि तुम्हारी ऐसी श्रद्धा है, तो शीघ्र ही जो होने जा रहा है, वह तुम्हें कहता हूँ–

कल प्रातःकाल में ही लोगों के देखते–देखते, मेरी पुष्ट भुजाओं द्वारा घुमायी गयी भारी गदा के आघात से चकनाचूर हुई, जँघाओं वाले, क्रूर तेरे सिर पर पैर रखकर, जिन सौ भाइयों के समूह में अकेला तू ही शेष रह गया है, ऐसे घने तथा गीले, टपक रहे तेरे, रुधिररूप चन्दन से, नाखूनों के अग्रभाग तक घुसेड़कर, रक्त से सना हुआ, मैं स्वयं भयंकर आभूषण पहनने का अनुभव कर रहा हूँ।।35।।

(नेपथ्य में)

अरे! अरे! भीम और अर्जुन! निश्चय ही, इस समस्त शत्रु–समूह को मारकर, परशुराम के समान मनोरम यश से अभिभूत, अपने पराक्रम से सभी दिशाओं के समूह को अत्यधिक तप्त करने वाले, अपने जनों को स्थापित करने वाले, अजातशत्रु श्रीमान् महाराज युधिष्ठिर आदेश प्रदान कर रहे हैं कि–

दोनों– आर्य, क्या आज्ञा दे रहे हैं?

(फिर नेपथ्य में)

सम्मानीय लोग युद्धभूमि में मारे गए, व्यक्तियों के शवों का अग्नि संस्कार करें और ये बन्धु, मृत बान्धव–जनों को किसीप्रकार अश्रुमिश्रित जलांजलि प्रदान करें। गृध्र तथा कंक पक्षियों द्वारा टुकड़े किए गए, मारे गए लोगों के शरीरों को ढ़ेर में खोज लेवें, क्योंकि अब यह सूर्य भगवान् शत्रुओं के अन्त के साथ–साथ, स्वयं भी अस्त हो रहा है। इसलिए रणक्षेत्र से सेनाओं को वापस लौटा लिया जाए।।36।।

दोनों– आर्य की जैसी आज्ञा।

(यह कहकर दोनों निकल जाते हैं)

(नेपथ्ये)

अरे रे गाण्डीवाकर्षणबाहुशालिन्! अर्जुन! अर्जुन! क्वेदानीं गम्यते?

कर्णक्रोधेन युष्मद्विजयि धनुरिदं त्यक्तमेतान्यहानि,
प्रौढं विक्रान्तमासीद्वन इव भवतां शूरशून्ये रणेऽस्मिन्
स्पर्शं स्मृत्वोत्तमांगे पितुरनवजितन्यस्तहेतेरुपेतः
कल्पाग्निः पाण्डवानां द्रुपदसुतचमूघस्मरो द्रौणिरस्मि।।

(अन्वय— युष्मत् विजयि इदम् धनुः कर्ण—क्रोधेन एतानि अहानि त्यक्तम्, अस्मिन् शूर—शून्ये वने इव रणे भवताम् प्रौढ़म् विक्रान्तम् आसीत्, अनवजित—न्यस्त—हेतेः पितुः उत्तमांगे स्पर्शम् स्मृत्वा, पाण्डवानाम् कल्प—अग्निः द्रुपद—सुत—चमू—घस्मरः द्रौणिः उपेतः अस्मि।।37।।)

धृतराष्ट्रः— (आकर्ण्य सहर्षम्) वत्स दुर्योधन! द्रोणवधपरिभवोद्दीपितक्रोधपावकः पितुरपि समधिकबलः, शिक्षावानमरोपमश्चायमश्वत्थामा प्राप्तः। तत्प्रत्युपगमनेन तावदयं सम्भाव्यतां वीरः।

गान्धारी— जात! प्रत्युद्गच्छैनं महाभागम्।[1]

दुर्योधन— तात! अम्ब! किमनेनांगराजवधाऽऽशंसिना वृथायौवनशस्त्रबलभरेण?।

धृतराष्ट्रः— वत्स! न खल्वस्मिन्काले पराक्रमवतामेवं विधानां वाङ्मात्रेणापि विरागमुत्पादयितुमर्हसि।

(प्रविश्य)

अश्वत्थामाः— विजयतां कौरवाऽधिपतिः।

दुर्योधनः— (उत्थाय) गुरुपुत्र! इत आस्यताम्। (इत्युपवेशयति)

अश्वत्थामा— (सास्रम्) राजन्दुर्योधन!

कर्णेन कर्णसुभगं बहु यत्तदुक्त्वा
यत्संगरेषु विहितं विदितं त्वया तत्।
द्रौणिस्त्वधिज्यधनुरापतितोऽभ्यमित्र—
मेषोऽधुना त्यज नृप! प्रतिकारचिन्ताम्।।38।।

---

1. जाद! पच्चुग्गच्छ एदं महाभाअम्।

(नेपथ्य में)

अरे! रे! गाण्डीव धनुष को खींचने में प्रसिद्ध बाहुबली अर्जुन! अर्जुन! इस समय तू कहाँ जा रहा है?

तुम लोगों पर विजय प्राप्त करने वाला, यह धनुष कर्ण पर क्रुद्ध मैंने इतने दिनों तक त्याग रखा था, वीरों से शून्य, वन के समान इस युद्धभूमि में तुम्हारा प्रबल पौरुष था। अपराजित एवं अस्त्र का त्याग करने वाले पिताजी के सिर पर किए गए स्पर्श को स्मरण करके, पाण्डवों की प्रलयाग्नि के समान, द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न की सेना का विनाश करने वाला, यह मैं द्रोणपुत्र आ गया हूँ।।37।।

धृतराष्ट्र– (सुनकर हर्षपूर्वक) पुत्र, दुर्योधन! द्रोण के वधरूपी अपमान से उत्तेजित, क्रोधरूपी अग्नि वाले, अपने पिता से भी अधिक शक्तिशाली, धनुर्वेद का ज्ञाता, देवता के समान, यह अश्वत्थामा आ गया है। इसलिए इस वीर की अगवानी करके स्वागत करो।

गान्धारी– पुत्र! इस महाभाग का आगे बढ़कर स्वागत करो।

दुर्योधन– पिताश्री! माताजी! अंगराज का वध चाहने वाले, व्यर्थ ही यौवन एवं शस्त्रबल का बोझ ढ़ोने वाले, इस व्यक्ति से क्या लाभ?

धृतराष्ट्र– पुत्र! वस्तुतः ऐसे समय में इसप्रकार के पराक्रम शालियों में कटु वचनों द्वारा विरक्ति उत्पन्न करना उचित नहीं है।

(प्रवेश करके)

अश्वत्थामा– कौरवराज की विजय हो।

दुर्योधन– (उठकर) हे गुरुपुत्र! इधर बैठो।

(यह कहकर बैठाता है)

अश्वत्थामा– (अश्रुपूर्वक) राजन्, दुर्योधन!

कर्ण ने कानों को मधुर लगने वाली, बहुत सी बातों को कहकर, युद्ध में जो किया, वह तो आपको पता ही है। धनुष खींचकर यह अश्वत्थामा शत्रुओं के समक्ष अब आ गया है, हे राजन्! इसलिए इस समय शत्रुओं से बदला लेने की चिन्ता को छोड़ दो।। 38।।

(अन्वय– कर्णेन यत् कर्ण–सुभगम् तत् बहु उक्त्वा, यत् संगरे विहितम्, तत् त्वया विदितम्, एषः द्रौणिः तु अधिज्य–धनुः अभ्यमित्रम् आपतितः, नृप! अधुना प्रतिकार–चिन्ताम् त्यज।।38।।)

दुर्योधनः– (साभ्यसूयम्) **आचार्यपुत्र!**

अवसानेऽंगराजस्य योद्धव्यं भवता किल।
ममाऽत्यन्तं प्रतीक्षस्व, कः कर्णः कः सुयोधनः?।।39।।

(अन्वय– अंगराजस्य अवसाने किल भवता योद्धव्यम्, मम अति अन्तम् प्रतीक्षस्व, कः कर्णः? कः सुयोधनः?।।39।।)

अश्त्थामाः– (स्वगतम्) **कथमद्यापि स एव कर्णापक्षपातोऽस्मासु च परिभवः।** (प्रकाशम्) **राजन्कौरवेश्वर! एवं भवतु।**

(इति निष्क्रान्तः)

धृतराष्ट्रः– वत्स! क एष ते व्यामोहो यदस्मिन्नपि काले एवं विधस्य महाभागस्याश्वत्थाम्नो वाक्पारुष्येणाऽपरागमुत्पादयसि?।

दुर्योधनः– किमस्याऽप्रियमनृतं च मयोक्तम्?। किं वा नेदं क्रोधस्थानम्?। पश्य –

अकलितमहिमानं क्षत्रियैरात्तचापैः
समरशिरसि युष्मद्भाग्यदोषाद्विपन्नम्।
परिवदति समक्षं मित्रमंगाधिराजं
मम खलु कथयास्मिन्को विशेषोऽर्जुने वा।।40।।

(अन्वय– आत्त–चापैः क्षत्रियैः अकलित–महिमानम् युष्मत्–भाग्य–दोषात् समर–शिरसि विपन्नम्, मित्रम् अंगाधिराजम् मम समक्षम् परिवदति, अस्मिन् अर्जुने वा कः विशेषः खलु कथय।।40।।)

धृतराष्ट्रः– अथवा वत्स! तवापि कोऽत्र दोषः। अवसानमिदानीं भरतकुलस्य। संजय! किमिदानीं करोमि मन्दभाग्यः?। (विचिन्त्य) **भवत्वेवं तावत्। संजय! मद्वचनाद् ब्रूहि भारद्वाजमश्वत्थामानम्।–**

स्मरति न भवान्पीतं स्तन्यं विभज्य सहाऽमुना,
मम च मृदितं क्षौमं बाल्ये त्वदंगविवर्तनैः।

दुर्योधन– (ईर्ष्यापूर्वक) आचार्य पुत्र!

अंगराज कर्ण के मारे जाने के बाद ही, यदि आपको युद्ध करना अभीष्ट था, तब तो अब मेरे अन्त की भी प्रतीक्षा कीजिए, क्योंकि मेरे लिए क्या कर्ण? और क्या दुर्योधन?।।39।।

अश्त्थामा– (मन में) क्या आज भी यह कर्ण के प्रति पक्षपाती है और हम लोगों का तिरस्कार? (प्रकट में) राजन्! कौरवेश्वर! तो फिर ऐसा ही होवे। (यह कहकर निकल जाता है)

धृतराष्ट्र– पुत्र! यह तुम्हारा कैसा व्यामोह है? जो इस समय में भी महानुभाव अश्वत्थामा का कठोर वचनों से तिरस्कार कर उसमें विराग भाव उत्पन्न कर रहे हो।

दुर्योधन– मैंने इसका अप्रिय अथवा असत्य क्या कह दिया है? अथवा क्या यह क्रोध का स्थान नहीं है? देखिए–

धनुष खींचे हुए क्षत्रिय भी जिसकी महिमा को नहीं समझ सके, आप सबके दुर्भाग्य से युद्धक्षेत्र में मारे गए, ऐसे मित्र अंगराज कर्ण की मेरे सामने ही निन्दा कर रहा है, इसलिए मुझे इस अश्वत्थामा अथवा अर्जुन में कोई विशेष अन्तर दिखायी नहीं दे रहा है, जरा आप ही कहिए।।40।।

धृतराष्ट्र– अथवा तुम्हारा भी इस विषय में क्या दोष? इस समय तो भरतकुल का अवसान ही आ गया है। संजय! मन्दभागी मैं अब क्या करूँ? (विचारकर) ठीक है, ऐसा ही होवे। संजय! मेरे आदेश से भारद्वाज गोत्र में उत्पन्न अश्वत्थामा से कहो–

बाल्यावस्था में इसके साथ बाँटकर पिए गए माता के दूध का क्या आप स्मरण कर रहे हैं? एवं अपने शरीर के लोटपोट करने पर हमारे रेशमी वस्त्रों को रौंदकर, मलिन करने वाली बातों को भी (आप नहीं स्मरण कर रहे हैं?) **इस कारण भाइयों के मारे जाने से, बढ़े हुए शोक से अत्यधिक प्रेम से विरुद्ध वचन बोलने वाले, इस दुर्योधन पर तुम्हें अधिक समय तक क्रोध नहीं करना चाहिए।।41।।**

अनुजनिधनस्फीताच्छोकादतिप्रणयाच्च यद्
विकृतवचने माऽस्मिन्क्रोधश्चिरं क्रियतां त्वया।।41।।

(अन्वय– बाल्ये अमुना सह विभज्य पीतम् स्तन्यम् भवान् न स्मरति? त्वत् अंग–विवर्तनैः मृदितम् मम क्षौमम् च (न स्मरति?) यत् अनुज–निधन–स्फीतात् शोकात्, अतिप्रणयात् च, विकृत–वचने अस्मिन् त्वया चिरम् क्रोधः मा क्रियताम्।।41।।)

संजयः– यदाज्ञापयति तातः। (इत्युत्तिष्ठति)

धृतराष्ट्रः– अपि चेदमन्मत्त्वया वक्तव्यम्–

यन्मोचितस्तव पिता वितथेन शस्त्रं
यत्तादृशः परिभवः स तथाविधोऽभूत्।
एतद्विचिन्त्य बलमात्मनि पौरुषं च
दुर्योधनोक्तमपहाय विधास्यतीति ।।42।।

(अन्वय– यत् तव पिता वितथेन शस्त्रम् मोचितः, यत् तादृशः सः तथाविधः परिभवः अभूत्, एतत् विचिन्त्य आत्मनि पौरुषम् बलम् च (विचिन्त्य) दुर्योधन–उक्तम् अपहाय विधास्यति, इति।।42।।)

संजयः– यदाज्ञापयति तातः।

(इति निष्क्रान्तः)

दुर्योधनः– सूत! सांग्रामिकं मे रथमुपकल्पय।

सूतः– यदाज्ञापयत्यायुष्मान्।

(इति निष्क्रान्तः)

धृतराष्ट्रः– गान्धारि! इतो वयं मद्राधिपतेः शल्यस्य शिविरमेव गच्छावः। वत्स! त्वमप्येवं कुरु।

(इति परिक्रम्य निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ इति पंचमोऽङ्कः ॥

संजय– जैसी पिताश्री की आज्ञा।

(यह कहकर उठता है)

धृतराष्ट्र– अभी तुम्हें और कुछ भी कह देना चाहिए–

जो तुम्हारे पिता द्रोण ने, युधिष्ठिर के असत्य–भाषण से शस्त्र का परित्याग किया था और जो उसप्रकार लोकप्रसिद्ध तुम्हारे पिता का वैसा अपमान हुआ, यह विचार कर तथा अपने इस पौरुषबल के विषय में चिन्तन करके, दुर्योधन की बात को भुलाकर, जो भी तुम्हें उचित प्रतीत हो, वह करना चाहिए।।42।।

संजय– पिताश्री की जैसी आज्ञा।

(यह कहकर निकल जाता है)

दुर्योधन– सूत! मेरा युद्ध–सम्बन्धी रथ तैयार करो।

सूत– आयुष्मान् की जैसी आज्ञा।

(यह कहकर निकल जाता है)

धृतराष्ट्र– गान्धारि! यहाँ से हम लोग मद्रराज शल्य के शिविर में ही चलते हैं। पुत्र! दुर्योधन, तुम भी ऐसा ही करो।

(ऐसा कहकर घूमकर सभी निकल जाते हैं)

॥ इसप्रकार महाकवि भट्टनारायण विरचित वेणीसंहार के पंचम अङ्क का डॉ. राकेश शास्त्री, बाँसवाड़ा द्वारा किया हुआ हिन्दी अनुवाद पूर्ण हुआ॥

।। श्रीः ।।

अथ षष्ठोऽङ्कः

(ततः प्रविशत्यासनस्थो युधिष्ठिरो द्रौपदी, चेटी पुरुषश्च)

युधिष्ठिरः– विचिन्त्य निःश्वस्य च कष्टं भोः, कष्टम्–

तीर्णे भीष्ममहोदधौ कथमपि द्रोणानले निर्वृते
कर्णाऽऽशीविषभोगिनि प्रशमिते शल्ये च याते दिवम्।
भीमेन प्रियसाहसेन रभसात्स्वल्पावशेषे जये
सर्वे जीवितसंशयं वयममी वाचा समरोपिताः।।1।।

(अन्वय– भीष्म–महोदधौ तीर्णे, द्रोण–अनले कथम् अपि निर्वृते, कर्ण–आशी–विष–भोगिनि प्रशमिते, शल्ये च दिवम् याते, जये स्वल्प–अवशेषे, प्रिय–साहसेन भीमेन रभसात्, अमी सर्वे वयम् वाचाः जीवित–संशयम् समरोपिताः।।1।।)

द्रौपदी– (सबाष्पम्) भणिदम्?महाराज! पांचाल्येति किं न भणितम्?[1]

युधिष्ठिरः– कृष्णे! ननु मया।(पुरुषमवलोक्य) बुधक!

पुरुषः– देव! आज्ञापय।

युधिष्ठिरः– उच्यतां सहदेवः– 'क्रुद्धस्य वृकोदरस्याऽपर्युषितां प्रतिज्ञामुपलभ्य प्रनष्टस्य मानिनः कौरवराजस्य पदवीमन्वेष्टुमतिनिपुण–मतयस्तेषु तेषु स्थानेषु यथार्थाऽभिज्ञाश्चराः, सुसचिवाश्च भक्तिमन्तः पटुपटहरवव्यक्तघोषणाः सुयोधनपदसंचारवेदिनः प्रतिश्रुतधनपूजाप्रत्यु–पक्रियाश्चरन्तु समन्तात्समन्तपंचकम्।

अपि च –

---

[1]. महाराज! पंचालिए त्ति किं ण

।। श्रीः।।

अथ षष्ठ अङ्क

(उसके बाद आसन पर स्थित युधिष्ठिर, द्रौपदी, चेटी एवं पुरुष प्रवेश करते हैं)

युधिष्ठिर–(सोचकर लम्बा श्वास लेकर) कष्ट है, अरे! कष्ट है।

भीष्मरूपी महासागर को पार करके, द्रोणाचार्य के क्रोधरूपी अनल के किसी प्रकार शान्त होने पर, कर्णरूपी काले नाग के परलोक सिधारने पर और मद्र के राजा शल्य के मारे जाने पर, विजय के स्वल्पमात्र शेष रहने पर, साहसी प्रिय भीम द्वारा, शीघ्रतापूर्वक (दुर्योधन के साथ युद्ध में फँसकर) **हम सभी के जीवन, अपनी वाणी से संशय में समारोपित कर दिए गए हैं।।1।।**

द्रौपदी– (अश्रुपूर्वक) महाराज! **पांचाली** ने यह क्यों नहीं कहते हैं?

युधिष्ठिर– कृष्णे! वास्तव में मैंने (पुरुष को देखकर) अरे बुधक!

पुरुष– महाराज! आज्ञा दीजिए।

युधिष्ठिर– सहदेव से कहो कि– 'क्रुद्ध वृकोदर की आज प्रतिज्ञा पूरी होने का समाचार जानकर, नष्ट हुए अहंकार वाले, छिपे हुए कौरवराज के पद–चिह्नों को खोजने हेतु, अत्यधिक मेधावी, उन सभी स्थानों का वास्तविक ज्ञान रखने वाले, गुप्तचर, स्पष्ट दुन्दुभि की घोषणा करने वाले, दुर्योधन के पद–चिह्नों के ज्ञाता, श्रेष्ठ सचिव एवं हमारे अनुरागी लोग, बड़े–बड़े पुरस्कारों की घोषणाएँ सुनकर **समन्त पंचक** के चारों ओर चले जाएँ,

और भी–

पंके वा सैकते वा सुनिभृतपदवीवेदिनो यान्तु दाशाः
कक्षेषु क्षुण्णवीरुन्निचयपरिचया वल्लवाः संचरन्तु।
नागव्याघ्राटवीषु श्वपचपुरविदो ये च रन्ध्रेष्वभिज्ञाः
ये सिद्धव्यंजना वा प्रतिमुनिनिलयं ते च चाराश्चरन्तु।।2

(अन्वय– सुनिभृत–पदवी–वेदिनः दाशाः पंके वा, सैकते वा यान्तु क्षुण्ण–वीरुत्–निचय–परिचयाः वल्लवाः कक्षेषु च संचरन्तु, नाग–व्याघ्र-अटवीषु श्व–पच–पुर–विदः ये च रन्ध्रेषु अभिज्ञाः, ये वा सिद्ध–व्यंजनाः ते चाराः प्रति–मुनि–निलयम् चरन्तु।।2।।)

पुरुषः– यथाऽऽज्ञापयति देवः।

युधिष्ठिरः– तिष्ठ! एवं च वक्तव्यः सहदेवः।

ज्ञेया रहः शंकितमालपन्तः
सुप्ता रुगार्ता मदिराविधेयाः।
त्रासो मृगाणां, वयसां विरावो
नृपांकपादप्रतिमाश्च यत्र।।3।।

(अन्वय– रहः शंकितम् आलपन्तः ज्ञेयाः, सुप्ताः, रुगार्ताः, मदिराः विधेयाः च (ज्ञेयाः) यत्र मृगाणाम् त्रासः, वयसाम् विरावः, नृप–अंक–पाद–प्रतिमाः च (सन्ति, तत्र अपि ज्ञेयाः) ।।3।।)

पुरुषः– यदाज्ञापयति देवः। (इति निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य सहर्षम्) देव! पांचालकः प्राप्तः।

युधिष्ठिरः– त्वरितं प्रवेशय।

पुरुषः– (निष्क्रम्य, पांचालकेन सह प्रविश्य) एष देवः उपसर्पतु पांचालकः।

पांचालकः– जयतु जयतु देवः। प्रियमावेदयामि महाराजाय देव्यै च।

युधिष्ठिरः– भद्र पांचालक! कंचिदासादिता तस्य दुरात्मनः कौरवाधमस्य पदवी?

पांचालकः– देव! न केवलं पदवी, स एव दुरात्मा देवीकेश-पाशस्पर्शपातकप्रधानहेतुरुपलब्धः।

अत्यन्त गुप्त चिह्नों के ज्ञाता? धीवर, कीचड़ अथवा बालू में ढूँढ़ने के लिए जावें, पैरों से रोंदी गयी लताओं से सुपरिचित ग्वाले, झाड़ियों तथा झुरमुटों में अन्वेषण करें, हाथी एवं व्याघ्र आदि से युक्त वनों में, चाण्डालों की बस्तियों के जानकर जावें। इसके अलावा जो लोग गुफाओं अथवा सुरंगों का ज्ञान रखते हैं या फिर सिद्ध पुरुषों का वेष धारण करने में निपुण हैं, वे गुप्तचर, प्रत्येक मुनि के आश्रम पर जाकर उसे खोजें।।2।।

पुरुष– महाराज की जैसी आज्ञा।

युधिष्ठिर– ठहरो! और सहदेव को यह भी कहना है कि

एकान्त में शंकित होकर बातचीत कर रहे, शयन कर रहे, रोग से पीड़ित और मदिरा से मतवाले लोगों की भी जानकारी प्राप्त करें। इसके अतिरिक्त जहाँ पर पशु भयभीत हो रहे हों, जहाँ पर पक्षियों का कोलाहल हो रहा हो, जहाँ राजा दुर्योधन के पैरों के निशान दिखायी दे रहे हों, (वहाँ पर भी उसे अवश्य ढूँढ़ें)।।3।।

पुरुष– जैसी महाराज की आज्ञा।

(ऐसा कहकर, फिर से प्रवेश करके प्रसन्नतापूर्वक)

महाराज! पांचालराज के पुत्र धृष्टद्युम्न आए हैं।

युधिष्ठिर– शीघ्र ही प्रवेश कराओ।

पुरुष– (निकलकर धृष्टद्युम्न के साथ प्रवेश करके) ये महाराज हैं। हे पांचालक! आप पास जाइए।

पांचालक– महाराज की जय हो, जय हो। महाराज एवं देवी के लिए प्रिय समाचार निवेदन कर रहा हूँ।

युधिष्ठिर– भाई पांचालक! क्या उस दुरात्मा, कौरवाधम, दुर्योधन के पैरों के चिह्न प्राप्त हो गए है?

पांचालक– महाराज! न केवल पद–चिह्न, अपितु देवी के केशपाश के स्पर्शरूपी पाप का मुख्य कारण, वह दुष्ट दुर्योधन भी मिल गया है।

युधिष्ठिरः– (सहर्ष पांचालकं परिष्वज्य) साधु, भद्र! साधु! भवता प्रियमावेदितम्। अथ दर्शनगोचरं गतः?

पांचालकः– देव! समरगोचरं पृच्छ।

द्रौपदी– (सभयम्) कथं समरगोचरो वर्तते मे नाथः?[1]

युधिष्ठिरः– (साशंकम्) सत्यं समरगोचरो मे वत्सः?

पांचालकः– सत्यम्। किमन्यथा वक्ष्यते महाराजाय?

युधिष्ठिरः–

त्रस्तं विनापि विषयादुरुविक्रमस्य
चेतो विवेकपरिमन्थरतां प्रयाति।
जानामि चोद्यतगदस्य वृकोदरस्य
सारं रणेषु भुजयोः, परिशंकितश्च ।।4।।

(अन्वय– विषयात् विना अपि उरु–विक्रमस्य चेतः त्रस्तम्, विवेक–परि–मन्थरताम् प्रयाति, रणेषु उद्यत–गदस्य वृकोदरस्य भुजयोः सारम् जानामि च परिशंकितः च (अस्मि)।।4।।)

(द्रौपदीमवलोक्य) अयि सुक्षत्रिये!

गुरूणां बन्धूनां क्षितिपतिसहस्रस्य च पुरः
पुराऽभूदस्माकं नृपसदसि योऽयं परिभवः।
प्रिये! प्रायस्तस्य द्वितयमपि पारं गमयति
क्षयः प्राणानां नः कुरुपतिपशोर्वाऽद्य निधनम्।।5।।

(अन्वय– प्रिये! गुरूणाम् बन्धूनाम् क्षिति–पति–सहस्रस्य च पुरः पुरा नृप–सदसि, यः अयम् अस्माकम् परिभवः अभूत्, तस्य पारम् अद्य प्रायः द्वितयम् अपि गमयति, नः प्राणानाम् क्षयः, (तस्य) कुरुपति–पशोः निधनम् वा ।।5।।)

अथवा कृतं संदेहेन।

नूनं तेनाऽद्य वीरेण प्रतिज्ञाभंगभीरुणा।
बध्यते केशपाशस्ते, स चास्याकर्षणक्षमः।।6।।

---

[1]. कहं समरगोअरो वट्टइ मे णाहो?

युधिष्ठिर– (प्रसन्नतापूर्वक पांचालक का आलिंगन करके) साधु, भद्र! साधु। आपने प्रिय समाचार कहा है। क्या वह दिखायी भी पड़ गया है?

पांचालक– महाराज! युद्ध में दिखायी देने की बात पूछिए।

द्रौपदी– (भयपूर्वक) क्या मेरे स्वामी युद्ध में दिखायी दे रहे हैं?

युधिष्ठिर– (आशंकापूर्वक) क्या मेरा भाई भीम वास्तव में युद्धभूमि में विद्यमान है?

पांचालक– निश्चय ही, यह सत्य है, आपके लिए असत्य भला कैसे कहा जा सकता है?

युधिष्ठिर– विषय के अभाव में भी प्रबल पराक्रमी व्यक्ति का चित्त, त्रस्त होते हुए, चिन्तन करने में शिथिलता को प्राप्त हो जाता है। युद्धभूमि में गदा उठाए हुए, वृकोदर की भुजाओं के पराक्रम को मैं जानता हूँ, किन्तु फिर भी अत्यन्त शंकित हूँ।।4।।

(द्रौपदी को देखकर) अयि! सुक्षत्रिये!

प्रिये! द्रोण आदि गुरुजनों, बन्धुओं एवं हजारों राजाओं के सामने, पूर्व में राजसभा में, जो हमारा यह तिरस्कार हुआ था, उसके पार जाने के आज केवल दो ही मार्ग जाते हैं, पहला– **हमारे प्राणों का विनाश, अथवा** दूसरा– **उस नीच कुरुपति का निधन।।5।।**

अथवा सन्देह करने से बस करो,

आज प्रतिज्ञा भंग होने के भय से डरे हुए, उस वीर वृकोदर द्वारा तुम्हारा केशपाश निश्चय ही, बाँध दिया जाएगा और इन केशों को खींचने का दुःसाहस करने वाला, वह दुर्योधन मारा जाएगा।।6।।

शब्दार्थ– आवेदितम्–कहा है, निवेदन किया है, पृच्छ–पूछो, प्रयाति–प्राप्त होता है, जाता है, चेतः–मन, सारम्–पराक्रम को, क्षितिपति–राजा, पुरः–सामने, नृपसदसि–राजसभा में, अस्माकम्–हमारे, अभूत्–हुआ, अद्य–आज, कृतम्–बस, नूनम्–निश्चय ही, बध्यते–बाँधा जा रहा है, प्रतिज्ञाभंगभीरुणा–प्रतिज्ञा के भंग होने से डरे हुए के द्वारा।

(अन्वय– अद्य प्रतिज्ञा–भंग–भीरुणा तेन वीरेण ते केश–पाश: नूनम् बध्यते, अस्य आकर्षण–क्षमः सः च (बध्यते) ।।6।।)

पांचालक! कथय, कथय, कथमुपलब्धः, स दुरात्मा कस्मिन्नुद्देशे किं वाऽधुना प्रवृत्तमिति?।

द्रौपदी– भद्र! कथय कथय।[1]

पांचालकः– शृणोतु देवो देवी च। अस्तीह देवेन हते मद्राऽधिपतौ शल्ये, गान्धारराजकुलशलभे सहदेवशस्त्रानलप्रविष्टे, सेनापतिनिधन-निराक्रन्दविरलयोधोज्झितासु समरभूमिषु, रिपुबलपराजयोद्धतवेल्लित-विचित्रपराक्रमाऽऽसादितविमुखाऽरातिचक्रासु धृष्टद्युम्नाधिष्ठितासु च युष्मत्सेनासु, प्रनष्टेषु कृपकृतवर्माश्वत्थामासु तथा दारुणामपर्युषितां प्रतिज्ञामुपलभ्य कुमारवृकोदरस्य, न ज्ञायते क्वाऽपि प्रलीनः स दुरात्मा कौरवाऽधमः।

युधिष्ठिरः– ततस्ततः?

द्रौपदी– अयि! परतः कथय।[2]

पांचालकः– अवधत्तां देवो देवी च। ततश्च भगवता वायुदेवेना-धितिष्ठतमेकरथमारूढौ कुमारभीमार्जुनौ समन्तात् समन्तपंचकं पर्यटितु-मारब्धौ, तमनासादितवन्तौ च। अनन्तरं च दैवमनुशोचति मादृशे भृत्यवर्गे, दीर्घमुष्णं च निःश्वसति कुमारबीभत्सौ जलधरसमयनिशासंचारिखद्योत-प्रकरपिंगलैः कटाक्षैरादीपयति गदां नाथे वृकोदरे, यत् किंचनकारिता-मधिक्षिपति विधेर्भगवति नारायणे, कश्चित्संविदितः कुमारस्य मारुते-रुज्झितमांसभारः, प्रत्यग्रविशसितमृगलोहितचरणानिवसनस्त्वरमाणोऽन्ति-कमुपेत्य पुरुषः, परुषश्वासग्रस्तार्द्धश्रुतवर्णाऽनुमेयपदया वाचा कथितवान्-देव कुमार! 'अस्मिन्महतोऽस्य सरसस्तीरे द्वे पदपद्धती समवतीर्ण-प्रतिबिम्बे। तयोरेका स्थलमुत्तीर्णा, न द्वितीया। परत्र कुमारः प्रमाणं मिति।

---

[1]. भद्द! कहेहि कहेहि।

[2]. अयि! परदो कहेहि।

पांचालक! कहो, कहो, वह दुरात्मा भला किसप्रकार और किस स्थान पर मिला? अथवा इस समय वहाँ क्या हो रहा है?

द्रौपदी– भाई! कहो, कहो।

पांचालक– महाराज! और महारानी! सुनिए। इस युद्ध में महाराज द्वारा मद्रदेश के राजा शल्य के मारे जाने पर, गान्धार राजकुलरूपी शलभ के, सहदेव के शस्त्ररूपी अग्नि में प्रविष्ट हो जाने पर, सेनापति के निधन से अत्यधिक आक्रन्दन कर रहे, जहाँ–तहाँ योद्धाओं द्वारा युद्धभूमि को छोड़ देने पर, शत्रुओं की सेनाओं के पराजय से उद्धत, कुटिल गति से विचित्र प्रकार के पराक्रम को प्रदर्शित करने वाले, धृष्टद्युम्न के सेनापतित्व वाली, आपकी सेनाओं के माध्यम से युद्ध से विमुख हुए, शत्रु–समुदाय को वश में किए जाने पर कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामा आदि वीरों से युक्त, सेनाओं के विनष्ट होने पर तथा कुमार वृकोदर की भयंकर प्रतिज्ञा के अपूर्ण रहने के कारण, न जाने वह दुरात्मा, कौरवाधम दुर्योधन न जाने कहाँ छिप गया?

युधिष्ठिर– उसके बाद, उसके बाद,

द्रौपदी– अरे! इसके बाद कहो।

पांचालक– महाराज और महारानी ध्यानपूर्वक सुनिए। उसे पश्चात् भगवान् वासुदेव से अधिष्ठित एक रथ पर विराजमान, कुमार भीम और अर्जुन **समन्तपंचक** के चारों ओर घूमने लगे, किन्तु उसे पा नहीं सके। तत्पश्चात् हमारे समान सेवकों के दैव के विषय में सोचने पर एवं कुमार अर्जुन द्वारा लम्बी तथा उष्ण निःश्वास छोड़ने पर, वर्षाकालीन रात्रि में घूमने वाले, जुगनुओं के समूह के समान, पिंगलवर्ण कटाक्षों द्वारा महाराज भीमसेन के गदा चमकाने पर, विधाता न जाने क्या करना चाहता है? इसप्रकार भगवान् नारायण द्वारा आक्षेप करने पर, किसी दुर्बल ताजे मारे गए, हरिण के रुधिर से सने हुए पाँव एवं वस्त्र वाले, जानकार व्यक्ति ने कठिन श्वास के कारण अस्पष्ट वाणी में, कुमार भीमसेन के पास शीघ्रतापूर्वक आकर कहा– 'देव कुमार! इस विशाल तालाब के इस किनारे पर दो पैरों के चिह्न दिखायी पड़ रहे हैं,

ततः ससंभ्रमं प्रस्थिताः सर्वे वयं तमेव पुरुषं पुरस्कृत्य गत्वा च सरस्तीरं, परिज्ञायमानसुयोधनपदलांछनां पदवीमासाद्य भगवता वासुदेवेनोक्तं– 'भो वीरवृकोदर! जानाति किल सुयोधनः सलिलस्तम्भनं विद्याम्। तन्नूनं तेन त्वद्भयात्सरसीमेनामधिशयितेन भवितव्यम्।'

एतच्च वचनमुपश्रुत्य रामाऽनुजस्य सकलदिङ्निकुंजप्रपूरिताऽतिरिक्तमुद्भ्रान्तसकलसलिलचारिचक्रं त्रासोद्धतनक्रग्राहम्, आलोडितं सरःसलिलम्। भैरवं च गर्जित्वा कुमारवृकोदरेणाऽभिहितम्– 'अरे रे वृथाप्रख्यापिताऽलीकपौरुषाऽभिमानिन्! पांचालराजतनयाकेशाम्बराऽऽकर्षणमहापातकिन्! धार्तराष्ट्राऽपसद!

जन्मेन्दोर्विमले कुले व्यपदिशस्यद्यापि धत्से गदां
मां दुःशासनकोष्णशोणितसुराक्षीबं रिपुं मन्यसे।
दर्पान्धो मधुकैटभद्विषि हरावप्युद्धतं चेष्टसे
मे त्रासान्नृपशो! विहाय समरं पंकेऽधुना लीयसे!।।7।।

(अन्वय– नृ–पशो! इन्दोः विमले कुले जन्म व्यपदिशसि, अद्य अपि गदाम् धत्से, माम् दुःशासन–कोष्ण–शोणित–सुरा–क्षीबम् रिपुम् मन्यसे, दर्प–अन्धः मधु–कैटभ–द्विषि हरौ अपि उद्धतम् चेष्टसे, अधुना मे त्रासात् समरम् विहाय पंके लीयसे!।।7।।)

अपि च भो मानाऽन्ध! कौरवाऽधम!

पांचाल्या मन्युवह्निः स्फुटमुपशमितप्राय एव प्रसह्य
व्यामुक्तैः केशपाशैर्हतपतिषु मया कौरवान्तःपुरेषु।
भ्रातुर्दुःशासनस्य स्रवदसृगुरसः पीयमानं निरीक्ष्य
क्रोधात्किं भीमसेने विहितमसमये यत्त्वयाऽस्तोऽभिमानः।

(अन्वय– मया कौरव–अन्तःपुरेषु प्रसह्य हत–पतिषु व्यामुक्तैः केशपाशैः पांचाल्याः, मन्यु–वह्निः स्फुटम्, उपशमित–प्रायः एव भ्रातुः दुःशासनस्य उरसः स्रवत् असृक् पीयमानम् (माम्) निरीक्ष्य, क्रोधात् भीमसेने त्वया किम् विहितम्? यत् असमये अभिमानः अस्तः।।8।।)

उन दोनों में एक जल में घुसने का तो है, किन्तु दूसरा निकलने का नहीं है। इससे अधिक इस विषय में कुमार ही प्रमाण हैं।

उसके पश्चात् घबराहट के साथ, हम सभी उस व्यक्ति को आगे करके चल दिए और तालाब के तट पर जाकर पहचानी हुई दुर्योधन के पैरों के चिह्नों वाली पंक्ति को पाकर भगवान् वासुदेव बोले–

'हे वीर वृकोदर! वस्तुतः सुयोधन **जलस्तम्भनी विद्या** को जानता है। इसलिए निश्चय ही, तुम्हारे भय से वह इस तालाब में जाकर सो गया होगा।' श्रीकृष्ण के इन वचनों को सुनकर, सभी दिशाओं को आपूरित कर देने से भी बढ़कर, सम्पूर्ण जलचर समूह को व्याकुल कर देने वाला, नक्र एवं मकर आदि को भयभीत कर देने वाला, भयंकर गर्जन करके, उसने तालाब के जल को आलोडित कर दिया और कहा– 'अरे, रे! व्यर्थ ही प्रसिद्धि पाने वाले, मिथ्या बलाभिमानी! पांचाल पुत्री द्रौपदी के केश एवं वस्त्रों को खींचने के महान् पाप को करने वाले! धृतराष्ट्र पुत्र, नीच दुर्योधन!

हे मनुष्यों में पशुतुल्य दुर्योधन! तू निर्मल चन्द्रवंश में अपने जन्म को कहता है, किन्तु फिर (सभी भाइयों के मारे जाने पर भी) **इस समय गदा धारण किए हुए है? दुःशासन के उष्ण रुधिररूपी मदिरा पान करने से मदमस्त, मुझे अपना शत्रु मान रहा है? अहंकार से अन्धा बना हुआ तू, मधु और कैटभ का विनाश करने वाले, श्रीकृष्ण के साथ भी उद्दण्डता करने की चेष्टा करता है, जबकि इस समय तू मेरे भय से युद्ध से भागकर, यहाँ कीचड़ में छिपकर बैठ गया है।।7।।**

और भी, हे अहंकार के अन्धे! कौरवाधम!

मैंने जिसप्रकार कौरवों के अन्तःपुर की मारे गए पतियों वाली, स्त्रियों में, बलपूर्वक खुले केशपाश वाली, द्रौपदी के क्रोधरूपी अग्नि को तो स्पष्टरूप से शान्त कर ही दिया है। अपने भाई दुःशासन के वक्षःस्थल से प्रवाहित होने वाले, रक्त को पीता हुआ मुझे देखकर, क्रोध से अपकारी मेरे साथ बदले में तूने क्या किया? जो असमय में ही तेरा अभिमान समाप्त हो गया है।।8।।

द्रौपदी– नाथ! अपनीतो मे मन्युर्यदि पुनरपि सुलभं दर्शनं भविष्यति।[1]

युधिष्ठिरः– कृष्णे! नाऽमंगलानि व्याहर्तुमर्हस्यस्मिन्काले। भद्र! ततस्ततः?।

पांचालकः– देव! ततश्चैवं भाषमाणेन वृकोदरेणाऽवतीर्य क्रोधोद्धतं भ्रमितगदापरिघपाणिना सहसैवोल्लंघिततीरमुत्सन्ननलिनीवनम्, अपविद्ध-मूर्च्छितग्राहम्, उद्भ्रान्तमत्स्यशकुन्तमतिभैरवभ्रमितवारिसंचयमायतमपि तत्सरः समन्तादालोडितम्।

युधिष्ठिरः– भद्र! तथापि किं नोत्थितः?

पांचालकः– देव! कथं नोत्थितः?

त्यक्त्वोत्थितः सरभसं सरसः स मूल–
मुद्भूतकोपदहनोग्रविषस्फुलिंगः।
आयस्तभीमभुजमन्दरवेल्लनाभिः
क्षीराम्बुधेः सुमथितादिव कालकूटः।।9।।

(अन्वय– सरसः मूलम् सरभसम् त्यक्त्वा, उद्भूत–कोप–दहन–उग्र–विष–स्फुलिंगः सः आयस्त–भीम–भुजमन्दर–वेल्लनाभिः सुमथितात् क्षीर–अम्बुधेः कालकूटः इव उत्थितः।।9।।)

युधिष्ठिर– साधु सुक्षत्रिय! साधु!

द्रौपदीः– प्रतिपन्नो समरो न वा?[2]

पांचालकः– उत्थाय च तस्मात्सलिलाशयात्करयुगलोत्तम्भित-तोरणीकृतभीमगदः कथयति स्म– अरे रे, मारुते! किं भयेन प्रलीनं दुर्योधनं मन्यते भवान्? मूढ! अनिहतपाण्डुपुत्रः प्रकाशम् लज्जमानो विश्रमितुमध्यवसितवानस्मि पातालम्।'

एवं चोक्तवति वासुदेवकिरीटिभ्यां द्वावप्यन्तःसलिलं निषिद्ध-समराऽऽरम्भौ स्थलमुत्तारितौ भीमसुयोधनौ। आसीनश्च कौरवराजः क्षितितले गदां निक्षिप्य विशीर्णरथसहस्रं निहतकुरुशतगजवाजिनर–

---

1. णाह! अवणीदो मे मण्णू जइ पुणो वि सुलहं दंसणं भविस्सदि।

2. पडिवराणो समरो ण वा?

द्रौपदी– स्वामी! यदि आपका दर्शन मुझे फिर से हो जाए, तो मेरा क्रोध दूर हो सकेगा।

युधिष्ठिर– हे कृष्णे! इस अवसर पर अमंगल कहना उचित नहीं है। भद्र! उसके बाद ।

पांचालक– महाराज! उसके बाद, इसप्रकार कहते हुए वृकोदर ने क्रोध से उद्धत परिघ के समान, गदा को घुमाते हुए, विशाल होते हुए भी सहसा उस तालाब को मथ डाला, जिसका जल, तट से बाहर तक उछल रहा था, उसके सभी कमलिनी–वन विनष्ट हो गए थे। मूर्च्छित होकर मकर आदि ग्राह, जिसके बाहर पड़े हुए थे। मछलियाँ एवं जल पक्षी जिसमें व्याकुल हो उठे थे, जिसमें अत्यधिक भयंकर भँवर और जलों का संचय था।

युधिष्ठिर– भद्र! क्या वह फिर भी नहीं उठा?

पांचालक– महाराज! क्यों नहीं उठा?

उस तालाब के तल को सहसा छोड़कर, क्रोधरूपी अग्नि से उग्र विष की चिंगारियाँ निकालता हुआ, वह दुर्योधन भीम के विशाल भुजारूपी मन्दराचल के मन्थनों से भलीप्रकार मथे जाते हुए, क्षीर–सागर के कालकूट विष के समान उठ खड़ा हुआ।।9।।

युधिष्ठिरः–साधु, सुक्षत्रिय! साधु।

द्रौपदी– उसके बाद युद्ध हुआ कि नहीं?

पांचालक– और उस जलाशय से उठकर, अपने दोनों हाथों को उठाकर, अपनी भयंकर गदा को तोरण के समान करते हुए, वह दुर्योधन कहने लगा– 'अरे, रे मरुत्पुत्र! क्या आप मुझ दुर्योधन को भय के कारण छिपा हुआ मान रहे हैं? मूर्ख! पाण्डुपुत्रों को मारने के अभाव में लज्जित होता हुआ मैं, पाताल में विश्राम करने के लिए चला गया था।

और उसके ऐसा कहने पर, वासुदेव और अर्जुन दोनों ने ही जल में युद्ध करने से रोककर, भीम और सुयोधन दोनों को ही स्थल पर उतार दिया। तब बैठा हुआ कौरवराज भूतल पर गदा को फैंककर, नष्ट हुए हजारों रथों, सैंकड़ों मारे हुए कौरवों एवं हजारों हाथी घोड़े

सहस्रकलेवरसम्मर्दसम्पतद्गृध्रकंकजम्बुकम्, उत्सन्नसुयोधनबलम्, अस्म-द्वीरमुक्तसिंहनादसवंलितसमरतूर्यम्, अकौरवं रणस्थानमवलोक्या-ऽऽयतमुष्णं च निःश्वसितवान्। ततश्च वृकोदरेणाभिहितम्– 'अयि भोः कौरवराजः! कृतं बन्धुनाशदर्शनमन्युना। मैवं विषादं कृथाः, पर्याप्ताः पाण्डवाः समराया– ऽहमसहायः,' इति। किंच–

पंचानां मन्यसेऽस्माकं यं सुयोधं सुयोधन!
दंशितस्याऽऽत्तशस्त्रस्य तेन तेऽस्तु रणोत्सवः।।10।।

(अन्वय– सुयोधन! अस्माकम् पंचानाम् अयम् सुयोधम् मन्यसे तेन दंशितस्य आत्त–शस्त्रस्य ते रणोत्सवः अस्तु।।10।।)

इत्थं श्रुत्वाऽसूयान्वितां दृष्टिं कुमारयोर्निक्षिप्योक्तवान्धार्तराष्ट्रः।

कर्णदुःशासनवधात्तुल्यावेव युवां मम।
अप्रियोऽपि प्रियो योद्धुं त्वमेव प्रियसाहसः।।11।।

(अन्वय– कर्ण–दुःशासन–वधात् युवाम् मम तुल्यौ एव प्रिय–साहसः त्वम् एव अप्रियः अपि, योद्धुम् प्रियः।।11।।)

इत्युत्थाय च परस्परक्रोधाधिक्षेपपरुषवाक्कलहप्रस्तावितघोर-संग्रामौ विचित्रविभ्रमभ्रमितगदापरिभासुरभुजदण्डौ, मण्डलैर्विचरितुमारब्धौ भीमदुर्योधनौ। अहं च देवेन चक्रपाणिना देवसकाशमनुप्रेषितः। आह च देवो देवकीनन्दनः– अपर्युषितप्रतिज्ञे च मारुतौ प्रनष्टे कौरवराजे, महानासीन्नो विषादः। सम्प्रति पुनर्भीमसेनेनाऽऽसादिते निष्कण्टकीभूतं भुवनतलं परिकलयतु भवान्। अभ्युदयोचिताश्चानवरतमंगलसमारम्भाः प्रवर्त्त्यन्ताम्। कृतं सन्देहेन।

एवं मनुष्यों के पड़े हुए शरीरों को खाने के लिए गिर रहे, गिद्ध, कंक और शृगालों वाले, नष्ट हुए सुयोधन के सैन्य बल वाले उस स्थान पर, हमारे वीरों द्वारा सिंहनाद मिश्रित वाद्य–ध्वनि वाले, कौरवों से रहित युद्धस्थल को देखकर, उस दुर्योधन ने अत्यन्त लम्बी और गर्म श्वास ली और उसके बाद वृकोदर बोला– अरे! कुरुराज! भाइयों के विनाश को देखकर, इसप्रकार क्रोध मत करो, 'पाण्डव तो बहुत हैं और युद्ध करने के लिए मैं अकेला ही रह गया हूँ।' ऐसा विषाद मत करो, इसलिए,

हे सुयोधन! हम पाँचों पाण्डवों में से तुम, जिसे लड़ने के योग्य समझते हो, उसी के साथ कवच पहनकर, अस्त्र धारण किए हुए तुम्हारा रणोत्सव हो जाए।।10।।

यह सुनकर दूसरे के उत्कर्ष को सहन न कर पाने वाली दृष्टि भीम और अर्जुन पर डालकर, दुर्योधन बोला–

कर्ण और दुःशासन के वध के कारण, तुम दोनों मेरे लिए एक समान ही हो, साहसप्रिय होने से तुम भी, अप्रिय होते हुए भी युद्ध करने के लिए मेरे लिए प्रिय हो।।11।।

यह कहकर और उठकर, आपस में क्रोध के आक्षेप से कठोर वाणी और विवाद के साथ, घोर युद्ध आरम्भ करने वाले, विचित्र प्रकार के विलास से घुमायी गदा से सुशोभित भुजदण्ड वाले, भीम एवं दुर्योधन ने घेरा बनाकर, घूमना आरम्भ कर दिया और तभी भगवान् चक्रपाणि ने मुझे आपके पास भेज दिया और भगवान् देवकीनन्दन ने कहा कि–शीघ्र ही भीमसेन की प्रतिज्ञा पूरी न होने के कारण, दुर्योधन के गायब हो जाने से, हम सभी को महान् विषाद हो गया था, किन्तु अब फिर से भीमसेन द्वारा सुयोधन के पा लेने पर, (हे युधिष्ठिर) आप पृथ्वीतल को निष्कण्टक हुआ समझ लीजिए एवं निरन्तर विजय के समय के योग्य मंगलोत्सवों को मनाना आरम्भ कर दीजिए तथा विजय के सम्बन्ध में सन्देह न करें–

पूर्यन्तां सलिलेन रत्नकलशा राज्याभिषेकाय ते,
कृष्णाऽत्यन्तचिरोज्झिते च कबरीबन्धे करोतु क्षणम्।
रामे घोरकुठारभासुरकरे क्षत्रद्रुमोच्छेदिनि,
क्रोधान्धे च वृकोदरे परिपतत्याजौ कुतः संशयः।।12

(अन्वय– रत्नकलशाः ते राज्य–अभिषेकाय सलिलेन पूर्यन्ताम्, अत्यन्त–चिर–उज्झिते च कबरी–बन्धे कृष्णा क्षणम् करोतु, घोर–कुठार–भासुर–करे क्षत्र–द्रुम–उच्छेदिनि रामे, क्रोध–अन्धे वृकोदरे च आजौ परिपतति, संशयः कुतः?।।12)

द्रौपदी– (सबाष्पम्) यदेवस्त्रिभुवननाथो भणति तत्कथमन्यथा भविष्यति।[1]

पांचालकः– न केवलमियमाशीः, असुरनिषूदनस्याऽऽदेशोऽपि।

युधिष्ठिरः– को हि नाम भगवता सन्दिष्टं विकल्पयति? कः कोऽत्र भोः? (प्रविश्य)

कंचुकीः– आज्ञापयतु देवः।

युधिष्ठिरः– कंचुकिन्! देवस्य देवकीनन्दनस्य बहुमानाद्वत्सस्य मे विजयमंगलाय प्रवर्त्यन्तां तदुचिताः समारम्भाः।

कंचुकी– यथाऽऽज्ञापयति देवः। (सोत्साहं परिक्रम्य) भो भोः संविधातॄणां पुरस्सराः! यथा प्रधानमन्तर्वेश्मिकाः! दौवारिकाश्च! एष खलु भुजबलपरिक्षेपोत्तीर्णकौरवपरिभवसागरस्य, निर्व्यूढदुर्वहप्रतिज्ञाभारस्य, सुयोधनाऽनुजशतोन्मूलनप्रभंजनस्य, दुःशासनोरःस्थलविदलननरसिंहस्य, दुर्योधनोरुस्तम्भभंगविनिश्चितविजयस्य बलिनः प्राभंजनेर्वृकोदरस्य स्नेह–पक्षपातिना मनसा मंगलानि कर्तुमाज्ञापयति देवो युधिष्ठिरः। (आकाशे)

किं ब्रूथ– 'सर्वतोऽधिकतरमपि प्रवृत्तं किं नालोकयसि' इति। साधु पुत्रकाः! साधु। अनुक्तहितकारिता हि प्रकाशयति मनोगतां स्वामिभक्तिम्।

---

[1]. जं देवो त्तिहअणणाहो भणादि तं कहं अण्णहा भविस्सदि।

तुम्हारे राज्याभिषेक के लिए रत्नकलश जलों से भर लिए जाएँ, लम्बे समय से खुले बालों को बाँधने के लिए द्रौपदी उत्सव मनावे? कठोर फरसे से प्रदीप्त हाथ वाले और क्षत्रियरूपी वृक्षों को काटने वाले परशुराम और क्रोध से अन्धे वृकोदर के युद्धभूमि में उतरने पर विजय में सन्देह का कोई स्थान नहीं है।।12।।

द्रौपदी– (अश्रुपूर्वक) तीनों लोकों के स्वामी जो देव कहते हैं, वह भला अन्यथा कैसे हो सकता है?

पांचालक– यह केवल आशीर्वाद ही नहीं है, अपितु असुर–निषूदन का आदेश भी है।

युधिष्ठिर– भगवान् के दिए हुए सन्देश में भला कोई विकल्प सम्भव है? अरे! यहाँ कौन है?

कंचुकी– महाराज! आज्ञा प्रदान कीजिए।

युधिष्ठिर– हे कंचुकी! देव, देवकीनन्दन के आदरणीय होने से मेरे वत्स भीमसेन के विजय मंगल हेतु उचित तैयारियाँ आरम्भ कर दी जाएँ।

कंचुकी– महाराज की जैसी आज्ञा (उत्साहपूर्वक घूमकर) अरे! ओ, कार्यकर्ताओं में अग्रणी! अन्तःपुर के प्रधान कर्मचारियों! द्वारपालों! अपने भुजबल से कौरवों द्वारा किए गए परिभवरूपी सागर को पार करने वाले, दुर्वह प्रतिज्ञाभार को पूरा करने वाले, सुयोधन के सौ भाई रूपी वृक्षों को उखाड़कर फैंकने वाली आँधी के समान, दुःशासन के वक्षःस्थल को नृसिंह के समान विदीर्ण करने वाले, दुर्योधन की जाँघों को तोड़ने से सुनिश्चित विजय वाले, प्रबल आँधी के समान भयंकर, वायुपुत्र वृकोदर के स्नेह के पक्षपाती, ये महाराज युधिष्ठिर विजयोत्सव मनाने के लिए, अपने मन से आज्ञा दे रहे हैं। (आकाश में) चारों ओर मनाए जा रहे महोत्सव को क्यों नहीं देख रहे हो? साधु, पुत्रों! साधु, बिना कहे ही स्वामी का हित करना, हार्दिक स्वामी–भक्ति को ही प्रकट करता है।

युधिष्ठिरः– आर्य जयन्धर!

कंचुकी– आज्ञापयतु देवः।

युधिष्ठिरः– गच्छ, प्रियख्यापकं पांचालकं पारितोषिकेणा परितोषय।

कंचुकी– यदाज्ञापयति देवः। (इति पांचालकेन सह निष्क्रान्तः)

द्रौपदी– महाराज! किं निमित्तं पुनर्नाथभीमसेनेन स दुराचारो भणितः– 'पंचानामप्यस्माकं मध्ये येन ते रोचते तेन सह ते संग्रामो भवतु' इति? यदि नामैतयोः माद्रीसुतयोरेकतरेण प्रार्थितस्तेन संग्रामो भवेत्ततोऽत्याहितं भवेत्।[1]

युधिष्ठिरः– कृष्णे! एवं मन्यते जरासन्धघाती, हतसकल सुहृद्बन्धुवीरानुजराजन्यासु, कृपकृतवर्माश्वत्थामशेषास्वेकादशस्वक्षौहिणीष्वबान्धवः शरीरमात्रविभवः कदाचिदुत्सृष्टनिजाऽभिमानो धार्तराष्ट्रः परित्यजेदायुधं तपोवनं वा व्रजेत्सन्धिं वा पितृमुखेन याचेत, एवं सति सुदूरमतिक्रान्तः प्रतिज्ञाभारो भवेत्सकलरिपुजयस्येति। समरं प्रतिपत्तुं पंचानामपि पाण्डवानामेकस्यापि नैव क्षमः सुयोधनः। शंके चाऽहं युद्धं वृकोदरस्यैवाऽनेन। अयि सुक्षत्रिये! पश्य–

क्रोधोद्गूर्णगदस्य नास्ति सदृशः सत्यं रणे मारुतेः,
कौरव्ये कृतहस्तता पुनरियं देवे यथा सीरिणि।
स्वस्त्यस्तूद्धतधार्तराष्ट्रनलिनीनागाय वत्साय मे,
शंके तस्य सुयोधनेन समरं, नैवेतरेषामहम्।।13।।

(अन्वय– रणे क्रोधोत् गूर्ण–गदस्य मारुतेः सदृशः (अन्यः) न अस्ति, सत्यम्, कौरव्ये पुनः देवे सीरिणि यथा इयम् कृत–हस्तता, उद्धत–धार्तराष्ट्र–नलिनी–नागाय मे वत्साय स्वस्ति अस्तु, अहम् तस्य सुयोधनेन समरम् शंके, इतरेषाम् न एव ।।13।।)

(नेपथ्ये)

---

[1]. महाराअ! किंणिमित्तं उण णाहभीमसेणेण सो दुराआरो भणिदो– 'पंचाणं वि अम्हाणं मज्झे जेण दे रोअदि तेण सह दे संगामो होदु' त्ति। जह मद्दीसुदाणं एकदरेण सह पत्थिदो संगामो भवे तदो अच्चाहिदं भवे।

युधिष्ठिर– आर्य जयन्धर!

कंचुकी– महाराज! आज्ञा दीजिए।

युधिष्ठिर– जाओ! प्रिय सूचना प्रदान करने वाले, पांचालक को पारितोषिक प्रदान कर सन्तुष्ट करो।

कंचुकी– महाराज की जैसी आज्ञा।

(ऐसा कहकर पांचालक के साथ निकल जाता है)

द्रौपदी– महाराज! भला स्वामी भीमसेन ने उस दुराचारी से यह कैसे कह दिया कि इन पाँचों में से, जो तुम्हें रुचिकर हो, उसी के साथ तुम्हारा संग्राम होवे। यदि इन माद्रीपुत्रों में से किसी एक के साथ, वह युद्ध को माँग लेता, तो महान् अनर्थ हो जाता।

युधिष्ठिर– हे कृष्णे! जरासन्ध का वध करने वाले, भीम ऐसा सोचते थे कि–'सभी मित्रों, बन्धुओं और राजाओं का, जिसमें वध किया जा चुका है एवं कृपाचार्य, कृतवर्मा एवं अश्वत्थामा ये तीन वीर ही, जिसमें शेष बचे हुए हैं, ऐसी ग्यारह अक्षौहिणी सेनाओं में बन्धुओं से रहित, शरीरमात्र ऐश्वर्य से सम्पन्न, यह दुर्योधन कहीं अपने अभिमान का परित्याग कर दे या फिर तपोवन में चला जाए अथवा अपने पिता के मुँह से सन्धि की याचना करे। ऐसा होने पर सभी शत्रुओं की विजय की कठिन प्रतिज्ञा का भार उतारना, अत्यधिक दूर ही चला जाएगा तथा पाँचों पाण्डवों में किसी एक के साथ भी सुयोधन युद्ध करने में समर्थ नहीं है। इसलिए इस सम्बन्ध में मुझे तो यही शंका है कि वृकोदर के साथ ही इस दुर्योधन का गदा–युद्ध हो रहा है।

(नेपथ्य में)

शब्दार्थ– प्रियख्यापकम्–प्रिय सूचना देने वाले को, परितोषय–संतुष्ट करो, निमित्तम्–कारण, अत्याहितम्–अनर्थ, कदाचित्–कभी, सदृशः–समान, अनेन–इसके द्वारा, याचेत्–माँग लेवे, एवंसति–ऐसा होने पर।

तृषितोऽस्मि भोस्तृषितोऽस्मि। सम्भावयतु कश्चित्सलिलच्छाया-सम्प्रदानेन माम्।

युधिष्ठिरः— (आकर्ण्य) कः कोऽत्र भोः?

(प्रविश्य, सत्वरम्)

कंचुकी— आज्ञापयतु देवः।

युधिष्ठिरः— ज्ञायतां किमेतत्?

कंचुकी— यदाज्ञापयति देवः।

(इति निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य)

देव! क्षुण्मानतिथिरुपस्थितः।

युधिष्ठिरः— शीघ्रं प्रवेशय।

कंचुकी— यदाज्ञापयति देवः। (इति निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशति मुनिवेषधारी चार्वाको नाम राक्षसः)

राक्षसः— (आत्मगतम्) एषोऽस्मि चार्वाको नाम राक्षसः, सुयोधनस्य मित्रं पाण्डवान् वंचयितुं भ्रमामि। (प्रकाशम्) तृषितोऽस्मि, तृषितोऽस्मि। सम्भावयतु मां कश्चिज्जलच्छायाप्रदानेन। (इति राज्ञः समीपमुसर्पति)

(सर्व उत्तिष्ठन्ति)

युधिष्ठिरः— (सहसोत्थाय) मुने! अभिवादये।

राक्षसः— अकालोऽयं समुदाचारस्य, जलप्रदानेन सम्भावयतु मां भवान्।

युधिष्ठिरः— मुने! इदमासनम्। उपविश्यताम्।

राक्षसः— उपविश्य, ननु भवताऽपि क्रियतामासनपरिग्रहः।

युधिष्ठिरः— (उपविश्य) कः कोऽत्र भोः? सलिलमुपनय।

(प्रविश्य गृहीतभृंगारः[1])

कंचुकी—(उपसृत्य) महाराज! शिशिरसुरभिसलिलसम्पूर्णोऽयं भृंगारः, पानभाजनं चेदम्।

---

[1]. स्वर्णनिर्मित कलश, जिसके मुख से जल निकलता था तथा इसका आकार मुडावदार गले वाली बड़ी सुराही के समान होता था।

मैं प्यासा हूँ, अरे! मैं प्यासा हूँ। कोई मुझे पानी और छाया प्रदान कर अनुगृहीत करे।

युधिष्ठिर– (सुनकर) अरे! यहाँ पर कोई है?

(प्रवेश करके शीघ्रतापूर्वक)

कंचुकी– महाराज्! आज्ञा प्रदान कीजिए।

युधिष्ठिर– पता करो, यह क्या है?

कंचुकी– जैसी महाराज की आज्ञा।

(ऐसा कहकर निकलकर फिर से प्रवेश करके)

महाराज! भूखा अतिथि उपस्थित हुआ है।

युधिष्ठिर– शीघ्र प्रवेश कराओ।

कंचुकी– जैसी महाराज की आज्ञा।

(ऐसा कहकर निकल जाता है)

(उसके बाद मुनिवेष धारण किए चार्वाक नामक राक्षस प्रवेश करता है)

राक्षस– (मन में) यह मैं चार्वाक नामक राक्षस, सुयोधन का मित्र पाण्डवों को छलने के लिए घूम रहा हूँ। (प्रकट में) मैं प्यासा हूँ, मैं प्यासा हूँ। कोई मुझे पानी पिलाकर तथा छाया प्रदान करके अनुगृहीत करे। (यह कहकर राजा के पास जाता है)

(सभी उठ जाते हैं)

युधिष्ठिर– (अकस्मात् उठकर) हे मुने! मैं अभिवादन करता हूँ।

राक्षस– यह शिष्टाचार का समय नहीं है, आप तो मुझे जल देकर अनुगृहीत करें।

युधिष्ठिर– हे मुने! यह आसन है, आप इस पर बैठिए।

राक्षस– (बैठकर) निश्चय ही, आप भी आसन स्वीकार कीजिए।

युधिष्ठिर– (बैठकर) अरे! यहाँ पर कोई है? जल लाओ।

(स्वर्णिम जलपात्र लिए हुए प्रवेश करके)

कंचुकी– (पास जाकर) महाराज! शीतल एवं सुगन्धित जल से भरा हुआ, यह स्वर्णिम जल का पात्र (भृङ्गार) और यह जल पीने का पात्र है।

युधिष्ठिरः– मुने! निर्वर्त्यतामुदन्याप्रतीकारः।

राक्षसः– (पादौ प्रक्षाल्योपस्पृशन्विचिन्त्य) भोः! भोः, क्षत्रियस्त्वमिति मन्ये?

युधिष्ठिरः– सम्यग्वेदी भवान्। क्षत्रिय एवाऽस्मि।

राक्षसः– यद्येवं प्रतिदिनसुलभस्वजनविनाशनेषु संग्रामेषु युष्मत्तो नाऽऽदेयं सलिलादिकम्। भवतु, छाययैवाऽनया सरस्वतीशिशिरतरंग-स्पृशा मरुता चाऽनेन विगतक्लमो भविष्यामि।

द्रौपदी– बुद्धिमतिके! वीजय महर्षिमनेन तालवृन्तेन।[1]

(चेटी तथा करोति)

राक्षसः– भवति! अनुचित्तोऽयमस्मासु समुदाचारः।

युधिष्ठिरः– मुने! कथय कथमेवं भवान्परिश्रान्तः?

राक्षसः– मुनिजनसुलभेन कौतूहलेन तत्रभवतां महाक्षत्रियाणां द्वन्द्वयुद्धमवलोकयितुं पर्यटामि समन्तपंचकम्। अद्य तु बलवत्तया शारदा-ऽऽतपस्याऽपर्याप्तमेवावलोक्य गदायुद्धमर्जुनसुयोधनयोरागतोऽस्मि।

(सर्वे विषादं नाटयन्ति)

कंचुकी– मुने! न खल्वेदम्। भीमसुयोधनयोरिति कथय।

राक्षसः– आः! अविदितवृान्त एव कथं मामाक्षिपसि?

युधिष्ठिरः– महर्षे! कथय कथय।

राक्षसः– क्षणमात्रं विश्रम्य सर्वं कथयामि भवतः, न पुनरस्य वृद्धस्य।

युधिष्ठिरः– भगवन्! एतावदेव कथय– किंपुनरर्जुनसुयोधन-योरिति।

राक्षस– पूर्वमेव कथितं मया–प्रवृत्तं गदायुद्धमर्जुनसुयोधनयोरिति।

युधिष्ठिरः– न भीमसुयोधनयोरिति?

---

[1]. बुद्धिमदिए!वीएहि महेसिं इमिणा तालविन्तेण।

युधिष्ठिर– हे मुने! आप अपनी प्यास को शान्त कीजिए।

राक्षस– (दोनों पैरों को धोकर, आचमन करते हुए, सोचकर) अरे! अरे! मैं मानता हूँ कि तुम क्षत्रिय हो?

युधिष्ठिर– आप ठीक समझते हैं। मैं क्षत्रिय ही हूँ।

राक्षस– यदि ऐसा है तो प्रतिदिन हो रहे, स्वजन विनाश वाले युद्धों में, तुमसे तो जलादि ग्रहण करना नहीं चाहिए। ठीक है, इस छाया से एवं सरस्वती नदी की शीतल तरंगों वाली वायु के स्पर्श से ही, थकावट एवं प्यास को दूर करूँगा।

द्रौपदी– हे बुद्धिमतिके! इस तालवृन्त से महर्षि के ऊपर पंखा झलो।

(चेटी वैसा करती है)

राक्षस– हे देवि! हम मुनियों पर स्त्रियों द्वारा किया गया सेवा शुश्रूषा विषयक आचरण (समुदाचार) उचित नहीं है।

युधिष्ठिर– हे मुने! कहिए, आप इसप्रकार कैसे थक गए?

राक्षस– मुनिजन सुलभ कौतूहल द्वारा आप महाक्षत्रियों का द्वन्द्व युद्ध देखने के लिए मैं **समन्तपंचक क्षेत्र** में घूम रहा था। आज तो शरदऋतु के बलवान् आतप के कारण अर्जुन और सुयोधन का गदा युद्ध देखकर आ रहा हूँ। (सभी विषाद का अभिनय करते हैं)

कंचुकी– हे मुने! वास्तव में ऐसा नहीं है, आप भीम और सुयोधन का कहिए।

राक्षस– अरे! समाचार को न जानने वाला तू, इसप्रकार मेरे ऊपर आक्षेप क्यों लगा रहा है?

युधिष्ठिर– हे महर्षि! कहिए, कहिए।

राक्षस– क्षण भर के लिए विश्राम करके, सभी कुछ आपसे कहता हूँ किन्तु इस वृद्ध से नहीं कहूँगा।

युधिष्ठिर– भगवन्! यही कहिए, क्या अर्जुन और दुर्योधन में?

राक्षस– मैंने पूर्व में ही कह दिया कि अर्जुन और सुयोधन में गदायुद्ध आरम्भ हो गया।

युधिष्ठिर– भीम और सुयोधन में गदायुद्ध नहीं हुआ?

राक्षसः– वृत्तं तत्।

(युधिष्ठिरो द्रौपदी च मोहमुपगतौ)

कंचुकी– (सलिलेनासिच्य) समाश्वसितु देवी देवी च।

चेटी– (देवीं प्रति) समाश्वसितु समाश्वसितु देवी।[1]

(उभौ संज्ञां लभेते)

युधिष्ठिरः– किं कथयसि मुने! वृत्तं भीमसुयोधनयोर्गदायुद्धमिति।

द्रौपदीः– भगवन्! कथय कथय किं वृत्तमिति।[2]

राक्षसः– कंचुकिन्! कौ पुनरेतौ?

कंचुकी– एष देवो युधिष्ठिरः, इयमपि पांचालतनया।

राक्षसः– आः! दारुणामुपक्रान्तं मया नृशंसेन।

द्रौपदी– हा नाथ भीमसेन![3] (इति मोहमुपगता)

कंचुकी– किं नाम कथितम्?

चेटी– समाश्वसितु समाश्वसितु देवी।[4]

युधिष्ठिरः– (सास्रम्) ब्रह्मन्।

पदे सन्दिग्ध एवास्मिन्दुःखमास्ते युधिष्ठिरः।
वत्सस्य निश्चिते तत्त्वे प्राणत्यागादयं सुखी।।14।।

(अन्वय– सन्दिग्धः एव अस्मिन् पदे युधिष्ठिरः दुःखम् आस्ते वत्सस्य तत्त्वे निश्चिते, अयम् प्राण–त्यागात् सुखी।।14।।)

राक्षसः– (सानन्दमात्मगतम्) अयमेव मे यत्नः। (प्रकाशम्) यद्येवम् अवश्यं कथनीयं, तदा संक्षेपतः कथयामि, न युक्तं बन्धुव्यसनं विस्तरेण वेदयितुम्।

युधिष्ठिरः– (अश्रूणि मुंचन्)

सर्वथा कथय ब्रह्मन्संक्षेपाद्विस्तरेण वा।
वत्सस्य किमपि श्रोतुमेष दत्तः क्षणो मया।।15।।

---

1. समस्ससदु समस्ससदु देवी।
2. भअवं! कहेहि, कहेहि किं वुत्तं? त्ति।
3. हा णाह भीमसेण।
4. समस्ससदु समस्ससदु देवी।

राक्षस– वह तो हो गया।

(युधिष्ठिर और द्रौपदी दोनों मूर्च्छित हो जाते हैं)

कंचुकी– (जल छिड़ककर) महाराज! और महारानी! धैर्य धारण करें।

चेटी– (देवी के प्रति) महारानी! धैर्य धारण करें, धैर्य धारण करें।

(दोनों होश में आते हैं)

युधिष्ठिर– हे मुने! आप क्या कर रहे हैं? भीम और सुयोधन में गदायुद्ध हो चुका।

द्रौपदी– भगवन्! कहिए, कहिए, क्या हो चुका?

राक्षस– हे कंचुकिन्! ये दोनों कौन हैं?

कंचुकी– ये महाराज युधिष्ठिर हैं और ये भी पांचालराज की पुत्री द्रौपदी हैं।

राक्षस– हाय, मुझ कठोर ने अत्यधिक दुःखद वृतान्त कहना आरम्भ कर दिया।

द्रौपदी– हाय, नाथ भीमसेन! (यह कहकर मूर्च्छित हो जाती है)

कंचुकी– भला आपने क्या कहा?

चेटी– देवी! धैर्य धारण कीजिए, धैर्य धारण कीजिए।

युधिष्ठिर– (अश्रुपूर्वक) हे ब्रह्मन्!

इस सन्दिग्ध पद को कहने पर तो यह युधिष्ठिर अत्यधिक दुःखी हो गया है। वत्स भीम के न होने की बात निश्चित होने पर तो यह मैं प्राण देकर ही सुखी हो सकूँगा।।14।।

राक्षस– (आनन्दपूर्वक मन में) मेरा भी यही प्रयत्न है। (प्रकट में) यदि ऐसा है तो अवश्य ही कहना चाहिए। तब तो संक्षेप में ही कहता हूँ, क्योंकि बन्धुओं के विनाश को विस्तार से कहना ठीक नहीं है।

युधिष्ठिर– (अश्रु बहाते हुए)

हे भगवन्! संक्षेप में या विस्तार से किसी प्रकार भी कहिए, मैं वत्स भीम का जो कुछ भी है, उसे सुनने के लिए तैयार हूँ।।15।।

(अन्वय– ब्रह्मन्! सर्वथा संक्षेपात् विस्तरेण वा कथय, वत्सस्य किम् अपि श्रोतुम् एषः मया क्षणः दत्तः।।15।।)

राक्षसः– श्रूयताम्।

तस्मिन् कौरवभीमयोर्गुरुगदाघोरध्वनौ संयुगे

द्रौपदी– (सहसोत्थाय) ततस्ततः?[1]

राक्षसः– (स्वगतम्) कथं पुनरनयोर्लब्धसंज्ञतामपनयामि?

(प्रकाशम्)

सीरी सत्वरमागतश्चिरमभूत्तस्याग्रतः संगरः।
आलम्ब्य प्रियशिष्यतां तु हलिना संज्ञा रहस्याहिता
यामासाद्य कुरूत्तमः प्रतिकृतिं दुःशासनारौ गतः।।16।।

(अन्वय– कौरव–भीमयोः तस्मिन् गुरु–गदा–घोर–ध्वनौ संयुगे सीरी सत्वरम् आगतः, तस्य अग्रतः संगरः चिरम् अभूत्, हलिना तु प्रिय–शिष्यताम् आलम्ब्य रहसि संज्ञा आहिता, याम् आसाद्य कुरूत्तमः दुःशासन–अरौ प्रतिकृतिम् गतः।।16।।)

युधिष्ठिरः– हा वत्स वृकोदर! (इति मोहमुपगतः)

द्रौपदी– हा नाथ भीमसेन! हा मम परिभवप्रतीकारपरित्यक्त-जीवित! जटासुर–बक–हिडिम्ब–किर्मीर–कीचक–जरासन्ध–निषूदन! सौगन्धिकाहरण–चाटुकार! देहि मे प्रतिवचनम्।[2]

(इति मोहमुपगता)

कंचुकी– (सास्रम्) हा कुमार भीमसेन! धार्तराष्ट्रकुलकमलिनी प्रालेयवर्ष! (ससंभ्रमम्) समाश्वसितु महाराजः। भद्रे! समाश्वासय स्वामिनीम्। महर्षे! त्वमपि तावदाश्वासय राजानम्।

राक्षसः– (स्वागतम्) आश्वासयामि प्राणान्परित्याजयितुम्। (प्रकाशम्) अयि भो भीमाग्रज! क्षणमेकं चीयतां समाश्वासः। कथा-ऽवशेषोऽप्यस्ति।

---

[1]. तदो तदो?

[2]. हा णाह भीमसेण! हा मह परिभवपडीआरपरिच्चत्तजीविअ! जडासुरवअहिडिम्ब किम्मीरकीचअजरासन्धणिसूदण! सोअन्धिआह रणचाडुआर! देहि मे पडिवअणम्।

राक्षस– सुनिए।

कौरवराज एवं भीम इन दोनों के भयंकर शब्द वाले गदायुद्ध के होने पर.....

द्रौपदी– (सहसा उठकर) उसके बाद क्या हुआ, उसके बाद क्या हुआ?

राक्षस– (मन में) इन दोनों के चैतन्य को फिर से कैसे दूर किया जाए? (प्रकट में)

वहाँ पर शीघ्र ही बलराम आ गए, उनके सामने ही बहुत समय तक उनका युद्ध होता रहा। प्रिय शिष्य होनें के कारण उसके बाद बलराम ने दुर्योधन को एकान्त में संकेत किया और उस संकेत को प्राप्त करके, कुरुपति दुर्योधन ने शत्रु भीमसेन से बदला ले ही लिया।।16।।

युधिष्ठिर– हाय! वत्स वृकोदर!

(यह कहकर मूर्च्छित हो जाता है)

द्रौपदी– हाय, स्वामी! भीमसेन, हाय! मेरे तिरस्कार का बदला लेने के लिए, अपने प्राणों को देने वाले, हाय! जटासुर, बक, हिडिम्ब, किर्मीर, कीचक और जरासन्ध का विनाश करने वाले, हाय! गन्धमादन पर्वत पर उत्पन्न होने वाले स्वर्णकमल को लाकर मुझे प्रदान करने वाले, मुझे प्रत्युत्तर प्रदान कीजिए। (ऐसा कहकर मूर्च्छित हो जाती है)

कंचुकी– (अश्रुपूर्वक) हाय! कुमार भीमसेन, धृतराष्ट्र के कुलरूपी कमलिनियों के वन पर पाले की वर्षा करके, उनका विनाश करने वाले, (घबराकर) महाराज! धैर्य धारण कीजिए, धैर्य धारण कीजिए। भद्रे! महारानी को धैर्य दिलाइए। हे महर्षि! आप भी महाराज को धीरज बँधाइए।

राक्षस– (मन में) प्राण त्याग कराने के लिए धैर्य बँधाता हूँ। (प्रकट में) अरे! ओ, भीम के बड़े भाई युधिष्ठिर! एक क्षण के लिए धैर्य रखिए, क्योंकि अभी कुछ कथा शेष है।

(अन्वय– ब्रह्मन्! सर्वथा संक्षेपात् विस्तरेण वा कथय, वत्सस्य किम् अपि श्रोतुम् एषः मया क्षणः दत्तः ।।15।।)

राक्षसः– श्रूयताम्।

तस्मिन् कौरवभीमयोर्गुरुगदाघोरध्वनौ संयुगे

द्रौपदी– (सहसोत्थाय) ततस्ततः?[1]

राक्षसः– (स्वगतम्) कथं पुनरनयोर्लब्धसंज्ञतामपनयामि?

(प्रकाशम्)

सीरी सत्वरमागतश्चिरमभूत्तस्याग्रतः संगरः।
आलम्ब्य प्रियशिष्यतां तु हलिना संज्ञा रहस्याहिता
यामासाद्य कुरूत्तमः प्रतिकृतिं दुःशासनारौ गतः।।16।।

(अन्वय– कौरव–भीमयोः तस्मिन् गुरु–गदा–घोर–ध्वनौ संयुगे सीरी सत्वरम् आगतः, तस्य अग्रतः संगरः चिरम् अभूत्, हलिना तु प्रिय–शिष्यताम् आलम्ब्य रहसि संज्ञा आहिता, याम् आसाद्य कुरूत्तमः दुःशासन–अरौ प्रतिकृतिम् गतः।।16।।)

युधिष्ठिरः– हा वत्स वृकोदर! (इति मोहमुपगतः)

द्रौपदी– हा नाथ भीमसेन! हा मम परिभवप्रतीकारपरित्यक्त-जीवित! जटासुर–बक–हिडिम्ब–किर्मीर–कीचक–जरासन्ध–निषूदन! सौगन्धिकाहरण–चाटुकार! देहि मे प्रतिवचनम्।[2]

(इति मोहमुपगता)

कंचुकी– (सास्रम्) हा कुमार भीमसेन! धार्तराष्ट्रकुलकमलिनी प्रालेयवर्ष! (ससंभ्रमम्) समाश्वसितु महाराजः। भद्रे! समाश्वासय स्वामिनीम्। महर्षे! त्वमपि तावदाश्वासय राजानम्।

राक्षसः– (स्वागतम्) आश्वासयामि प्राणान्परित्याजयितुम्। (प्रकाशम्) अयि भो भीमाग्रज! क्षणमेकं चीयतां समाश्वासः। कथा-ऽवशेषोऽप्यस्ति।

---

[1]. तदो तदो?

[2]. हा णाह भीमसेण! हा मह परिभवपडीआरपरिच्चत्तजीविअ! जडासुरवअहिडिम्ब किम्मीरकीचअजरासन्धणिसूदण! सोअन्धिआह रणचाडुआर! देहि मे पडिवअणम्।

राक्षस– सुनिए।

कौरवराज एवं भीम इन दोनों के भयंकर शब्द वाले गदायुद्ध के होने पर.....

द्रौपदी– (सहसा उठकर) उसके बाद क्या हुआ, उसके बाद क्या हुआ?

राक्षस– (मन में) इन दोनों के चैतन्य को फिर से कैसे दूर किया जाए? (प्रकट में)

वहाँ पर शीघ्र ही बलराम आ गए, उनके सामने ही बहुत समय तक उनका युद्ध होता रहा। प्रिय शिष्य होने के कारण उसके बाद बलराम ने दुर्योधन को एकान्त में संकेत किया और उस संकेत को प्राप्त करके, कुरुपति दुर्योधन ने शत्रु भीमसेन से बदला ले ही लिया।।16।।

युधिष्ठिर– हाय! वत्स वृकोदर!

(यह कहकर मूर्च्छित हो जाता है)

द्रौपदी– हाय, स्वामी! भीमसेन, हाय! मेरे तिरस्कार का बदला लेने के लिए, अपने प्राणों को देने वाले, हाय! जटासुर, बक, हिडिम्ब, किर्मीर, कीचक और जरासन्ध का विनाश करने वाले, हाय! गन्धमादन पर्वत पर उत्पन्न होने वाले स्वर्णकमल को लाकर मुझे प्रदान करने वाले, मुझे प्रत्युत्तर प्रदान कीजिए। (ऐसा कहकर मूर्च्छित हो जाती है)

कंचुकी– (अश्रुपूर्वक) हाय! कुमार भीमसेन, धृतराष्ट्र के कुलरूपी कमलिनियों के वन पर पाले की वर्षा करके, उनका विनाश करने वाले, (घबराकर) महाराज! धैर्य धारण कीजिए, धैर्य धारण कीजिए। भद्रे! महारानी को धैर्य दिलाइए। हे महर्षि! आप भी महाराज को धीरज बँधाइए।

राक्षस– (मन में) प्राण त्याग कराने के लिए धैर्य बँधाता हूँ। (प्रकट में) अरे! ओ, भीम के बड़े भाई युधिष्ठिर! एक क्षण के लिए धैर्य रखिए, क्योंकि अभी कुछ कथा शेष है।

युधिष्ठिरः– (समाश्वस्य) महर्षे! किमस्ति कथाशेषः?

द्रौपदी– (प्रतिबुद्धा) भगवन् कथय कीदृशः कथाशेषः, इति?[1]

कंचुकी– कथय कथय?

चेटी– कथय, कथय।[2]

राक्षसः– ततश्च हते तस्मिन्सुक्षत्रिये वीरसुलभां गतिमुपगते समग्रसंगलितं भ्रातृवधशोकजं बाष्पं प्रमृज्य, भ्रातृवधशोकादपहाय गाण्डीवं प्रत्यग्रक्षतजच्छटाचर्चितां तामेव गदां भ्रातृहस्ताद्यत्नादाकृष्य, निवार्यमाणोऽपि सन्धित्सुना भगवता वासुदेवेन, आगच्छाऽऽगच्छेति सोपहासं भ्रमितगदाझंकारमूर्च्छितगम्भीरवचनध्वनिनाऽऽहूयमानः कौरवराजेन, तृतीयो–ऽनुजस्ते किरीटीयोद्धुमारब्धः। तथाऽकृतिनस्तस्य गदाऽऽघातानि धनमुत्प्रेक्षमाणेन कामपालेनाऽर्जुनपक्षपाती देवकी सूनुरतिप्रयत्नात् स्वरथमारोप्य द्वारकां नीतः।

युधिष्ठिरः–साधु, भो अर्जुन! तदैव प्रतिपन्ना वृकोदरपदवी गाण्डीवं परित्यजता। अहं पुनः केनोपायेन प्राणाऽपगमनमहोत्सवमुत्सहिष्ये?

द्रौपदी– हा नाथ भीमसेन! न युक्तमिदानीं ते कनीयांसं भ्रातरमशिक्षितं गदायां, दारुणस्य शत्रोरभिमुखं गच्छन्तमुपेक्षितुम्।[3]

(इति मोहमुपगता)

राक्षसः– ततश्चाहम्......।

युधिष्ठिरः– भवतु मुने! किमतः परं श्रुतेन। हा तात! कान्तारव्यसनबान्धव! हा मच्छरीरस्थितिविच्छेदकातर! जतुगृहविपत्समुद्रतरणयानपात्र! हा किर्मीरहिडिम्बाऽसुरजरासन्धविजयमल्ल! हा कीचकसुयोधनाऽनुजशतकमलिनीकुंजर! हा द्यूतपणप्रणयिन्! मदाज्ञासम्पादक! हा कौरववनदावानल!

---

1 . भअवं! कहेहि कीदिसो कहासेसो त्ति?

2 . कहेहि कहेहि।

3 . हा णाह भीमसेण। ण जुत्तं दाणीं दे कणीअसं भादरं असिक्खिदं गदाए दारुणस्स सत्तुणो अहिमुहं गच्छन्तं उवक्खिदुम्।

युधिष्ठिर– (धैर्य धारण करके) हे महर्षे! क्या अभी भी कथा शेष है?

द्रौपदी– (होश में आकर) भगवन्! कहिए, कैसी कथा शेष है?

कंचुकी– कहिए, कहिए।

चेटी– कहिए, कहिए।

राक्षस– उसके बाद, उस वीर के मारे जाने एवं वीरोचित गति को प्राप्त होने पर, भ्रातृशोक से उत्पन्न सभी, पिघले हुए आँसुओं को पोंछकर, भ्रातृवध के शोक के कारण गाण्डीव को त्यागकर, ताजे बह रहे रक्त की छटा से चर्चित, उसी गदा को भाई भीम के हाथ से खींचकर, सन्धि के इच्छुक भगवान् वासुदेव द्वारा मना किए जाने पर भी, आ जा, आ जा, इसप्रकार उपहास कर रहे, घुमाई हुई गदा की झंकार से अस्पष्ट और गम्भीर वचनों की ध्वनि से, कौरवराज द्वारा पुकारे जाने पर, तुम्हारे तीसरे अनुज किरीटी अर्जुन ने युद्ध करना आरम्भ कर दिया एवं गदायुद्ध में अकुशल उस किरीटी का गदा के आघात से वध चाह रहे, कामपाल बलराम, अर्जुन के पक्षपाती देवकी नन्दन को अत्यधिक प्रयत्नपूर्वक अपने रथ पर बैठाकर द्वारकापुरी ले गए।

युधिष्ठिर– हे अर्जुन तुम धन्य हो! क्योंकि उसी समय गाण्डीव का परित्याग करके तुमने, वृकोदर के मार्ग का अनुसरण किया। प्राण त्यागरूपी महोत्सव को मैं अब किस उपाय द्वारा सहन करूँगा?

द्रौपदी– हाय स्वामी भीमसेन! गदायुद्ध में अकुशल अपने छोटे भाई के दारुण शत्रु के सामने जाने की उपेक्षा करना, अब उचित नहीं है। (यह कहकर मूर्च्छित हो जाती है)

राक्षस– और उसके बाद मैं......

युधिष्ठिर– अस्तु, हे मुने! इससे अधिक सुनने से क्या लाभ? हा तात! वन के दुःखों में सहायता करने वाले, हाय! मेरे शरीर की स्थिति के विच्छेद की चिन्ता से व्याकुल! हाय! लाक्षागृह रूपी सागर को पार करने में नौका के समान! हाय! किर्मीर, हिडिम्बासुर और जरासन्ध को जीतने वाले वीर! हा कीचक और दुर्योधन के सौ भाइयों रूपी कमलिनी के लिए मतवाले हाथी के समान! हाय! जुए की शर्त का

निर्लज्जस्य दुरोदरव्यसनिनो वत्स! त्वया सीदता
भक्त्या मे समदद्विपाऽयुतबलेनांगीकृता दासता।
किं नामाऽपकृतं मया तदधिकं येनाद्य दूरं गतः
त्यक्त्वाऽनाथमबान्धवं सपदि मां प्रीतिः क्व ते साऽधुना?

(**अन्वय**– वत्स! दुरोदर–व्यसनिनः मे निर्लज्जस्य भक्त्या सीदता समद–द्विप–अयुत–बलेन त्वया दासता अंगीकृता, मया अद्य तत् अधिकम् किम् नाम अपकृतम्? येन अनाथम् अबान्धवम् माम् सपदि त्यक्त्वा दूरम् गतः, सा ते प्रीतिः अधुना क्व (गता)? ।।17।।)

द्रौपदी– (संज्ञामुपलभ्योत्थाय च) **महाराज! किमेतद्वर्तते?**[1]

युधिष्ठिरः– कृष्णे! किमन्यत्?

स कीचकनिषूदनो बकहिडिम्बकिर्मीरहा
मदान्धमगधाधिपद्विरदसन्धिभेदाशनिः।
गदापरिघशोभिना भुजयुगेन तेनान्वितः
प्रियस्तव, ममाऽनुजोऽर्जुनगुरुर्गतोऽस्तं किल।।18।।

(**अन्वय**– सः कीचक–निषूदनः, बक–हिडिम्ब–किर्मीर–हा मदान्ध–मगध–अधिप–द्विरद–सन्धि–भेद–अशनिः गदा–परिघ–शोभिना तेन भुज–युगेन अन्वितः तव प्रियः मम अनुजः अर्जुन–गुरुः अस्तम् गतः किल।।18।।)

द्रौपदी– (आकाशे दत्तदृष्टिः) **नाथ! भीमसेन! त्वया किल मे केशाः संयमयितव्याः। न युक्तं वीरस्य क्षत्रियस्य प्रतिज्ञातं शिथिलयितुम्। तत्प्रतिपालय मां यावदुपसर्पामि।**[2]

(पुनर्मोहमुपगता)

युधिष्ठिरः– (आकाशे दत्तदृष्टिः) **अम्ब पृथे! श्रुतोऽयं तव पुत्रस्य समुदाचारः? मामेकमनाथं विलपन्तमुत्सृज्य क्वापि गतः! तात जरासन्ध–शत्रो! किं नाम वैपरीत्यमेतावता कालेनाऽल्पायुषि त्वयि समालोकितं जनेन? अथवा मयैव बहूपलब्धम्।**

---

[1]. महाराअ! किं एदं बट्टइ?

[2]. णाह भीमसेण! तुए किल मे केसा संजमिदव्वा। ण जुत्तं वीरस्स खत्तिअस्स पडिण्णादं सिढिलेदुम्। ता पडिवालेहि मं जाव उवसप्पामि।

पालन करने के प्रेमी! हाय, मेरी आज्ञा का पालन करने वाले! हाय कौरवरूपी वन के लिए दावानल के समान!

वत्स भीम! जुए के व्यसनी, मुझ निर्लज्ज की भक्ति से व्याकुल, मदमत्त दस हजार हाथियों का बल रखने वाले, तुमने दासता को भी स्वीकार कर लिया, फिर मैंने उससे भी बढ़कर आज कौन सा अपराध कर दिया, जिसके कारण अनाथ, बन्धुरहित मुझे शीघ्र ही त्यागकर, तुम दूर चले गए? तुम्हारी वह प्रीति इस समय भला कहाँ चली गयी?।।17।।

द्रौपदी– (होश में आकर और उठकर) महाराज! यह क्या है?

युधिष्ठिर– कृष्णे! और क्या?

कीचक का वध करने वाला, बक, हिडिम्ब, किर्मीर राक्षसों का हन्ता, मदान्ध मगध राजा जरासन्धरूपी हाथी का सन्धिभेद करने में वज्र के समान, गदारूपी परिघ की शोभा से युक्त, प्रसिद्ध बाहुयुगल से सम्पन्न, तुम्हारे प्रिय, मेरे अनुज और अर्जुन के अग्रज वह, भीमसेन निश्चय ही अस्त हो गए हैं।।18।।

द्रौपदी– (आकाश में दृष्टि डालकर) हे स्वामी भीमसेन! तुम्हें तो वस्तुतः अभी मेरे केशों को संवारना भी है। इसलिए वीर क्षत्रिय होकर, आपको अपनी प्रतिज्ञा शिथिल करना उचित नहीं है, तो मेरी रक्षा कीजिए, मैं आ रही हूँ (फिर से मूर्च्छित हो जाती है)

युधिष्ठिर– (आकाश में दृष्टि डालकर) हे माता पृथे! आपने अपने पुत्र का यह शिष्टाचार सुना, वह मुझ अकेले अनाथ को रोता बिलखता हुआ छोड़कर, कहीं चला गया है। हाय! वत्स, जरासन्ध शत्रु! भीम, लोगों ने इतने ही समय में थोड़ी सी अवस्था में, तुममें यह क्या विपरीत देख लिया? या फिर मैंने ही बहुत कुछ प्राप्त कर लिया?

दत्वा मे करदीकृताऽखिलनृपां यन्मेदिनीं लज्जसे,
द्यूते यच्च पणीकृतोऽपि हि मया न क्रुध्यसि, प्रीयसे।
स्थित्यर्थं मम मत्स्यराजभवने प्राप्तोऽसि यत्सूदतां
वत्सैतानि विनश्वरस्य सहसा दृष्टानि चिह्नानि ते।।19।।

(अन्वय– वत्स! करदी–कृत–अखिल–नृपाम् मेदिनीम् मे दत्वा यत् लज्जसे, यत् च द्यूते मया पणी–कृतो अपि न क्रुध्यसि, हि प्रीयसे, यत् मत्स्यराज–भवने मम स्थिति–अर्थम् सूदताम् प्राप्तः असि, एतानि विनश्वरस्य ते चिह्नानि सहसा दृष्टानि।।19।।)

मुने! किं कथयसि? ('तस्मिन्कौरवभीमयोः' 6/16 इत्यादि पठति)

राक्षसः– एवमेतत्।

युधिष्ठिरः– धिगस्मद्भागधेयानि। (आकाशमवलोकयन्) भगवन्–कामपाल! कृष्णाऽग्रज! सुभद्राभ्रातः!

ज्ञातिप्रीतिर्मनसि न कृता, क्षत्रियाणां न धर्मो,
रूढं सख्यं तदपि गणितं नाऽनुजस्यार्जुनेन।
तुल्यः कामं भवतु भवतः शिष्ययोः स्नेहबन्धः
कोऽयं पन्था यदसि विमुखो मन्दभाग्ये मयीत्थम्।।20।

(अन्वय– ज्ञाति–प्रीतिः मनसि न कृता, क्षत्रियाणाम् धर्मः न, अर्जुनेन अनुजस्य रूढम् तत् सख्यम् अपि न गणितम्, भवतः शिष्ययोः स्नेह–बन्धः कामम् तुल्यः भवतु, कः अयम् पन्थाः, यत् मन्द–भाग्ये मयि इत्थम् विमुखः असि?।।20।।)

(द्रौपदीमुपगम्य) अयि पांचालि! उत्तिष्ठोत्तिष्ठ। समानदुःखावेवाऽऽवां भवावः। मूर्च्छया किं मामेवमतिसन्धत्से?

द्रौपदी– (लब्धसंज्ञा) बध्नातु नाथ! दुर्योधनरुधिराद्रेण हस्तेन दुःशासनविमुक्तं मे केशहस्तम्। हंजे बुद्धिमतिके! तव प्रत्यक्षमेव नाथेन प्रतिज्ञातम्। (कंचुकिनमुपसृत्य) आर्य! किं संदिष्टं तावन्मे देवेन देवकीनन्दनेन 'पुनरपि केशबन्धनमारभ्यता'मिति? तदुपनय मे पुष्पदामानि। विरचय तावत्कबरीम्। कुरु भगवतः पुरुषोत्तमस्य वचनम्।

हे वत्स! अधीन बनाए गए, सभी राजाओं से युक्त पृथ्वी को मुझे सौंपकर भी तुम लज्जित ही बने रहे और जुआ खेलने में मैंने जो भी दाँव पर लगा दिया, उससे तुम क्रुद्ध भी नहीं हुए, अपितु प्रसन्न ही बने रहे। विराट के राजभवन में, मेरी स्थिति के लिए जो तुम रसोइए बन गए, शीघ्र विनष्ट होने वाले, तुम्हारे ये लक्षण मैंने सहसा ही देख लिए थे।।19।।

हे मुनि! क्या कहते हो? (तस्मिन् कौरवभीमयोः 6/16 इत्यादि पढ़ता है)

राक्षस– यह ऐसा ही है।

युधिष्ठिर–हमारे भाग्यों को धिक्कार है। (आकाश को देखते हुए) भगवन् कामपाल! हे श्रीकृष्ण के अग्रज! हे सुभद्रा के बन्धु!

आपने जाति–प्रेम को भी मन में विचार नहीं किया, क्षत्रियधर्म पर भी चिन्तन नहीं किया, अर्जुन की अनुज से उस प्रसिद्ध मित्रता की गणना भी नहीं की। आपका तो अपने दोनों शिष्यों भीम और दुर्योधन पर समान प्रेम होना चाहिए था, क्या यही समान प्रेम था, जो तुम मन्दभाग्य मेरे इसप्रकार विमुख हो गए।।20।।

(द्रौपदी के पास जाकर) अयि! पांचालि! उठो, उठो। हम दोनों एक समान दुःख वाले ही हो जाते हैं। इसप्रकार बेहोशी से तुम मुझे अत्यधिक व्याकुल क्यों कर रही हो?

द्रौपदी– (होश में आकर) हे स्वामी! दुर्योधन के रक्त से भीगे हुए हाथों से दुःशासन द्वारा खोले गए, मेरे केशपाश को बाँधिए। हंजे बुद्धिमतिके! तेरे सामने ही स्वामी ने प्रतिज्ञा की थी (कंचुकी के पास जाकर) आर्य! क्या महाराज देवकीनन्दन ने भी मेरे लिए यही सन्देश भेजा था कि– 'फिर से केशों का बन्धन किया जाए'? तब तो मेरे लिए फूल–मालाएँ लाओ, मेरा जूड़ा तो बाँध दो और भगवान् पुरुषोत्तम के वचनों को पूरा करो,

न खलु सोऽलीकं संदिशति। अथवा किं मयाऽतिसंतप्तया भणितम् अचिरगतमार्यपुत्रमनुगमिष्यामि। (युधिष्ठिरमुपगम्य) महाराज! आदीपय चिताम्। त्वमपि क्षत्रधर्ममनुवर्त्तमान एव नाथस्य जीवितहरस्याऽभिमुखो भव। अथवा यत्ते रोचते।[1]

युधिष्ठिरः– युक्तमाह पांचाली। कंचुकिन्! क्रियतामियं तपस्विनी चितासंविभागेन सह्यवेदना। ममापि सज्यं धनुरुपनय। अलमथवा धनुषा।

तस्यैव देहरुधिरोक्षितपाटलांगी
मादाय संयति गदामपविध्य चापम्।
भ्रातृप्रियेण कृतमद्य यदर्जुनेन
श्रेयो ममाऽपि हि तदेव, कृतं जयेन।।21।।

(अन्वय– तस्य एव देह–रुधिर–उक्षित–पाटलांगीम् गदाम् आदाय चापम् अपविध्य भ्रातृ–प्रियेण अर्जुनेन संयति, यत् अद्य कृतम्, तत् एव मम अपि हि श्रेयः, जयेन कृतम्।।21।।)

राक्षसः– (सविषादमात्मगतम्) कथ गच्छति? भवत्वेवं तावत्। (प्रकाशम्) राजन्! रिपुजयविमुखं ते यदि चेतस्तदा यत्र तत्र वा प्राणत्यागं कुरु, वृथा तत्र गमनम्।

कंचुकी– (सरोषम्) धिङ् मुनिजनाऽसदृशं राक्षसस्य सदृशं भवता व्याहृतम्।

राक्षसः– (सभयं स्वगतम्) किं ज्ञातोऽहमनेन! (प्रकाशम्) भोः कंचुकिन्! एतद् ब्रवीमि– तयोर्गदया खलु युद्धं प्रवृत्तमर्जुनदुर्योधनयोः। जानामि च तयोर्गदायां भुजसारम्। दुःखितस्य पुनरस्य राजर्षेरपरम–निष्टश्रवणं परिहरन्नेवं ब्रवीमि।

---

[1]. बन्धेदु णाहो दुज्जोहणरुधिला द्देण हत्थेण दुस्सासणविमुक्कं मे केसहत्थम्। हंजे बुद्धिमदिए ! तव पच्चक्खं एव्व णाहेण पडिण्णादम्। अज्ज! किं संदिट्ठं दाव मे देवेण देवकीणन्दणेण– 'पुणो वि केसबन्धनं आरम्भीअदु' त्ति? ता उवणेहि मे पुप्फदामाइं। विरएहि दाव कबरीम्। करेहि भवअदो पुरिसोत्तमस्स वअणम्। ण क्खु सो अलीअं संदिसदि। अहवा किं मए संतत्ताए भणिदम्। अचिरगदं अज्जउत्तं अणुगमिस्सम्। महाराअ! आदीवअ चिदाम्। तुमं वि खत्तधम्मं अणुबट्टन्तो एव्व णाहस्स जीविदहरस्स अहिमुहो होहि। अहवा जं दे रोअदि।

क्योंकि वास्तव में वे पुरुषोत्तम असत्य सन्देश नहीं दे सकते हैं अथवा मैंने अत्यधिक व्याकुल होकर यह क्या कह दिया? अभी–अभी स्वर्ग को गए हुए, आर्यपुत्र का मैं अनुगमन करूँगी (युधिष्ठिर के पास जाकर) महाराज! चिता जला दीजिए, आप भी क्षत्रियधर्म का पालन करते हुए, स्वामी के प्राणहर्ता का सामना कीजिए या फिर आपको जो अच्छा लगे वह कीजिए।

युधिष्ठिर– पांचाली ने ठीक ही कहा है। हे कंचुकिन्! चिता तैयार करके इस बेचारी को वेदना सहन करने योग्य बनाओ और मेरा तैयार धनुष भी ले आओ अथवा धनुष को रहने दो,

उस भीमसेन के शरीर के रुधिर से लाल हुई गदा को लेकर, धनुष–बाण का त्याग करके, भ्रातृप्रिय अर्जुन ने युद्ध में जो आज किया, वही मेरे लिए भी श्रेयष्कर है, विजय से क्या लाभ?।।21।।

राक्षस– (विषादपूर्वक मन में) क्या यह (समर भूमि में) जा रहा है? अस्तु, ऐसा ही होवे (प्रकट में) हे राजन्! शत्रु की विजय के विमुख, यदि आपका मन है, तब तो जहाँ चाहे वहाँ पर प्राणों को त्याग सकते हैं। वहाँ युद्धभूमि में जाना व्यर्थ है।

कंचुकी–(क्रोधपूर्वक) धिक्कार है। आपने तो मुनिजनों के प्रतिकूल राक्षसों के समान कह दिया है।

राक्षस– (भयपूर्वक मन में) क्या इसने मुझे पहचान लिया है? (प्रकट में) अरे कंचुकिन्! मैं तो यह कह रहा हूँ कि उन दोनों अर्जुन एवं दुर्योधन में गदायुद्ध आरम्भ हो चुका है और मैं उन दोनों के भुज बल को जानता हूँ। फिर इन राजर्षि का दूसरा अनिष्ट सुनने से बचने के लिए इसप्रकार कह रहा हूँ।

युधिष्ठिरः– (बाष्पं विसृजन्) साधु, महर्षे! साधु। सुस्निग्ध-मभिहितम्।

कंचुकी– महाराज! किं नाम शोकान्धतया देवकल्पेनाऽपि देवेन प्राकृतेनेव त्यज्यते क्षात्रधर्मः?

युधिष्ठिरः– आर्य जयन्धर!

शक्ष्यामि किं परिघपीवरबाहुदण्डौ
वित्तेशशक्रपुरदर्शितवीर्यसारौ।
भीमार्जुनौ क्षितितले प्रविचेष्टमानौ
द्रष्टुं तयोश्च निधनेन रिपुं कृतार्थम्।।22।।

(अन्वय– परिघ–पीवर–बाहु–दण्डौ, वित्तेश–शक्र–पुर–दर्शित-वीर्य–सारौ। क्षितितले प्रविचेष्टमानौ भीम–अर्जुनौ द्रष्टुम् तयोः निधनेन कृतार्थम् च रिपुम् शक्ष्यामि किम्?।।22।।)

अयि पांचालराजतनये! मद्दुर्नयप्राप्तशोच्यदशे! यथा संदीप्यते पावकस्तथा सहितावेव बन्धुजनं सम्भावयावः।

द्रौपदी– आर्य! कुरु दारुसंचयम्। प्रज्वाल्यतां चिता। त्वरते मे हृदयनाथं प्रेक्षितुम्। (सर्वतोऽवलोक्य) कथं न कोऽपि नाथेन विना महाराजस्य वचनं करोति? हा नाथ भीमसेन! तदेवेदं राजकुलं त्वया विरहितं परिजनोऽपि साम्प्रतं परिहरति।[1]

राक्षसः– सदृशमिदं भरतकुलवधूनां यत्पत्युरनुमरणम्।

युधिष्ठिरः– महर्षे! न कश्चिच्छृणोति तावदावयोर्वचनम्। तदिन्धन-प्रदानेन प्रसादः क्रियताम्।

राक्षसः– मुनिजनविरुद्धमिदम्। (स्वगतम्) पूर्णो मे मनोरथः। यावदनुपलक्षितः समीपेऽहं समिन्धयामि वह्निम्। (प्रकाशम्) राजन्! न शक्नुमो वयमवस्थातुम्। (इति निष्क्रान्तः)

---

1 . अज्ज! करेहि दारुसंचअम्। पज्जलीअदु चिदा। तुवरदि मे हिअअं णाहं पेक्खिदुम्। (सर्वतोऽवलोक्य) कहं ण को वि णाहेण विणा महाराअस्स वअणं करोदि। हा णाह भीमसेण! तं एव्व एदं राअउलं तुए विरहिदं पडिअणो वि संपदं परिहरदि।

युधिष्ठिर– (अश्रु छोड़ते हुए) धन्य हो महर्षि! धन्य हो। आपने अत्यधिक प्रिय कहा।

कंचुकी– महाराज! शोक से अन्धे होने के कारण देवता के समान आप द्वारा, सामान्य व्यक्ति के समान क्षत्रियधर्म का परित्याग किया जा रहा है।

युधिष्ठिर– आर्य जयन्धर!

लोहे के मुद्गर के समान बाहुदण्ड वाले, कुबेर एवं इन्द्र की अलकापुरी और अमरावती में अपने पौरुष का प्रदर्शन करने वाले, भूतल पर तड़पते हुए, भीम और अर्जुन को देखने की एवं उन दोनों के निधन से सफल मनोरथ वाले, मुझमें क्या शत्रु को देखने की सामर्थ्य हो सकती है?।।22।।

मेरी दुर्नीति से इस शोचनीय दशा को प्राप्त हुई! अयि, पांचालराज की पुत्रि! जैसे ही अग्नि भलीप्रकार जल उठे, वैसे ही हम दोनों को अपने प्राण देकर, बन्धुजन का सम्मान करना चाहिए।

द्रौपदी– आर्य! आप तो काष्ठ संचय कीजिए और चिता जलाइए। मेरा हृदय स्वामी को देखने के लिए शीघ्रता कर रहा है। (चारों ओर देखकर) स्वामी के बिना कोई भी महाराज के वचनों को क्यों नहीं मान रहा है? हे नाथ, भीमसेन! तुमसे विरहित उसी राजकुल को यह परिजन वर्ग भी अब छोड़ रहा है।

राक्षस– पति का अनुगमन करना ही भरतवंशियों की वधुओं के अनुकूल है।

युधिष्ठिर– हे महर्षि! हम दोनों के वचनों को कोई भी नहीं सुन रहा है। इसलिए ईंधन प्रदान करके, कृपा कीजिए।

राक्षस– यह तो मुनियों के विरुद्ध है (मन में) मेरा मनोरथ पूरा हुआ, तब तक पास में ही छिपकर मैं अग्नि को प्रज्वलित कर देता हूँ। (प्रकट में) राजन्! अब हम यहाँ पर नहीं ठहर सकते हैं।

(ऐसा कहकर निकल जाता है)

युधिष्ठिरः— कृष्णे! न कश्चिदस्मद्वचनं करोति। भवतु। स्वयमेवाऽहं दारुसंचयं कृत्वा चितामादीपयामि।

द्रौपदीः— त्वरतां त्वरतां महाराजः।[1]

(नेपथ्ये कलकलः)

द्रौपदी— (सभयमाकर्ण्य) महाराज! कस्याप्येष तेजोबलदर्पितस्य विषमः शंखनिर्घोषः श्रूयते। अपरमप्यप्रियम् श्रोतुमस्ति निर्बन्धः, ततो विलम्ब्यते।[2]

युधिष्ठिरः— न खलु विलम्ब्यते। उत्तिष्ठ।

(सर्वे परिक्रामन्ति)

संदिश्य निवर्तय परिजनम्।

द्रौपदी—महाराज! अम्बायै एवं संदेक्ष्यामि— यः स बकहिडिम्ब-किर्मीरजटासुरजरासन्धविजयमल्लोऽपि ते मध्यमपुत्रो मम हताशायाः पक्षपातेन परलोकं गतः' इति।[3]

युधिष्ठिरः— भद्रे बुद्धिमतिके! उच्यतामस्मद्वचनादम्बा—

येनासि तत्र जतुवेशमनि दीप्यमाने
उत्तारिता सह सुतैर्भुजयोर्बलेन।
तस्य प्रियस्य बलिनस्तनयस्य पाप—
माख्यामि तेऽम्ब! कथयेत्कथमीदृगन्यः।।23।।

(अन्वय— अम्ब! येन भुजयोः बलेन तत्र जतु—वेशमनि दीप्यमाने सुतैः सह उत्तारिता असि,तस्य बलिनः प्रियस्य तनयस्य पापम् आख्यामि, ते अन्यः ईदृक् कथम् कथयेत् ।।23।।)

---

[1]. तुवरदु तुवरदु महाराओ।

[2]. महाराअ! कस्स वि एसो तेजो बलदप्पि दस्स विसमो संखणिग्घोसो सुणी अदि। अवरं वि अप्पिअं सुणिदुं अत्थि णिब्बन्धो, तदो विलम्बीअदु!

[3]. महाराअ! अम्बाए एव्व सन्दिसिस्सम्— जो सो बअहिडिम्बकिम्मीर जडासुर जरासन्ध विजअमल्लो वि दे मज्झमपुत्तो मम हदासाए पक्खवादेण परलोअं गदो त्ति'।

युधिष्ठिर– हे कृष्णे! कोई भी हमारे वचनों का पालन नहीं कर रहा है। ठीक है, मैं स्वयं ही काष्ठ एकत्र करके, चिता को प्रदीप्त करता हूँ।

द्रौपदी– महाराज! शीघ्रता कीजिए, शीघ्रता कीजिए।

(नेपथ्य में कोलाहल होता है)

द्रौपदी– (भयपूर्वक सुनकर) महाराज! यह किसी बलशाली और तेजस्वी व्यक्ति का शंखनाद सुनायी दे रहा है। क्या कुछ अन्य अप्रिय सुनने की इच्छा है, जो विलम्ब किया जा रहा है।

युधिष्ठिर– निश्चय ही, विलम्ब नहीं किया जा रहा है। उठो,

(सभी घूमते हैं)

युधिष्ठिर– अयि! पांचालि! माताजी और सपत्नीजन को कुछ सन्देश देकर परिजनों को लौटा दो।

द्रौपदी– महाराज! माताजी के लिए इसप्रकार का सन्देश भेजती हूँ– 'जो वह **बक, हिडिम्ब, किर्मीर, जटासुर** एवं **जरासन्ध** पर मल्लयुद्ध में विजय प्राप्त करने वाले, आपके मध्यम पुत्र थे, मन्दभागिनी मेरे अपमान का बदला लेने के कारण परलोकगामी हो गए।

युधिष्ठिर– भद्रे! बुद्धिमतिके! हमारे वचनों के अनुसार तुम माता जी से कहना कि–

हे माते! अपने भुजबल से, जिसने वहाँ लाक्षागृह में जलाए जाने पर पुत्रों के साथ तुम्हें निकाला था, बलशाली उस प्रिय पुत्र का अमंगल मैं तुम्हें बता रहा हूँ, क्योंकि कोई दूसरा व्यक्ति इसप्रकार का अमंगल भला कैसे कह सकता है?।।23।।

शब्दार्थ– कश्चित्–कोई, करोति–करता है, भवतु–ठीक है, अच्छा, कृत्वा–करके, आदीपयामि–प्रज्वलित करता हूँ, दारु–लकड़ी, काष्ठ, संचय–एकत्र, त्वरताम्– शीघ्रता कीजिए, निर्घोषः–नाद, ध्वनि, श्रोतुम्–सुनने के लिए, निर्बन्धः–आग्रह, अभिलाषा, उत्तिष्ठ–उठो, परिक्रामन्ति–चारों ओर घूमते हैं, संदिश्य–संदेश देकर, निवर्तय–लौट जाओ।

आर्य जयन्धर! त्वमपि सहदेवसकाशं गच्छ। वक्तव्यश्च तत्रभवान्माद्रेयः कनीयान्सकलकुरुकुलकमलाऽऽकरदावानलो युधिष्ठिरः परलोकमभिप्रस्थितः प्रियानुजमप्रतिकूलं सततमाशंसनीयमसंमूढं व्यसनेऽभ्युदये च भवन्तमविरलमालिंग्य शिरसि चाघ्रायेदं प्रार्थयते–

मम हि वयसा दूरेणाऽल्पः श्रुतेन समो भवान्
सहजकृपया बुद्ध्या ज्येष्ठो मनीषितया गुरुः।
शिरसि मुकुलौ पाणी कृत्वा भवन्तमतोऽर्थये
'मयि विरलतां नेयः स्नेहः पितुर्भव वारिदः'।।24।।

(अन्वय– भवान् हि मम वयसा दूरेण अल्पः श्रुतेन समः सहज–कृपया बुद्ध्या, ज्येष्ठः मनीषितया गुरुः, अतः शिरसि मुकुले पाणी कृत्वा भवन्तम् अर्थये, 'मयि स्नेहः विरलतां नेयः, पितुः वारिदः भव'।।24।।)

अपि च– बालिशचरितस्य नित्याभिमानिनोऽश्मसदृशहृदयसारस्यापि नकुलस्य ममाज्ञया वचने स्थातव्यम्। नाऽनुगन्तव्याऽस्मद् पदवी। त्वया हि वत्स!

विस्मृत्याऽस्मांश्रुतिविशदया प्रज्ञया सानुजांश्च
पिण्डान्पाण्डोरुदकपृषतानश्रुगर्भान्प्रदातुम्।
दायादानामपि तु भवने यादवानां कुले वा,
कान्तारे वा कृतवसतिना रक्षणीयं शरीरम्।।25।।

(अन्वय– श्रुति–विशदया प्रज्ञया सानुजान् अस्मान् विस्मृत्य च पाण्डोः अश्रु–गर्भान् उदक–पृषतान् पिण्डान् प्रदातुम् दायादानाम् अपि तु भवने यादवानाम् कुले वा, कान्तारे वा कृत–वसतिना शरीरम् रक्षणीयम् ।।25।।)

गच्छ जयन्धर! अस्मच्छरीरस्पृष्टिकया शापितोऽसि– त्वयाऽकालहीनमिदमवश्यमावेदनीयम्।

द्रौपदी– हला बुद्धिमतिके? भण मम वचनेन प्रियसखीं सुभद्राम् 'वत्साया उत्तरायाश्चतुर्थो मासः प्रतिपन्नस्य गर्भस्य। त्वमेनं कुल–

आर्य जयन्धर! तुम भी सहदेव के पास जाओ और कनिष्ठ माद्री पुत्र सहदेव से कहो कि सम्पूर्ण कुरुकुलरूपी समुद्र में दावानल के समान, युधिष्ठिर परलोक को प्रस्थान कर गए हैं। उन्होंने हमेशा ही अनुकूल रहने वाले, प्रिय अनुज, प्रशंसनीय, विपत्ति एवं सम्पत्ति में कभी भी विमूढ न होने वाले, आपको प्रगाढ़ आलिंगनपूर्वक और मस्तक को सूँघकर यह प्रार्थना की है।

आप वस्तुतः आयु में मुझसे अत्यन्त छोटे, ज्ञान में बराबर, स्वाभाविक दया में और बुद्धि में बड़े और विद्वत्ता में अत्यधिक बड़े हैं। इसलिए आपसे हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि मेरे प्रति किए गए स्नेह को विस्मृत कर देना एवं पिताजी को जलतर्पण करने वाले बनना।।24।।

और भी, बालकों जैसे चरित्र वाले, नित्य अभिमानी, पाषाण–हृदय नकुल को भी मेरी आज्ञा से इन्हीं वचनों पर स्थिर रहना चाहिए। उसे मेरे मार्ग का अनुसरण नहीं करना चाहिए।

और वत्स! तुम्हें–

शास्त्रों के अध्ययन से निर्मल बुद्धि द्वारा, अनुज सहित हमें भुलाकर, जल–बिन्दुओं से युक्त, अश्रुपूर्ण पिण्डों को पिता पाण्डु को देने के लिए, दायादों के घर में, यादवों के कुल में अथवा वन में कहीं भी तुम्हें अपने शरीर की रक्षा करनी चाहिए।।25।।

जयन्धर! जाओ। तुम्हें मेरे शरीर की सौगन्ध है, तुम्हें अविलम्ब यह बात अवश्य कहनी है।

द्रौपदी– सखी, बुद्धिमतिके! मेरे कथनानुसार प्रियसखी सुभद्रा को कहना कि–'आज वधू उत्तरा के गर्भ को चार माह हो गए हैं, इसलिए तुम कुल का नाम बनाए रखने वाले, इसकी सावधान होकर

शब्दार्थ– सकाशम्–साथ, अभ्युदये–उन्नति होने पर, आलिंग्य–आलिंगन करके, आघ्राय–सूँघकर, कृत्वा–करके, विस्मृत्य–भूलकर, प्रदातुम्–देने के लिए, रक्षणीयम्–रक्षा करनी चाहिए, गच्छ–जाओ, शापितः–सौगन्ध, शाप दिया हुआ, वा–अथवा, कान्तारे–वन में।

प्रतिष्ठापकं सावधानं रक्षेति। सर्वथा नाभिकुले तां निक्षिपसि। कदाऽपीतो लोकादगतस्य श्वशुरकुलस्याऽस्माकं च सलिलबिन्दुद भविष्यतीति।[1]

युधिष्ठिरः– (सास्रम्) भोः कष्टम्!

शाखारोधस्थगितवसुधामण्डले मण्डिताशे
पीनस्कन्धे सुसदृशमहामूलपर्यन्तबन्धे।
दग्धे दैवात्सुमहति तरौ, तस्य सूक्ष्मांकुरेऽस्मिन्
आशाबन्धं कमपि कुरुते छाययाऽर्थी जनोऽयम्।।26।।

(अन्वय– शाखा–रोध–स्थगित–वसुधा–मण्डले मण्डित–आशे पीन–स्कन्धे सुसदृश–महामूल–पर्यन्त–बन्धे सुमहति तरौ दैवात् दग्धे अयम् छायया अर्थी जनः तस्य अस्मिन् सूक्ष्मांकुरे कम् अपि आशा-बन्धम् कुरुते ।।26।।)

साधु। इदानीमध्यवसितं करणीयम्। (कंचुकिनमवलोक्य) आर्य जयन्धर! स्वशरीरेण शापितोऽसि तदाऽपि न गम्यते?

कंचुकी– (साक्रन्दम्) हा देव पाण्डो! तव सुतानामजातशत्रुभीमार्जुननकुलसहदेवानामयं दारुणः परिणामः?

हा देवि कुन्ति! भोजराजभवनपताके!

भ्रातुस्ते तनयेन शौरिगुरुणा श्यालेन गाण्डीविन–
स्तस्यैवाऽखिलधार्तराष्ट्रनलिनीव्यालोलने दन्तिनः।
आचार्येण वृकोदरस्य हलिनोन्मत्तेन मत्तेन वा
दग्धं त्वत्सुतकाननं ननु मही यस्याश्रयाच्छीतला।।27।।

(अन्वय– ते भ्रातुः तनयेन शौरि–गुरुणा गाण्डीविनः श्यालेन तस्य एव अखिल–धार्तराष्ट्र–नलिनी–व्यालोलने दन्तिनः, वृकोदरस्य आचार्येण हलिना उन्मत्तेन मत्तेन वा त्वत् सुत–काननम् दग्धम् यस्य आश्रयात् शीतला मही ननु।।27।।)

---

[1]. हला बुद्धिमदिए! भणाहि मह वअणेण पिअसहीं सुभद्दाम्– 'अज्ज वच्छाए उत्तराए चउत्थो मासो पडिवण्णस्स गब्भस्स। तुमं एव्व कुलपडिट्ठाअवं सावहाणं रक्खत्ति। सव्वथा णावि उले तं णिक्खिवसि। कदा वि इदो लोआदो गदस्स ससुरउलस्स अम्हाणं अ सलिलबिन्दुदो भविस्सदि त्ति'।

रक्षा करना। निश्चय ही, इसे तुम अपने पिता के घर पर रख देना, क्योंकि सम्भव है कि यही इस लोक से प्रस्थान किए पाण्डुवंश का तथा इन सभी को जलदान करने वाला बने।

युधिष्ठिर– (अश्रुपूर्वक) अरे! कष्ट है!

शाखाओं के विस्तार से सम्पूर्ण भूमण्डल को आच्छादित करने वाले, दिशाओं को सुशोभित करने वाले, मोटे तने से युक्त, जड़ों तक बाँधे गए, विशाल थाँवले वाले, विशाल वृक्ष के दुर्भाग्यवश नष्ट होने पर, उसके सूक्ष्म अंकुर पर, छाया चाहने वाला, यह कोई व्यक्ति विचित्र प्रकार की आशा बाँधे हुए है।।26।।

ठीक है, अब तो निश्चय को पूरा करना चाहिए। (कंचुकी को देखकर) आर्य जयन्धर! मैंने तुम्हें अपने शरीर की सौंगन्ध दी है, फिर भी तुम नहीं जा रहे हो।

कंचुकी– (क्रन्दन करते हुए) हा देव, पाण्डो! आपके युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव इन पाँचों पुत्रों का क्या यही दारुण परिणाम है?

हाय! भोजराज के भवन की पताका के समान! देवि! कुन्ति!

तुम्हारे भाई, वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण के अग्रज, गाण्डीवी अर्जुन के साले, बलराम ने, उसी सम्पूर्ण धार्तराष्ट्र कुलरूपी कमलिनी को मथ डालने में हाथी के समान, वृकोदर के उन्मत्त अथवा मद से युक्त होकर, तुम्हारे पुत्ररूपी कानन को भस्म कर दिया है, जिस भीम के आश्रय से सम्पूर्ण पृथ्वी निश्चय ही, शान्त बनी हुई थी।।27।।

शब्दार्थ– लोकात्– संसार से, स्थगित–ढ़क देना, दग्धे–जलने पर, आशा-बन्धम्–आशा का बन्धन, इदानीम्–इस समय, अध्यवसितम्–निश्चय को, अवलोक्य–देखकर, तदापि–फिर भी, गम्यते–जाया जा रहा है, अजात–अनुत्पन्न, दारुणः–कठोर, श्यालेन–साले द्वारा, दन्तिनः–हाथी, हलिना–बलराम द्वारा, मही–पृथ्वी, ननु–निश्चय ही, शीतला–शान्त, उन्मत्तेन–उन्मत्त द्वारा, नलिनी–कमलिनी, व्यालोलने–मथ डालने पर।

(इति रुदन्निष्क्रान्तः)

युधिष्ठिरः— जयन्धर, जयन्धर!

(प्रविश्य)

कंचुकी— आज्ञापयतु देवः।

युधिष्ठिरः— वक्तव्यमिति ब्रवीमि, न पुनरेतावन्ति भागधेयानि नः यदि कदाचिद्विजयी स्याद्वत्सोऽर्जुनस्तद्वक्तव्योऽस्मद्वचनाद्भवता।

हली हेतुः सत्यं भवति मम वत्सस्य निधने,
तथाऽप्येष भ्राता सहजसुहृदस्ते मधुरिपोः।
अतः क्रोधः कार्यो न खलु मयि चेत्प्रेम भवतो
वनं गच्छेर्मा गाः पुनरकरुणां क्षात्रपदवीम्। ।28।।

(अन्वय— मम वत्सस्य निधने हली सत्यम् हेतुः भवति, तथा अपि एषः ते सहज—सुहृदः मधु—रिपोः भ्राता, अतः क्रोधः न खलु कार्यः, चेत् भवतः मयि प्रेम, वनम् गच्छेः पुनः अकरुणाम् क्षात्र—पदवीम् मा गाः ।।28।।)

कंचुकी— यदाज्ञापयति देवः। (इति निष्क्रान्तः)

युधिष्ठिरः— (अग्निं दृष्ट्वा, सहर्षम्) कृष्णे! ननूद्धतशिखाहस्ताऽऽहूताऽस्मद्विधव्यसनिजनः समिद्धो भगवान्हुताशनः। तत्रेन्धनीकरोम्यात्मानम्।

द्रौपदी— प्रसीदतु प्रसीदतु महाराजोऽनेनापश्चिमेन प्रणयेन। अहं तावदग्रतः प्रविशामि।[1]

युधिष्ठिरः— यद्येवं सहितावेवाभ्युदयमुपभोक्ष्यावहे।

चेटी— हा भगवन्तो लोकपालाः! परित्रायध्वं परित्रायध्वम्। एष खलु सोमवंशराजर्षी राजसूयसन्तर्पितहव्यवाहः, खाण्डवसंतर्पितहुतवहस्य किरीटिनो ज्येष्ठो भ्राता, सुगृहीतनामधेयो महाराजयुधिष्ठिरः। एषापि पांचालराजतनया देवी वेदिमध्यसम्भवा याज्ञसेनी। द्वावपि शरीरेण

---

[1]. प्पसीददु प्पसीददु महाराओ— इमिणा अपच्छिमेण पणएण। अहं दाव अग्गदो प्पविसामि।

(इसप्रकार कहकर रोता हुआ निकल जाता है)

युधिष्ठिर– जयन्धर! जयन्धर! (प्रवेश करके)

कंचुकी– महाराज! आज्ञा प्रदान कीजिए।

युधिष्ठिर– कहने योग्य बात को तुम्हें कह रहा हूँ। सर्वप्रथम तो हमारे इतने बड़े भाग्य नहीं हैं, कि हम विजयी हो जाएँ, किन्तु यदि कदाचित् वत्स अर्जुन जीत भी जाए, तो आप हमारे वचनों से उसे कहना कि–

मेरे अनुज भीम के निधन में, हल को धारण करने वाले बलराम वास्तव में कारण हैं, किन्तु फिर भी ये तुम्हारे स्वाभाविक मित्र मधुरिपु श्रीकृष्ण के भाई हैं। इसलिए तुम्हें उन पर क्रोध नहीं करना चाहिए और यदि तुम्हें मुझपर प्रेम है, तो वन में भले ही चले जाना, किन्तु बदला लेने वाले, निष्ठुर इस क्षत्रिय मार्ग पर मत जाना।।28।।

कंचुकी– जैसी महाराज की आज्ञा।

(यह कहकर निकल जाता है)

युधिष्ठिर– (अग्नि को देखकर, हर्षपूर्वक) हे कृष्णे! ये भगवान् अग्निदेव, ऊपर को उठती हुई शिखारूपी अपने हाथों को उठाकर, हमारे जैसे दुःखियों को बुला रहे हैं। भगवान् अग्निदेव वृद्धि को प्राप्त हो गए हैं। तब मैं स्वयं को इसमें जला डालता हूँ।

द्रौपदी– प्रसन्न होइए, महाराज! प्रसन्न होइए। इस प्रथम प्रेम की अभिलाषा से बस कीजिए, क्योंकि इसमें तो मैं ही सर्वप्रथम प्रवेश करूँगी।

युधिष्ठिर– यदि ऐसा है, तो हम दोनों एक साथ ही इस सुख का उपभोग करेंगे।

चेटी– हाय! भगवान् लोकपाल! बचाइए, बचाइए। राजसूय यज्ञ में अग्नि को प्रसन्न किए हुए एवं खाण्डव वन में अग्निदेव को प्रसन्न करने वाले, किरीटी अर्जुन के बड़े भाई, स्वनाम धन्य, ये सोमवंशी राजर्षि युधिष्ठिर हैं और ये पांचाल राजपुत्री, यज्ञवेदी से उत्पन्न हुई याज्ञसेनी देवी द्रौपदी हैं, ये दोनों ही निष्ठुर अग्नि में प्रवेश करने तथा

निष्करुणज्वलनस्य प्रवेशेनेन्धनीभवतः। तत्परित्रायध्वमार्याः! परित्राय-ध्वम्। कथं न कोऽपि परित्रायते? (तयोरग्रतः पतित्वा) किं व्यवसितं देव्या देवेन च?[1]

युधिष्ठिरः– अयि बुद्धिमतिके! यन्नाथेन प्रियानुजेन विना सदृशं तत्। उत्तिष्ठोत्तिष्ठ, भद्रे! उदकमुपानय।

चेटी–यदेव आज्ञापयति। (इति निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य च) जयतु जयतु महाराजः।[2]

युधिष्ठिरः– पांचालि! त्वमपि तावत्स्वपक्षपातिनो वृकोदरस्य प्रियस्यार्जुनस्य चोदकक्रियां कुरु।

द्रौपदी– महाराज एव करोतु। अहं पुनर्ज्वलनं प्रवेक्ष्यामि।[3]

युधिष्ठिरः– अनतिक्रमणीयं लोकवृत्तम्। भद्रे! उदकमुपानय।

(चेटी तथा करोति)

युधिष्ठिरः– (पादौ प्रक्षाल्योपस्पृश्य च) एष तावत्सलिलां-जलिर्गांगेयाय भीष्माय गुरवे, अयं प्रपितामहाय शान्तनवे। अयमपि पितामहाय विचित्रवीर्याय। (सास्रम्) तातस्याधुनाऽवसरः। अयं तावत्स्वर्गस्थिताय सुगृहीतनाम्ने पित्रे पाण्डवे।

अद्यप्रभृति वारीदमस्मत्तो दुर्लभं पुनः।
तात! माद्र्याऽम्बया सार्धं मया दत्तं निपीयताम्।।29।।

(**अन्वय–** तात! अद्य प्रभृति अस्मत्तः पुनः दुर्लभम् इदम् वारि, मया दत्तम् (इदम्) माद्र्या अम्बया सार्धम् निपीयताम्।।29।।)

---

1. हा भअवन्तो लोअवाला! परित्ताअह परित्ताअह। एसो क्खु सोमवंसराएसी राअसूअसंतप्पिदव्ववाहो, खण्डववसंतप्पिदहुदवहस्स किरीडिणो जेट्ठो भादा, सुग्गहीद णामहेओ महाराअ जुहिट्ठिरो। एसा वि पांचालराअतणआ देवी वेदिमज्ज सम्भव जण्णसेणी। दुवे वि सरीरेण णिक्करुणजलणस्स प्पवेसेण इन्धणी होन्ति। ता परित्ताअह अज्जा! परित्ताअह। कधं ण को वि परित्ताअदि। किं ववसिदं देवीए देवेन अ?

2. जं देवो आणवेदि। जेदु जेदु महाराओ।

3. महाराओ एव्व करेदु। अहं उण जलणं पविसिस्सम्।

स्वयं को भस्म करने जा रहे हैं। इसलिए आप इन्हें बचा लीजिए। बचा लीजिए। क्या कोई भी रक्षा नहीं कर रहा है। (उन दोनों के आगे गिरकर) महारानी और महाराज, यह आपने क्या करने का निश्चय कर लिया है?

युधिष्ठिर– अयि बुद्धिमतिके! जो स्वामी के बिना द्रौपदी को तथा प्रिय अनुज के बिना मुझे करना चाहिए, उसी के समान किया जा रहा है। उठो, उठो भद्रे! जल ले आओ।

चेटी– जैसी महाराज की आज्ञा, जय हो, महाराज की जय हो।

युधिष्ठिर– हे पांचालि! तब तक तुम भी अपने पक्षपाती वृकोदर तथा प्रिय अर्जुन की उदकक्रिया सम्पन्न करो।

द्रौपदी– पहले महाराज ही करें, क्योंकि मैं अग्नि में बाद में प्रवेश करूँगी।

युधिष्ठिर– लोकाचार का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। भद्रे! जल ले आओ।

(चेटी वैसा करती है)

युधिष्ठिर– (पैर धोकर और आचमन करके) यह अंजलि गंगापुत्र भीष्म को और यह वृद्ध प्रपितामह शान्तनु के लिए है। यह पितामह विचित्रवीर्य के लिए दे रहा हूँ (अश्रुपूर्वक) अब पिताजी का अवसर है और यह तो स्वर्ग में स्थित स्वनामधन्य पिता पाण्डु के लिए है।

हे तात! आज से लेकर, आपको यह जलांजलि मिलना दुर्लभ हो जाएगा। इसलिए मेरे द्वारा दिया गया यह जल, आप माता माद्री के साथ स्वर्ग में प्राप्त कीजिए।।29।।

शब्दार्थ– परित्रायध्वम्–रक्षा कीजिए, कथम्–क्यों, पतित्वा–गिरकर, व्यवसितम्– निश्चय किया, अयि–अरी, उपानय–लाओ, निष्क्रम्य–निकलकर, प्रविश्य–प्रवेश करके, तावत्–तो, उदकक्रियाम्–जलोदकक्रिया को, कुरु–करो, प्रक्षाल्य–धोकर, उपस्पृश्य–स्पर्श करके, लोकवृत्तम्–लोकाचार को, अनतिक्रमणीयम्–अतिक्रमण करने योग्य नहीं है, गांगेयाय–गंगा के पुत्र के लिए, सास्रम्–अश्रुपूर्वक, अस्मत्तः–हमसे, वारि–जल, निपीयताम्–पीजिए।

अपि च

एतज्जलं जलजनीलविलोचनाय
भीमाय भोस्तव मामाऽप्यविभक्तमस्तु।
एकं क्षणं विरम वत्स! पिपासितोऽपि
पातुं त्वया सह जवादयमागतोऽस्मि।।30।।

(अन्वय– एतत् जलम् जलज–नील–विलोचनाय भीमाय (ददामि), भोः! तव माम् अपि अविभक्तम् अस्तु, पिपासितः अपि एकम् क्षणम् विरम, वत्स! त्वया सह पातुम् अयम् (अहम्) जवात् आगतः अस्मि।।30।।)

अथवा सुक्षत्रियाणां गतिमुपगतं वत्समहं मृतोऽप्यकृती द्रष्टुम्। वत्स भीमसेन!

मया पीतं पीतं तदनु भवताऽम्बास्तनयुगं ,
मदुच्छिष्टैर्वृत्तिं जनयसि रसैर्वत्सलतया।
वितानेष्वप्येवं तव मम च सोमे विधिरभू–
न्निवापाऽम्भः पूर्वं पिबसि कथमेवं त्वमधुना ।।31।।

(अन्वय– अम्बा–स्तन–युगम् मया पीतम्, तत् अनु भवता पीतम्, वत्सलतया मत्–उच्छिष्टैः रसैः वृत्तिम् जनयसि, वितानेषु अपि सोमे तव मम च एवम् विधिः अभूत्, अधुना त्वम् एवम् कथम् निवाप–अम्भः पूर्वम् पिबसि?।।31।।)

कृष्णे! त्वमपि देहि सलिलांजलिम्।

द्रौपदी– हंजे! बुद्धिमतिके! उपनय मे सलिलम्।[1]

(चेटी तथा करोति)

द्रौपदी– (उपसृत्य, जलांजलिं पूरयित्वा) **महाराज! कस्य सलिलं ददामि?**[2]

---

[1]. हंजे बुद्धिमदिए! उवणेहि मे सलिलम्।

[2]. महाराअ! कस्स सलिलं देम्हि ?

और भी,

और यह जलांजलि नील कमल के समान नेत्रों वाले भीमसेन के लिए दे रहा हूँ। हे भीम! तुम्हें तथा मुझे यह एक साथ ही प्राप्त होवे। इसलिए प्यासे हुए भी तुम क्षणभर के लिए प्रतीक्षा करो। हे वत्स! यह मैं तुम्हारे साथ जलांजलि लेने के लिए शीघ्र ही वेगपूर्वक आ रहा हूँ। ।30।।

अथवा क्षत्रियों की उत्तम गति को प्राप्त हुए भीमसेन को मैं, अग्नि में जलने के कारण नहीं देख सकूँगा। वत्स! भीमसेन!

माताजी के स्तनयुगल को मेरे द्वारा पी लिए जाने के बाद ही, तुम पिया करते थे। इसीप्रकार मेरे खाने के बाद ही, बचे हुए दूध आदि रसों से तुम, वात्सल्यभाव से अपना निर्वाह किया करते थे। यज्ञों में भी सोमरस पान करने में तुम्हारी एवं हमारी यही परम्परा रही थी। फिर अब तुम इस निवापांजलि को पहले कैसे पीने लगे हो?।।31।।

हे कृष्णे! तुम भी जलांजलि दे दो।

द्रौपदी– हंजे बुद्धिमतिके! मेरे लिए भी जल ले आ।

(चेटी वैसा करती है)

द्रौपदी– (पास जाकर, जलांजलि भरकर) महाराज! किसे जल दूँ?

शब्दार्थ– जलज–कमल, पिपासितः–प्यासा, विरम–रुक जाओ, पातुम्–पीने के लिए, आगतः–आ गया, अस्मि–हूँ, द्रष्टुम्–देखने के लिए, पीतम्–पी लिया, वत्सलतया–स्नेह के कारण, जवात्–वेग से, भवता–आपके द्वारा, उच्छिष्ट–जूठा, वितानेषु–यज्ञों में, पूर्वम्–पहले, पिबसि–पीते हो, देहि–दो, सलिल–जल, उपनय–लाओ, कस्य–किसका, ददामि–देता हूँ, मया–मेरे द्वारा, जनयसि–उत्पन्न करते हो, वृत्तिम्–जीवन व्यापार को, अभूत्–हुआ, अधुना–अब, निवापांजलि–श्राद्ध विषयक अंजलि।

युधिष्ठिर–

तस्मै देहि जलं कृष्णे! सहसा गच्छते दिवम्।
अम्बाऽपि येन गान्धरीरुदितेन सखीकृता।।32।।

(अन्वय– कृष्णे! सहसा दिवम् गच्छते, तस्मै जलम् देहि, येन अम्बा अपि गान्धरी–रुदितेन सखी–कृता।।32।।)

द्रौपदी– नाथ भीमसेन! परिजनोपनीतमुदकं स्वर्गगतस्य ते पादोदकं भवतु।[1]

युधिष्ठिरः– फाल्गुनाग्रज!

असमाप्तप्रतिज्ञेऽपि याते त्वयि महाभुजे।
मुक्तकेश्यैव दत्तस्ते प्रियया सलिलांजलिः।।33।।

(अन्वय– असमाप्त–प्रतिज्ञे अपि महाभुजे त्वयि याते, मुक्त–केश्या एव ते प्रियया सलिल–अंजलिः दत्तः।।33।।)

द्रौपदी– उत्तिष्ठ महाराज! दूरं गच्छति ते भ्राता।[2]

युधिष्ठिरः– (दक्षिणाऽक्षिस्पन्दनं सूचयित्वा) पांचालि! निमित्तानि मे कथयन्ति– सम्भावयिष्यसि वृकोदरमिति। भवतु, शीघ्रं दहनमुपसर्पावः।

द्रौपदी– महाराज! सुनिमित्तं भवतु।[3]

(नेपथ्ये कलकलः)

(प्रविश्य, सम्भ्रान्तः)

कंचुकी– परित्रायतां परित्रायतां महाराजः। एष खलु दुरात्मा कौरवापसदः क्षतजाऽभिषेकपाटलिताम्बरशरीरः समुच्छ्रितदिग्धभीषण-गदाऽशनिरुद्यतकालदण्ड इव कृतान्तोऽत्रभवतीं पांचालराजतनया-मितस्ततः परिमार्गमाणा इत एवाऽभिवर्तते।

युधिष्ठिरः– हा दैव! तेन निर्णयो जातः। हा गाण्डीवधन्वन्!

---

[1]. णाह भीमसेण! परिअणोवणीदं उदअं सग्गगदस्स दे पादोदअं भोदु।

[2]. उट्ठेहि महाराअ! दूरं गच्छदि दे भादा।

[3]. महाराअ! सुणिमित्तं भोदु।

युधिष्ठिर– हे कृष्णे! अकस्मात् ही स्वर्ग गए, उन भीमसेन को जल प्रदान करो, जिन्होंने माता कुन्ती को भी गान्धारी के रोदन के समान ही, रोने वाला बना दिया है।।32।।

द्रौपदी– स्वामी भीमसेन! परिजन द्वारा लाया गया यह जल, तुम्हारा पादोदक होवे।

युधिष्ठिर– हे फाल्गुन अर्जुन के अग्रज!

प्रतिज्ञा पूरी न कर पाने पर भी, महाबलशाली तुम्हारे स्वर्गवासी होने पर, खुले हुए केशों वाली तुम्हारी प्रिया द्रौपदी द्वारा ही जलांजलि दी जा रही है।।33।।

द्रौपदी– महाराज! उठिए, तुम्हारा भाई दूर जा रहा है।

युधिष्ठिर– (दाहिनी आँख का स्पन्दन सूचित करके) पांचालि! शकुन मुझे बता रहे हैं कि तुम्हारा वृकोदर से मिलना होगा। ठीक है, हम दोनों शीघ्र ही अग्नि के पास में चलते हैं।

द्रौपदी– महाराज! शुभ शकुन होवे।

(निपथ्य में कोलाहल होता है)

(प्रवेश करके घबराया हुआ)

कंचुकी– महाराज! रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए। निश्चय ही, यह दुरात्मा नीच कौरव, रक्त से उत्पन्न होने वाले, अभिषेक से युक्त, शरीर पर लाल वस्त्र को धारण किए हुए, कालदण्डरूपी भयंकर गदावज्र को उठाए हुए, यमराज के समान, देवी पांचालराज पुत्री को ढूँढ़ता हुआ, इधर ही आ रहा है।

युधिष्ठिर– हाय, दैव! तब तो निर्णय हो गया है। हा गाण्डीव–धारिन्!

शब्दार्थ– देहि–दो, नाथ–स्वामी, उपनीतम्–लाया गया, उदकम्–जल को, पादोदकम्–पैरों का जल, भवतु–होवे, फाल्गुन–अर्जुन, अग्रज–बड़ा भाई, याते–जाने पर, दत्तः–दिया गया, उत्तिष्ठ–उठो, भ्राता–भाई, ते–तुम्हारा, अक्षि–नेत्र, स्पन्दनम्–फड़कना, सूचयित्वा–सूचित करके, दहनम्–अग्नि को, उपसर्पावः–पास चलते हैं।

(इति मुह्यति)

द्रौपदी– हा आर्यपुत्र! हा मम स्वयंवरस्वयंग्राहदुर्ललित! धनंजय! प्रियं भ्रातरमनुगतोऽसि न पुनर्महाराजमिमं दासजनं च।[1]

(इति मोहमुपगता)

युधिष्ठिरः– हा वत्स सव्यसाचिन्! हा त्रिलोचनांगनिष्पेषमल्ल! हा निवातकवचोद्धरणनिष्कण्टकीकृताऽमरलोक! हा बदर्याश्रममुनिद्वितीय-तापस! हा द्रोणाचार्यप्रियशिष्य! हा अस्त्रशिक्षाबलपरितोषितगांगेय! हा द्रौपदी– (सबाष्पम्) राधेयकुलकमलिनीप्रालेयवर्ष! हा गन्धर्वनिर्वासित-दुर्योधन! हा पाण्डव– कुलकमलिनीराजहंस!

तां वत्सलामनभिवाद्य विनीतमम्बां
गाढं च मामनुपगृह्य मयाऽप्यनुक्तः।
एतां स्वयं वरवधूं दयितामपृष्ट्वा
दीर्घप्रवासमयि तात! कथं गतोऽसि?।।34।।

(अन्वय– अयि तात! वत्सलाम् ताम् अम्बाम् अनभिवाद्य, विनीतम् च माम् गाढम् अनुपगृह्य मया अपि अनुक्तः, एताम् स्वयंवर–वधूम् दयिताम् अपृष्ट्वा दीर्घ–प्रवासम् कथम् गतः असि?।।34।।)

(इति मोहमुपगतः)

कंचुकी– (चेटीं प्रति) इदानीं भोः कष्टम्। एष कौरवाधमो यथेष्टमित एवाभिवर्तते। सर्वथाऽयं प्रवेशकालः। चितासमीपमुपनयाम्य-त्रभवतीं पांचालराजतनयाम्। अहमप्येवमेवाऽनुगच्छामि। भद्रे! त्वमपि देव्या भ्रातरं धृष्टद्युम्नं नकुलसहदेवौ वाऽवाप्नुहि। अथवा एवमवस्थिते महाराजेऽस्तमितयोर्भीमार्जुनयोः कुतोऽत्र परित्राणाऽऽशा?

चेटी– परित्रायध्वं परित्रायध्वयमार्याः।[2]

---

1. हा अज्जउत्त! हा मम सअम्बरसअंगाहदुल्ललिद! धणंजअ! पिअं भादुअं अणु गदोसि, णा उण महाराअं इमं दासजणं अ।

2. परित्ताअह परित्ताअह अज्जा!

(ऐसा कहकर मोह को प्राप्त हो जाते हैं)

द्रौपदी– हा आर्यपुत्र! हाय, मेरे स्वयंवर में स्वयं ही मुझ दुर्लभ्या को ग्रहण करने वाले! धनंजय! आपने भी अपने प्रिय भाई का अनुगमन किया है, किन्तु महाराज और इस दासजन की ओर ध्यान तक नहीं दिया।

(यह कहकर मूर्च्छित हो जाती है)

युधिष्ठिर– हाय, वत्स, सव्यसाचिन्! हाय! त्रिनेत्र भगवान् शिव के अंगों का मर्दन करने वाले योद्धा, हाय निवात और कवच नामक राक्षसों का संहार करके, स्वर्गलोक को निष्कण्टक करने वाले! हाय! बदरी आश्रम के निवासी मुनिजनों में द्वितीय तपस्वी! हाय, द्रोणाचार्य के प्रिय शिष्य, हाय! अस्त्रों के शिक्षाबल से गंगापुत्र भीष्म को सन्तुष्ट करने वाले, हाय! कर्णवंशरूपी कमलिनी पर पड़ने वाले पाले के समान उसका विनाश करने वाले, हाय, गन्धर्व चित्ररथ से दुर्योधन को छुड़ाने वाले! हाय, पाण्डववंशरूपी कमलिनी वन में राजहंस के समान!

हा तात! सुतवत्सला दुखिया माँ को तथा विनम्र मुझे प्रणाम किए बिना और प्रगाढ़ आलिंगन किए बिना, मुझे बिना कहे, इस स्वयंवर वधू प्रिया द्रौपदी से पूछे बिना ही, तुम इस दीर्घ प्रवास पर भला क्यों चले गए हो?।।34।।

(यह कहकर मोह को प्राप्त हो जाता है)

कंचुकी– (चेटी के प्रति) अरे! अब तो बड़ा कष्ट है। यह कौरवाधम इच्छानुसार इधर ही आ रहा है। इसलिए यह सर्वथा अग्नि में प्रवेश का समय है। अतः मैं पांचालराज की आदरणीया पुत्री द्रौपदी को चिता के पास ले जाता हूँ और मैं भी इसी का अनुसरण करता हूँ। भद्रे! बुद्धिमतिके! तुम भी महारानी के भ्राता धृष्टद्युम्न अथवा नकुल–सहदेव के पास चली जाओ अथवा महाराज के इसप्रकार अवस्थित होने पर और भीम एवं अर्जुन के न रहने पर, यहाँ पर परित्राण की आशा भला कैसे की जा सकती है?

चेटी– आर्य! बचाइए, बचाइए।

(नेपथ्ये कलकलानन्तरम्)

भोः भोः समन्तपंचकसंचारिणः! 'क्षतजास्वादमत्तयक्षराक्षसपिशाच-भूतवेतालकंकगृध्रजम्बुकोलूकवायसभूयिष्ठा अवशिष्टविरलाश्च योधाः! कृतमस्मद्दर्शनत्रासेन। कथयत भवन्तः कस्मिन्नदेशे याज्ञसेनी सन्निहितेति? कथयामि लक्षणां तस्याः–

ऊरूकरेण परिघट्टयतः सलीलं
दुर्योधनस्य पुरतोऽपहृताऽम्बरा या
दुःशासनस्य करकर्षणभिन्नमौलिः
सा द्रौपदी कथयत क्व पुनः प्रदेशे?।।34।।

(अन्वय– सलीलम् करेण ऊरू परिघट्टयतः, दुर्योधनस्य पुरतः या अपहृता अम्बरा, सा द्रौपदी दुःशासनस्य कर–कर्षण–भिन्न–मौलिः, पुनः क्व प्रदेशे कथयतः?।।34।।)

कंचुकी– हा देवि यज्ञवेदिसंभवे! परिभूयसे सम्प्रत्यनाथा कुरु-कुलकलंकेन।

युधिष्ठिरः– (सहसोत्थाय) पांचालि! न भेतव्यं न भेतव्यम्। (ससंभ्रमम्) कः कोऽत्र भोः? सनिषंगं मे धनरुपनय। दुरात्मन्दुर्योधन-हतक! आगच्छागच्छ। अपनयाभि ते गदाकौशलसम्भृतं भुजदर्पं शिलीमुखासारेण। अन्यच्च रे कुरुकुलांगार!

प्रियमनुजमपश्यंस्तं जरासन्धशत्रुं
कुपितहर किरातद्वेषिणं तं च वत्सम्।
त्वमिव कठिनचेताः प्राणितुं नाऽस्मि शक्तो,
ननु पुनरपहर्तुं बाणवर्षैस्तवाऽसून्।।35।।

(अन्वय– प्रियम् तम् अनुजम् जरासन्ध–शत्रुम्, तम् च वत्सम्, कुपित–हर–किरात–द्वेषिणम् अपश्यन्, कठिन–चेताः त्वम् इव प्राणितुम् शक्तः न अस्मि, बाण–वर्षैः तव असून् अपहर्तुम् पुनः (शक्तः) ननु।।35।।)

(ततः प्रविशति गदापाणिः क्षतजसिक्तसर्वांगो भीमसेनः)

(नेपथ्य में कोलाहल के बाद)

अरे! अरे! समन्तपंचक क्षेत्र में घूमने वालो! रुधिर पीने से मत्त बने हुए यक्ष, पिशाच, भूत, वेताल, कंक, गृद्ध, शृगाल और वायस आदिकों! युद्ध में मरने से बचे हुए थोड़े से योद्धाओं! हमें देखने से भय मत करो। आप सभी तो हमें बताइए कि याज्ञसेनी किस स्थान पर स्थित है? मैं तुम्हें उसका लक्षण बता रहा हूँ–

हावभाव के साथ, हाथ से अपनी दोनों जँघाओं को ठोकते हुए, दुर्योधन के सामने, दुःशासन द्वारा जिसके वस्त्र खींचे गए थे, दुःशासन के हाथों खींचे जाने से, जिसकी चोटी खुल गयी थी, ऐसी वह द्रौपदी बताओ किस स्थान पर है?।।35।।

कंचुकी– हाय यज्ञवेदी में उत्पन्न देवि! इस समय तुम अनाथ होकर, कुरुकुल के कलंक स्वरूप दुर्योधन द्वारा अपमानित की जा रही हो।

युधिष्ठिर– (सहसा उठकर) हे पांचालि! मत डरो, मत डरो। (आवेशपूर्वक) अरे! यहाँ कोई है? तरकस के साथ मेरा धनुष लाओ। दुरात्मन्! नीच दुर्योधन! आजा, आजा। गदा के कौशल से बढ़े हुए तेरी भुजाओं के अभिमान को, बाणों की वर्षा से मैं अभी नष्ट किए देता हूँ और भी अरे! कुरुकुल के अंगारस्वरूप!

जिस प्रसिद्ध जरासन्ध के शत्रु, अनुज भीम को तथा क्रुद्ध हुए किरात वेषधारी भगवान् शिव के शत्रु वत्स अर्जुन को न देखकर, मैं कठोर हृदय वाले, तुम्हारे समान यद्यपि जीवित नहीं रह सकता हूँ तथापि बाणों की वर्षा से तुम्हारे प्राणों को तो नष्ट करने में मैं निश्चय ही समर्थ हूँ।।36।।

(उसके बाद गदा हाथ में लिए हुए रक्त से आप्लावित सभी अंगों वाला भीमसेन प्रवेश करता है)

शब्दार्थ– सलीलम्–लीलापूर्वक, हावभाव के साथ, परिघट्टयतः–ठोकते हुए, पुरतः–सामने, अपहृता–अपहरण की गयी, क्व–कहाँ, अपनयामि–दूर करता हूँ।

भीमसेनः— (उद्धतं परिक्रामन्) भो भोः समन्तपंचकसंचारिणः सैनिकाः! कोऽयमावेगः?

नाहं रक्षो न भूतो रिपुरुधिर जलप्लाविताङ्गः प्रकामं
निस्तीर्णोरुप्रतिज्ञाजलनिधिगहनः क्रोधनः क्षत्रियोऽस्मि
भो भो राजन्यवीराः! समरशिखिशिखादग्धशेषाः!कृतं
वस्त्रासेनानेन लीनैर्हतकरितुरगान्तर्हितैरास्यते यत्।।37

(अन्वय— अहम् न रक्षः, न भूतः, प्रकामम् रिपु–रुधिर–जल–प्लावित–अंगः निस्तीर्ण–उरु–प्रतिज्ञा–जल–निधि–गहनः, क्रोधनः क्षत्रियः अस्मि, भो भो राजन्य–वीराः! समर–शिखि–शिखा–दग्ध–शेषाः! कृतं अनेन त्रासेन यत् हत–करि–तुरग–अन्तर्हितैः लीनैः आस्यते ।।37)

कथयन्तु भवन्तः, कस्मिन्नदेशे पांचाली तिष्ठति?

द्रौपदी— (लब्धसंज्ञा) परित्रायतां परित्रायतां महाराजः।[1]

कंचुकी— देवि पाण्डुस्नुषे! उत्तिष्ठोत्तिष्ठ। सम्प्रति झटिति चिताप्रवेश एव श्रेयान्।

द्रौपदी— (सहसोत्थाय) कथं न सम्भावयाम्यद्यापि चितासमीपम्?[2]

युधिष्ठिरः— कः कोऽत्र भोः? । सनिषंगं धनुरुपनय। (परिवृत्या-लोक्य च) कथं न कश्चित्परिजनः? भवतु। बाहुयुद्धेन सम्भावनविहस्तमेनं गाढमालिंग्य ज्वलनमभिपातयामि।

(इति परिकरं बध्नाति)

कंचुकी— देवि पाण्डुस्नुषे! संयम्यन्तामिदानीं नयनपथावरोधिनो दुःशासनपकृष्टा मूर्धजाः। अन्तमिता सम्प्रति प्रतीकाराशा। द्रुतं चिता-समीपं सम्भावय।

युधिष्ठिरः— कृष्णे! न खल्वनिहते तस्मिन्दुरात्मनि दुर्योधनहतके संहर्तव्याः केशाः।

---

1. परित्ताअदु परित्ताअदु महाराओ।
2. कहं ण सम्भावेमि अज्जवि चिदासमीवम्?

भीमसेन– (अभिमानपूर्वक घूमता हुआ) हे समन्तपंचक क्षेत्र में विचरण करने वाले सैनिकों! आपमें यह घबराहट कैसी?

न तो मैं राक्षस हूँ और न ही भूत हूँ, अपितु शत्रु के रक्त से अत्यधिक सने अंगों वाला, ऊरुभंग करने की प्रतिज्ञारूपी सागर की गम्भीरता को पार करने वाला, क्रोधी क्षत्रिय हूँ। अरे! अरे! युद्ध की अग्नि की लपटों से जलने से बचे हुए, क्षत्रिय वीरो! तुब अब हाथी, घोड़ों से आच्छन्न शरीर वाले होकर, क्यों छिप रहे हो? तुम्हें अब इस त्रास से बस करना चाहिए।।37।।

आप लोग बताइए कि पांचाली किस स्थान पर स्थित है?

द्रौपदी– (होश में आकर) रक्षा कीजिए, महाराज! रक्षा कीजिए।

कंचुकी– देवि! पाण्डुपुत्रवधु! उठिए, उठिए। इस समय तो शीघ्र चिता में प्रवेश करना ही श्रेयष्कर है।

द्रौपदी– (सहसा उठकर) भला अब भी मैं चिता के पास क्यों नहीं जाऊँगी?

युधिष्ठिर– अरे! यहाँ कौन है, कौन है? तरकस के साथ मेरा धनुष ले आओ (घूमकर और देखकर) क्यों कोई भी सेवक नहीं है। ठीक है, बाहुयुद्ध द्वारा ही इस दुर्योधन को व्यापार शून्य करके, आलिंगनपूर्वक प्रज्वलित अग्नि में डाल देता हूँ।

(ऐसा कहकर कमर से पकड़ लेता है)

कंचुकी– हे देवि! पाण्डुपुत्रवधु! अब देखने में बाधा डालने वाले, दुःशासन द्वारा खींचे गए बालों को बाँध लो, क्योंकि शत्रु से बदला लिए जाने की आशा इस समय समाप्त हो गयी है। शीघ्र ही चिता के पास में पहुँचो।

युधिष्ठिर– हे कृष्णे! उस दुष्ट दुर्योधन के मरने पर ही केशों को संवारना चाहिए।

भीमसेनः– पांचालि! न खलु मयि जीवति संहर्तव्यादुःशासन-विलुलितावेणिरात्मपाणिना। तिष्ठ तिष्ठ। अहमेव संहरामि।

(द्रौपदी भयादपसर्पति)

भीमसेनः– तिष्ठ तिष्ठ भीरु! क्वाऽधुना गम्यते?

(इति केशेषु ग्रहीतुमिच्छति)

युधिष्ठिरः– बलाद्भीममालिंगय दुरात्मन्! भीमार्जुनशत्रो! दुर्योधन-हतक! क्वेदानीं यास्यसि?

आशैशवादनुदिनं जनितापराधो
मत्तो बलेन भुजयोर्हतराजपुत्रः।
आसाद्य मेऽन्तरमिदं भुजपंजरस्य
जीवन्प्रयासि न पदात्पदमद्य पाप।।38।।

(**अन्वय**– पाप! आशैशवात् अनुदिनम् जनित–अपराधः भुजयोः बलेन मत्तः, हत–राजपुत्रः, अद्य मे भुज–पंजरस्य इदम् अन्तरम् आसाद्य जीवन् पदात् पदम् न प्रयासि।।38।।)

भीमसेनः– अये! कथमार्यः सुयोधनशंकया क्रोधान्निर्दयं मामा-लिंगति? आर्य! प्रसीद प्रसीद।

कंचुकी– (निरूप्य सहर्षम्) कथं कुमारो भीमसेनः? महाराज! दिष्ट्या वर्धसे। अयं खल्वायुष्मान्भीमसेनः सुयोधनक्षतजारुणीकृत-सकलशरीरो दुर्लक्ष्यव्यक्तिः। अलमधुना सन्देहेन।

चेटी– (द्रौपदीमालिंगय) देवि! निवर्त्यताम्, निवर्त्यताम्। एष खलु पूरितप्रतिज्ञाभारो नाथस्ते वेणीसंहारं कर्तुं त्वामेवान्विष्यति।[1]

द्रौपदी– हंजे! किं मामलीकवचनैराश्वासयसि?[2]

युधिष्ठिरः– जयन्धर! किं कथयसि? नायमनुजद्वेषी दुर्योधन हतकः?

---

1 . देवि! णिवट्टीअदु, णिवट्टीअदु। एसो क्खु पूरिद पडिण्णाभारो णाहो दे वेणीसंहारं कादुं तुमं एव्व अण्णेसेदि।

2 . हंजे! किं म अलीअवअणेहि आसासेसि?

भीमसेन– हे पांचालि! वस्तुतः मेरे जीवित रहते हुए, दुःशासन द्वारा खोली गयी वेणी, तुम्हें अपने हाथ से नहीं बाँधनी चाहिए। ठहरो, ठहरो। मैं ही बाँध देता हूँ।

(द्रौपदी भय से दूर हट जाती है)

भीमसेन– ठहरो, भीरु! ठहरो। अब कहाँ जा रही हो?

(ऐसा कहकर केशों से पकड़ना चाहता है)

युधिष्ठिर– (बलपूर्वक भीम का आलिंगन करके) हे दुरात्मन्! भीम और अर्जुन के शत्रु! दुष्ट दुर्योधन! अब कहाँ जाओगे?

अरे पापी! बचपन से ही हमेशा अपराध करता हुआ, भुजाओं के बल से मतवाला बना हुआ, मारे गए भाइयों वाला, तू आज मेरी भुजाओं के पिंजरे के बीच में पड़कर, जीवित रहता हुआ एक पद भी नहीं जा सकेगा।।38।।

भीमसेन– अरे! क्या ये आर्य महाराज युधिष्ठिर, दुर्योधन की आशंका से क्रोधपूर्वक अत्यन्त निर्दयता के साथ, मेरा आलिंगन कर रहे हैं। आर्य! प्रसन्न होइए, प्रसन्न होइए।

कंचुकी– (देखकर हर्षपूर्वक) क्या कुमार भीमसेन हैं? महाराज! सौभाग्य से आप वृद्धि को प्राप्त कर रहे हैं, क्योंकि दुर्योधन के रक्त लाल हुए शरीर वाले, पहचाने न जा सकने वाले, ये तो वस्तुतः आयुष्मान् भीमसेन हैं। इसलिए अब सन्देह से बस कीजिए।

चेटी– (द्रौपदी का आलिंगन करके) देवि! लौट आइए, लौट आइए, क्योंकि ये तो वस्तुतः अपने प्रतिज्ञाभार को पूरा किए हुए, स्वामी भीमसेन आपका वेणीसंहार करने के लिए ही आपको ढूँढ़ रहे हैं।

द्रौपदी–हंजे! तुम मुझे झूठे वचनों से आश्वासन क्यों दे रही हो?

युधिष्ठिर– जयन्धर! क्या कह रहे हो? यह हमारे अनुज भीम का शत्रु नीच दुर्योधन नहीं है।

भीमसेनः– देव अजातशत्रो! भीमार्जुनगुरो! कुतोऽद्यापि दुर्योधन-हतकः? मया हि तस्य दुरात्मनः पाण्डुकुलपरिभाविणः–

भूमौ क्षिप्तं शरीरं निहितमिदमसृक्चन्दनाभं निजांगे-
लक्ष्मीरार्ये निषण्णा चतुरुदधिपयः सीमया सार्द्धमुर्व्या।
भृत्या मित्राणि योद्धाः कुरुकुलमखिलं दग्धमेतद्रणाग्नौ
नामैकं यद् ब्रवीषि क्षितिप! तदधुना धार्तराष्ट्रस्य शेषम्।

(अन्वय– शरीरम् भूमौ क्षिप्तम्, इदम् चन्दन–आभम्, असृक् निज–अंगे निहितम्, चतुः–उदधि–पयः सीमया उर्व्या सार्द्धम् लक्ष्मीः आर्ये निषण्णा भृत्याः, मित्राणि, योद्धाः, अखिलम् एतत् कुरुकुलम् रण–अग्नौ दग्धम्, क्षितिप! एकम् नाम यत् धार्तराष्ट्रस्य ब्रवीषि, यत् अधुना शेषम्।।39।।)

(युधिष्ठिरः स्वैरं मुक्त्वा भीममवलोक्यन्नश्रूणि प्रमार्जयति)

भीमसेनः– (पादयोः पतित्त्वा) जयत्वार्यः।

युधिष्ठिरः– वत्स! बाष्पजलान्तरितनयनत्वान्न पश्यामि ते मुख-चन्द्रम्। कथय कच्चिज्जीवति भवान्समं किरीटिना?

भीमसेनः– निहतसकलरिपुपक्षे त्वयि नराधिपे, जीवति भीमो-ऽर्जुनश्च।

युधिष्ठिरः– (सस्नेहं पुनर्गाढमालिंग्य) तात भीम!–

रिपोरास्तां तावन्निधनमिदमाख्याहि शतशः,
प्रियो भ्राता सत्यं त्वमसि मम योऽसौ बकरिपुः।

भीमसेनः– आर्य! सोऽहम्।

युधिष्ठिरः–

जरासन्धस्योरःसरसि रुधिरासारसलिले
तटाघातक्रीडाललितमकरः संयति भवान्।।40।।

(अन्वय– रिपोः निधनम् तावत् आस्ताम्, इदम् शतशः आख्याहि, यः असौ बक–रिपुः, मम प्रियः भ्राता, त्वम् सत्यम् असि, संयति रुधिर–आसार–सलिले जरासन्धस्य उरः–सरसि तट–आघात–क्रीडा-ललित–मकरः भवान्।।40।।)

भीमसेन– महाराज! अजातशत्रु! भीम तथा अर्जुन के अग्रज! क्या अब भी दुष्ट दुर्योधन बचा हुआ है? क्योंकि पाण्डुवंश का अपकार करने वाले, उस दुष्ट का तो मैंने–

शरीर भूमि पर फैंक दिया है तथा उसका चन्दन से युक्त यह रक्त अपने शरीर पर लगा रखा है। चारों समुद्र के जल की सीमा से युक्त भूमि की लक्ष्मी आपमें समर्पित कर दी है। कौरववंश के नौकर, मित्र तथा योद्धा ये सभी युद्ध की अग्नि में भस्म हो चुके हैं। हे राजन्! अब तो केवल उनका नाम ही शेष बचा है, जिसका आप उच्चारण कर रहे हैं।।39।।

(युधिष्ठिर धीरे से छोड़कर भीम को देखकर अश्रुओं को पोंछते हैं)

भीमसेन– (पैरों में गिरकर) आर्य की जय हो।

युधिष्ठिर– वत्स! अश्रुओं से नेत्रों के आच्छादित होने के कारण मैं तुम्हारा मुखरूपी चन्द्र नहीं देख पा रहा हूँ। इसलिए कहो कि क्या किरीटी अर्जुन के साथ आप भी जीवित हैं?

भीमसेन– सभी शत्रुओं का संहार करके, आपके राजा बन जाने पर, भीम और अर्जुन दोनों ही जीवित हैं।

युधिष्ठिर– (स्नेहपूर्वक फिर से प्रगाढ़ आलिंगन करके) तात भीम!

शत्रु के निधन की बात को तो रहने दो, सैकड़ों बार मुझे यह बताओ कि जो 'बक' नामक राक्षस के शत्रु, मेरे प्रिय भ्राता, वह तुम ही हो, क्या यह सत्य है?।।39।।

भीमसेन– आर्य! मैं वही हूँ।

युधिष्ठिर– युद्ध के रक्त प्रवाहरूपी जल में, जरासन्ध के वक्षः–स्थल रूपी तालाब में, तट पर प्रहार की लीला से मकर के समान प्रतीत होने वाले भी (क्या) आप ही हैं।।40।।

भीमसेनः– आर्य! स एवाहम्! मंचतु मंचतु मामार्यः क्षणमेकम्।

युधिष्ठिरः– किमपरवशिष्टम्।

भीमसेनः– आर्य! सुमहदवशिष्टम्। संयमयामि तावदनेन सुयो शोणितोक्षितेन पाणिना पांचाल्या दुःशासनावकृष्टं केशहस्तम्।

युधिष्ठिरः– सत्वरं गच्छतु भवान्। अनुभवतु तपस्विनी वेणीसं महोत्सवम्।

भीमसेनः– (द्रौपदीमुपसृत्य) देवि पांचालराजतनये । दिष्ट्या वर्धसे रिपुकुलक्षयेण।

द्रौपदी– (उपसृत्य) जयतु जयतु नाथः।[1]

(इति भयादसर्पति)

भीमसेनः– राजपुत्रि! अलमलमेवंविधं मामालोक्य त्रासेन।

कृष्टा येनासि राज्ञां सदसि नृपशुना तेन दुःशासनेन,
स्त्यानान्येतानि तस्य स्पृश मम करयोः पीतशेषाण्यसृंजि।
कान्ते! राज्ञः कुरूणामतिसरसमिदं मद्गदाचूर्णितोरो-
रंगेऽगेऽसृङ्निषक्तं तव परिभवजस्यानलस्योपशान्त्यै।।

(अन्वय– कान्ते! येन नृ–पशुना तेन दुःशासनेन, राज्ञाम् सदसि कृष्टा असि, तस्य एतानि स्त्यानानि मम करयोः (विद्यमानानि) पीत–शेषाणि अति–सरसम् असृंजि स्पृश, मत्–गदा–चूर्णित–ऊरोः कुरूणाम् राज्ञः इदम् अंगे–अंगे निषक्तम्, असृङ् तव परिभवज– अनलस्य उप–शान्त्यै (अलम्)।।41।।)

बुद्धिमतिके! क्व सम्प्रति भानुमती योपहसति पाण्डवदारान्। भवति यज्ञवेदिसम्भवे! याज्ञसेनि!

द्रौपदी– आज्ञापयतु नाथः।[2]

भीमसेनः– स्मरति भवती यत्तन्मयोक्तम्। (चंचद्भुजभ्रमित– 1/21 इत्यादि पठति)

---

1. जेदु जेदु णाहो।
2. आणवेदु णाहो।

भीमसेन– आर्य! मैं वही हूँ। हे आर्य! आप मुझे एक क्षण के लिए छोड़ दीजिए, छोड़ दीजिए।

युधिष्ठिर– क्या कोई दूसरा कार्य भी शेष है?

भीमसेन– आर्य! बहुत बड़ा कार्य शेष रह गया है। तब तक इस सुयोधन के रक्त से सने हुए हाथ से, मैं दुःशासन द्वारा खींचे गए पांचाली के केशपाश को बाँध देता हूँ।

युधिष्ठिर– आप शीघ्र ही जाइए। वह बेचारी (तपस्विनी) वेणी बन्धन के महोत्सव को अनुभव करे।

भीमसेन– (द्रौपदी के पास जाकर) देवि! पांचालराजपुत्रि! सौभाग्य से रिपुकुल के विनाश से तुम वृद्धि को प्राप्त कर रही हो।

द्रौपदी– (पास जाकर) स्वामी की जय हो, जय होवे।

(यह कहकर भयपूर्वक दूर हट जाती है)

भीमसेन– हे राजपुत्रि! इसप्रकार मुझे देखकर डरने की आवश्यकता नहीं है।

हे कान्ते! मनुष्यों में पशु के समान, जिस दुःशासन द्वारा राजाओं की सभा में तुम खींची गयी थी। मेरे दोनों हाथों में लगे हुए, पीने से शेष बचे हुए, उसी के इस गाढ़े रक्त का स्पर्श करो। मेरी गदा से भग्न हुई जंघाओं वाले, कौरवों के राजा का प्रत्येक अंग में लगा हुआ यह रुधिर, तुम्हारे अपमान की अग्नि की शान्ति के लिए पर्याप्त है।।41।।

हे बुद्धिमतिके! इस समय यह भानुमती कहाँ है?, जो पाण्डव पत्नी का उपहास कर रही थी। हे यज्ञवेदी से उत्पन्न होने वाली याज्ञसेनि!

द्रौपदी– स्वामी! आज्ञा प्रदान करें।

भीमसेन– क्या आप उसे स्मरण कर रही हैं, जो मैंने उस समय कहा था (चंचद्भुजभ्रमित 1/21 इत्यादि को पढ़ता है)

द्रौपदी–नाथ! न केवलं स्मरामि, अनुभवामि च नाथस्य प्रसादेन।[1]

भीमसेनः– (वेणीमवधूय) भवति! सयम्यतामिदानीं धार्तराष्ट्रकुल-कालरात्रिर्दुःशासनविलुलितेयं वेणी।

द्रौपदी– नाथ! विस्मृताऽस्म्येतं व्यापारम्। नाथस्य प्रसादेन पुनरपि शिक्षिष्ये।[2]

(भीमसेनो वेणीं बध्नाति)

(नेपथ्ये)

महासमरानलदग्धशेषाय स्वस्ति भवतु राजन्यकुलाय।

क्रोधान्धैर्यस्य मोक्षात् क्षतनरपतिभिः पाण्डुपुत्रैः कृतानि,
प्रत्याशं मुक्तकेशान्यतुलभुजबलैः पार्थिवान्तःपुराणि।
कृष्णायाः केशपाशः कुपितयमसखो धूमकेतुः कुरूणां
दिष्ट्या बद्धः प्रजानां विरमतु निधनं स्वस्ति राज्ञां कुलेभ्यः।

(अन्वय– यस्य मोक्षात् क्रोध–अन्धैः अतुल–भुज–बलैः क्षत–नर-पतिभिः पाण्डु–पुत्रैः प्रत्याशम् पार्थिव–अन्तःपुराणि मुक्त–केशानि कृतानि, (सः अयम्) कुपित–यम–सखः, कुरूणाम् धूमकेतुः, कृष्णायाः केशपाशः दिष्ट्या बद्धः, प्रजानाम् निधनम् विरमतु, राज्ञाम् कुलेभ्यः स्वस्ति।।42।।)

युधिष्ठिरः– देवि! एष ते वेणीसंहारोऽभिनन्द्यते नभस्तलसंचारिणा सिद्धजनेन।

(ततः प्रविशतः कृष्णार्जुनौ)

कृष्णः– (युधिष्ठिरमुपगम्य) विजयतां निहतसकलाऽरातिमण्डलः सानुजः पाण्डवकुलचन्द्रो महाराजो युधिष्ठिरः।

अर्जुनः– जयत्वार्यः।

युधिष्ठिरः– (विलोक्य) अये! कथं भगवान् वासुदेवः किरीटी च। भगवन्! अभिवादये। (किरीटिनं प्रति) एह्येहि वत्स! परिष्वजस्व माम्।

(अर्जुनः प्रणमति)

---

1. णाह! ण केवलं सुमरामि, अणुहवामि अ णाधस्स प्पसादेण।
2. णाह! विसुमरिदम्हि एदं वावारम्। णाहस्स प्पसादेण पुणो वि सिक्खिस्सम्।

द्रौपदी– स्वामी! न केवल याद करती हूँ, अपितु स्वामी की कृपा से अनुभव भी कर रही हूँ।

भीमसेन– (वेणी को झाड़कर) देवि! अब कुरुकुल के लिए काल रात्रि के समान, दुःशासन द्वारा खोली गयी इस वेणी को बाँध लो।

द्रौपदी– स्वामी! मैं तो यह व्यापार भूल ही गयी हूँ। अब नाथ की कृपा से फिर से सीख लूँगी।

(भीमसेन वेणी को बाँधता है)

(नेपथ्य में)

महान् युद्धरूपी अग्नि में जलने से बचे हुए राजाओं के कुलों का कल्याण होवे।

जिस चोटी के खुलने से क्रोध से अन्धे, अतुलित बाहुबल वाले, विनष्ट हुए राजाओं वाले, पाण्डुपुत्रों द्वारा, प्रत्येक दिशा में राजाओं के अन्तःपुरों की स्त्रियों की वेणियाँ खोल दी गयीं थीं। वही यह क्रुद्ध यमराज के मित्र के समान, कौरववंश के लिए धूमकेतु, द्रौपदी का केशपाश बँध गया है। इसलिए प्रजा का विनाश शान्त हो जाए और राजाओं के कुलों का कल्याण होवे।।42।।

युधिष्ठिर– हे देवि! तुम्हारे इस वेणीबन्धन का स्वागत आकाश तल में विचरण करने वाले, सिद्धजनों द्वारा किया जा रहा है।

(उसके बाद कृष्ण और अर्जुन प्रवेश करते हैं)

कृष्ण– (युधिष्ठिर के पास जाकर) सम्पूर्ण शत्रु–समूह का संहार किए हुए, पाण्डुकुल के चन्द्रमा के समान, अनुजों के साथ, महाराज युधिष्ठिर की जय होवे।

अर्जुन– आर्य! आपकी विजय हो।

युधिष्ठिर– (देखकर) अरे! क्या भगवान् वासुदेव और अर्जुन हैं। भगवन्! मैं प्रणाम करता हूँ (अर्जुन के प्रति) आओ, आओ वत्स! मेरा आलिंगन करो।

(अर्जुन प्रणाम करता है)

युधिष्ठिरः– (वासुदेवं प्रति) देव! कुतस्तस्य विजयादन्यद्यस्य खलु भगवान्पुराणपुरुषो नारायणः स्वयं मंगलमाशास्ते।

कृतगुरुमहदादिक्षोभसम्भूतमूर्ति,
गुणिनमुदयनाशस्थानहेतुं प्रजानाम्।
अजममरमचिन्त्यं चिन्तयित्वाऽपि न त्वां,
भवति जगति दुःखी किं पुनर्देव दृष्ट्वा ।।43।।

(**अन्वय–** देव! कृत–गुरु–महत्–आदि–क्षोभ–सम्भूत–मूर्तिः गुणिनम् प्रजानाम् उदय–नाश–स्थान–हेतुम् अजम्, अमरम् अचिन्त्यम् त्वाम् चिन्तयित्वा, अपि जगति (जनः) दुःखी न भवति, दृष्ट्वा पुनः किम् ।।43।।)

(अर्जुनमालिंग्य) वत्स! परिष्वजस्व माम्।

कृष्णः– महाराज युधिष्ठिर! एते खलु भगवन्तो व्यासवाल्मीकिजामदग्न्यजाबालिप्रभतृयो महर्षयः कल्पिताभिषेकमंगला नकुलसहदेवसात्यकिमुखाश्च सेनापतयो यादवमत्स्यमागधकुलसम्भवाश्च राजकुमाराः स्कन्धोत्तम्भिततीर्थवारिकलशास्तवाभिषेकं धारयन्ति।

व्यासोऽयं भगवानमी च मुनयो वाल्मीकिरामादयो–
धृष्टद्युम्नप्रमुखाश्च सैन्यपतयो माद्रीसुताधिष्ठिताः।
प्राप्ता मागधमत्स्ययादवकुलैराज्ञाविधेयैः समं,
स्कन्धोत्तम्भिततीर्थवारिकलशा राज्याभिषेकाय ते।।44

(**अन्वय–** अयम् भगवान् व्यासः, अमी च वाल्मीकि–राम–आदयः स्कन्ध–उत्तम्भित–तीर्थ–वारि–कलशाः मुनयः, माद्री–सुत–अधिष्ठिताः धृष्टद्युम्न–प्रमुखाः च सैन्यपतयः, आज्ञा–विधेयैः मागध–मत्स्य–यादव–कुलैः समम् ते राज्याभिषेकाय प्राप्ताः ।।44।।)

अहं पुनश्चार्वाकेण रक्षसा व्याकुलीकृतं भवन्तमुपलभ्यार्जुनेन सह त्वरिततरमायातः।

युधिष्ठिरः– कथं चार्वाकेण रक्षसा वयमेवं विप्रलब्धाः?

युधिष्ठिर– (वासुदेव के प्रति) भगवन्! जिसका भगवान् पुराण पुरुष स्वयं मंगल चाहते हों, उसके लिए भला विजय के अतिरिक्त दूसरा कुछ हो ही कैसे सकता है?

हे देव! अपने से ही उत्पन्न किए हुए, महान् महत्तत्त्व आदि के क्षोभ से उत्पन्न आकार वाले, तीन गुणों से युक्त, समस्त प्राणीजनों की उत्पत्ति एवं विनाश के हेतु, अजन्मा, अमर तथा अचिन्तनीय, आपके ध्यानगोचर होने पर भी, इस संसार में प्राणी दुःखी नहीं होता है, फिर दर्शन होने पर तो दुःखी होने की बात ही क्या है?।।43।।

(अर्जुन का आलिंगन करके) वत्स! मेरा आलिंगन करो।

कृष्ण–महाराज युधिष्ठिर! निश्चय ही, ये भगवान् व्यास वाल्मीकि, जामदग्न्य, जाबालि आदि महर्षि, नकुल, सहदेव, सात्यकि इत्यादि सेनापति, यादव, मत्स्य एवं मगध आदि वंशों में उत्पन्न हुए, राजकुमार आपके राज्याभिषेक रूपी महोत्सव की अभिलाषा से तीर्थजल के घड़े अपने कन्धों पर रखे हुए उपस्थित हैं–

ये भगवान् व्यास, ये वाल्मीकि, परशुराम आदि तीर्थजलों से भरे हुए कलश, अपने कन्धों पर रखे हुए, मुनि, माद्रीपुत्रों के साथ, धृष्ट–द्युम्न आदि प्रमुख सेनापति, आज्ञापालन करने वाले, मागध, मत्स्य और यादव कुलों के साथ, तुम्हारा राज्याभिषेक करने के लिए आ गए हैं।।44।।

और मैं चार्वाक राक्षस द्वारा व्याकुल किए गए आपको पाकर अर्जुन के साथ अत्यन्त शीघ्र ही आ गया हूँ।

युधिष्ठिर– क्या हम चार्वाक राक्षस द्वारा इसप्रकार ठगे गए हैं?

भीमसेनः— (सरोषम्) क्वासौ धार्तराष्ट्रसखो राक्षसः पुण्यजनापसदो येनार्यस्य महांश्चित्तविभ्रमः कृतः।

कृष्णः— निगृहीतः स दुरात्मा नकुलेन। तत्कथय महाराज! किमस्मात्परं समीहितं सम्पादयामि।

युधिष्ठिरः— पुण्डरीकाक्ष! न किंचिन्न ददाति भगवान्प्रसन्नः। अहं तु पुरुषसाधारणयबुद्ध्या सन्तुष्यामि। न खल्वतः परमभ्यर्थयितुं क्षमः। पश्यतु देवः—

क्रोधान्धैः सकलं हतं रिपुकुलं पंचाक्षतास्ते वयं,
पांचाल्या मम दुर्नयोपजनितस्तीर्णो निकारार्णवः।
त्वं देवः पुरुषोत्तमः सुकृतिनं मामादृतो भाषसे
किं नामान्यदतः परं भगवतो याचे प्रसन्नादहम्।।45।।

(**अन्वय**— क्रोध–अन्धैः (अस्माभिः) सकलम् रिपु–कुलम् हतम्, ते पंच वयम् अक्षताः, मम दुर्नय–उपजनितः पांचाल्याः निकार–अर्णवः तीर्णः, देवः पुरुषोत्तमः त्वम् आदृतः (सन्) सुकृतिनम् माम् भाषसे, अतः अन्यत् परम् किम् नाम? (यत्) प्रसन्नात् भगवतः अहम् याचे।।45।।)

तथापि प्रीततरश्चेद् भगवतास्तदिदमस्तु—

अकृपणमतिः कामं जीव्याज्जनः पुरुषायुषम्,
भवतु च भवद्भक्तिर्द्वैधं विना पुरुषोत्तम!
दयिताभुवनो विद्वदबन्धुगुणेषु विशेषवित्
सतत् सुकृती भूयाद् भूपः प्रसाधितमण्डलः।।46।।

(**अन्वय**— पुरुषोत्तम! अकृपण–मतिः जनः कामम् पुरुष–आयुषम् जीव्यात्, भवत्–भक्तिः द्वैधम् विना भवतु च, भूपः दयिता भुवनः विद्वत्–बन्धु–गुणेषु विशेषवित् सतत् सुकृती प्रसाधित–मण्डलः भूयात्।।46।।)

कृष्णः— एवमस्तु।

भीमसेन– (क्रोधपूर्वक) दुर्योधन का मित्र वह नीच राक्षस कहाँ है? जिसने महाराज का महान् चित्त–विभ्रम किया है।

कृष्ण– वह दुष्ट राक्षस कुमार नकुल द्वारा पकड़ लिया गया है। इसलिए महाराज! कहिए, इससे अधिक आपका अभिलषित क्या सम्पन्न करूँ?

युधिष्ठिर– हे पुण्डरीकाक्ष! प्रसन्न हुए भगवान् क्या कुछ नहीं दे देते हैं? मैं तो पुरुष की साधारण बुद्धि से सन्तुष्ट रहूँगा। निश्चय ही, मैं इससे बढ़कर कुछ भी माँगने में समर्थ नहीं हूँ। भगवान् ही देख लें,

क्रोध से अन्धे हुए हमने सम्पूर्ण शत्रुकुल का विनाश कर दिया है और वे हम पाँचों पाण्डव सकुशल हैं। मेरे जुए आदि दुर्व्यसनों से उत्पन्न हुआ, द्रौपदी का परिभवरूपी सागर भी पार कर लिया गया है तथा आप पुरुषोत्तम भगवान् आदृत होकर, मुझसे और भी माँगने के लिए कह रहे हैं। इसलिए मैं धन्य हूँ, क्योंकि अब इससे भी अधिक और क्या हो सकता है? जिसे मैं प्रसन्नतापूर्वक भगवान् से माँग लूँ।।45।।

फिर भी यदि प्रभु प्रसन्न हैं, तो यह हो जाए–

हे पुरुषोत्तम! उदार लोग इच्छानुसार सौ वर्ष की आयु प्राप्त करें। आपकी भक्ति संशयरहित होवें और सभी राजा लोकप्रिय हों। इसके अतिरिक्त विद्वानों को बन्धुओं के समान मानने वाले, गुणों के विशेष पारखी, निरन्तर पुण्यकर्मों को करने वाले और व्यवस्थित मण्डल का निर्माण होवे।।46।।

कृष्ण– ऐसा ही होवे।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ इति षष्ठोऽङ्कः ॥

इदं च विदग्धस्निग्धवियोगदुर्मनसा विप्रलपितं तेन कविना–

काव्यालापसुभाषितव्यसनिनस्ते राजहंसा गता–
स्ता गोष्ठ्यः क्षयमागता गुणलवश्लाघ्या न वाचः सताम्
सालंकाररसप्रसन्नमधुराकाराः कवीनां गिरः
प्राप्ता नाशमयं तु भूमिवलये जीयात्प्रबन्धो महान्।।47।

(अन्वय– ते काव्य–आलाप–सुभाषित–व्यसनिनः, राजहंसाः गताः, ताः गोष्ठ्यः क्षयम् आगताः, सताम् वाचः गुण–लव–श्लाघ्याः न, कवीनाम् सालंकार–रस–प्रसन्न–मधुर–आकाराः गिरः नाशम् प्राप्ताः, भूमि–वलये अयम् तु महान् प्रबन्धः जीयात्।।47।।

॥ समाप्तमिदं वेणीसंहारं नाम नाटकम्॥

•••

(ऐसा कहकर सभी निकल जाते हैं)

॥ इसप्रकार महाकवि भट्टनारायण विरचित वेणीसंहार के षष्ठ अङ्क का डॉ. राकेश शास्त्री, बाँसवाड़ा **द्वारा किया हुआ हिन्दी अनुवाद पूर्ण हुआ ॥**

काव्यरसमर्मज्ञ कविजनों के वियोग के कारण खिन्न होकर महा-कवि भट्टनारायण ने यह विलाप किया है कि-

वे काव्यपाठ, सुभाषित चर्चा के व्यसनी, हंसों के समान गुण वाले राजा आज नहीं रह गए हैं। इसके अलावा शास्त्रों तथा काव्यों के सम्बन्ध में चर्चा के लिए आयोजित होने वाली, गोष्ठियाँ भी समाप्त हो गयी हैं। सज्जनों की साहित्यसुधा से सरस सूक्तियों की अब नाम मात्र के लिए भी प्रशंसा नहीं हो रही है। कवि लोगों के सरस, सालंकार, प्रसादगुण से परिपूर्ण, मनोहर वचन अब सुनने के लिए उपलब्ध नहीं हैं। कवि की प्रस्तुत नाटक के प्रति यही शुभकामना है कि यह महाप्रबन्ध सर्वश्रेष्ठ होवे।। 47।।

॥ इसप्रकार महाकवि भट्टनारायण विरचित वेणीसंहार पूर्ण हुआ॥

•••

प्रथम अङ्क

(क) **सूत्रधार**–सूत्रं धारयति, इति– सूत्रधारः। सूत्र+√धृ+णिच्+अण् (कर्मण्यण् सूत्र से) यह रंगमंच पर अभिनय किए जाने वाली सभी घटनाओं को नियन्त्रित करता है, वर्तमान समय में इसी को 'डायरेक्टर' भी कहते हैं। वस्तुतः यह रंगमंच का अधिष्ठाता होता है, जो नाटक की प्रस्तावना में स्वयं उपस्थित होकर नाटक का आरम्भ करता है तथा सभी दूसरे पात्रों को अभिनय सम्बन्धी निर्देश भी प्रदान करता है।

इसके अलावा नाट्य के उपकरणों को सूत्र भी कहते हैं–

'नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते।''

इसलिए नाट्य के उपकरणों अर्थात् सूत्रों को धारण करने के कारण ही इसे ''सूत्रधार'' कहते हैं, क्योंकि इसी के मार्गदर्शन में सम्पूर्ण नाटक का अभिनय किया जाता है। संगीतसर्वस्वकार ने सूत्रधार का लक्षण इसप्रकार किया है–

नाटकस्य यदनुष्ठानं तत्सूत्रं स्यात् सबीजकम्।
रंगदैवतपूजाकृत् सूत्रधार उदीरितः।।
वर्तनीयतया सूत्रं प्रथमं येन सूच्यते।
रंगभूमिं समाक्रम्य सूत्रधारः स उच्यते।।

दशरूपककार धनंजय का इस सम्बन्ध में मानना है कि –

पूर्वरंगं विधायादौ सूत्रधारे विनिर्गते,
तद्वन्नरः प्रविश्यान्यः सूत्रधार गुणकृतिः,सूचयेद्वस्तुबीजकम्।।

(ख) पारिपार्श्विक– नाटक के अभिनय में यह सूत्रधार को सहयोग प्रदान करता है। प्रस्तुत नाटक में इन दोनों के परस्पर वार्तालाप में प्रयुक्त 'स्वस्थाः' पद को ग्रहण करके ही नायक भीम का मंच पर अवतरण हुआ है।

(1) 'चन्द्रिका' निषिद्धैरिति– कविकुलभूषण महाकवि भट्टनारायण अपने द्वारा विरचित वेणीसंहार नाटक की निर्विघ्न समाप्ति के लिए सर्वप्रथम अपने इष्ट देवता **भगवान् विष्णु** के श्रीचरणों में खिले हुए पुष्पों वाली कुसुमांजलि को विकीर्ण करते हुए, सहृदय सभासदों के नेत्रों को आनन्द प्रदान करने तथा अपने लिए कार्य की सिद्धि की कामना करते हुए कहते हैं कि–

जिन विकसित कलियों वाले, पुष्पों की अंजलि के चारों ओर मँडराते हुए, उनकी भीनी–भीनी सुगन्ध की अधिकता से ललचाए हुए, भौंरे बार–बार दूर हटाए जाने पर भी, उनके ऊपर बैठकर, परागकणों को बिखेर रहे हैं एवं शरदऋतु के पूर्ण चन्द्रमा की शीतल किरणों से, जिसका मध्य भाग व्याप्त है, हमारे आराध्य देव के श्रीचरणों में विकीर्ण की गयी, इसप्रकार की यह कुसुमांजलि इस सभा में उपस्थित सभी सहृदय रसिकों के नेत्रों को आनन्द प्रदान करने वाली होवे तथा इस नाटक का अभिनय करने वाले, सभी अभिनेताओं को अभिनय कार्य में सिद्धि एवं नाटक के प्रणेता के लिए यशः–सिद्धि को देने वाली होवे।

विशेष–(i) प्रस्तुत नान्दी के अन्तर्गत नाटककार ने मंगलाचरण किया है, जिसमें भगवान् श्रीविष्णु के लिए विकीर्ण की गयी पुष्पांजलि द्वारा सभी सहृदयों के लिए आनन्द तथा नाटक का मंचन करने वाले अभिनेताओं के लिए सिद्धि की कामना की है।

(ii) सर्वप्रथम प्रयुक्त प्रस्तुत श्लोक में श्रीविष्णु के स्मरण से कवि का विष्णुभक्त होना सिद्ध होता है।

(iii) नाटक के आरम्भ में मंगलाचरण करने की पुरातन भारतीय परम्परा रही है, जिसे यहाँ कवि द्वारा नाटक की निर्विघ्न समाप्ति की कामना से किया गया है।

(iv) महाकवि का भावों के अनुरूप शब्दों का चयन तथा चित्रात्मक शैली दर्शनीय है। इस विशेषता को प्रस्तुत नाटक में सर्वत्र देखा जा सकता है।

(v) भ्रमरों को यहाँ अभी–अभी विकसित हुए, पुष्पों के मकरन्द का लालची चित्रित किया है, जो रोके जाने पर भी उसे विकीर्ण कर रहे हैं। इससे महाकवि का प्राणिविज्ञान विषयक ज्ञान भी अभिव्यक्त हुआ है।

(vi) प्रस्तुत श्लोक में 'मधुकर' पद से दुर्योधन के परिवार की तथा 'सम्भिन्नमुकुलः' से वनवास आदि के दुःखों से मुक्त हुए, पाण्डवों की एवं 'हरिचरणयोरंजलिः' पद से श्रीकृष्ण की शरण में प्राप्ति की सम्भावना के कारण उत्प्रेक्षालंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है, जिसका लक्षण इसप्रकार है– **सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्।**

(vii) उपर्युक्त श्लोक में शिखरिणी छन्द का प्रयोग हुआ है लक्षण इसप्रकार है– **रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी।**

(viii) मंगलाचरण के अन्तर्गत कवि ने कुल तीन श्लोकों का प्रयोग किया है। इसी को 'नान्दी' भी कहते हैं। नन्दयतीति नन्दः, √नन्द्+अच् (पचाद्यच् सूत्र से अच् प्रत्यय का प्रयोग) नन्द एवं नान्दः, √नन्द्+अण् (प्रज्ञादिभ्यश्च से अच्)+ङीप्–नान्दी। नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से मंगलाचरण को ही 'नान्दी' कहा जाता है, क्योंकि इसे करने से देवता प्रसन्न होते हैं–

"नन्दन्ति देवता यस्यां तस्मान्नान्दीति कीर्तिता।"

नाटक की निर्विघ्न समाप्ति के लिए नान्दी मंगलाचरण का पाठ किया जाता है। प्रस्तुत नाटक में इसे **नेपथ्य** में किया गया है। कुछ नाटकों में नान्दी मंच पर आकर भी की जाती है।

(ix) पुष्पांजलि के ऊपर चन्द्रमा की किरणों के गिरने की बात से प्रस्तुत नाटक का रात्रि में मंचन होना भी अभिव्यंजित हो रहा है।

व्या.टि.[1]– (i) निषिद्धैः– नि+ √सिध्+क्त, तृतीया बहु वचन।

---

[1] .संक्षेप– व्याकरणात्मक टिप्पणी।

(ii) **लुलितमकरन्दः**—लुलितः संचालितः मकरन्दः यस्मात्, असौ।

(iii) **इन्दोः**— चन्द्रमसः, इन्दु+ षष्ठी विभक्ति, एक वचन।

(iv) **सम्भिन्नमुकुलः**— सम्भिन्नः मुकुलो यस्य असौ।

(v) **नयनयोः सुभगाः**, नयनसुभगाः, ताम्, नेत्रों के लिए सुन्दर।

संस्कृत व्याख्या— **पुष्पपरागपानलोभात् अभितः पततः तान्, हस्तोद्धूनादिना निवारयद्भिः, परिदृश्यमानैः भ्रमरैः मकरन्दम् आस्वादयितुम् अभिलषन्तः अपि हस्तविधूननव्यग्रतया यथेच्छम् तथा कर्तुम् अशक्यत्वात् केवलम् आलुलितपुष्परसः, न आस्वादितरसः, इत्यर्थः, प्रफुल्लकुङ्मलः, अभ्यन्तरे चन्द्रमसः किरणैः लिप्तः इव, श्रीकृष्णभगवच्चरणारविन्दयोः, सादरम् प्रकीर्णः इष्टदेवतापूजोपकरणीभूतः, इत्यर्थः। एषः सुमनसाम् अंजलिः, सदसि स्थितानाम् जनानाम्, सहृदयानाम् इत्यर्थः, नयनानन्ददायिनीम् अस्माकम् कार्यसिद्धिम् च अभिनवप्रयोगसाफल्यम्, करोतु।**

(2) 'चन्द्रिका' कालिन्द्याः, इति— यमुना नदी के बालूमय तट पर रासलीला में अनुराग न रखने वाली, अश्रुओं से मलिन मुख से युक्त राधा मानपूर्वक रुदन करते हुए चल देती है, तब अपने मामा कंस के शत्रु भगवान् श्रीकृष्ण उसे मनाने के लिए, उसी के पदचिह्नों पर अपना पैर रखकर चलने लगते हैं। ऐसा करने से उनका शरीर साक्षात् राधा के स्पर्श के आनन्द का अनुभव करते हुए, पुलकित हो उठता है। इसप्रकार राधा भी श्रीकृष्ण के इस भाव को देखकर, अपने ऊपर उनके असीम प्रेम को समझते हुए, मुस्कुराकर उन्हें देखने लगती है। अन्त में कवि कहते हैं कि–'श्रीकृष्ण का सफल हुआ यह अनुनय अर्थात् मानिनी को मनाने का यह प्रकार आप सभी सभासदों को पुष्टि प्रदान करने वाला होवे।

विशेष–(i) राधा के चरणों के चिह्नों पर अपने पैरों को रखने से मानो श्रीकृष्ण को उसका साक्षात् समागम ही प्राप्त हो गया, जिसके कारण उनका शरीर पुलकित हो उठा, इसप्रकार के वर्णन से कवि की सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रेम–दृष्टि अभिव्यंजित हुई है।

चन्द्रिका हिन्दी व्याख्या, संस्कृत व्याख्या

प्रथम अङ्क

(क) **सूत्रधार**–सूत्रं धारयति, इति– सूत्रधारः। सूत्र+√धृ+णिच्+अण् (कर्मण्यण् सूत्र से) यह रंगमंच पर अभिनय किए जाने वाली सभी घटनाओं को नियन्त्रित करता है, वर्तमान समय में इसी को 'डायरेक्टर' भी कहते हैं। वस्तुतः यह रंगमंच का अधिष्ठाता होता है, जो नाटक की प्रस्तावना में स्वयं उपस्थित होकर नाटक का आरम्भ करता है तथा सभी दूसरे पात्रों को अभिनय सम्बन्धी निर्देश भी प्रदान करता है।

इसके अलावा नाट्य के उपकरणों को सूत्र भी कहते हैं–

'नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते।''

इसलिए नाट्य के उपकरणों अर्थात् सूत्रों को धारण करने के कारण ही इसे ''सूत्रधार'' कहते हैं, क्योंकि इसी के मार्गदर्शन में सम्पूर्ण नाटक का अभिनय किया जाता है। संगीतसर्वस्वकार ने सूत्रधार का लक्षण इसप्रकार किया है–

नाटकस्य यदनुष्ठानं तत्सूत्रं स्यात् सबीजकम्।
रंगदैवतपूजाकृत् सूत्रधार उदीरितः।।
वर्तनीयतया सूत्रं प्रथमं येन सूच्यते।
रंगभूमिं समाक्रम्य सूत्रधारः स उच्यते।।

दशरूपककार धनंजय का इस सम्बन्ध में मानना है कि –

पूर्वरंगं विधायादौ सूत्रधारे विनिर्गते,
तद्वन्नरः प्रविश्यान्यः सूत्रधार गुणकृतिः,सूचयेद्वस्तुबीजकम्।।

(ख) पारिपार्श्विक– नाटक के अभिनय में यह सूत्रधार को सहयोग प्रदान करता है। प्रस्तुत नाटक में इन दोनों के परस्पर वार्तालाप में प्रयुक्त 'स्वस्थाः' पद को ग्रहण करके ही नायक भीम का मंच पर अवतरण हुआ है।

(1) 'चन्द्रिका' निषिद्धैरिति– कविकुलभूषण महाकवि भट्टनारायण अपने द्वारा विरचित वेणीसंहार नाटक की निर्विघ्न समाप्ति के लिए सर्वप्रथम अपने इष्ट देवता **भगवान् विष्णु** के श्रीचरणों में खिले हुए पुष्पों वाली कुसुमांजलि को विकीर्ण करते हुए, सहृदय सभासदों के नेत्रों को आनन्द प्रदान करने तथा अपने लिए कार्य की सिद्धि की कामना करते हुए कहते हैं कि–

जिन विकसित कलियों वाले, पुष्पों की अंजलि के चारों ओर मँडराते हुए, उनकी भीनी–भीनी सुगन्ध की अधिकता से ललचाए हुए, भौंरे बार–बार दूर हटाए जाने पर भी, उनके ऊपर बैठकर, परागकणों को बिखेर रहे हैं एवं शरदृतु के पूर्ण चन्द्रमा की शीतल किरणों से, जिसका मध्य भाग व्याप्त है, हमारे आराध्य देव के श्रीचरणों में विकीर्ण की गयी, इसप्रकार की यह कुसुमांजलि इस सभा में उपस्थित सभी सहृदय रसिकों के नेत्रों को आनन्द प्रदान करने वाली होवे तथा इस नाटक का अभिनय करने वाले, सभी अभिनेताओं को अभिनय कार्य में सिद्धि एवं नाटक के प्रणेता के लिए यशः–सिद्धि को देने वाली होवे।

विशेष–(i) प्रस्तुत नान्दी के अन्तर्गत नाटककार ने मंगलाचरण किया है, जिसमें भगवान् श्रीविष्णु के लिए विकीर्ण की गयी पुष्पांजलि द्वारा सभी सहृदयों के लिए आनन्द तथा नाटक का मंचन करने वाले अभिनेताओं के लिए सिद्धि की कामना की है।

(ii) सर्वप्रथम प्रयुक्त प्रस्तुत श्लोक में श्रीविष्णु के स्मरण से कवि का विष्णुभक्त होना सिद्ध होता है।

(iii) नाटक के आरम्भ में मंगलाचरण करने की पुरातन भारतीय परम्परा रही है, जिसे यहाँ कवि द्वारा नाटक की निर्विघ्न समाप्ति की कामना से किया गया है।

(iv) महाकवि का भावों के अनुरूप शब्दों का चयन तथा चित्रात्मक शैली दर्शनीय है। इस विशेषता को प्रस्तुत नाटक में सर्वत्र देखा जा सकता है।

(v) भ्रमरों को यहाँ अभी–अभी विकसित हुए, पुष्पों के मकरन्द का लालची चित्रित किया है, जो रोके जाने पर भी उसे विकीर्ण कर रहे हैं। इससे महाकवि का प्राणिविज्ञान विषयक ज्ञान भी अभिव्यक्त हुआ है।

(vi) प्रस्तुत श्लोक में 'मधुकर' पद से दुर्योधन के परिवार की तथा 'सम्भिन्नमुकुलः' से वनवास आदि के दुःखों से मुक्त हुए, पाण्डवों की एवं 'हरिचरणयोरंजलिः' पद से श्रीकृष्ण की शरण में प्राप्ति की सम्भावना के कारण उत्प्रेक्षालंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है, जिसका लक्षण इसप्रकार है– **सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्।**

(vii) उपर्युक्त श्लोक में शिखरिणी छन्द का प्रयोग हुआ है लक्षण इसप्रकार है– **रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी।**

(viii) मंगलाचरण के अन्तर्गत कवि ने कुल तीन श्लोकों का प्रयोग किया है। इसी को 'नान्दी' भी कहते हैं। नन्दयतीति नन्दः, √नन्द्+अच् (पचाद्यच् सूत्र से अच् प्रत्यय का प्रयोग) नन्द एवं नान्दः, √नन्द्+अण् (प्रज्ञादिभ्यश्च से अच्)+ङीप्–नान्दी। नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से मंगलाचरण को ही 'नान्दी' कहा जाता है, क्योंकि इसे करने से देवता प्रसन्न होते हैं–

"नन्दन्ति देवता यस्यां तस्मान्नान्दीति कीर्तिता।"

नाटक की निर्विघ्न समाप्ति के लिए नान्दी मंगलाचरण का पाठ किया जाता है। प्रस्तुत नाटक में इसे **नेपथ्य** में किया गया है कुछ नाटकों में नान्दी मंच पर आकर भी की जाती है।

(ix) पुष्पांजलि के ऊपर चन्द्रमा की किरणों के गिरने की बात से प्रस्तुत नाटक का रात्रि में मंचन होना भी अभिव्यंजित हो रहा है।

व्या.टि.[1]– (i) निषिद्धैः– नि+ √सिध्+क्त, तृतीया बहु वचन।

---

[1] .संक्षेप– व्याकरणात्मक टिप्पणी।

(ii) **लुलितमकरन्दः**–लुलितः संचालितः मकरन्दः यस्मात्, असौ।
(iii) **इन्दोः**– चन्द्रमसः, इन्दु+ षष्ठी विभक्ति, एक वचन।
(iv) **सम्भिन्नमुकुलः**– सम्भिन्नः मुकुलो यस्य असौ।
(v) **नयनयोः सुभगाः**, नयनसुभगाः, ताम्, नेत्रों के लिए सुन्दर।

संस्कृत व्याख्या– **पुष्पपरागपानलोभात् अभितः पततः तान्, हस्तोद्धूनादिना निवारयद्भिः, परिदृश्यमानैः भ्रमरैः मकरन्दम् आस्वादयितुम् अभिलषन्तः अपि हस्तविधूननव्यग्रतया यथेच्छम् तथा कर्तुम् अशक्य–त्वात् केवलम् आलुलितपुष्परसः, न आस्वादितरसः, इत्यर्थः, प्रफुल्ल–कुङ्मलः, अभ्यन्तरे चन्द्रमसः किरणैः लिप्तः इव, श्रीकृष्णभगवच्चरणा–रविन्दयोः, सादरम् प्रकीर्णः इष्टदेवतापूजोपकरणीभूतः, इत्यर्थः। एषः सुमनसाम् अंजलिः, सदसि स्थितानाम् जनानाम्, सहृदयानाम् इत्यर्थः, नयनानन्ददायिनीम् अस्माकम् कार्यसिद्धिम् च अभिनवप्रयोगसाफल्यम्, करोतु।**

(2) 'चन्द्रिका' कालिन्द्याः, इति– यमुना नदी के बालूमय तट पर रासलीला में अनुराग न रखने वाली, अश्रुओं से मलिन मुख से युक्त राधा मानपूर्वक रुदन करते हुए चल देती है, तब अपने मामा कंस के शत्रु भगवान् श्रीकृष्ण उसे मनाने के लिए, उसी के पदचिह्नों पर अपना पैर रखकर चलने लगते हैं। ऐसा करने से उनका शरीर साक्षात् राधा के स्पर्श के आनन्द का अनुभव करते हुए, पुलकित हो उठता है। इसप्रकार राधा भी श्रीकृष्ण के इस भाव को देखकर, अपने ऊपर उनके असीम प्रेम को समझते हुए, मुस्कुराकर उन्हें देखने लगती है। अन्त में कवि कहते हैं कि–'श्रीकृष्ण का सफल हुआ यह अनुनय अर्थात् मानिनी को मनाने का यह प्रकार आप सभी सभासदों को पुष्टि प्रदान करने वाला होवे।

विशेष–(i) राधा के चरणों के चिह्नों पर अपने पैरों को रखने से मानो श्रीकृष्ण को उसका साक्षात् समागम ही प्राप्त हो गया, जिसके कारण उनका शरीर पुलकित हो उठा, इसप्रकार के वर्णन से कवि की सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रेम–दृष्टि अभिव्यंजित हुई है।

(ii) उक्त श्लोक में कवि ने नमस्कारात्मक, वस्तुनिर्देशात्मक एवं आशीर्वादात्मक तीन प्रकार के मंगलाचरणों में से अन्तिम आशीर्वादात्मक मंगलाचरण का प्रयोग किया है।

(iii) प्रस्तुत श्लोक के पूर्वार्द्ध में द्रौपदी के क्रोध से रुदन करने तथा उत्तरार्द्ध में शत्रुवध के बाद, भीम द्वारा की गयी, उनके अनुनय व्यापाररूप कथावस्तु की अभिव्यंजना से प्रतीति होने के कारण **प्रेय अलंकार** का सौन्दर्य भी दर्शनीय है।

(iv) शार्दूलविक्रीडित छन्द का प्रयोग हुआ है, जिसका लक्षण इसप्रकार है– **सूर्याश्वैर्मस्जास्तताः स गुरवः शार्दूलविक्रीडितम्।।**

(v) प्रथम श्लोक के बाद प्रयुक्त 'अपिच' शब्द से अभिप्राय पूर्व श्लोक में की गयी 'नान्दी' के समाप्त न होने से ग्रहण करना चाहिए।

व्या. टि.– (i) **केलिकुपिताम्**–केल्यां कुपिता, ताम्।

(ii) रोम्णाम् उद्भूतिः रोमोद्भूतिः, उद्भूता रोमोद्‌तिः यस्य सः, तस्य

(iii) प्रसन्ना च असौ दयिता, प्रसन्नदयिता, तथा दृष्टः, तस्य।

(iv) अक्षुण्णः, न क्षुण्णः, इति, नञ् समास,

(v) **उत्सृज्य**– उत्+ √सृज्, क्त्वा (ल्यप् आदेश) छोड़कर।

संस्कृत व्याख्या– यमुनायाः सैकतप्रदेशेषु गोपक्रीड़ाविशेषे, अनुरागं विहाय, प्रयान्तीं केल्यां कुपिता तां क्रीड़ाक्रोधवतीम्, अश्रुभिः कलुषा रुदतीम्, इत्यर्थः, वृषभानुसुताम् राधिकाम् पश्चात् प्रस्थितस्य तत् चरणचिह्नधृतपदस्य उद्भूता रोम्णाम् उद्‌गतिः, आनन्दितया प्रियतमया राधिकया अवलोकितस्य, कंसस्य द्वेष्टिः इति, अखण्डितस्य समाराधनम्, युष्मान् सामाजिकान् पुष्टान् करोतु।

(3) **'चन्द्रिका'दृष्ट इति**– त्रिपुरदाह के अवसर पर भगवती पार्वती द्वारा प्रेमपूर्वक तथा घबराई हुई, दैत्यों की पत्नियों द्वारा अरे! सहसा यह क्या हो गया? इस भाव से भय तथा उद्वेगपूर्वक एवं शान्त चित्त वाले, तत्त्वज्ञानी वसिष्ठ आदि महर्षियों द्वारा करुणापूर्वक, शेष शायी भगवान् विष्णु द्वारा स्मितपूर्वक और नगर के दाह को देखकर भयभीत हुई तथा घबरायी हुई, अपनी स्त्रियों के भय तथा उद्वेग को शान्त करने वाले, अहंकारी दैत्य वीरों द्वारा शस्त्रग्रहण के साथ एवं

इन्द्रादि देवताओं द्वारा आनन्दपूर्वक देखे गए, भगवान् धूर्जटि महादेव, आप सभी सहृदय सामाजिकों की रक्षा करें।

विशेष–(i) आरम्भ से लेकर प्रस्तुत श्लोक पर्यन्त तीन श्लोकों में कवि ने 'नान्दी' अर्थात् मंगलाचरण का प्रयोग किया है।

(ii) महाकवि की श्रीकृष्ण, भगवान् विष्णु तथा धूर्जटि महादेव के प्रति आस्था एवं भक्ति की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

(iii) त्रिपुरादाह से अभिप्राय आततायी दुर्योधन के विनाश से भी ग्रहण किया जा सकता है।

(iv) पौराणिक मान्यता के अनुसार– प्राचीनकाल में **मय** नामक राक्षस ने अन्तरिक्ष में लोहे, चाँदी तथा स्वर्ण के नगरों का निर्माण किया, जिन्हें देवताओं के राजा इन्द्र भी भेदने में समर्थ न हो सके। तब असुरों द्वारा पीड़ित किए जाने पर, इन्द्र आदि देवता, उन तीनों पुरों के विनाश हेतु धूर्जटि भगवान् महादेव के पास गए, जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने इन तीनों नगरों का एक ही बाण की अग्नि से विनाश कर दिया, कवि ने यहाँ इसी कथा की ओर संकेत किया है।

(v) इसके अतिरिक्त यहाँ महादेव से अभिप्राय भीम से ग्रहण करते हुए, देवी पार्वती का अर्थ द्रौपदी, दैत्य स्त्रियों से दुर्योधन की स्त्रियों द्वारा भय और उद्वेगपूर्वक देखने, ऋषिभिः से अभिप्राय नारद आदि ऋषियों द्वारा करुणापूर्वक, विष्णु अर्थात् श्रीकृष्ण द्वारा किंचित् स्मितपूर्वक, दैत्यवीर अर्थात् घटोत्कचादि द्वारा गर्वपूर्वक एवं इन्द्रादि देवताओं द्वारा आनन्दपूर्वक देखा गया, इस नाटक का नायक भीमरूप धूर्जटि, आप सभी की रक्षा करे, यह अर्थ भी अभिव्यक्त हो रहा है।

व्या. टि.– (i) दृष्टः– √दृश्+क्त, देखा गया।

(ii) मयस्य मयासुरस्य पुरं मयपुरम्, तस्य दहनं तस्मिन्।

(iii) शान्तम् अन्तस्तत्त्वम् एव सारो बलं येषां तैः।

(iv) दैत्याश्च ते वीरा दैत्यवीराः, तैः, आनन्देन सहितं सानन्दम्

(v) उपशमितः वधूनां सम्भ्रमो यैः, ते।

संस्कृत व्याख्या–मयासुरस्य नगरदाहे, त्रिपुरदाह इत्यर्थः, श्लोके ऽस्मिन् धूर्जटिः भवान्यादिभिः पृथक्भावेन अवलोकितः। अतः केन केन

भावेन अयम् अवलोकितः, इति कथ्यते– भगवत्या पार्वत्या सस्नेहं दृष्ट यतोहि तया चिन्तितं यत्– अहं धन्या यत् अस्याः धूर्जटेः बल्लभा अस्मि इति। अनेन महासुरस्य इदं पुरं तृणवत् दग्धम्। असुरवधूभिः काल-त्रये असम्भवम् इदं कथम् आपतितम्? इति विचिन्त्य उद्वेगात् त्रासात् च अवलोकितः। ये च शान्तान्तःकरणबलसम्पन्नाः ऋषयः तैः वसिष्ठादि-महर्षिभिः सदयं दृष्टम्। नारायणेन च मन्दहाससहितं इच्छामात्रेणापि कर्तुं शक्यते, येन शिवेन तेन कथं अत्र ईदृशः प्रयासः कृतः, इति। साहंकारैः शस्त्रास्त्रजातं उद्यम्य शान्तनिजकान्तोद्वेगैः त्रिपुरदाहाव-लोकनेन उद्विग्नां स्वां स्वां वधूम् अवलोक्य आः सशस्त्रं अस्मासु शत्रुत उद्वेगस्य कथमिह सम्भवः, इति, विचिन्त्य असुरवीरैः दृष्टः। इन्द्रादिदेवै सहर्षं अवलोकितः, प्रबलारातिविनाशेन, इति। एतादृशः शिवः व सामाजिकान् रक्षतु, इति कवेरभिप्रायः।

(क) नान्दी– साहित्यदर्पणकार ने 'नान्दी' का लक्षण इसप्रकार किया है–

> **आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते।**
> **देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता।।6/24।**
> **मंगल्यशंखचन्द्राब्जकोककैरवशंसिनी।**
> **पदैर्युक्ताद्वादशभिरष्टाभि र्वा पदैरुत।। 6/25।।**

अर्थात् ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए, आठ या बारह पदों से युक्त, देव, द्विज, नृपादि को प्रसन्न करने वाली **"नान्दी"** कहलाती है। इसमें शंख, चन्द्र, कमल, चक्रवाक, कुमुद आदि मंगलवाची शब्दों का प्रयोग होता है। इसे प्रायः नाटक के प्रारम्भ में प्रयुक्त करते हैं।

(4) 'चन्द्रिका' श्रवणांजलीति– प्रस्तुत नाटक की कथा का मूल आधार महाभारत की कथा रही है। इसलिए महाकवि इस कथा के प्रणेता श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास की वन्दना करते हुए कहते हैं कि–

जो महाभारतीय कथा श्रवणरूपी अंजलि के दोने से पीने योग्य है, इसप्रकार के महाभारतरूप अमृतमय ग्रन्थ का, जिसने प्रणयन किया है, ऐसे रजोगुण एवं तमोगुण से पूर्णतया रहित उन श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यास भगवान् को मैं प्रणाम करता हूँ।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक में कवि की वेदव्यास भगवान् के प्रति श्रद्धाभाव की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

(ii) महाभारत कथा का श्रवण व्यक्ति के लिए श्रेयष्कर है, क्योंकि इसमें अमृतमयी कथा का निबन्धन किया गया है। इसीलिए उसी कथा को आधार बनाकर निर्मित प्रस्तुत नाटक भी दर्शनीय है, इस भाव की अभिव्यंजना हो रही है।

(iii) प्रस्तुत श्लोक में आर्या छन्द का प्रयोग हुआ है, जिसका लक्षण इसप्रकार है–

यस्याः पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पंचदश साऽऽर्या।।

(iv) सुनने वाले कानों के लिए यहाँ पर अंजलिरूपी दोने की कल्पना करने से कवि की उर्वरा कल्पना की अभिव्यंजना हो रही है।

(v) श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास को रजोगुण एवं तमोगुण से रहित अर्थात् केवल सतोगुण से युक्त बताने से विरोधाभास अलंकार का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है। लक्षण– **विरोधः सोऽविरोधेऽपि विरुद्धत्वेन यद्वचः।**

व्या. टि.– (i) **वन्दे**– √वन्द्+उत्तम पुरुष, एकवचन।

(ii) श्रवणे एव अंजलिपुटं, श्रवणांजलिपुटम्, तेन पेयम्।

(iii) न रागः अरागः, तम् अरागम्, न कृष्णः अकृष्णः, तम्।

(iv) द्वीपम् अयनं जन्मभूमिः यस्य, यः द्वीपायनः, द्वीपायनः एव द्वैपायनः, कृष्णः चासौ द्वैपायनः, कृष्णद्वैपायनः। भगवान् वेदव्यास।

संस्कृत व्याख्या–यः कृष्णद्वैपायनः श्रवणे एव अंजलिपुटम्, तेन पेयम्, कर्णहस्तसम्पुटश्राव्यम् इत्यर्थः, महाभारताख्यं सुधासदृशं विरचितवान्, तथाविधम् रजोगुणरहितम्, अकृष्णं तमोरहितम्, एतादृशं तम् अहम् सूत्रधारः प्रणमामि वन्दनां करोमि इत्यर्थः।।4।।

(5) 'चन्द्रिका' कुसुमांजलिरिति– वेणीसंहार नाटक के अभिनय को देखने के लिए आए हुए, सहृदय सामाजिकों को सम्बोधित करते हुए सूत्रधार कहता है कि–

आप सभी सम्माननीय सभासदों से मेरी एक ही करबद्ध प्रार्थना है कि आज मैं महाकवि भट्टनारायण विरचित, नयी शैली में

निबद्ध, पुष्पों की अंजलि के समान, इस नाटक के मंचन के लिए, आप लोगों की सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। यदि आपको इसमें थोड़े भी गुण प्रतीत हों तो उन्हें ठीक उसीप्रकार स्वीकार करने का अनुग्रह करें, **जैसे–** भौंरे पुष्पों में मधु की एक बिन्दु को भी ग्रहण कर लेते हैं।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक में कवि के विनम्रभाव की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है, जिससे उनका व्यक्तित्व उभर कर आया है।

(ii) इस नाटक को कवि ने दूसरी पुष्पांजलि, इसलिए कहा है, क्योंकि प्रथम पुष्पांजलि तो महाभारत ग्रन्थ ही है।

(iii) सभासदों के प्रति पुष्पों की अंजलि बिखेरने के कारण, उनके प्रति कवि का श्रद्धा एवं आदर भाव भी अभिव्यक्त हुआ है।

(iv) आर्या छन्द का प्रयोग हुआ है। लक्षण पूर्ववत्।

(v) मधुलिह इव में उपमालंकार का प्रयोग हुआ है।

व्या. टि.– (i) **भजत–** √भज्+लट्, मध्यम पुरुष, बहुवचन।

(ii) गुणानाम् लेशः, गुणलेशः, तान्, गुणों के लेशमात्र को।

संस्कृत व्याख्या– एषः शीघ्रमेव अभिनीयमानः काव्यबन्धः रचना इति, इदं नाटकम् इत्यर्थः, विलक्षणप्रकारः पुष्पानाम् अंजलिः इव अस्ति, यः सामाजिकानां समक्षम् उपस्थाप्यते, इति। अनेन एतस्मिन् गुणानां यदि लेशोऽपि वर्तते, तम् भ्रमरः इव स्वीकरोतु भवान्। यथा भ्रमरः पुष्पे कणमपि परागस्य गृह्णाति, तथैव, इत्यर्थः। यदि अस्मिन् नाटके स्वल्पोऽपि गुणो स्यात्, तर्हि भवद्भिः सोऽपि ग्राह्य एव इति भावः।

इसके बाद सूत्रधार ने महाकवि को **मृगराज** का उपाधिधारी बताते हुए, सहृदय सामाजिकों से यही निवेदन किया है कि हम लोग इस नाटक का अभिनय आप महानुभावों के समक्ष करने के लिए तैयार हैं, इसलिए (1) आप सभी इसे कवि के परिश्रम को दृष्टि में रखकर अथवा (2) इस नाटक में निबद्ध वीररस की कथा के गौरव को स्वीकार करते हुए या फिर (3) इस नए नाटक को देखने की उत्कण्ठा अर्थात् कौतूहल से इसके अभिनय को देखने की कृपा करें।

नेपथ्य– अभिनय करने से पूर्व एवं मध्य में वेष परिवर्तन करने के लिए निर्धारित स्थान को 'नेपथ्य' संज्ञा प्रदान की गयी है। यह प्रायः

मंच के पीछे अथवा उसके दाएँ, बायीं ओर होता है। इसका निर्माण पर्दे के पीछे भी सुविधा की दृष्टि से कर लिया जाता है।

'नेपथ्यं स्याज्जवनिका रंगभूमिः प्रसाधनम्।' अमरकोष

अथवा **कुशीलवकुटुम्बस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते।**

आजकल इसे ''ग्रीनहाउस'' भी कहा जाता है। नेपथ्य के सम्बन्ध में इन्हीं भावों की अभिव्यक्ति हमें अन्यत्र भी उपलब्ध होती है–

नेपथ्यं तु प्रसाधनं रंगभूमौ वर्षभेदे, इति। हैमः।

आकल्पवेषो नेपथ्यं प्रतिकर्म प्रसाधनम्। इत्यजयः।

कुल मिलाकर इतना ही अभिप्राय है कि नाट्यकर्म में रंगमंच के आसपास ही उसी से जुड़ा हुआ 'नेपथ्य' नामक स्थान होता है, जिसमें अभिनय करने वाले कलाकार अपनी वेषभूषा को धारण करते हैं एवं 'मेकअप' आदि को सम्पन्न करते हैं, जिस कथावस्तु का मंच पर प्रदर्शन नहीं किया जाता है, केवल दर्शकों के लिए सूचित करना आवश्यक होता है, उसे इसी स्थान से कोई पात्र बोलता है, जिसे नाटक में **'नेपथ्ये'** पद द्वारा कहा जाता है। प्रस्तुत नाटक में 'नान्दी' का प्रयोग 'नेपथ्य' से ही किया गया है।

(6) 'चन्द्रिका'सत्पक्षा इति– सूत्रधार एवं पारिपार्श्विक के मध्य वार्तालाप के प्रसंग में सूत्रधार शरदृऋतु को लक्ष्य करके कहता है कि– श्रेष्ठ पंखों वाले, मधुर वाणी में बोलने वाले, अपने उड़ने से सभी दिशाओं को अलंकृत करने वाले, मद से मस्त होकर आकाश में विहार करने वाले, ये हंस शरदृऋतु के कारण 'मानसरोवर' से भूतल पर आ रहे हैं।

विशेष–(i) वर्षा ऋतु में हंस मानसरोवर पर चले जाते हैं और उसके समाप्त होने पर, शरदृऋतु में फिर से पृथ्वी पर आ जाते हैं, यहाँ कवि ने इसी ओर संकेत किया है, जिससे कवि का ऋतुविज्ञान के साथ प्राणिविज्ञान भी अभिव्यंजित हुआ है।

(ii) प्रस्तुत श्लोक में श्लेष अलंकार के चमत्कार से दो अर्थों की प्रतीति हो रही है। दूसरा दुर्योधन के पक्ष में अर्थ इसप्रकार है–

श्रेष्ठ सेना एवं शूरवीरों से युक्त, मधुर वाणी का प्रयोग करने वाले, सभी दिशाओं को अपने अधीन करने वाले, मदरूप अहंकार के कारण उद्दण्ड व्यवहार करने वाले, दुर्योधन आदि धृतराष्ट्र के पुत्र युद्ध में दुर्दैववश पृथ्वी पर गिर रहे हैं अर्थात् मृत्यु को प्राप्त हो रहे हैं।

(iii) 'धार्तराष्ट्र'[1] पद से यहाँ दुर्योधनादि धृतराष्ट्र के पुत्रों तथा काली चोंच तथा काले चरणों वाले विशेषप्रकार के हंसों से अर्थ ग्रहण करना चाहिए।

(iv) आर्या छन्द का सुन्दर प्रयोग दर्शनीय है।

व्या. टि.–(i) **निपतन्ति**– नि+ √पत्+लट्, प्रथमपुरुष, बहुवचन।

(ii) प्रसाधिताः प्रकर्षण साधिताः पूरिताः आशाः कामनाः यैः ते।

(iii) मदेन अहंकारेण अतिशयोद्दण्डतायुक्तानि कार्याणि येषां ते

(iv) **सत्पक्षाः**– श्रेष्ठः पक्षः येषां ते, श्रेष्ठसहाययुताः।

संस्कृत व्याख्या– (शरदपक्षे) **शोभनोभयपक्षसम्पन्नाः, मधुरालापाः, अलंकृताखिलदिग्विभागाः, मदेन चंचलव्यापारसम्पन्नाः, कृष्णचंचुचरणाः हंसविशेषाः, राजहंसेभ्यः किंचिदूनाः, इत्यर्थः शरदृतोः माहात्म्यात् मानसं नाम सरो विहाय भूमौ आगच्छन्ति।**

(दुर्योधन पक्षे) **सत् श्रेष्ठः पक्षः येषां ते श्रेष्ठसहाययुक्ताः, मधुरभाषिणः, प्रकर्षेण पूरिताः आशाः कामनाः यैः ते, अहंकारेण अतीव उद्दण्डव्यवहारसम्पन्नाः, ईदृशाः धृतराष्ट्रसुताः दुर्योधनादयः भूतलपृष्ठे पतनशीला भवन्ति, इति।**

(7) 'चन्द्रिका' निर्वाणिति– पारिपार्श्विक को सम्बोधित करते हुए सूत्रधार कहता है कि– जिस अमंगल की तुम बात कर रहे हो, वह तो सम्पूर्ण अमंगल सुलह कराने के लिए, स्वयं दूतभाव को स्वीकार करने वाले, भगवान् श्रीकृष्ण ने ही दूर कर दिया है। इसलिए सन्धि होने के कारण शत्रुओं के शान्त हो जाने से, जिनकी वैररूपी अग्नि शान्त सी हो गयी है। इसप्रकार के पाण्डव श्रीकृष्ण के साथ

---

[1]. राजहंसास्तु ते चंचुचरणैर्लोहितैः सिताः।
मलिनैर्मल्लिकाख्यास्ते धार्तराष्ट्राः सितेतरैः।। अमरकोश

आनन्द को प्राप्त करें और प्रेमभाव के साथ अपने अधीन करने वाले, दुर्योधन आदि कौरव लोग भी अपने सेवकजनों के साथ सुख से रहें।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक में सूत्रधार ने सम्भावना व्यक्त की है कि स्वयं वासुदेव श्रीकृष्ण के सन्धि प्रस्ताव ले जाने से, अब कौरव पाण्डवों के बीच सुलह हो जाएगी तथा ये दोनों ही सुखी हो सकेंगे।

(ii) नाट्यशास्त्र में सूत्रधार द्वारा पारिपार्श्विक को 'मारिष' सम्बोधन का विधान किया गया है।

(iii) यहाँ प्रयुक्त 'स्वस्थाः' पद में श्लेष अलंकार के चमत्कार से दो अर्थों की प्रतीति हो रही है। **प्रथम**, स्वस्थ रहें। **द्वितीय**, स्वर्ग में स्थित अर्थात् मृत्यु को प्राप्त हों। श्लेष अलंकार का लक्षण इसप्रकार है। लक्षण– **श्लिष्टैः पदैरनेकार्थाभिधाने श्लेष इष्यते।**

(iv) उक्त दूसरे अर्थ से कौरवों के विनष्ट होने की नाटक की कथावस्तु की भावी सूचना भी दी गयी है।

(v) वसन्ततिलका छन्द का सुन्दर प्रयोग हुआ है। लक्षण इसप्रकार है– **उक्ता वसन्तलिलका तभजा जगौ गः।**

व्या. टि.– (i) **भवन्तु**–√भू+लोट्, प्रथमपुरुष, बहुवचन।

(ii) **नन्दन्तु**– √नन्द्+लोट्+प्रथम पुरुष, बहुवचन, प्रसन्न रहें।

(iii) निर्वाणं शान्तं वैरं दहन इव इति निर्वाणवैरदहनाः।

(iv) प्रसाधिता भूः यैः ते तथाभूताः, क्षतः विग्रहः येषां ते।

(v) स्वर्गे तिष्ठन्ति, इति, स्वस्थाः, स्वेन सुखेन तिष्ठन्ति, इति।

संस्कृत व्याख्या– शत्रूणां सन्धिना शान्तिं प्रापणात्, वैररूपाग्नयः शान्ताः संजाताः, सन्धिकारणेन शत्रुभावापगमात् तद्विषयकविद्वेषवृत्त्याः प्रकर्षेण शान्तिकारणेन, पाण्डुपुत्राः युधिष्ठिरादयः, कृष्णेन सह प्रसीदन्तु, शोणितेन अलंकृताः भूः, येषां तादृशाः नष्टाकृतयः परिजनैः सहिताः कुरुनन्दनाः दुर्योधनादयः सकुशलिनः स्युः।

(8) 'चन्द्रिका'लाक्षागृहेति– सूत्रधार के कथन के अभिप्राय को कौरवों के 'स्वस्थ' होने रूप में ग्रहण करते हुए, नाटक के नायक का नेपथ्य में प्रवेश कराया गया है। वहीं से भीम क्रोधपूर्वक कहता है कि–

हे दुरात्मन्, नीच नट, मेरे जीवित रहते हुए धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन आदि भला स्वस्थ कैसे रह सकते हैं? क्योंकि उन्होंने पाण्डवों के प्रति अनेक प्रकार से अपकार किया है, जिनमें **प्रथम** तो लाक्षागृह में आग लगाकर पाण्डवों को मारने का प्रयास किया गया। **द्वितीय,** भोजन में विष मिलाकर इनके प्राणों को हानि पहुँचाने का निन्दनीय कृत्य किया। **तृतीय,** जुए में कपटपूर्वक हम लोगों का सब कुछ धनादि ही छीन लिया और **चतुर्थ,** जिन्होंने राजाओं से भरी हुई सभा में पांचाल राज की पुत्री द्रौपदी के केशों को पकड़कर, वस्त्र खींचते हुए, उसे निर्वसना करने का घृणित कार्य किया है।

विशेष–(i) नाटक के नायक भीम की प्रबल क्रोधाभिव्यक्ति हुई है। वस्तुतः युधिष्ठिर आदि तो सन्धि करके शान्ति के पक्षधर हैं। एकमात्र भीम ही कौरवों के दुष्कृत्यों से अत्यधिक क्रोधित है और दुर्योधन द्वारा किए गए अपकारों का बदला लेने के लिए व्याकुल है।

(ii) 'काकु' के माध्यम से यहाँ प्रतीत हो रहा है कि 'मेरे जीवित रहते हुए कौरवों का विनाश सुनिश्चित है।' इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है।

(iii) भीम की उक्तियों में प्रायः सर्वत्र वीररस का परिपाक हुआ है। प्रस्तुत श्लोक उदाहरणरूप में द्रष्टव्य है।

व्या. टि.– (i) **प्रहृत्य**– प्र+ √हृ+क्त्वा (ल्यप्)।

(ii) **आकृष्य**– आ+ √कृष्+क्त्वा (ल्यप्) खींचकर।

(iii) लाक्षाप्रधानं गृहं लाक्षागृहम्, तस्मिन् अनलः।

(iv) वित्तानां निचयाः वित्तनिचयाः, तेषु, धनों का संग्रह।

(v) पाण्डवानाम् वधूः, पाण्डववधूः, पाण्डवों की वधू द्रौपदी।

संस्कृत व्याख्या– धृतराष्ट्रपुत्राः दुर्योधनादयः, जतुगृहाग्निविष–मिश्रितान्नेन कपटद्यूतादिभिश्च द्यूतक्रीड़ार्थम् अस्माकं आह्वानेन इत्यादिविविधैः कार्यैः, अस्मान् प्राणेषु धनसंचयेषु च प्रहारं कृत्वा अपि एते कौरवाः कथं स्वस्थाः भवितुं शक्नुवन्ति, यावदहं जीवामि, तावत्तु नैव एते स्वस्थाः भवितुं शक्नुवन्ति इति अभिप्रायः। एतेषां मरणं तु सुनिश्चितमेव नैव विषयेऽस्मिन् संशयलेशोऽपि वर्तते, इत्यर्थः।

प्रस्तुत प्रस्तावना में कवि ने कथावस्तु को आगे बढ़ाने के लिए अनुज सहदेव एवं नाटक के नायक भीम का प्रवेश कराया है।

(अ) प्रस्तावना– इसे नाटक का 'आमुख' या 'स्थापना' भी कहा जाता है। इसके अन्तर्गत सूत्रधार, पारिपार्श्विक, नटी अथवा विदूषक आपस में वार्तालाप करते हुए, नाटक की कथावस्तु की ओर संकेत करते हैं। यहाँ यह वार्तालाप सूत्रधार और पारिपार्श्विक के मध्य हुआ है, जिसके परिणामस्वरूप नाटक का नायक भीमसेन प्रवेश करता है। उसके वार्तालाप द्वारा सामाजिकों को इस नाटक की पूर्व में घटित घटनाओं की जानकारी प्राप्त होती है, जिससे इसके अनन्तर नाटक देखने में उन्हें आनन्द की अनुभूति प्रारम्भ हो जाती है।

स्थाप्यते प्रस्तूयते वा कथावस्तु अस्याम्।

साहित्यदर्पणकार ने इसे इसप्रकार परिभाषित किया है–

नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते।
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनाऽपि सा।[1]

(9) 'चन्द्रिका' धृतराष्ट्रस्येति– नाटक की प्रस्तावना के अनन्तर नायक भीम तथा उसका छोटा भाई सहदेव परस्पर वार्तालाप करते हैं, जिसके अन्तर्गत सहदेव भीम से क्रोधपूर्वक कहता है कि–

हे समादरणीय, यदि हमारे बड़े भ्राता धर्मराज युधिष्ठिर हम भाइयों को युद्ध करने से न रोकते तो इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है कि पद–पद पर हमारा अपकार करने वाले, दुर्योधन आदि कौरवों को कोई भी भाई सहन करने में समर्थ नहीं होता अर्थात् निश्चय ही उन्होंने अपने अपमानों का बदला ले लिया होता।

---

[1]. साहित्यदर्पण–6/31, 32 ।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक से सहदेव का क्रोधी व्यक्तित्व भी उभरकर आया है। साथ ही, युधिष्ठिर के प्रति उसकी आदरभावना भी अभिव्यक्त हुई है।

(ii) सहदेव ने भीम को इस बात के लिए आश्वस्त किया है कि आपके सभी भाई कौरवों से बदला लेने के लिए कृतसंकल्प हैं, केवल बड़े भाई युधिष्ठिर की आज्ञा प्राप्त होने की ही देर है।

(iii) पथ्यावक्त्र छन्द का प्रयोग हुआ है। लक्षण इसप्रकार है–

युजोर्जेन सरिद्भर्तुः पथ्यावक्त्रं प्रकीर्तितम्।

(iv) काव्यलिंग अलंकार का प्रयोग दर्शनीय रहा है। लक्षण–

हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिंगमुदाहृतम्।

व्या. टि.– (i) **स्यात्**– √अस्+विधिलिङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(ii) **क्षमेत**– √क्षम्+विधिलिङ्, आत्मने, प्रथमपुरुष, एक वचन।

(iii) **कृतवैरान्**– कृतं वैरं यैः ते, कृतवैराः तान्।

(iv) अनु पश्चात् जातः, इति अनुजः।

संस्कृत व्याख्या– प्रतिपदं प्रत्येकावसरे इत्यर्थः, कृतविरोधात् धृतराष्ट्रस्य पुत्रान् दुर्योधनादीन्, यदि धर्मराजयुधिष्ठिरः प्रतिषेधकः न भवेत्, तर्हि भवतः कः कनिष्ठो भ्राता, सहितुम् उद्यतोऽस्ति, नैव कोऽपि इत्यर्थः, तव भ्राता सर्वे समर्थाः सन्ति, कौरवेण सह अपमानस्य प्रतिकारः कर्तुं केवलं बाधा तु युधिष्ठिरस्य आज्ञा वर्तते, अन्या काऽपि न।

(10) 'चन्द्रिका'प्रवृद्धमिति– भीम अपने बड़े भाई युधिष्ठिर को भी दुर्योधन से प्रतिकार लेने में बाधा को स्वीकार नहीं करता है, इसीलिए वह सहदेव से कहता है कि इसीकारण मैं आज से ही आप लोगों से एक दिन के लिए स्वयं को अलग किए लेता हूँ और इस सम्बन्ध में हेतु प्रस्तुत करते हुए कहता है कि–

कौरवों के साथ मेरी शत्रुता तो बाल्यकाल से ही है। इसमें न तो धर्मराज युधिष्ठिर कारण हैं और न ही अर्जुन ही कोई कारण है। साथ ही, न तुम ही उनके साथ होने वाली मेरी शत्रुता में कारण हो। इसलिए यह भीम, जरासन्ध के जुड़े हुए उरःस्थल के समान, आप लोगों द्वारा कौरवों के साथ किए गए, सन्धिपत्र को तोड़ता है, अब तो

केवल आप लोग ही इसे जोडते रहिए। मेरी इस सम्बन्ध में लेशमात्र भी सहमति नहीं है।

विशेष–(i) महाभारत काल में बृहद्रथ नाम के एक राजा ने यज्ञ में बचा हुआ, पुरोडाश भाग अपनी दो रानियों को खिलाया, जिसके परिणामस्वंरूप उन दोनों को आधे–आधे शरीर वाला बालक उत्पन्न हुआ, जिसे 'जरा' नामक राक्षसी द्वारा जोड़ दिया गया। इसलिए इसका नाम **जरासन्ध** पड़ा। बाद में, भीम ने श्रीकृष्ण का संकेत प्राप्त करके, जुड़ी हुई, इसकी सन्धियों को फिर से चीरकर इसे मार डाला। नाटककार ने यहाँ इसी कथा की ओर संकेत किया है।

(ii) भीमसेन की आन्तरिक वेदना तथा क्रोध दोनों की ही सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

(iii) अर्जुन के लिए किरीटी, फाल्गुन, पार्थ, सव्यसाची तथा धनंजय विशेषणों का प्रयोग महाभारत आदि ग्रन्थों में किया गया है।

(iv) शिखरिणी छन्द का प्रयोग हुआ है। लक्षण इसप्रकार है–

रसैः रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी।

(v) भीम द्वारा कौरवों के साथ सन्धि तोड़ने की उपमा जरासन्ध की सन्धियों को तोड़ने के साथ दी गयी है, इसलिए उपमालंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

व्या. टि.– (i) **भवति**– √भू+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(ii) **किरीटी**– किरीटं नाम धनुः अस्ति, अस्य इति, सः, अर्जुन।

(iii) **विघटयति**– वि+ √घट्+णिच्+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(iv) **घटयत**– √घट्+णिच्+लोट्, मध्यम पुरुष, बहुवचन।

(v) **प्रवृद्धम्**– प्र+ √वृध्+क्त, बढ़ा हुआ।

संस्कृत व्याख्या– **शिशुकालाद् एव आरभ्य दुर्योधनादिभिः कुरुभिः सह यत् वैरम् मम वृद्धिगतम् आसीत्, तस्मिन् वैरे ज्येष्ठत्वात् पूज्यो धर्मराजयुधिष्ठिरः न कारणम् अस्ति, नैव च विषयेऽस्मिन् अर्जुनः कारणम् विद्यते, नैव युवाम् नकुलसहदेवौ खलु कारणम्। अनेन कारणेन अहम् जरासन्धस्य राज्ञः संयोजनेन पुनः प्ररूढ़म् वक्षःस्थलम् इव सन्धानं**

विच्छेदयामि, यूयम् सर्वे एषां सन्धिं संयुक्तं क्रियताम्। नैव विषये युष्माभिः सह अहम् अस्मि, इत्यर्थः।

(11) 'चन्द्रिका' तथाभूतामिति– भीम की बात सुनकर सहदेव ने कहा कि आपकी बात को सुनकर कदाचित् बड़े भाई युधिष्ठिर खिन्न हो जाएँगे? तब इसके उत्तर में भीम कहता है कि– कौरवों की राजसभा में पांचाल पुत्री द्रौपदी के वस्त्रों का हरण करने तथा उनके बालों को पकड़ कर खींचने को देखकर, तो उन्हें खेद नहीं हुआ अर्थात् क्रोध नहीं आया, वन में बहेलियों के साथ वृक्षों की छाल पहनकर वर्षों तक हमने निवास किया, उसका कटु अनुभव करके भी उन्हें खिन्नता नहीं हुई।

उसके बाद राजा विराट के आवास स्थल पर रसोइए आदि के अनुचित कार्यों को करते हुए, गुप्तरूप से हम लोगों को निवास करना पड़ा, तब भी उन्हें क्रोध नहीं आया। आज जबकि मैं अपने अपमान से दुःखी होने से क्रोधित हो रहा हूँ, तब भी महाराज युधिष्ठिर मेरे ऊपर ही खिन्न होंगे, कौरवों पर नहीं?

विशेष–(i) भीम का अभिप्राय है कि इस सम्बन्ध में क्रोधित होने पर मैं महाराज युधिष्ठिर के क्रोध का पात्र नहीं हूँ, अपितु उन्हें तो कौरवों के ऊपर ही क्रोध करना चाहिए।

(ii) महाकवि की तार्किक शैली की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है तथा भीम की गहनतम आन्तरिक पीड़ा भी प्रदर्शित हुई है।

(iii) प्रस्तुत श्लोक में कवि ने तीन बातों का विशेषरूप से उल्लेख किया है। **प्रथम,** द्रौपदी के बालों को पकड़कर, चीरहरण करने का दुःसाहस करना **द्वितीय,** वनवास काल में वनचरों के साथ वल्कलवस्त्र धारण करके बारह वर्षो तक निवास करना **तृतीय,** राजा विराट के आवास में पहचाने जाने के डर से अलग–अलग वेषों में छिपकर रहना।

(iv) उक्त तीनों ही बातें पाण्डवों के स्वाभिमान को ठेस पहुँचाने वाली थीं, जिनसे युधिष्ठिर को भी क्रोध आना चाहिए था, किन्तु ऐसा नहीं हुआ और यदि इन सभी बातों को याद करके

आज क्रोधित हो रहा हूँ तो उन्हें मुझ पर क्रोध ही आएगा, जो लेश मात्र भी उचित नहीं है, उन्हें तो कौरवों पर ही क्रोध करना चाहिए।

(v) शिखरिणी छन्द का प्रयोग हुआ है। लक्षण पूर्ववत्।

(vi) 'सार्धम्' पद के योग में 'व्याधैः' पद में तृतीया विभक्ति का प्रयोग 'सहयुक्तेऽप्रधाने' सूत्र से हुआ है।

व्या. टि.– (i)**दृष्ट्वा–** √दृश्+क्त्वा (ल्यप्) देखकर।

(ii) **भजति–** √भज्+लट्, प्रथम पुरुष, एक वचन।

(iii) **निभृतम्–** नि+√भृ+क्त, गोपनीय रूप से।

(iv) पांचालानां जनपदानां राजा तस्य तनया ताम्।

(v) **वल्कलधरैः–** वल्कलं धरन्ति, ये ते इति वल्कलधराः, तैः।

संस्कृत व्याख्या– राजपरिषदि तत् अवस्थां पांचालतनयां द्रुपदसुतां विलोक्य, वल्कलवस्त्रधारिभिः किरातैः साकम् अरण्ये दीर्घकालं यावत् उषितम्, इति दृष्ट्वा, विराटनृपतेः निवासस्थाने अयुक्तः उद्योगः तेन गुप्तम् यथा स्यात् तथा कंकनाम्ना युधिष्ठिरः, सूदनाम्ना भीमसेनः पाचनम्, वृहन्नलानाम्ना अर्जुनो गीतादिप्रशिक्षणं कृतम्, ग्रन्थिकनाम्ना नकुलोऽश्वपालनम्, अरिष्टनाम्ना सहदेवोगोरक्षणम् तथा सैरन्ध्रीनाम्ना, द्रौपदी सेवाकार्यम् अकरोत्, एतदपि अवलोक्य, अस्माकम् अग्रजः महाराजयुधिष्ठिरः दुर्योधनादिषु कोपम् न सेवते, मयि खलु खिन्नताम् भजति, करोतीत्यर्थः।।11।।

(12) 'चन्द्रिका'युष्मदिति– सहदेव को सम्बोधित करके नाटक का नायक भीम क्रोधपूर्वक कहता है कि तुम जाकर अपने भाई युधिष्ठिर से कह देना कि– आपके द्वारा की गयी सन्धि को तोड़कर भले ही मैं इससे होने वाले भयंकर पाप में आकण्ठ डूब जाऊँ। साथ ही, मर्यादा का पालन करने वाले, आपके शेष भाइयों में भी निन्दा का पात्र क्यों न बन जाऊँ। इस सबकी मुझे लेशमात्र भी परवाह नहीं है, किन्तु फिर भी क्रोध से ऊपर की ओर उठाई हुई, रक्त से लाल गदा को घुमाकर, सभी कौरवों का पूर्णरूप से विनाश करता हुआ मैं, आज

एक दिन के लिए न तो आपका आज्ञाकारी हूँ और न ही इस दिन के लिए आप मेरे बड़े भाई हैं।

विशेष–(i) भीम के क्रोध की चरमसीमा प्रदर्शित हुई है, जिसमें उसने अपने समादरणीय बड़े भाई युधिष्ठिर की आज्ञा मानने के लिए भी स्पष्टरूप से मना कर दिया है।

(ii) प्रस्तुत श्लोक में भीम ने कौरवों को नष्ट करने के लिए केवल एक दिन का समय ही निर्धारण किया है, इससे उसका आत्मविश्वास एवं बलातिशय भी अभिव्यक्त हुआ है।

(iii) कौरवों के उन्मूलनरूप कार्य के हेतु गदा को घुमाना तथा निन्दा की प्राप्ति के हेतु बड़े भाई की आज्ञा का पालन न करना के कथन करने से परिकर अलंकार का प्रयोग हुआ है, जिसका लक्षण इसप्रकार है– **कार्याकार्यस्य हेतूनामुक्तिः परिकरो मतः।**

(iv) प्रस्तुत श्लोक में शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का प्रयोग दर्शनीय है। **लक्षण– सूर्याश्वैर्मस्जास्तताः स गुरवः शार्दूलविक्रीडितम्।।**

व्या. टि.– (i) **स्थितम्**– √स्था+क्त, स्थित हुआ।

(ii) **प्राप्ता**– प्र+ √आप्+क्त+टाप्, प्राप्त हुई।

(iii) **असि**– √अस्+लट्, मध्यम पुरुष, एकवचन, हो।

(iv) क्रोधोल्लासिता शोणितारुणगदा यस्य सः तस्य।

(v) अनु पश्चात् जायन्ते, इति, अनुजाः, छोटे भाई।

संस्कृत व्याख्या– युष्माकं यत् शासनं तस्य लंघनम्, अनेन प्रकारेण भवदाज्ञोल्लंघननाममहापातके मया भीमेन निमग्नेन जाते सति, स्थितिः मर्यादा अस्ति येषां ते, आज्ञापालनरूपमर्यादावताम् कनिष्ठ-भ्रातॄणाम् अन्तरे निन्दा स्वीकरणे सत्यपि, क्रोधेन प्रहर्तुम् उल्लासिता रक्तेन अरुणा या गदा तस्य दुर्योधनादीन् उन्मूलयतः मम भीमस्य कृते अस्मिन् एके दिने नैव भवान् ज्येष्ठः भ्राता अस्ति, अहम् च नैव ते आज्ञापालकः भ्राता अस्मि, इति।

(13) 'चन्द्रिका'यदिति– जब भीम को सहदेव से यह पता चलता है कि महाराज युधिष्ठिर केवल पाँच गाँवों के बदले ही कौरवों के साथ सन्धि करने के लिए तैयार हो गए हैं तो अपेक्षाकृत अधिक

क्रोध प्रदर्शित करते हुए, पुनः सहदेव से कहते हैं कि– ऐसा प्रतीत होता है कि भ्राता युधिष्ठिर का जो अत्यधिक प्रचण्ड क्षत्रिय विषयक तेज था, उसे भी उन्होंने पासों के साथ ही शत्रुओं को जुए में हरा दिया है।

विशेष–(i) महाराज युधिष्ठिर द्वारा पूर्व में खेले गए जुए की अप्रत्यक्षरूप से भर्त्सना की गयी है।

(ii) मात्र पाँच गाँवों के बदले सन्धि की बात को सुनकर भीम की गहन मानसिक वेदना की अभिव्यक्ति हुई है।

(iii) पथ्यावक्त्र छन्द का प्रयोग हुआ है, लक्षण पूर्ववत्।

व्या. टि.– (i) भुवः पतिः भूपतिः, तस्य, राजा

(ii) क्षत्त्रस्य इदम्, इति क्षात्रम्, क्षत्रिय से सम्बन्धित।

(iii) दीव्यति, इति, तेन तस्मिन् काले तदा।

संस्कृत व्याख्या– भीमः सहदेवं प्रति कथयति यत्– एतत् प्रतीयते यत् अस्य महाराज्ञः युधिष्ठिरस्य यत् क्षात्रं तेजः आसीत्, तदपि अनेन अक्षैः दीव्यता निश्चयमेव द्यूतेषु हारितम् अस्ति। क्षत्रियतेजसः अपि सम्प्रति अभावो वर्तते, युधिष्ठिरे, इति भावः।

(14) 'चन्द्रिका'यद्वैद्युतिति– अश्रुपूरित नेत्रों से युक्त द्रौपदी को भीम के पास आती हुई देखकर, सहदेव सम्भावना करते हुए, अपने मन में कहता है कि– यह तो अत्यधिक कष्ट की बात है कि इस समय अत्यन्त क्रोधित बड़े भ्राता भीमसेन में विद्युत् के समान, जो तेज उत्पन्न हुआ है, यह द्रौपदी उनके पास जाकर उनके क्रोध को ठीक उसी प्रकार अत्यधिक बढ़ा देगी, जिसप्रकार वर्षाऋतु में बिजली की चमक वर्षा के वेग को और भी अधिक बढ़ा देती है।

विशेष–(i) महाकवि का मनोविज्ञान विषयक ज्ञान के साथ, वर्षा के गहनज्ञान के कारण ऋतुविज्ञान भी अभिव्यंजित हुआ है।

व्या. टि.– (i) **वैद्युतम्**– विद्युत इदं वैद्युतम्।

(ii) अर्तुं सदाचरितुम्, योग्यः, इति, आर्यः,भीम के लिए प्रयुक्त।

संस्कृत व्याख्या– अस्मिन् क्षणे कुपिते आर्ये भीमसेने विद्युत् प्रभवम् इव यत् ज्योतिः तेजः, इति, समुत्थितम् अस्ति, तत् ज्योतिः इयं

पुरतः आगच्छन्ती द्रौपदी वर्षाकालः इव निश्चयमेव संवर्द्धयिष्यति अर्थात् **वर्षाकालः विद्युतं समुद्दीपयति तथैव इयं द्रौपदी अपि भीमस्य हृदि** स्थितं **कोपम् अधिकं समुद्दीपयिष्यति, इति भावः।**

(15) 'चन्द्रिका'मथ्यामीति– भीमसेन सहदेव को लक्ष्य करके कहता है कि क्या मात्र पाँच गाँवों को लेकर ही बड़े भाई सन्धि कर लेंगे? यदि उन्होंने ऐसा करने का निर्णय कर ही लिया है, तो भले ही वे कर लें, इससे मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता है, क्योंकि मैं तो फिर भी युद्ध में सभी सौ कौरवों का विनाश अवश्य करूँगा। दुःशासन के वक्षःस्थल से उसका रुधिर अवश्य पिऊँगा। दुर्योधन की जँघा को अपनी गदा से अवश्य तोड़ूँगा, क्योंकि ये दोनों प्रतिज्ञाएँ जो मैंने पूर्व में की हुई हैं, उन्हें तो मैं अवश्य ही पूरा करूँगा, इसमें लेशमात्र भी संशय का अवसर नहीं है।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक के प्रत्येक वाक्य में 'न' का प्रयोग होने से इसे निषेधार्थक न मानकर, भीम के दृढ़ निश्चय की अभिव्यक्ति के लिए प्रश्नवाचक रूप में स्वीकार करके अर्थ करना चाहिए, जो इस प्रकार होगा–युद्ध में सौ कौरवों को मैं कुपित होकर नहीं मारूँगा, ऐसा नहीं है अर्थात् अवश्य मारूँगा।

(ii) प्रस्तुत श्लोक वस्तुतः व्यंजनाप्रधान शैली का उत्कृष्ट उदाहरण कहा जा सकता है, जिसमें अभिधा से प्राप्त अर्थ निषेधार्थक निकलने पर भी परिणाम में उसका अर्थ दृढ़ स्वीकारोक्ति में अभिव्यंजित हो रहा है।

(iii) पाण्डवों की ओर से सन्धि के लिए इन गाँवों की माँग की गयी थी– इन्द्रप्रस्थ, वृकप्रस्थ, जयन्त, वारणावत ये चार तथा शेष पाँचवाँ अपनी इच्छा से कोई भी गाँव।

(iv) वसन्ततिलका छन्द का सुन्दर प्रयोग दर्शनीय है।

(v) अत्यन्त निकट भविष्य की अभिव्यक्ति के लिए वर्तमानकालिक क्रिया का प्रयोग किया गया है। 'बहुत शीघ्र ही ऐसा होगा' यहाँ पर यही अभिप्राय ग्रहण करना चाहिए।

व्या. टि.– (i) मथ्नामि– √मन्थ्+लट्, उत्तमपुरुष, एकवचन।

(ii) **पिबामि**– √पा(पिब्)+लट्, उ.पु., ए.वचन, पीता हूँ, पिऊँगा।

(iii) **संचूर्णयामि**– सम्+√चूर्ण्+लट्,उ.पु., ए.व., चूर्ण करूँगा।

(iv) **करोतु**– √कृ+लोट्, प्रथम पुरुष, एक वचन, करें।

संस्कृत व्याख्या–युद्धे क्रोधात् कौरवाणां शतं न मर्दयिष्यामि, किमिति? दुःशासनस्य वक्षसः शोणितम् न पास्यामि, किमिति? गदायाः आघातेन प्रहारेण सुयोधनस्य उरुः सक्थिनी इत्यर्थः, न त्रोटयिष्यामि, किमिति? युष्माकं राजा युधिष्ठिरः पंचग्राममूल्येन मैत्रीं कौरवैः सह विदधातु, नैव विषयेऽस्मिन् काऽपि चिन्ता विद्यते मे।

(16) 'चन्द्रिका' इन्द्रप्रस्थमिति– प्रस्तुत श्लोक में कवि ने सहदेव के माध्यम से उन गाँवों का कथन कराया है, जिन्हें लेकर श्रीकृष्ण सन्धि का प्रस्ताव लेकर दुर्योधन के पास गए हैं–

सहदेव कहता है कि– इन्द्रप्रस्थ, वृकप्रस्थ, वारणावत एवं जयन्त ये चार गाँव तथा शेष पाँचवाँ कोई भी अपनी इच्छा से गाँव यदि कौरव, पाण्डवों को दे देते हैं, तो ही सन्धि सम्भव है।

विशेष–(i) वस्तुतः इन सभी गाँवों से पाण्डवों का भावात्मक सम्बन्ध है, इसीलिए उन्होंने इस गाँवों की सन्धि के माध्यम से माँग की है, क्योंकि ये सभी कौरवों द्वारा पाण्डवों के प्रति किसी न किसी अत्याचार, अनाचार की स्मृति को ताजा करने वाले रहे हैं।

(ii) पथ्यावक्त्र छन्द का प्रयोग हुआ है। लक्षण पूर्ववत्।

व्या. टि.– (i) **प्रयच्छ**–प्र+√यच्छ्+लोट्, मध्यमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– इन्द्रप्रस्थम् सम्प्रति दिल्ली नाम नगरम्। यतः पाण्डवाः निर्वासिताः आसन्। वृकप्रस्थम् अत्र भीमाय विषप्रयोगः कृतवन्तः कौरवाः, तन्नगरम्। जयन्तं राज्यस्य अपहरणं, कलत्रघर्षणं वनवासादि अपकाराणां स्मारकरूपेण स्थानम्। वारणावतं यत्र जतुगृहदाहः कृतवन्तः कौरवाः, इति तत् स्थानम्। इमान् चतुः संख्यकान् ग्रामान् नाम स्थानानि, अस्मभ्यः समर्पय, तथैव च पंचमसंख्यकं स्वेच्छया कमपि ग्रामं दीयताम्, इति, सन्धिविषयेऽभिलाषा पाण्डवानां विद्यते।

(17) 'चन्द्रिका' युष्मान्निति– स्वाभिमानी भीम अपने अनुज सहदेव से कहता है कि– इस सन्धि का तात्पर्य आप कुछ भी

निकालिए, जब हमने वन में जाते हुए कौरवों के नाश की प्रतिज्ञा की ली थी, तो फिर इस सन्धि का तात्पर्य ही क्या है? ऐसा प्रतीत होता है कि आपको अब शत्रुओं के कुल के विनाश से लज्जा आ रही है, किन्तु जब भरी सभा में आप लोगों की अपनी धर्मपत्नी को भरी सभा में केशों को पकड़कर खींचा गया तथा उसके वस्त्रों को खींचकर अपमानित किया गया, वह घटना आपको लज्जित नहीं कर रही है।

विशेष–(i) भीमसेन की तर्कपूर्ण शैली, स्वाभिमान एवं आक्रोश की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। पथ्यावक्त्र छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या. टि.–(i) लज्जयति– √लज्ज+णिच्+लट्,प्रथमपुरुष,ए.वचन।

संस्कृत व्याख्या– संसारे शत्रुजन्यापकारक्रोधात् शत्रूणां वंशस्य नाशः युष्मान् लज्जायुक्तः करोति, किन्तु तस्यां राजसभायां द्रौपद्याः स्व धर्मपत्न्याः केशवसनकर्षनादि न ह्रेपयति।।17।।

(18) 'चन्द्रिका' जीवत्स्विति– भीमसेन अपनी पत्नी द्रौपदी से उसकी खिन्नता का कारण पूछते हैं। उसके बाद स्वयं ही उसके केशों को देखकर कहते हैं कि– पाण्डवों के जीवित रहते हुए और इतना ही नहीं, उन सभी के तुम्हारे पास में रहते हुए भी यदि पांचाल देश के राजा की पुत्री, इसप्रकार की दीन अवस्था को प्राप्त हो रही है तो फिर इसमें कहने–सुनने को रह ही क्या जाता है?

विशेष–(i) भीम का अभिप्राय है कि अपनी मनोवेदना को तो तुमने अपने इन खुले हुए केशों से ही कह रखा है, फिर इस विषय में पूछना व्यर्थ ही है। पथ्यावक्त्र छन्द का प्रयोग भी दर्शनीय है।

(ii) पाण्डवों के पौरुष पर व्यंग्य में प्रश्नचिह्न लगाया है।

संस्कृत व्याख्या– युधिष्ठिरादिषु जीवनं धारयत्सु, दूरदेशे अप्रयातेषु सदैव अत्यन्तसन्निहितेषु इत्यर्थः, द्रौपदी ईदृशीं मनस्विगर्हितां वेणीबन्धनादिरहितां अवस्थां धारयति, अनेन तु सर्वम् आवेदितं नैव विषयेऽस्मिन् कथनस्य आवश्यकता इति भावः।।18।।

(19) 'चन्द्रिका' कौरव्येति– द्रौपदी की सखी व चेटी बुद्धिमतिका से भीमसेन केशों के खुले होने से भी अधिक उद्वेग के बढ़े होने के कारण को पूछते हुए कहते हैं कि– अग्नि की शिखा के समान

खुले केशों वाली, इस द्रौपदी को स्पर्श करता हुआ कौन व्यक्ति है, जो कौरववंश के लिए दावानल के समान, मेरे रहते हुए पतंगे की तरह आचरण कर रहा है अर्थात् स्वयं ही अपनी मृत्यु का आह्वान कर रहा है।

विशेष–(i) महाकवि की आलंकारिक शैली दर्शनीय है।

(ii) यहाँ पर भीम ने द्रौपदी की उपमा धूमशिखा से तथा अपनी उपमा दावानल से दी है तथा द्रौपदी को उद्विग्न करने वाले व्यक्ति को शलभ अर्थात् पतंगा बताया है। इसलिए उपमालंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है। कवि का उपमान–चयन अभिनन्दनीय है।

(iii) पतंगे की विशेषता है कि वह स्वयं के मरने की परवाह न करके, अग्नि की लपटों के आसपास ही मँडराता रहता है और अन्त में मर जाता है, इससे कवि का प्राणिविज्ञान विषयक ज्ञान भी अभि–व्यक्त हुआ है।

व्या. टि.–(i) **स्पृशन्**– √स्पृश्–शतृ, स्पर्श करते हुए।

(ii) **शलभायते**– शलभ इव आचरति, इति।

(iii) कुरूणाम् अपत्यानि पुमांसः कौरव्याः, तेषां वंशः, तस्मिन्।

संस्कृत व्याख्या– कुरूणां राजा कौरव्यः, तेषां वंशः तस्य दावे दावानले एतस्मिन् मुक्ता निर्बन्धा वेणी यस्याः ताम्, धूमशिखाम् इव श्यामलां एनाम् द्रौपदीं संस्पृशन्, कोऽयं जनोऽस्ति, यः शलभवत् अग्निमुखौ पतति। उपमालंकारस्य अद्भुतसौन्दर्यं दर्शनीयम्।

(20) 'चन्द्रिका' स्त्रीणामिति– दुर्योधन की पत्नी भानुमती की द्रौपदी के प्रति कही गयी, कटु बातों को चेटी के माध्यम से सुनने के बाद, भीमसेन सहदेव से कहता है कि सहदेव तुमने सुना, जिसके उत्तर में सहदेव कहता है कि

वस्तुतः वह दुर्योधन की पत्नी है, इसलिए उसका इसप्रकार कहना उचित ही है, क्योंकि 'अपने पतियों के साथ लम्बे समय तक रहने के कारण स्त्रियों के मन भी उन्हीं के समान चिन्तन तथा कार्यों को करने वाले हो जाते हैं। इसके बाद अपनी पुष्टि में लता का उदाहरण देते हुए कहता है कि विष वृक्ष का आश्रय लेकर रहने वाली

मनमोहक लता भी अपनी मनोरमता का परित्याग करके, मूर्च्छित ही करती है।

विशेष– (i) महाकवि का स्त्रीविषयक गहन मनोविज्ञान अभिव्यक्त हुआ है, जिसे कवि की महती विशेषता कहा जा सकता है।

(ii) साथ ही, कवि का वनस्पति विषयक ज्ञान भी प्रदर्शित हुआ है, क्योंकि लता की सर्वप्रथम तो यह विशेषता है कि वह वृक्ष का ही आश्रय लेती है तथा उसके साथ रहने से उसके ही गुणों से युक्त हो जाती है।

(iii) श्लोक के पूर्वार्द्ध में प्रयुक्त सामान्य अर्थ का उत्तरार्द्ध में प्रयुक्त लतारूप विशेष अर्थ द्वारा पुष्टि किए जाने से अर्थान्तरन्यास अलंकार का सौन्दर्य भी दर्शनीय है। लक्षण इसप्रकार है–

सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।
यत्र सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा।।

(iv) आर्या छन्द का प्रयोग हुआ है। लक्षण इसप्रकार है–

यस्या पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पंचदश साऽऽर्या।।

व्या. टि.–(i) **भवन्ति**– √भू+लट्, प्रथम पुरुष, बहुवचन, होते हैं।

(ii) सह चरति, इति सहचरः, तस्य भावः साहचर्यम्, तस्मात्।

संस्कृत व्याख्या– यतोहि सहवासभावात् योषितां कोमलान्तःकरणानां मनांसि स्वपतितुल्यानि भवन्ति, कोमलप्रकृतिरपि स्त्री क्रूरपति-साहचर्यात् क्रूरा भवति, यथा– विषवृक्षे आश्रिता लता मधुरा अपि मधुररसा वा अपि मूर्च्छां करोति खलु आश्रयदोषादिति।

(21) 'चन्द्रिका' चंचदिति– बुद्धिमतिका द्वारा भानुमती के प्रति कही गयी बात को सुनकर भीमसेन अपनी प्रिया द्रौपदी को खेद न करने तथा शीघ्र ही भविष्य में करने योग्य कार्य का कथन करते हुए सान्त्वना देता है कि– क्रोध के कारण फड़कती हुई भुजाओं द्वारा घुमायी गयी, गदा के प्रहार से विदीर्ण की गयी जाँघों वाले दुर्योधन के चिकने तथा फव्वारे के समान निकलते हुए, गाढ़े रक्त से लाल हुए हाथों वाला, यह भीम, हे देवि! तुम्हारी चोटी को शीघ्र ही सँवारेगा। इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है।

विशेष–(i) नाटक के नायक भीमसेन का आत्मविश्वास एवं तत्काल दृढ़निर्णय करने की क्षमता दोनों ही अभिव्यक्त हुए हैं।

(ii) प्रस्तुत श्लोक के आधार पर ही कवि ने इस नाटक का नामकरण भी किया है, जिसे अन्तिम षष्ठ अंक में पूरा किया गया है।

(iii) महाकवि की चित्रात्मक शैली एवं वसन्ततिलका छन्द दर्शनीय है। लक्षण पूर्ववत्।

व्या. टि.– (i) चन्चतौ च तौ भुजौ ताभ्यां भ्रमिता चासौ चण्डा गदा, तस्याः अभिघातः तेन चूर्णितम् उरुयुगलं यस्य सः तस्य।

(ii) **स्त्यानावनद्धम्**– स्त्यानं च तद् अवनद्ध च, द्वन्द्व समास।

संस्कृत व्याख्या– हे देवि द्रौपदि! चलद्भ्यां बाहुभ्यां प्रेरिता या भयंकरा गदा तस्याः प्रहारेण सम्यक् प्रकारेण चूर्णितम् भग्नं युगलं जंघाद्वयं यस्य सः तस्य, दुर्योधनस्य स्निग्धं, संसक्तं, निविडं च यत् रुधिरं तेन रक्तवर्णः करौ यस्य सः, अयं भीमः तव केशान् अलंकरिष्यति, इति, विषयेऽस्मिन् नैव संशयलेशोऽपि वर्तते, एतत् मनसि धारय त्वम्।

(22) 'चन्द्रिका' मन्थायस्दिति– इसी क्रम में नेपथ्य में कोलाहल होने पर युद्ध की भेरी बज उठती है, जिसे लक्ष्य करके भीम आनन्दपूर्वक कहता है कि–

देवताओं तथा दानवों द्वारा किए गए समुद्र–मन्थन के अवसर पर, क्षुब्ध हुए सागर के जल से व्याप्त हुई कन्दराओं वाले, मन्दराचल की ध्वनि के समान गम्भीर, डण्डे द्वारा विशाल नगाड़े को बजाने के लिए प्रबल आघात के समय प्रलयकाल में होने वाले, मेघसमूह के परस्पर टकराने से उत्पन्न होने वाली ध्वनि के समान, द्रौपदी के क्रोध की मानो अग्रदूत, कौरवों के वंश के विनाश के लिए उत्पातवायु एवं हमारे सिंहनाद के समान, यह रणभेरी भला किसके द्वारा बजायी गयी है?

विशेष– (i) यहाँ प्रयुक्त **'कोणाघात'** पद विशेष अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त हुआ है। तदनुसार–

ढक्काशतसहस्राणि भेरीदशशतानि च
एकदा यत्र हन्यन्ते कोणाघातः स उच्यते। नाट्यशास्त्र

अर्थात् एक लाख डमरू एवं दस हजार नगाड़ों के एक साथ बजाने से उत्पन्न होने वाली ध्वनि को **'कोणाघात'** कहा जाता है।

(ii) इसीप्रकार आकाश में तेज वायु के वायु से टकराकर, पृथ्वी की ओर तेजी से प्रवाहित होने को **निर्घातवात** कहते हैं।

(iii) महाकवि का वायु की गति विषयक सूक्ष्म अन्तरिक्ष-विज्ञान अभिव्यक्त हुआ है।

(iv) पुराणों के अनुसार– प्राचीनकाल में अमृत प्राप्त करने के लिए देवों तथा दानवों ने मिलकर समुद्र–मन्थन किया था, जिसमें **मन्दर** नामक पर्वत को मथानी तथा नागराज **वासुकि** को रस्सी बनाया गया था, यहाँ पर कवि ने उस समय होने वाली भयंकर ध्वनि का ही कथन किया है।

(v) समुद्रमंथन के परिणामस्वरूप मन्दर पर्वत की गुफाओं में जाकर टकराने वाली विशाल जलराशि की ध्वनि का उल्लेख हुआ है।

(vi) युद्ध की इस घोषणा से भीम की असीम प्रसन्नता की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। युद्ध के नगाड़ों की ध्वनि को भीम द्वारा अपने सिंहनाद से उत्पन्न होने वाली प्रतिध्वनि के समान बताया है, क्योंकि प्रतिध्वनि अपनी मूल ध्वनि से भी अधिक तेज होती है। इससे कवि का भौतिक विज्ञान भी प्रदर्शित हुआ है।

(vii) स्रग्धरा छन्द का प्रयोग भी दर्शनीय है। लक्षण–

म्रभ्नैर्यानां त्रयेन त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्।

(viii) प्रस्तुत श्लोक में उत्प्रेक्षालंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है। **लक्षण– सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्।**

व्या. टि.– (i) अर्णवस्य अम्भः, अर्णवाम्भः, षष्ठी तत्पुरुष।

(ii) मन्थेन आयस्तं मन्थायस्तम्, तेन प्लुतं कुहरं यस्य असौ।

(iii) कोणेन आघाताः कोणाघाताः तेषु।

(iv) कृष्णायाः क्रोधः, तस्याः क्रोधस्य अग्रदूतः।

(v) कुरूणां कुलं, तस्य निधनं तस्य उत्पातनिर्घातवातः।

संस्कृत व्याख्या– मन्थनक्रियायां क्षुब्धः यः सागरः तस्य यत् जलं तेन व्याप्तं कुहरं यस्य तथाभूतस्य मन्दरस्य भ्रमतः ध्वनिरिव गम्भीरः भेरीणां दशसहस्रेषु एककाले कृतप्रहारेषु गर्जन्त्यः शब्दायमानाः प्रलयकालीन् मेघानां या घटाः पंक्तयः तासां पारस्परिकसंघर्षणं तद्वत् चण्डः द्रौपद्याः क्रोधस्य अग्रदूतः पुरोवर्ती उद्घोषकः कौरववंशस्य निधनं

विनाशः अशुभसूचकः यः निर्घातवातः प्रचण्डानिल इव अस्माकं गर्जनस्य प्रतिध्वनिः तस्य मित्रम् इव, एषः दुन्दुभिः केन जनेन प्रताडितः?

(क) कांचुकी– सभी कार्यों में कुशल, सर्वगुण सम्पन्न, सात्त्विक विचारों से युक्त, यह वृद्ध ब्राह्मण होता है, जो अन्तःपुर की सेवा में नियुक्त किया जाता है। नाटकों में इसके लिए कांचुकी, कंचुकी, कंचुकीय तथा कांचुकीय पदों का प्रयोग हुआ है। प्राचीन समय में यह पद वस्तुतः राजमहल के सर्वाधिक पुराने एवं वयोवृद्ध व्यक्ति को प्रदान किया जाता था।

इसके अतिरिक्त अन्तःपुर के सेवकों में यह प्रमुख होता है। कंचुक अर्थात् 'चोगा' धारण करने के कारण, इसे सम्भवतः इस नाम से पुकारा गया। आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र में इसके चोगे का रंग श्वेत बताया है।[1] मातृगुप्ताचार्य ने इसका लक्षण इसप्रकार दिया है–

ये नित्यं सत्यसम्पन्नाः कामदोषविवर्जिताः।
ज्ञानविज्ञानकुशलाः कांचुकीयास्तु ते स्मृताः।।

आचार्य भरत नाट्यशास्त्र में कांचुकीय का लक्षण इसप्रकार करते हैं–

अन्तःपुरचरो विप्रो वृद्धो गुणगणान्वितः।
सर्वकार्यार्थकुशलः कंचुकीत्यभिधीयते।।

प्रस्तुत नाटक में जयन्धर नामक कंचुकी का प्रयोग प्रस्तुत प्रथम अंक तथा अन्तिम षष्ठ अंक में युधिष्ठिर के कंचुकी के रूप में तथा दुर्योधन के कंचुकी के रूप में विनयन्धर का दूसरे अंक में प्रयोग हुआ है।

(23) 'चन्द्रिका' आत्मारामेति– भीमसेन को जब पता चलता है कि सन्धि का प्रस्ताव लेकर गए श्रीकृष्ण को दुष्ट दुर्योधन ने बन्दी बनाने का निन्दनीय प्रयास किया तो वह बहुत क्रोधित होता है, तब सहदेव कहता है कि क्या यह दुरात्मा दुर्योधन भगवान् के स्वरूप को भी नहीं जानता है, इसपर भीम कहता है कि यह दुष्ट भला उन्हें कैसे जान सकता है? क्योंकि–

---

[1] नाट्यशास्त्र– भरत, 23/116।

मुक्तसंग होकर एकमात्र परमब्रह्म परमात्मा में ही निरन्तर रमण करने वाले, ज्ञाता एवं ज्ञेय के विभाजन से पूर्णरूप से रहित, जीव और ब्रह्म की एकता को सिद्ध करने वाली समाधि में अनुराग रखने वाले, वास्तविक ज्ञान की अधिकता से अपनी अज्ञानमूलक परेशानियों का विनाश करने वाले, सात्त्विक योगी, मिथ्याज्ञान तथा तत्त्वज्ञान से भी कहीं अधिक ऊपर उठकर, सत्त्व, रजस् एवं तमस् इन तीनों गुणों से ऊपर पुराण पुरुष श्रीभगवान् का साक्षात्कार करते हैं, उन्हें मोह से अन्धा यह दुर्योधन भला कैसे जान सकता है?

विशेष–(i) कवि की दार्शनिकता की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

(ii) श्रीकृष्ण में परमब्रह्म रूप के दर्शन किए गए हैं।

(iii) गीता में प्रतिपादित सांख्य–दर्शन प्रस्तुति हुई है।

(iv) मन्दाक्रान्ता छन्द का सुन्दर प्रयोग हुआ है। लक्षण इस प्रकार है– **मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैर्म्भौ नतौ ताद् गुरू चेत्।**

व्या. टि.– (i) **वीक्षन्ते**–वि:+ √ईक्ष्+लट्, आत्मने, प्र.पु.,ए.व.।

(ii) आत्मा एव आराम उपवनं येषां ते आत्मारामाः ।

(iii) तमसां ग्रन्थयः तमोग्रन्थयः, विघटिताः तमोग्रन्थयः येषां ते।

(iv) ज्ञानस्य सत्त्वांशविशेषस्य उद्रेकः ज्ञानोद्रेकः तस्मात्।

(v) सत्त्वेषु निष्ठा येषां ते सत्त्वनिष्ठाः। मोहेन अन्धः मोहान्धः।

संस्कृत व्याख्या– **आत्मनः आनन्दस्थानत्वात् सः एव आरामः उपवनं येषां ते, ज्ञातृज्ञेयादिभेदरहिते, समाधौ प्रेरिता रतिः तल्लीनता येषां ते प्रकाशस्य उद्रेकः आधिक्यं तस्मात् विच्छिन्नाज्ञानबन्धाः सत्त्वे सत्त्वगुणे अस्ति प्रीतिः, येषां ते सात्त्विकभावयुताः अन्धकाराणां अथवा तेजसां परं यं कमपि अनिर्वचनीयं अवलोकयन्ति, तादृशं एतं सनातनं ईदृशं देवं अज्ञानेन मूढः एषः दुर्योधनः केन प्रकारेण ज्ञातुं शक्नोति?**

(24) 'चन्द्रिका' यत्सत्यव्रदिति– नेपथ्य के कोलाहल के बाद पाण्डव एवं कौरवपक्ष के सभी योद्धाओं को सम्बोधित करके, नेपथ्य से कोई पात्र सूचना देते हुए कहता है कि–

महाराज युधिष्ठिर ने सत्य सम्बन्धी अपने व्रत के नाश के भय से जिस क्रोधरूपी अपनी अग्नि को प्रयत्नपूर्वक रोका हुआ था अर्थात् उसपर नियन्त्रण किया हुआ था। इसके अलावा अपने वंश के कल्याण की इच्छा करते हुए जिन शान्तस्वभाव धर्मराज युधिष्ठिर ने इसे भुलाने

का भरसक प्रयास भी किया था। द्रौपदी के केशों को खींचने तथा उसके वस्त्रों के आकर्षण से बढ़ी हुई, जुएरूपी अरणि से उत्पन्न महाराज युधिष्ठिर की वह प्रसिद्ध क्रोधरूपी अग्नि, कौरवरूपी वन में अपने विकटरूप को धारण कर रही है।

विशेष–(i) युधिष्ठिर के चरित्र की अनेकानेक विशेषताएँ बताते हुए, उनके गम्भीर एवं उज्ज्वल चरित्र को उद्‌घाटित किया गया है।

(ii) उपमा[1] एवं काव्यलिंग[2] अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग किया गया है, महाकवि की मनभावन आलंकारिक शैली दर्शनीय है।

(iii) शार्दूलविक्रीडित छन्द का प्रयोग हुआ है।

(iv) 'अरणि' अग्नि को प्रज्वलित करने का विशेष प्रकार का काष्ठ, जिन्हें परस्पर रगड़ने से अग्नि उत्पन्न होती है।

(v) भीम के लिए वस्तुतः यह शुभ एवं प्रसन्नतादायक सूचना कही जा सकती है, क्योंकि उसे अब युद्ध में अपनी प्रतिज्ञा को पूरा करने का अवसर प्राप्त हो सकेगा।

व्या. टि.– (i) युधिष्ठिरस्य इदं, यौधिष्ठिरम्, युधिष्ठिर+अण्।

(ii) सत्यं एव व्रतं सत्यव्रतम्, सत्यस्य पालनरूपनियमः, इत्यर्थः

(iii) **जृम्भते**– √जृम्भ्+लट्, आत्मने, प्रथम पुरुष, एकवचन।

(iv) नृपस्य सुता, तस्याः केशाम्बराणाम् आकर्षणं, तैः।

संस्कृत व्याख्या– **सत्यरक्षणम् एव व्रतं तस्य द्वादशवर्षं यावत् वनवासः एकवर्षं यावत् अज्ञातवासः, इति, एतत् उभयरूपस्य इत्यर्थः। अस्य व्रतस्य विनाशेन भीरुः मनो यस्य तथाभूतेन, प्रयत्नेन यत् क्रोध–ज्योतिः शिथिलीकृतं भीमादीनां संग्रामोद्यतम् अपि मनः युधिष्ठिरेण महता प्रयासेन मन्दवेगतां नीतिम् इत्यर्थः। स्व वंशस्य कल्याणम् अभिलषता शान्तमना युधिष्ठिरेण यत् क्रोधज्योतिः विस्मरणं कर्तुम् अपि, चेष्टितम्। द्यूतरूपाग्निमन्थनकाष्ठसमुपादितं अपि पांचालीकेशवसनाकर्षणरूपैः वायुभिः समुद्दीपितमिति, तत् प्रसिद्धं इदं प्रादुर्भूतम्, इत्यर्थः। युधिष्ठिर–सम्बन्धिक्रोधाग्निः एषः कुरुरूपारण्ये परिस्फुरति। कौरवाणां विनाशाय प्रवर्तते, इति भावः।**

---

[1]. लक्षण– प्रस्फुटं सुन्दरं साम्यमुपमेत्यभिधीयते।

[2]. लक्षण– हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिंगमुदाहृतम्।

(25) 'चन्द्रिका' चत्वारः, इति– प्रारम्भ हुए युद्धरूपी यज्ञ को विस्तार से स्पष्ट करते हुए भीमसेन, प्रिया द्रौपदी से कहते हैं कि–

रणरूपी इस यज्ञ में हम चारों भाई **ऋत्विक्** हैं, भगवान् श्रीकृष्ण इसमें धर्म का उपदेश करने वाले **आचार्य** हैं तथा महाराज युधिष्ठिर इस यज्ञ में **यजमानरूप** से विराजमान हैं और उनकी धर्मपत्नी द्रौपदी ने इस यज्ञ के समाप्त होने तक का **व्रत** धारण किया हुआ है, जिसके कारण उसने श्रृंगारादि करना छोड़ रखा है। कौरव कुल के लोग इस यज्ञ में मारे जाने वाले **पशु** हैं। पाण्डवों की सह-धर्मचारिणी के पराभव से उत्पन्न होने वाले, दुःख का हमेशा के लिए विनाश होना ही, इस युद्धरूपी यज्ञ का **फल** है। इसीलिए यह यशो रूपी दुन्दुभि वीरक्षत्रिय योद्धाओं को आमन्त्रित करने के लिए गम्भीररूप से आज बजायी जा रही है।

विशेष–(i) महाकवि का यज्ञविषयक गहन ज्ञान व्यक्त हुआ है। विद्वानों की मान्यता है कि कवि को विशाल यज्ञ करने के लिए ही, 'आदिशूर' नामक राजा द्वारा कान्यकुब्ज से बंगाल में आमन्त्रित किया गया था। वहाँ गए पाँच याज्ञिकों में ये अग्रणी थे।

(ii) व्रत धारण करने पर स्त्रियाँ श्रृंगारादि नहीं करती हैं।

(iii) यहाँ पर युद्धरूपी पशुयज्ञ में भगवान् श्रीकृष्ण **आचार्य**, पत्नी सहित महाराज युधिष्ठिर **यजमान**, दुर्योधनादि सभी कौरव यज्ञ में बलि दिए जाने वाले **पशु**, द्रौपदी के तिरस्कार से उत्पन्न दुःख के समूल उन्मूलन से प्राप्त होने वाली शान्ति ही इस यज्ञ से प्राप्त होने वाला **फल**, कहा गया है।

(iv) शार्दूलविक्रीडित छन्द एवं रूपक अलंकार[1] का सुन्दर प्रयोग दर्शनीय है।

व्या. टि.– (i) नराणां पतिः, नरपतिः, षष्ठी तत्पुरुष।

(ii) **रसति**– √रस्+तिप्, लट्लकार, प्रथम पुरुष, एक वचन।

संस्कृत व्याख्या– वयं भीमार्जुनादयः चतुःसंख्यकाः याजकाः सन्ति, सः च श्रीहरिकृष्णः कर्तव्यकर्मणः उपदेष्टा विद्यते, राजायुधिष्ठिरः युद्धे एव अध्वरः तस्मिन् दीक्षितः रणयज्ञव्रती, भार्या च द्रौपदी गृहीतः

---

[1] . **लक्षण– तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः।**

अंगीकृतः नियमः, केशसंस्कारश्रृंगारादि त्यक्त्वा धृतसात्त्विकवेषा इत्यर्थः, दुर्योधनादयः यज्ञेऽस्मिन् बलिपशवः, प्रियतमायाः तिरस्कारः फलमिति परिणामः वर्तते, अनेनैव एषः कीर्तिपटहः राजसमूहानां आह्वानाय प्रवृद्धं यथास्यात् तथा, शब्दायते।

(26) 'चन्द्रिका' भूय इति– द्रौपदी द्वारा युद्ध से लौटकर आश्वासन बँधाए जाने का उल्लेख करने के बाद, भीमसेन उसे सम्बोधित करते हुए कहता है कि–

हे पांचाल राजा की पुत्रि! अब युद्ध की घोषणा के बाद भी तुम्हें झूठमूठ का आश्वासन देने से क्या लाभ? पराभव से उत्पन्न ग्लानि की लज्जा से मलिन मुख वाले, सौ कौरवों को मूल सहित नष्ट न करने वाले, भीम को तुम नहीं देखोगी अर्थात् यह मैं भीम अब कौरवों का सर्वनाश करके ही युद्धभूमि से लौटूँगा।

विशेष–(i) नाटक के नायक भीमसेन का गहन आत्मविश्वास एवं दृढ़ निश्चय अभिव्यंजित हुआ है।

व्या. टि.– (i) **पश्यसि**– √दृश्+लट्, मध्यम पुरुष, एक वचन।

(ii) **परिभवक्लान्तिः**– परिभवेन क्लान्ति, षष्ठी तत्पुरुष।

(iii) वृकोदरम्– वृकः उदरे यस्य सः, तम्, भीम को।

संस्कृत व्याख्या– तिरस्काररूपग्लानिलज्जावनतमुखं असमापितकुरुकुलं भीमं इतःपरं पुनः न अवलोकयसि, इति अर्थात् एषः भीमः निश्चयमेव कौरवकुलं विनाश्य तव समीपे आगमिष्यति।

(27) 'चन्द्रिका' अन्योन्य इति– द्रौपदी द्वारा युद्धक्षेत्र में सावधानीपूर्वक विचरण करने की बात का कथन करने पर नाटक के नायक भीमसेन कहते हैं कि–

हे क्षत्रियपुत्रि! हम पाण्डव लोग रणभूमि में घूमने में पूर्णरूप से समर्थ हैं। इसलिए इस सम्बन्ध में तुम्हें लेशमात्र भी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। इसी सम्बन्ध में वह फिर से आगे कहता है कि–

इसके अलावा और भी बड़ी बात सुनिए, जिस युद्धक्षेत्र में आपस में टकराने के कारण क्षत–विक्षत हुए, हाथियों के रक्त, माँस, तथा मेदा आदि के कीचड़ में रथ डूबे हुए हैं एवं उनपर पैर रखकर चलने का पराक्रम प्रदर्शित करने वाले, पैदल सैनिकों से युक्त,

प्रवाहरूप में बहते हुए, रुधिर की पान-गोष्ठियों में चिल्लाती हुई अर्थात् अमंगलसूचक शब्द करने वाली, सियारिनियों की तुरी पर कबन्ध (सिर कटे हुए शरीर का नीचे के भाग) नृत्य कर रहे हैं। इसप्रकार के संग्रामरूपी महान् समुद्र के जल में स्वच्छन्द विहार करने में पाण्डव लोग पण्डित अर्थात् पूर्णरूप से निपुण हैं।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक में महाकवि ने युद्धक्षेत्र का चित्रात्मक एवं मनमोहक वर्णन किया है।

(ii) यहाँ पर बीभत्स एवं वीररस का सुन्दर परिपाक हुआ है।

(iii) संग्रामभूमि रूपी उपमेय में महासमुद्र रूपी उपमान का अभेद आरोप करने के कारण रूपक अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(iv) उपर्युक्त श्लोक में स्रग्धरा छन्द का प्रयोग हुआ है।

(v) समस्त पदावली के साथ गौड़ी शैली भी अवलोकनीय है।

(vi) प्रस्तुत वर्णन से महाकवि का युद्धविषयक गहन ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है। सम्भव है वे इसके साक्षात्दर्शी भी रहे हों।

(vii) भीम का आत्मश्लाघी, किन्तु गहन विश्वासयुक्त चरित्र उद्घाटित हुआ है।

व्या. टि.– (i) **विचरितुम्**– वि+ √चर्+तुमुन्, विचरण के लिए।

(ii) **उपरिकृतपदन्यासाः**– उपरि कृताः पदन्यासाः यैः ते।

संस्कृत व्याख्या– परस्परं यः संघर्षणं तेन विदारिताः, ये गजाः तेषां यत् रुधिरं वसा मांसं च यच्च मस्तिष्कं तैः पंकः तस्मिन् निमग्नानां रथानां उपरि कृता ये चरणनिक्षेपाः, तादृशाः पराक्रान्ताः पदातयः यत्र प्रवाहस्रुतरुधिरस्य या पानगोष्ठी तस्यां शब्दायमानाः तैः नृत्यन्तः अशिरः कलेवराणि यत्र तथाभूते युद्धप्रलयार्णवान्तर्जले संचरितुं पाण्डुपुत्राः वयं भीमादयः निष्णाताः सन्ति, अतएव नैव विषयेऽस्मिन् चिन्तालेशमात्रिकी अपि कार्या।

चन्द्रिका हिन्दी व्याख्या, संस्कृत व्याख्या

द्वितीय अंक

(1) **'चन्द्रिका'नोच्चैरिति**– दुर्योधन का कंचुकी विनयन्धर अंक के आरम्भ में प्रवेश करके अन्तःपुर में रहने वाले, सभी लोगों के व्यावहारिक वेश एवं चेष्टाओं के विषय में कहता है कि–

राजाओं के अन्तःपुर में कार्य करने वाले लोग, आँखें रहते हुए भी अपने सिर को ऊपर की ओर उठाकर नहीं देख सकते हैं, क्योंकि उनको यहाँ पर अपनी दृष्टि को नीचा करके ही चलना पड़ता है। इसीप्रकार कानों के रहते हुए भी वे सुन नहीं पाते हैं, क्योंकि यहाँ पर स्थित रानियों की बातों को उन्हें अनसुना करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त चलने–फिरने की शक्ति होते हुए भी छड़ी लेकर चलना, इनके कर्तव्यों में निर्धारित किया गया है। इसीकारण मैंने छड़ी को धारण किया हुआ है। इसके बाद अपने विषय में कहता है कि–

इसीप्रकार सभी स्थानों पर गलतियों को ध्यान में रखते हुए, कभी भी मेरे द्वारा उद्दण्डतापूर्वक प्रस्थान नहीं किया गया। अतः सेवा कार्य करने के लिए ही जन्म ग्रहण करने वाले, मेरी वृद्धावस्था ने तो क्या किया? वास्तव में तो यह सब अन्तःपुर की इस नौकरी के कारण ही मुझे ऐसा करना पड़ रहा है।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक में कवि ने अन्तःपुर में कार्य करने वाले कंचुकी आदि लोगों की वस्तुस्थिति का सुन्दर चित्रण किया है।

(ii) कंचुकी पद पर यद्यपि अधिक आयु के व्यक्ति को ही नियुक्त किया जाता है तथापि यहाँ कवि का अभिप्राय इसमें दिखायी देने वाले दोषों को धन–प्राप्ति के लिए किए गए, सेवाकार्य को ही

कारण रूप में स्वीकार करने में है, इसमें वृद्धावस्था का कोई दोष नहीं माना है।

(iii) अन्तःपुर में सेवाकार्य करने वाले लोगों को अत्यन्त सावधान होकर रहना पड़ता है, इस कथ्य का सुन्दर प्रतिपादन किया गया है।

(iv) इससे कवि का राजाओं के अन्तःपुर के साथ भी निकट का सम्बन्ध भी प्रतीत हो रहा है।

(v) विशेषोक्ति अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

व्या. टि.– (i) **श्रुत्वा**– √श्रु+क्त्वा, सुनकर।

(ii) **समालम्ब्यते**– सम्+आ+ √लम्ब्+आत्मने, प्रथमपुरुष, ए.व.।

(iii) सेवायै स्वीकृतं जीवितं येन सः तस्य। बहुव्रीहि समास।

संस्कृत व्याख्या– कंचुकी स्वान्तःपुरसेवा विषये कथयति यत्-नेत्रे वर्तमानेऽपि ऊर्ध्वमिक्षितुं नाहं समर्थोऽस्मि, अन्तःपुरसेवायां सर्वदा अधोनयनः खलु भवितव्यमिति। एवमेव राज्ञीनां रहस्यालापम् आकर्ण्यापि नैव आकर्णितमिति प्रदर्शनीयम्, तथा च गन्तुं समर्थेनापि कंचुकीनोऽधिकारः, इति हेतोः स्वीकृता या यष्टिः तां समालम्ब्यते। सर्वेषु स्थानेषु अवधानप्रयुक्तव्यापारत्त्रुटिषु सदैव सावधानेन खलु भवितव्यमिति विचिन्त्य सगर्वं न यातं मया कदापि। सूचनार्थमपि नैवोद्धतं गमनं कृतमिति अभिप्रायः। वस्तुतः मम जीवनं तु सेवानिमित्तमेव अस्ति, अनया वृद्धावस्थया किं कृतं नामेति, नैव किमपि इति भावः।।1।।

(2) 'चन्द्रिका'आशस्त्रेति– अर्जुनपुत्र अभिमन्यु के वध से प्रसन्न दुर्योधन को लक्ष्य करके कंचुकी अपने मन में कहता है कि–

शस्त्र को ग्रहण करने के दिन से, जिनका पराक्रम कभी भी व्यर्थ नहीं हुआ, इसप्रकार के महान् वीर परशुराम को भी जीतने वाले भीष्मपितामह को, जिन पाण्डुपुत्रों ने शरशय्या पर सुला दिया था, इस प्रकार के अद्वितीय वीर का तो इन्हें लेशमात्र भी दुःख नहीं है, जबकि अनेक बड़े–बड़े धनुर्धारी वीरों को युद्धभूमि में परास्त करने के बाद थके हुए, अकेले और शत्रुओं द्वारा छिन्न–भिन्न किए गए धनुष वाले

बालक अभिमन्यु के वध किए जाने से ये अत्यधिक आनन्दित हो रहे हैं।

विशेष–(i) दुर्योधन की मूर्खता, तुच्छ एवं निकृष्ट मनोवृत्ति की अभिव्यंजना हो रही है।

(ii) शार्दूलविक्रीडित छन्द का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) शस्त्रग्रहणम् आरभ्य, इति आशस्त्रग्रहणम्, तस्मात्।

(ii) परान् शृणाति, इति परशुः, अकुण्ठः परशुः यस्य सः तस्य।

(iii) आरातिभिः लूनं धनुर्यस्य सः तस्य।

संस्कृत व्याख्या– शस्त्रग्रहणात् आरभ्य, अव्यर्थपरशोः तस्य लोकप्रसिद्धस्य अपि परशुरामस्य विजेता, अयं गांगेयः भीष्मः पाण्डु–पुत्रैः अर्जुनादिभिः इषुभिः शायितः शरशय्यायाम्, अस्य राज्ञः दुर्योधनस्य सन्तापाय न अर्थात् एषः महारथस्य भीष्मस्य प्राणहानिना नैव सन्तापम् आवहति, किन्तु प्रगल्भाः अनेके ये धनुर्धराः तेषां विजयेन परिश्रान्तस्य एकाकिनः वैरिच्छिन्नशरासनस्य अल्पवयस्कस्य, अर्जुनसूनोः अभिमन्योः प्रणाशात् अयं दुर्योधनः प्रसन्नोऽस्ति, नैव विषयेऽस्मिन् लेशमात्रमपि औचित्यं प्रतीयते, इति भावः।

(क) विष्कम्भक– एक या अनेक मध्यम पात्रों द्वारा प्रयुक्त शुद्ध विष्कम्भक कहलाता है तथा मध्यम और अधम पात्रों द्वारा मिलकर प्रयुक्त विष्कम्भक संकीर्ण कहा जाता है।[1] इसका प्रयोग दो अंकों के बीच में आरम्भ में ही होता है। प्रस्तुत विष्कम्भक में अकेले कंचुकी द्वारा अभिमन्यु के मरने तथा भीष्मपितामह के शरशय्या पर स्थित होने की सूचना दी गयी है। इसलिए यह **शुद्ध विष्कम्भक** हुआ।

(ख) आकाशे– मंच पर उपस्थित हुआ कोई पात्र जब आकाश की ओर मुख करके, क्या कहते हो? इत्यादि का उल्लेख करके स्वयं ही कथा की सूचना दर्शकदीर्घा को प्रदान करता है, उसे यहाँ 'आकाशे' इस नाट्यसंकेत द्वारा प्रदर्शित किया जाता है।

---

[1] . वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः।। दशरूपक–1/59।

(3) 'चन्द्रिका'गुप्त्या इति– कंचुकी के साथ मंच पर प्रवेश करके दुर्योधन कहावत के रूप में प्रस्तुत श्लोक का प्रयोग करते हुए कहता है कि– अपकार करने वाले शत्रुओं की हानि भले ही गुप्तरूप से की गयी हो या फिर प्रकटरूप से उसे सम्पादित किया गया हो, वह भले ही थोड़ी हो या फिर अत्यधिक मात्रा में की गयी हो, स्वयं की गयी हो, या फिर दूसरे द्वारा करायी गयी हो, व्यक्ति को अत्यन्त संतोष प्रदान करने वाली होती है।

विशेष–(i) कहावत के रूप में प्रयुक्त प्रस्तुत श्लोक में कवि ने मनोवैज्ञानिक तथ्य को उद्घाटित किया है, जिससे उनका मनो-विज्ञान विषयक ज्ञान भी अभिव्यक्त हुआ है।

(ii) वस्तुतः दुर्योधन द्रोण, कर्ण तथा जयद्रथ द्वारा मिलकर किए गए अभिमन्यु के वध को लेकर प्रसन्न है।

(iii) अनुष्टुप् छन्द का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

व्या. टि.– (i) करोति– √कृ+लट्, प्रथमपुरुष, ए.व.।

संस्कृत व्याख्या– अपकारिषु शत्रुषु गुप्तरूपेण प्रत्यक्षरूपेण वा अधिकः स्वल्पो वा, आत्मना परेण वा, विहितः अपकारः विपुलां प्रीतिं आदधाति, इति। वस्तुतः शत्रोः अपकारेण प्रसन्नता खलु भवति, एतत् सत्यमेव, अनेनैव दुर्योधनः बालकस्य अभिमन्योः मरणे प्रसन्नोऽस्ति।

(4) 'चन्द्रिका' हते, इति– धनुष के टूट जाने पर अकेले बालक को बहुतों ने मिलकर मार दिया, इसलिए इसमें कौरवों की कोई प्रशंसा प्रतीत नहीं होती है, कंचुकी द्वारा इसप्रकार कहे जाने पर इसके औचित्य को सिद्ध करते हुए दुर्योधन कहता है कि– देखो,

शिखण्डी की ओट लेकर वृद्ध भीष्मपितामह को मारे जाने की, जो पाण्डवों की प्रशंसा की गयी थी, वही इसप्रकार अभिमन्यु को मारे जाने पर हमारी भी तो होनी चाहिए। इसमें बुराई ही क्या है?

विशेष–(i) कुतर्की दुर्योधन का निकृष्ट चरित्र प्रतिपादित किया गया है, जिसमें वह अपने अनुचित कार्य को भी उचित सिद्ध करना चाहता है।

(ii) 'शिखण्डी' पद का प्रयोग यहाँ पर द्रुपद के पुत्र के लिए किया गया है, जिसे भीष्मपितामह के वध के लिए पाण्डवों द्वारा प्रयोग किया गया था। यह पूर्वजन्म में स्त्री था, इसलिए भीष्म ने इसके ऊपर बाण चलाने से मना कर दिया था।

(iii) अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग हुआ है, लक्षण पूर्ववत्।

व्या. टि.– (i) **भविष्यति–** √भू+लृट्, प्रथम पुरुष, एकवचन।

(ii) **पाण्डुपुत्राणाम्–** पाण्डोः पुत्राः, पाण्डुपुत्राः, तेषाम्।

संस्कृत व्याख्या– शिखण्डी एतत् नामकं महारथं द्रुपदपुत्रं अग्रे कृत्य, वृद्धे गंगायाः पुत्रः तस्य भीष्मस्य वधे कृते सति, युधिष्ठिरादीनां पाण्डुपुत्राणां यादृशी प्रशंसा सम्भूता पूर्वे, तादृशी खलु प्रशस्तिः कौरवाणाम् अपि कार्येऽस्मिन् भविष्यति, भवितव्यम् वा, इति।

(5) 'चन्द्रिका' सहभृत्येति– कंचुकी और दुर्योधन के मध्य वार्तालाप प्रसंग में मन ही मन भयभीत दुर्योधन भीम के विषय में भीम द्वारा अपने सभी शुभचिन्तकों के साथ स्वयं को मारने की बात त्रुटिवश कह देता है, तदनुसार–

यह ठीक है कि अपने सभी सेवकों, फुफेरे भाइयों, मित्रों, पुत्रों तथा सगे छोटे भाइयों के साथ, इस सुयोधन को पाण्डुपुत्र भीम अत्यन्त शीघ्र ही अपने पराक्रम से युद्धभूमि में मार गिराएगा।

विशेष–(i) दुर्योधन का आन्तरिक भय प्रदर्शित हुआ है। इसी के साथ महाकवि का मनोविज्ञान विषयक ज्ञान भी अभिव्यंजित हुआ है, क्योंकि यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि मन ही मन डरे हुए व्यक्ति के मुख में अनायास ही उसका भय सामने आ ही जाता है।

(ii) वस्तुतः दुर्योधन कहना तो यह चाह रहा था कि पाण्डुपुत्र भीम को सुयोधन शीघ्र ही मार गिराएगा, किन्तु कंचुकी के मुख से अपनी प्रंशसा सुनकर अभिमान के कारण उलटा ही कह गया है।

(iii) प्रस्तुत श्लोक में ललिता छन्द का प्रयोग हुआ है, लक्षण इस प्रकार है– **ससजा विषमे यदा गुरुः सभरा स्याल्ललिता समे लगौ।**

व्या. टि.–(i) **निहन्ति–** नि+√हन्+तिप्, लट्, प्रथमपुरुष, ए.व।

संस्कृत व्याख्या– पाण्डुपुत्रः भीमः, सहभृत्यगणं, मातुलपुत्रादिनिकटसम्बन्धिसहितं, सहमित्रं, पुत्रयुतं, कनिष्ठभ्रातृसहितं, दुर्योधनं युद्धभूमौ स्वल्पेनैव कालेन निहनिष्यति, इति।

(6) 'चन्द्रिका' सहभृत्यगणमिति– दुर्योधन के वचनों को सुनकर कंचुकी अपने कानों पर हाथ रख लेता है, तब दुर्योधन उससे पूछता है कि ऐसा मैंने क्या कह दिया जो तुम अपने कानों को बन्द कर रहे हो? उत्तर में कंचुकी कहता है कि– आपने तो सुयोधन अपने बल से सेवक वर्ग, बन्धुवर्ग, मित्रमण्डल तथा पुत्रों व छोटे भाइयों के साथ पाण्डुपुत्रों को युद्धक्षेत्र में शीघ्र ही मार डालेगा, इसका ठीक उलटा ही कह दिया था।

विशेष–(i) पूर्व श्लोक में कर्ता भीम था, जबकि प्रस्तुत श्लोक में कर्ता दुर्योधन हो जाता है। कर्म भी दोनों में परिवर्तित हो जाएँगे।

संस्कृत व्याख्या– धृतराष्ट्रपुत्रः दुर्योधनः, सहभृत्यगणं, मातुलपुत्रादिनिकटसम्बन्धिसहितं, सहमित्रं, पुत्रयुतं, कनिष्ठभ्रातृसहितं पाण्डुपुत्रं भीमं युद्धभूमौ स्वल्पेनैव कालेन निहनिष्यति, इति।

(7) 'चन्द्रिका' प्रालेयेति– भानुमती से मिलने के लिए उत्सुक दुर्योधन से कंचुकी बालोद्यान की प्रातःकालीन शोभा का वर्णन करते हुए कहता है कि–

जो भौंरे रात्रि में विकसित होने वाले पुष्पों पर, ओस के कणों से मिश्रित मकरन्द के लोभ से बैठे हुए थे, वे ही इस समय सूर्य की किरणों द्वारा कलियों के खिलने से प्रसारित होने वाली, तीखी गन्ध के कारण कमलों के खिलने की सूचना प्राप्त होने से, पूर्व के फूलों से हटकर विकसित कमलों पर गिर रहे हैं।

विशेष–(i) महाकवि का अभिप्राय है कि ये भ्रमर विनाशोन्मुख कौरव पक्षरूप रात्रिकालीन पुष्पों को छोड़कर, पाण्डवपक्षरूपी उदयोन्मुख सुगन्धित कमलों का आश्रय ग्रहण कर रहे हैं।

(ii) यहाँ 'भ्रमर' पद से कौरवपक्ष के सेवकादि से अभिप्राय ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि कौरवों के विनाश की सम्भावना को

देखकर वे लोग पाण्डपक्ष में सम्मिलित हो रहे हैं, यह अर्थ भी व्यंजना से अभिव्यक्त हो रहा है।

(iii) वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग हुआ है।

(iv) प्रातःकाल में सूर्योदय के बाद कमल की कलियों के खिलने से उनमें से तीखी गन्ध निकलती है, प्रस्तुत उल्लेख से कवि का वनस्पति विज्ञान विषयक ज्ञान भी अभिव्यंजित हुआ है।

(v) इसीप्रकार रात्रिकालीन पुष्पों पर ओस के कणों के कारण भ्रमर मकरन्द का ठीक से पान नहीं कर पा रहे थे, इसलिए प्रसन्न नहीं थे, यही स्थिति कौरवपक्ष के लोगों की थी, वे भी उन कौरवों के पक्ष में प्रसन्न नहीं थे, किन्तु मजबूरीवश उन्हें कौरवों के साथ रहना पड़ रहा था। इस अर्थ की भी व्यंजना से प्रतीति हो रही है।

व्या. टि.–(i) **पतन्ति**– √पत्+झि, लट्, प्रथम पुरुष, बहुवचन,

(ii) **निपतिताः**–नि+ √पत्+क्त+टाप्, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन।

(iii) रजन्यां प्रबुद्धानि, रजनीप्रबुद्धानि, तैः।

(iv) अर्कस्य सूर्यस्य अंशवः तैः भिन्नाः, ते मुकुलाः तेषाम्।

संस्कृत व्याख्या– हिमसंहतिमिलितपुष्परसदन्तुरितमध्यभागैः,रात्रौ विकसितानि तैः पुष्पैः सार्धं निपतिताः भ्रमराः, सूर्यस्य किरणैः विकसितानां कलिकानां यानि मध्यभागानि तेषां यः सान्द्रः तीव्रो वा सुरभिः तेन सम्यक् ज्ञातानि अरविन्दानि आश्रयन्ति।

(8) 'चन्द्रिका' जृम्भारम्भेति– इसी क्रम में दुर्योधन अन्यत्र प्रातःकालीन सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कंचुकी से कहता है कि–

हे विनयन्धर! इसी प्रभात की दूसरी मनोरमता को भी देखो, जिसप्रकार प्रातःकाल के आरम्भ में केलिमन्दिर में जाकर सोए हुए महाराजा और महारानी को निधुवन के समय की दासी, चरणों के कोमल मर्दन द्वारा जगाती हैं, ठीक उसीप्रकार पुष्प के खिलने के आरम्भ में फैले हुए, पत्तों के सन्धिमार्ग से भीतर घुसे हुए, सूर्य की किरणों द्वारा स्पर्श किए गए, ये भौंरे अपनी–अपनी प्रियतमाओं के साथ, खिली हुई कमलिनी की गर्भरूपी शय्या को छोड़ रहे हैं।

कवि का आशय है कि जिसप्रकार रात्रि में केलिमन्दिर में चिरकाल तक रतिक्रिया की थकान से गहरी निद्रा में सोए हुए, राजाओं को निधुवन की दासी अपने कोमल हाथों के अग्रभाग अर्थात् हथेली से धीरे–धीरे दबाते हुए जगाती हैं और वे निद्रा का परित्याग करके शय्या को छोड़ते हैं, वैसे ही सायंकाल से लेकर प्रातःकाल पर्यन्त अपनी भ्रमरियों के साथ, सुखपूर्वक केलिक्रीड़ा का अनुभव करके, सोए हुए भ्रमर भी प्रातःकाल में सूर्य की किरणों के स्पर्श से खिलने वाली कमलिनी रूप शय्या को छोड़ रहे हैं।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक में भ्रमर कौरवपक्ष के वीरों की प्रतीति करा रहे हैं, जो अपने राजा के समान ही अपनी–अपनी प्रियाओं के साथ रात्रि में केलिक्रीड़ा में व्यस्त थे और इस समय अपनी रात्रि कालीन शय्या का परित्याग कर रहे हैं।

(ii) कमल के पत्तों के सन्धिमार्ग से भौंरों के निकलने के उल्लेख से कवि का प्राणिविज्ञान विषयक सूक्ष्मज्ञान अभिव्यक्त हुआ है।

(iii) 'सार्धम्' पद के योग में 'स्त्रीभिः' शब्द में तृतीया विभक्ति का प्रयोग 'सहयुक्तेऽप्रधाने' सूत्र से हुआ है।

व्या. टि.–(i) मुंचन्ति– √मुंच्+लट्+ प्रथम पुरुष, बहुवचन।

(ii) रजन्यां प्रबुद्धानि रजनीप्रबुद्धानि, तैः।

(iii) अर्कस्य अंशवः तैः भिन्नाः च ते मुकुलाः तेषाम्।

संस्कृत व्याख्या– मुखविकाशस्य उपक्रमः तेन प्रकर्षेण विस्तारोन्मुखाः ये पत्राणां प्रान्तभागेषु यानि छिद्राणि तैः प्रविष्टाः सूर्यस्य किरणैः संस्पृश्यमानाः राजानः इव त्यक्तनिद्राः च सान्द्रगन्धेन स्वल्पः लक्ष्योऽङगरागः, अंगविलपेनं सुरभिद्रव्यं येषां तथाभूताः, एते भ्रमराः भ्रमरीभिः सह विकसितकमलिनीकोशरूपशय्यां परित्यजन्ति।

(9) 'चन्द्रिका' किं कण्ठे, इति– दुःस्वप्नदर्शन से दुःखी भानुमती को सान्त्वना देते हुए, उसकी दोनों सखियाँ उसे सन्ताप न करने के लिए कहती हैं, इस सन्ताप को छिपकर सुनने वाला, दुर्योधन अपनी किसी गलती के कारणरूप में तीन कल्पना करते हुए कहता है कि–

हे भानुमति! यह दुर्योधन वस्तुतः तुम्हारे क्रोध के योग्य नही है, (1) क्या मैंने तुम्हारे गले में डाला हुआ, अपनी भुजारूपी लताओं का पाश, कभी ढ़ीला कर दिया, जो तुम इसप्रकार मेरे प्रति नाराज़ हो गयी हो (2) क्या निद्रा में करवट लेते समय जब तुम मेरी ओर हुई होगी, तब मैंने तुम्हें आलिंगन आदि द्वारा सन्तुष्ट नहीं किया (3) या फिर क्या तुमने कभी मुझे स्वप्न में किसी दूसरी स्त्री के साथ बातें करते हुए देख लिया है। इन तीन सम्भावनाओं को व्यक्त करने के बाद वह कहता है कि हे प्रिये! मैं तो सेवक के समान हमेशा ही तुम्हारा अनुगमन करता रहता हूँ, फिर ऐसा मेरा कौन सा दोष है, जिसके कारण तुम मेरे प्रति इतनी अधिक रूठ गयी हो।

विशेष–(i) स्त्री के रूठने के तीन मुख्य कारणों का उल्लेख करने से महाकवि का स्त्रीमनोविज्ञान विषयक गहनज्ञान व्यक्त हुआ है।

(ii) शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का प्रयोग है।

(iii) दुर्योधन की कामुकतातिशय दर्शनीय है।

व्या. टि.–(i) **पश्यसि**– √दृश्(पश्य्)+लट्, मध्यमपुरुष, एकवचन।

(ii) भुजयोः लता भुजलता, तस्याः पाशः भुजलतापाशः।

(iii) परिजनस्य इव उपालम्भः, तस्य योग्यः तस्मिन्

संस्कृत व्याख्या– मया कण्ठे विहितः बाहुलतापाशः अनवधानतया श्लथीकृतः, किम्? निद्राभंगसमये पार्श्वपरिवर्तनेषु संमुखीना त्वं दृढ़परिरम्भादिना न परितोषिता किम्? अथवा अन्य स्त्रीजनेन सह प्रेमालापतया हीनवृत्तः अहं त्वया स्वप्नेऽपि अवलोकितः किम्? हे प्रिये! सेवकः इव उपालम्भयोग्योऽहं अस्मि, तव समक्षे, मयि कं अपराधं पश्यसि त्वं येन एवं कोपना दृश्यते, किमपि कथ्यताम्, इति भावः।

(10) 'चन्द्रिका' इयमिति– इसी प्रसंग में दूसरी कल्पना करते हुए फिर से दुर्योधन अपने मन में ही कहता है कि–

अथवा इसका मन मेरे में ही पूर्णरूप से आसक्त एवं दृढ़ प्रेम वाला है, इसलिए दूसरे के साथ सामान्य सी बातचीत को देखकर भी ईर्ष्यावश यह मेरे अपराध की भ्रान्ति से क्रोधित हो गयी है।

विशेष–(i) एकनिष्ठ प्रेम के कारण स्त्री का स्वभाव होता है कि वह किसी अन्य स्त्री से अपने प्रियतम द्वारा सामान्य बात किया जाना भी ईर्ष्याभाव से पसन्द नहीं करती है, कवि ने यहाँ उसी ओर संकेत किया है।

(ii) पूर्वश्लोक के समान ही यहाँ भी स्त्रीमनोविज्ञान की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

(iii) औपच्छन्दसिक छन्द एवं उत्प्रेक्षालंकार[1] का सुन्दर प्रयोग दर्शनीय है।[2]

(iv) प्रस्तुत एवं पूर्व के श्लोकों में प्रेमकलह के विषय में उल्लेख किया गया है।

(v) श्रृंगाररस का सुन्दर परिपाक भी दर्शनीय है।

व्या. टि.–(i) **उत्प्रेक्ष्य**– उत्+प्र+ √ईक्ष्+क्त्वा (ल्यप्), देखकर।

संस्कृत व्याख्या– **अहम् अवलम्बनं यस्याः तादृशं अभिन्नहृदयं यस्याः सा, एषा भानुमती प्रेम्णा निबद्धः मत्सरः यस्मिन् तादृशि स्नेह-जनितक्रोधेन मनसा अतिप्रियत्वात् मे अपराधलेशमपि आत्मना समीक्ष्य निश्चयमेव कोपिता जातेति।**

(11) **'चन्द्रिका' तद्विरुत्वमिति**– नेवले द्वारा सौ सर्पों को मार डालने विषयक, अपने दुःस्वप्न का कथन विस्तार से अपनी सखियों से करने के प्रसंग में छिपकर, इनकी बातों को सुनने वाला दुर्योधन, नकुल (नेवले) पद से पाण्डुपुत्र 'नकुल' अर्थ समझ लेता है, जिससे वह अपनी पत्नी के चरित्र पर संदेह करते हुए कहता है कि–

हे दुष्ट पापिनि! कहाँ तो मेरे सामने तेरा वह भीरुपन प्रदर्शित करना और कहाँ इसप्रकार का यह दुःसाहसपूर्ण कार्य? कहाँ तो वह मेरे सौन्दर्य की प्रशंसा मेरे ही समक्ष करना और कहाँ पतिव्रता स्त्रियों की मर्यादा के उल्लंघन में इतना अधिक प्रेम, अपने प्रेमरूपी पाश में फँसाकर, मूर्ख बनाए हुए, मुझमें कहाँ तो तेरी वह उदारता? और कहाँ इसप्रकार की व्यभिचाररूपी चंचलता में प्रवृत्ति। इतना ही नहीं, कहाँ

---

1. सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्।
2. लक्षण के लिए परिशिष्ट देखें।

तो संसार में प्रसिद्ध निष्कलंक वंश में जन्म ग्रहण करना और कहाँ इसप्रकार का अपवादरूप कलंक? अर्थात् तुमसे मुझे इसप्रकार के आचरण की लेशमात्र भी आशा नहीं थी।

विशेष–(i) अपनी पत्नी भानुमती के विषय में दुर्योधन का चिन्तन, उसके निकृष्ट एवं संशयालु चरित्र को उद्घाटित करने वाला है, जिसे किसी भी पति के लिए प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता है।

(ii) मधुर एवं गेय मन्दाक्रान्ता छन्द तथा विरुद्धभावों के नियोजन के कारण विषम अलंकार[1] का सौन्दर्य दर्शनीय है।

व्या. टि.–(i) **जड़मतौ** जड़ा मतिः यस्य सः, तस्मिन्।

(ii) **विनयव्युत्क्रमे** विनयस्य व्युत्क्रमः, विनयव्युत्क्रमः, तस्मिन्।

(iii) **वितमसि**– विगतं तमा यस्मात्, सः तस्मिन्।

संस्कृत व्याख्या– **मम सम्मुखे तव तत् प्रसिद्धं कातर्यं क्व? ईदृशानि च परपुरुषसम्भोगरूपाणि साहसेन कृतानि कुकृत्यानि, अस्माकं शरीरे सौन्दर्यादिगुणकीर्तनरूपा सा प्रशंसा क्व? पातिव्रत्यरूपसुचरिता–तिक्रमेऽपि प्रत्यक्षरूपेण अनुभूयमानः स अनुरागः क्व? कापट्यचां–चल्यादिरहिते सरलमतौ, इति मयि तत् प्रसिद्धं औदार्यं क्व? चांचल्ये मां प्रतारयित्वा परपुरुषानुसरणरूपे कापट्ये, कोऽपि लोकविलक्षणः मार्गः क्व? तस्मिन् प्रसिद्धे दोषरहिते वंशे जन्म क्व? एतत् च कलंकरूपः अपवादः क्व? अनेन सर्वेण तु कुलटा इति प्रतिभाति मे त्वम् अद्य।**

(12) 'चन्द्रिका' यस्मिन्निति– इसी क्रम में भानुमती को कुलटा और दुराचारिणी मानते हुए दुर्योधन मन में कहता है कि–

हे दुराचारिणि! अपनी जिन सखियों के समक्ष तू मेरे अत्यधिक बढ़े हुए प्रेम और रतिविषयक कलह के रहस्य को समय–समय पर कहती थी, वही तू आज, उन्हीं अपनी सखियों के सामने, अपनी इस व्यभिचार वाली कथा को कहते हुए लज्जा का अनुभव नहीं कर रही है?

---

[1]. क्वचिद्यदतिवैधर्म्यान्न श्लेषो घटनामियात्।
कर्तुः क्रियाफलावाप्तिर्नैवानर्थश्च यद्भवेत्।। काव्यप्रकाश–10 / 194।

विशेष–(i) दुर्योधन में गम्भीरता के अभाव के साथ उसका अस्थिर चित्त भी अभिव्यक्त हुआ है, क्योंकि आधी अधूरी बात को सुनकर, क्षणभर में ही उसने भानुमती को कुलटा तक कह दिया है।

(ii) वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग भी दर्शनीय है।

व्या. टि.–(i) **असि**– √अस्+लट्+मध्यम पुरुष, एकवचन।

(ii) **तथैव**– तथा+एव, आ+ए–ऐ, वृद्धिरेचि सूत्र से वृद्धि संधि।

संस्कृत व्याख्या– यस्मिन् सखीजने मम सुरतोपभोगः चिरन्तन–स्नेहेन सातिशयं अनुरागो यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात् तथा, एकान्ते कथितः, हे पापिनि! तस्मिन्नेव विषये सखीजने सम्प्रति स्वीयं पापकर्म कथयन्ती त्वं लज्जिता न भवसि किम्?

(13) 'चन्द्रिका' दिष्ट्येति– भानुमती के अपनी सखी सुवदनादि के साथ वार्तालाप को सुनने के क्रम में ही दुर्योधन को यह स्पष्ट हो जाता है कि यह कथा तो नेवले तथा सौ सर्पों के वध को स्वप्न में देखने पर आधारित थी, तो वह प्रसन्न मन से स्वयं के मूर्खतापूर्ण चिन्तन पर पश्चात्ताप करते हुए कहता है कि–

अब तो निश्चय हो गया है कि यह वस्तुतः भानुमती का स्वप्न ही था, जबकि मन्दमति मैंने इसे सच मान लिया था, फिर भी सौभाग्य से यह अच्छा ही हुआ जो आधी बात को सुनकर ही क्रोध में आकर मैं उस माद्रीपुत्र नकुल को मारने के लिए नहीं गया। साथ ही, यह भी भाग्यवश अच्छा ही हुआ कि इसके कहने के बीच में ही गुस्से में आकर मैंने इस भानुमती को कुछ भला–बुरा नहीं कहा और मुझ जैसे मूर्ख को विश्वास दिलाने के लिए ही इसकी स्वप्न विषयक कथा शीघ्र समाप्त हो गयी तथा यह भी मेरा परम सौभाग्य ही है कि मैंने कलंक की भ्रान्तिवश इसे मारकर इस संसार को इससे सूना नहीं किया।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक में महाकवि द्वारा दुर्योधन के अहंकारी, पश्चात्तापी एवं मूर्खतापूर्ण चरित्र को उद्घाटित किया गया है, जिसे उसने स्वयं ही स्वीकार भी किया है।

(ii) साथ ही, स्त्री के विषय में शंकालु पुरुष विषयक मनो–विज्ञान भी प्रदर्शित हुआ है। इसी से ग्रसित अनेक मूर्ख पुरुष आज भी अपनी पत्नी को मार डालते हैं।

(iii) शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या. टि.–(i) **व्याहृतम्**– वि+आ+ √हृ+क्त। √गम्+क्त, गतः।

(ii) अर्द्धं च तत् कथनम्, अर्द्धकथनम्, तस्मिन् अर्द्धकथने।

संस्कृत व्याख्या– दिष्ट्येति अव्ययं हर्षसूचकम्। दुर्योधनः कथयति यत् अर्द्धं यथा श्रुतः यः विसंवादः तेन जनितो यः क्रोधः तस्मात् वै क्रोधात् नैव गतोऽहं माद्रीसुतं हन्तुम्। हर्षस्य विषयोऽयम्। एवमेव सौभाग्यस्य खलु विषयमेतत् यत् अर्द्धभाषणे वै क्रोधेन किमपि परुषं मया न कथितं प्रियां प्रति। एतदपि सौभाग्यमेव यत् भ्रान्तमानसं मां बोधयितुं भानुमत्याः स्वप्नकथायाः अन्तं संजातम्। एतदपि सौभाग्यं किल स्थानं यत् अस्याः व्यभिचारित्वभ्रमेण अनया भानुमत्याः जगत् विरहितं शून्यं न जातम्। मया एषा न मारिता, इति भावः।

(14) 'चन्द्रिका' प्रायेणेति– सुवदना के स्वप्न विषयक फल के अनिष्ट का उल्लेख करने के बाद, दुर्योधन कहता है कि–

यह सुवदना ठीक ही कह रही है, वस्तुतः स्वप्न में नेवले द्वारा सौ सर्पों का मारा जाना एवं देवी के स्तनों पर स्थित वस्त्र को हटाया जाना, ये दोनों ही बातें भविष्य में होने वाले, अनिष्ट की सूचना देने वाली हैं और मैं भी यही मानता हूँ।

यद्यपि सामान्यरूप से तो स्वप्न, अच्छे और बुरे दिखायी देते ही हैं, इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है, किन्तु फिर भी सर्पों की यह सौ संख्या, सौ भाइयों के साथ, मानो मेरी ओर ही संकेत कर रही है।

विशेष–(i) भानुमती के स्वप्न के सम्बन्ध में दुर्योधन के मन में शंका के बीज की उपस्थिति को सूचित किया गया है।

(ii) प्रस्तुत श्लोक में पथ्यावक्त्र छन्द का प्रयोग हुआ है।

(iii) स्पृशतीव में उत्प्रेक्षालंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

व्या. टि.–(i) **स्पृशति**– √स्पृश्+लट्, प्रथम पुरुष, एकवचन।

(ii) **दृश्यन्ते**– √दृश्+लट्,आत्मनेपद, प्रथम पुरुष, बहुवचन।

(iii) सानुजम्– अनुजेन सहितम्। शुभाः च अशुभाः चेति,

संस्कृत व्याख्या– यद्यपि मंगलामंगलपरिणामाः स्वप्नाः बहुशः अवलोक्यन्ते, पुनरपि स्वप्ने नकुलेन हन्यमानाः शतसंख्यकाः सर्पाः विषयिकी एषा कथा सानुजं मामेव विषयीकरोति खलु। यतोहि अस्माकं भ्रातृणां संख्या वै शतं वर्तते।

(15) 'चन्द्रिका' ग्रहाणामिति– इसी बीच अपनी बाँयी आँख फड़कने के बाद, दुर्योधन अंगिरा ऋषि के कथन को प्रस्तुत करते हुए गर्वपूर्वक कहता है कि–

सूर्य, चन्द्रादि ग्रहों का आचरण, स्वप्न एवं बिना किसी कारण ध्वजा का टूटना आदि ये सभी उपद्रव **काकतालीय न्याय** से फलित होते है अर्थात् कभी तो फल प्रदान करते हैं और कभी नहीं भी करते हैं। इसलिए विद्वान् लोग इनसे डरते नहीं हैं और अपने दैनिक जीवन को विश्वासपूर्वक निश्चिन्तता के साथ जीते हैं।

विशेष–(i) तात्कालिक समय में समाज में प्रचलित ज्योतिष एवं शकुनों के विषय में मतान्तर को प्रस्तुत किया गया है।

(ii) पथ्यावक्त्र छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

(iii) संयोगवश किसी कार्य का होना ही **काकतालीय न्याय** कहलाता है। **जैसे**–पेड़ के नीचे आकर बैठना और फल का गिरना।

व्या. टि.–(i) **फलन्ति–** √फल्+लट्, प्रथमपुरुष, बहुवचन।

(ii) **बिभ्यति–** √भी+लट्, प्रथम पुरुष, एकवचन, डरता है।

संस्कृत व्याख्या– सूर्यादिनवग्रहाणां गतिभेदः, स्वप्नः च एते सर्वे अकारणमेव काकतालीय न्यायेन फलं ददति, अनेन विद्वांसः विषयेऽस्मिन् नैव भीताः भवन्ति।

(16) 'चन्द्रिका' विकिरेति– दुर्योधन सेविका के हाथ से पुष्प लेकर, स्वयं भानुमती को अंजलि द्वारा देता है, जो उसके स्पर्शसुख के अनुभव से पृथ्वी पर गिर जाते हैं, तब दुर्योधन कहता है कि–

हे देवि! आपका यह सेवक इसप्रकार की सेवा करने में निपुण नहीं है, इसलिए इसे आप दण्ड देने में समर्थ हैं, हे प्रिये! इस सम्बन्ध में आपको घबराने की आवश्यकता नहीं है। आप तो सेवकों के मार्ग

पर चलने वाले मुझ पर, अपने शुभ्र एवं विशाल नेत्रों से दृष्टिपात कीजिए तथा मधुर स्मितपूर्वक मेरे साथ प्रेमवार्ता कीजिए। मैं तो हमेशा ही तुम्हारी सेवा में हाथ जोड़कर उपस्थित रहता हूँ।

विशेष–(i) दुर्योधन का कामुक चरित्र प्रदर्शित हुआ है।

(ii) मालिनी[1] छन्द एवं दीपक[2] अलंकार का प्रयोग हुआ है।

(iii) श्रृंगाररस का सुन्दर परिपाक हुआ है।

व्या. टि.–(i) **सेवितुम्**– √सेव्+तुमुन्, सेवा करने के लिए।

(ii) **प्रभवति**– प्र+ √भू+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन, समर्थ है।

(iii) परिजनस्य पन्थाः, परिजनपथः तस्मिन् वर्तते, तस्मिन्

संस्कृत व्याख्या–हे प्रिये! उद्वेगेन अलम्, सेवकमार्गे स्थिते मयि दुर्योधने नियमस्थया कज्जलशून्यत्वात् धवलः, विशालः नेत्रप्रान्तभागः तत्र गमनशीलं चक्षुः निक्षिप, मां मन्दस्मितमधुरं मनोहरं च आलप, मम अंजलिः त्वां सेवितुं सदैव सन्नद्धो वर्तते। अयं जनः त्वां सेवितुं समर्थः।

(17) 'चन्द्रिका' किं नो, इति– भानुमती द्वारा स्वप्न के विषय में दुर्योधन से कहने के बाद, अपने व्रत की अनुमति माँगे जाने पर दुर्योधन स्वप्न के अनिष्ट से डरने का निषेध करते हुए कहता है कि

हे देवि! स्वप्नदर्शन को लेकर तुम्हें इसप्रकार घबराने की आवश्यकता नहीं है। यदि तुम इसप्रकार घबराने लगी तो फिर सभी दिशाओं में व्याप्त और पृथ्वी को कँपाने वाली, मेरी अक्षौहिणी सेना का क्या लाभ? द्रोणाचार्य के होने से क्या लाभ? अंगराज कर्ण के तीक्ष्ण बाण किसी काम के हैं? हे भीरु! तुम तो मेरे सौ भाइयों के भुजारूपी वन की छाया में सुखपूर्वक रहने वाली दुर्योधनरूपी सिंह की पत्नी हो, भला तुम्हे शंका किस बात की है? इसलिए स्वप्नदर्शन के अनिष्ट से मत डरो।

विशेष–(i) दुर्योधन का अहंकारी स्वभाव प्रदर्शित हुआ है।

---

[1]. लक्षण– ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः।

[2]. लक्षण– अप्रस्तुतप्रस्तुतयोर्दीपकं तु निगद्यते।

(ii) 218700 सैनिकों की एक अक्षौहिणी[1] सेना मानी गयी है जिसमें हाथी, रथ, घोड़े तथा पैदल सैनिक निश्चित संख्या में होते हैं।

(iii) शार्दूलविक्रीडित छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या. टि.–(i) क्लाम्यसि– √क्लम्+लट्, मध्यमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– हे देवि! यदि त्वं अनेन प्रकारेण खिद्यसे तर्हि अस्माकं दिक्षु व्यापृताः प्रकम्पिता भूः तासाम् चतुरंगिणी सेनायाः किं फलमस्ति? द्रोणाचार्येण कः लाभ? अंगदेशस्य नृपस्य कर्णस्य तीक्ष्णैः शरैः कोऽर्थः? हे भयशीले! त्वं मम भ्रातृशतस्य बाहवः एव वनं तस्य छायायां आनन्देन वर्तमाना, दुर्योधनः एव सिंहराजः, तस्य भार्या असि अतएव नैव लेशमात्रमपि शंकायाः स्थानं, किं पुनर्भयम्?

(18)'चन्द्रिका'प्रेमाबद्धेति–इसी क्रम में दुर्योधन अपनी अभिलाषा के विषय में भानुमती से कहता है कि–

प्रेम में आसक्त अतएव निश्चल, जिन नेत्रों ने कमल की शोभा को भी जीत लिया है तथा लज्जा के कारण जिस मुख द्वारा अपने भाव को स्पष्टरूप से प्रकट नहीं किया जा रहा है, व्रत का पालन करने से आलता से बनी हुई अधरोष्ठ की लालिमा छूट गयी है। मन्द मुस्कान वाले, तेरे मुखरूपी चन्द्रमा का पान करने की ही मेरी एकमात्र इच्छा है, जो एकमात्र तेरे ही अधीन है। हे प्रिये! इसके अलावा संसार की ऐसी क्या वस्तु है, जो मुझे सरलता से प्राप्त न हो?

विशेष–(i) श्रृंगाररस का पूर्ण परिपाक हुआ है। साथ ही दुर्योधन का प्रेमीहृदय भी अभिव्यक्त हुआ है।

(ii) मुखरूप उपमेय द्वारा उपमानरूप कमल की शोभा जीतने से व्यतिरेक एवं वक्त्रेन्दु में रूपक अलंकार तथा मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

व्या. टि.–(i) पातुम्– √पा+तुमुन्, पीने के लिए।

---

[1]. एकेभैकरथस्त्र्यश्वाः पत्तिः पंचपदातिका,
सेना सेनामुखं गुल्मो वाहिनी पृतना चमूः।
अनीकिनि च पतिः स्यादिभाथैस्त्रिगुणैः,
क्रमात् दशानीकिन्योऽक्षौहिणी इति।।

(ii) **आपीयमान**– आ+√पा+शानच्, आ–समन्तात्, पूर्णरूप से।

संस्कृत व्याख्या– प्रेम्णा संबद्धे ते नयने ताभ्यां निगीर्यमाणा अब्जस्य शोभा येन, लज्जासम्बन्धात् अस्पष्टकथनं अत्यल्पहासं, ब्रह्मचर्यादिव्रतरूपेण अपहृतः अलक्तकस्य अंकः यस्मिन् तादृशः अधरः तथाभूतम् व्रतस्य पालनेन दुष्प्रापं ते मुखचन्द्रं चुम्बितुं वांच्छा अस्ति, मम कृते अन्यत् किं अलभ्यं वर्तते, नैव किमपि, सर्वं सुलभमेवास्ति।

(19) 'चन्द्रिका' दिक्ष्वेति– नेपथ्य के कोलाहल को सुनकर भयभीत भानुमती अपने प्रियतम दुर्योधन से लिपट जाती है, तो दुर्योधन उसे सान्त्वना देते हुए कहता है कि हे प्रिये! तुम्हें घबराने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह वस्तुतः अकस्मात् आया हुआ झंझावात है, जिसने वृक्षों की शाखा एवं उसके पत्तों को उखाड़कर दिशाओं में बिखेर दिया है तथा आकाश में तिनकों से व्याप्त गोलाकार में घूमता हुआ, धूलि का यह **दण्ड** खड़ा कर दिया है एवं जो मार्ग में छोटे–छोटे कंकड़ों के कणों से युक्त होकर झंकार की ध्वनि कर रहा है। वृक्षों के तनों के आपस में रगड़ने के कारण निकलते हुए धुएँ वाला है। ऊँचे ऊँचे राजमहलों के कुँजों में नए मेघ के समान गम्भीर ध्वनि कर रहा है। इसप्रकार स्पष्ट है कि भयानकरूप वाला यह झंझावात चारों ओर व्याप्त हो गया है। इसलिए हे भीरु! डरने की कोई बात नहीं है।

विशेष–(i) भयंकर झंझावात का स्वाभाविक एवं सुन्दर वर्णन किया गया है, जिससे कवि का मौसम विज्ञान अभिव्यक्त हुआ है।

(ii) अनेक बार झंझावात आने पर उसमें गोल–गोल घूमते हुए धूलि का दण्ड सहज ही देखा जा सकता है, जिसकी ओर कवि ने संकेत किया है। इससे कवि की सूक्ष्मदृष्टि प्रदर्शित हुई है।

(iii) स्रग्धरा छन्द का सुन्दर प्रयोग दर्शनीय है।

(iv) झंझावात का स्वाभाविक वर्णन करने से स्वभावोक्ति अलंकार का सौन्दर्य भी देखा जा सकता है। लक्षण इसप्रकार है–

लक्षण– स्वभावोक्तिरसौ चारु यथावद् वस्तुवर्णनम् ।

व्या. टि.–(i) वहति– √वह्+लट्, प्रथम पुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– हे भयशीले! दिशासु विक्षिप्तानि वृक्षाणां अंगानि तरुशाखापल्लवानि येन तथाभूतः, नभसि तृणैः जटिलः ऊर्ध्वं गच्छन् दण्डाकारधूलिसमूहो यस्मात् सः, मार्गेषु शर्करावान् सूक्ष्मधूलिकणिकायुक्तो भूत्वा झंकारवान् अस्ति, अस्मिन् च वृक्षाणां स्कन्धस्य घर्षणैः धूमसहितः, राजभवनानां च लतादिपिहितेषु स्थलेषु निकुंजेषु इति, नूतनः यः मेघः तस्य ध्वनिः धीरः गम्भीरः च तथाभूतः, प्रचण्डवेगः झंझावातानां तीव्रः वायुः सर्वत्र दिक्षु प्रकर्षेण वहति, इति। अतएव भयस्य आवश्यकता नैव वर्तते, निर्भया भव, इति आशयः।

(20) 'चन्द्रिका' न्यस्तेति– झंझावात के आने से अकस्मात् आलिंगनबद्ध भानुमती के स्पर्शसुख के आनन्द की अनुभूति करते हुए दुर्योधन झंझावात द्वारा किए गए उपकार के विषय में कहता है कि–

इसी वायु की कृपा से अपने व्रत–नियम का पतित्याग करके इस भानुमती ने मेरा मनोरथ पूरा कर दिया है, क्योंकि इसने न तो अपनी भ्रकुटियों को ही चढ़ाया, न ही अपनी आँखों को अश्रुओं से परिपूरित किया, मुखचुम्बन के समय इसने अपने मुख को भी दूसरी ओर नहीं घुमाया और न ही मुझे ऐसा करने के लिए किसी प्रकार की कोई शपथ ही प्रदान की। इस सबके विपरीत इस देवी ने भय के मारे मुझे अपने वक्षःस्थल से ऐसा कसकर दबा लिया कि उसमें स्तनों के अग्रभाग ही दब गए। इसलिए इसके नियम को तोड़ने वाला, यह वायु वस्तुतः मेरा मित्र ही है, इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है।

विशेष–(i) प्रेमी द्वारा आलिंगनबद्ध करने के लिए प्रेमिका द्वारा की जाने वाली स्वाभाविक चेष्टाओं का मनोरम वर्णन किया गया है। अतः स्वभावोक्ति अलंकार का प्रयोग हुआ है।

(ii) शृंगाररस का सुन्दर एवं मनोरम परिपाक हुआ है।

(iii) शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का प्रयोग भी दर्शनीय है।

(iv) कवि का स्त्री मनोविज्ञान विषयक गहन विज्ञान तथा सूक्ष्मदृष्टि की मनोहारिणी अभिव्यंजना हुई है।

व्या. टि.–(i) **स्पृशन्**– √स्पृश्+शतृ, स्पर्श करते हुए।

संस्कृत व्याख्या— अनया कृशांग्या भ्रूभंगः न कृतः, वस्तुतः प्रेम्णि स्त्रीणां भ्रूकौटिल्यं स्वभावेन सिद्धः, तदपि न कृतम्, अहो भीषणमरुतः एव प्रभावोऽयम्। अनेनैव प्रकारेण अनया अश्रुजलैः नयने न च्छन्ने, नापि मुखं अन्यत्र परावृत्येति, अनिच्छाप्रकटनार्थम्। नापि च परामृशन् अहं शपथपूर्वकं प्रतिषिद्धः, व्रतिनी किलाहं त्वया न स्पर्शनीया, इति, अपितु सर्वथानुकूल्यमेव प्रदर्शितमित्याह— भीतिवशात् निमग्नस्तनौ यथास्यात् तथा, आलिंगितुमारब्धम् अस्याः भानुमत्याः गृहीतव्रतस्य नाशयिता, अयं भयंकरः वायुः नास्ति, अपितु मम कृते तु एषः सुहृदेव वर्तते, इति।

(21) 'चन्द्रिका' कुरु, इति— इसके बाद दुर्योधन स्वतन्त्र विहार के लिए दारुपर्वत पर स्थित प्रासाद पर जाने के लिए चलने वाली भानुमती को सम्बोधित करते हुए कहता है कि—

हे पुष्ट जँघाओं वाली सुन्दरि! अपने कदमों को थोड़ा धीरे-धीरे रखो तथा भय के कारण अपनी इस कम्पनयुक्त गति का परित्याग कर दो। हे सुन्दरि! अपनी भुजारूपी लता द्वारा तुम मेरा आलिंगन करो।

विशेष—(i) दुर्योधन का कामुक चरित्र उदघाटित हुआ है।

(ii) बाहुलता में रूपक अलंकार का प्रयोग हुआ है।

(iii) साथ ही, द्रुतविलम्बित छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

व्या. टि.—(i) घनौ ऊरू यस्याः सा, तत् सम्बुद्धौ।

(ii) **विमुंच**— वि+√मुच्+लोट्, मध्यमपुरुष, एकवचन, छोड़ो।

(iii) **निपीडय**— नि+√पीड्+लोट्, मध्यमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या— **हे निबिडोरु! चरणविन्यासानि मन्दं मन्दं कुरु, अयि मृदुभाषिणि! कम्पयुतं गमनं परित्यज, तन्वंगि! मम वक्षःस्थलं भुजलताबन्धनं यथा स्यात्तथा, दृढं आलिंग। प्रगाढालिंगनं कुरु, इति।**

(22) 'चन्द्रिका' रेणुरिति—इसके पश्चात् दुर्योधन अपनी प्रियतमा को आँधी से होने वाली, बाधा के विषय में उसकी सखी से कहता है कि— देखो, तुम्हारी सखी के नेत्रों की विशालता के कारण आँधी से उत्पन्न होने वाली थोड़ी भी धूल, इसकी आँखों को अत्यधिक कष्ट दे रही है। हार से सुशोभित तथा स्तनों के कारण उभरे हुए उरःस्थल को

यह शरीर अत्यन्त कम्पित करते हुए त्रास दे रहा है। जँघाओं के मोटे होने से धीरे चलने पर भी इनमें कम्पन बढ़ रहा है। इसप्रकार इस मृग नयनी के अंगों की सहायता प्राप्त करके, यह आँधी इसे अधिक दुःख दे रही है।

विशेष–(i) आँधी के कारण होने वाले कष्ट का स्वाभाविक चित्रण किए जाने से स्वभावोक्ति अलंकार का प्रयोग हुआ है।

(ii) काव्यलिंग अलंकार तथा स्रग्धरा छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या. टि.–(i) **दुनोति**– √दु+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(ii) **वर्द्धते**– √वृध् (वृद्धौ)+लट्, आत्मने, प्रथम पुरुष, एकवचन।

(iii) **करोति**– √कृ+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन, करता है।

संस्कृत व्याख्या– अल्पः वातोत्थितं रजः अस्याः भानुमत्याः नयनयोः आकर्णविस्तृतत्वात् महतीं पीड़ां करोति। अल्पोऽपि प्रकम्पः पीनाभ्यां स्तनाभ्यां भृतं बद्धविस्तारं वक्षःस्थलं क्षिप्तः हारः, यस्मिन् तथा भूतं चंचलहारं सत् पीडयति। मन्देऽपि गमने सति, अस्याः पीनजघन-स्थलभारात् ऊर्वौ कम्पः वृद्धिं गतो भवति, हरिणाक्ष्याः, अवयवैः नेत्रादिभिः दत्तहस्ता अवलम्बना उत्पातवातः सुचिरं खेदं करोति।

(23) 'चन्द्रिका' लोलांशुकेति– दारुपर्वत पर पहुँचकर भानुमती आस्तरण के अभाव में ही पत्थर पर बैठ जाती है, इसे देखकर दुर्योधन कहता है कि– हे सुन्दर जँघाओं वाली, प्रिये! वायु के कारण जहाँ का वस्त्र उड़ा जा रहा है और जो देखने में मुझे अच्छा भी लग रहा है, ऐसा मेरा यह उरुयुगल, शाटिका को उड़ाए जाने से मेरे नेत्रों को आनन्द देने वाले, तेरे इस जघन स्थल द्वारा चिरकाल तक सेवन करने के लिए पर्याप्त है।

विशेष–(i) दुर्योधन का कामुकतातिरेक प्रदर्शित हुआ है।

(ii) सम अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) **अध्यासितुम्**– अधि+ √आस्+तुमुन्, बैठने के लिए।

संस्कृत व्याख्या– हे करभोरु! वात्या आकुलितवस्त्रान्तं त्वत् लोचनमनोहरं मम ऊरुयुग्मं चंचलवसनस्य मम प्रीतिकरत्वात् मदीय-चक्षुसुहृदः तव कटिपुरोभागस्य चिरकालपर्यन्तं अधिष्ठितुं पर्याप्तमेव वर्तते। अतएव अत्रागत्य विश्रम्यताम्, इति।

(24) 'चन्द्रिका' भग्नमिति– तभी कंचुकी आकर झंझावात से दुर्योधन के रथ की पताका के टूटने की सूचना देते हुए कहता है कि

वस्तुतः इस भयंकर वायु ने आपके रथ की ध्वजा को तोड़ दिया है और वह पताका अपनी घंटियों की ध्वनि के साथ मानो रोते हुए पृथ्वी पर भरभरा कर गिर गयी है।

विशेष–(i) 'पताका' का मानवीकरण करते हुए, घंटियों में उसके रोने की सम्भावना की गयी है, इसलिए उत्प्रेक्षालंकार का कमनीय प्रयोग हुआ है। साथ ही, पथ्यावक्त्र छन्द का दर्शनीय है।

(ii) पताका के टूटने से दुर्योधन के अनिष्ट की सूचना दी गयी है, जो कुरुकुल के भावी विनाश की सूचक है।

व्या. टि.–(i) **पतितम्–** √पत्+क्त, गिर पड़ी।

संस्कृत व्याख्या–भयंकरेण वायुना भवतः रथध्वजः खण्डितः, पतनकाले क्षुद्रघंटिकाशब्देन क्रन्दनमिव भूमौ पतितः। तथैव यथा शत्रुणा आहतः कोऽपि क्षितौ रुदन् पतति, इति।

(25) 'चन्द्रिका' हस्ताकृष्टेति– इसी अवसर पर जयद्रथ की भयभीत पत्नी दुःशला, अपनी माता के साथ दुर्योधन के पास आकर, अर्जुन की प्रतिज्ञा के विषय में कहते हुए, अर्जुन से अपने पति के प्राणों की रक्षा हेतु प्रार्थना करती है, तब दुर्योधन पाण्डवों के क्रोध के सम्बन्ध में कहता है कि–

जिस समय मेरी आज्ञा का पालन करते हुए, दुःशासन ने अपने हाथों से द्रौपदी के केश तथा वस्त्रों को खींचा था और जिस अवसर पर सभी राजाओं के समक्ष पांचालराज की पुत्री ने 'मैं गाय हूँ, मेरी रक्षा करो, रक्षा करो' ऐसा बार–बार कहा था, क्या उस समय अर्जुन अपना गाण्डीव धनुष हाथ में लिए हुए वहाँ उपस्थित नहीं था? क्या किसी भी स्वाभिमानी क्षत्रिय युवक के क्रोध के लिए, इतना सब कुछ पर्याप्त नहीं था? कहने का तात्पर्य है कि जब इसप्रकार के अवसर पर भी अर्जुन को क्रोध नहीं आया, तो फिर अब वह क्या कर सकता है? इसलिए तुम्हें अर्जुन की गीदड़ भभकियों से डरने की आवश्यकता नहीं है।

विशेष–(i) महाकवि की तार्किक शैली दर्शनीय है।

(ii) दुर्योधन का अहंकार एवं अतिशय आत्मविश्वास अभिव्यक्त हुआ है, जो बाद में उसके विनाश का कारण बना है।

(iii) शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या. टि.–(i) **व्याहृता**– वि+आ+ √हृ+क्त, टाप्, कही गयी।

(ii) **आसीत्**– √अस्+लङ्, प्रथम पुरुष, एकवचन, था।

संस्कृत व्याख्या– **मम आदेशेन 'दुःशासन' इति नाम्ना मदीयेन अनुजेन हस्ताभ्याम् आकृष्टं केशाः वसनं च यस्याः तथाभूता द्रौपदी राजसमूहस्य समक्षं 'गोसदृशी किलाहमतो न हन्तव्येति' व्याहारिता, तस्मिन्नेव समये पृथायाः पुत्रः धनंजयः, किमिति गाण्डीवधनुर्धारी न आसीत्? अथ च तरुणस्य क्षत्रियकुलसमुद्भूतस्य एतत् कोपस्थानं किं न जातम्? अनेन कारणेन पाण्डवेभ्यः नैव भेतव्यम्, ते तु कथयन्ति एव, न कर्तुं शक्नुवन्ति, इत्यभिप्रायः।**

(26) 'चन्द्रिका' धर्मात्मजमिति– दुःशला की माता द्वारा यह कहे जाने पर कि प्रतिज्ञा पूरी न होने पर अर्जुन आत्मदाह कर लेगा तो प्रसन्न होते हुए दुर्योधन कहता है कि– अयि, पुत्र के पराक्रम को न जानने वाली, युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव की तो बात ही क्या? भीम और अर्जुन इन दोनों में से भी भला कौन ऐसा शक्तिशाली है जो धनुष पर बाण चढ़ाए हुए, जयद्रथ के साथ युद्ध करने में समर्थ हो सके? अर्थात् कोई भी नहीं है, इसलिए तुम्हें अर्जुन की प्रतिज्ञा को सुनकर भयभीत होने की लेशमात्र भी आवश्यकता नहीं है।

विशेष–(i) दुःशला तथा उसकी माता को समझाने में दुर्योधन का वाक्चातुर्य प्रदर्शित हुआ है।

(ii) वसन्ततिलका छन्द का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

व्या. टि.–(i) **अस्ति**– √अस्+लट्, प्रथम पुरुष, एक वचन।

(ii) विस्फुरितं मण्डलम् मण्डलाकारं चापचक्रं यस्य सः तम्।

(iii) वृकोदरश्च किरीटभृच्च वृकोदरकिरीटभृतौ तयोः।

संस्कृत व्याख्या– **युधिष्ठिरं नकुलसहदेवौ च कथा एव नास्ति, जयद्रथेन सह युद्धस्य प्रसक्तिः एव न, भीमार्जुनयोः मध्ये कश्चित् एकोऽपि सिन्धुराजं जयद्रथं सैन्येन आभिमुख्येन योद्धुं समर्थोऽस्ति? नैव कोऽपि इत्यर्थः।**

(27) 'चन्द्रिका' कोदण्डेति– इसी प्रसंग में भानुमती ने दुर्योधन का ध्यान अर्जुन की दृढ़प्रतिज्ञा की ओर दिलाया और दुःशला की माता द्वारा उसका समर्थन करने पर दुर्योधन अहंकारपूर्वक कहता है कि–

युद्ध करते हुए, जिनके धनुष की डोरी से घट्टे पड़ गए हैं, जो कभी भी अपने शत्रुओं की लेशमात्र भी परवाह नहीं करते हैं, कवच से अपने शरीरों को आच्छादित किए हुए हैं, युद्ध के लिए यात्रा हेतु जाते समय जिनके छत्र आपस में एक दूसरे से सट जाने के कारण, देखने वालों में श्वेत कमल की भ्रान्ति पैदा करते हैं। इसप्रकार के मेरे भाइयों से युक्त, उड़ी हुई धूलि से सूर्य को भी ढ़क देने वाली, चमकती हुई खड्गलता से दन्तुरित अर्थात् ऊँची नीची सेना की कोटि संख्या युद्धभूमि में चारों ओर शत्रुओं पर टूट पड़ती हैं। दुर्योधन का आशय है कि जब करोड़ों की संख्या में सेना को लेकर मेरे भाई युद्धभूमि में उतरेंगे, तो दूसरी बात तो क्या? पाण्डवों का नाम भी शेष नहीं बचेगा।

विशेष–(i) युद्धवर्णन में कवि की निपुणता प्रदर्शित हुई है।

(ii) प्रस्तुत श्लोक में स्रग्धरा छन्द का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

व्या. टि.–(i) **सम्पतन्ति–** सम्+ √पत्+लट्, प्र.पु, बहुवचन।

(ii) सितानि च तानि कमलानि, तेषां वनं, तदिव भ्रान्तिः ताम्।

संस्कृत व्याख्या– धनुषः प्रत्यंचायाः व्रणस्थानं तस्य चिह्नं येषां तैः अगणितशत्रुभिः कवचविहितशरीरैः संश्लिष्टपरस्परछत्रैः, कुमुदवनभ्रमं उत्पादयद्भिः मे भ्रातृभिः धूलिभिः आच्छन्नाः सूर्यस्य कान्तिः याभिः तासां गच्छन्त्यः च ताः असिलताः ताभिश्च दन्तुराः सेनानां कोटयः संख्याः रणांगणे अधिष्ठिताः सत्यः, प्रत्येकस्यां दिशि दिक्षु विदिक्षु च व्याप्ताः भवन्ति, इत्यर्थः।

(28) 'चन्द्रिका' दुःशासनस्येति– इसी क्रम में दुर्योधन अपनी पत्नी भानुमती को भी समझाते हुए कहता है कि–

हे भानुमति! इस सम्बन्ध में तो तेरी शंका भी व्यर्थ है, तुम्हीं इस सम्बन्ध में विचार करो, युद्धभूमि में जिन तेजस्वी पाण्डवों ने दुःशासन के हृदय के रक्त को पीने की तथा गदा से दुर्योधन की जँघा को चीरने जैसी प्रतिज्ञाएँ की थीं। वैसी ही प्रतिज्ञा वस्तुतः जयद्रथ के वध करने की भी है। कहने का तात्पर्य है कि जिसप्रकार पहले उनकी प्रतिज्ञाएँ सफल नहीं हुईं। उसीप्रकार जयद्रथ के विषय में

की गयी प्रतिज्ञा भी सफल नहीं होगी। अतः इस सम्बन्ध में व्यर्थ ही चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है।

विशेष–(i) दुर्योधन का अति आत्मविश्वास व्यक्त हुआ है।

(ii) वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

व्या. टि.–(i) हृदयस्य क्षतजं तस्य पानं तस्मिन्।

संस्कृत व्याख्या– तेजोयुक्तानां पाण्डवानां युद्धक्षेत्रे ममानुजस्य द्रौपदीकेशवस्त्राकर्षणस्य वक्षःस्थलस्य क्षतात् जातस्य रक्ताम्बोः पानम्, तस्मिन् गदया मम जँघाविदीर्णे यादृशी प्रतिज्ञाऽऽसीत्, तादृशी खलु प्रतिज्ञा सिन्धुराजविनाशे अपि बोद्धव्या। अतएव नैव विषयेऽस्मिन् लेशमात्रिकी अपि चिन्ता कार्या।

(29) 'चन्द्रिका' उद्घातेति– इसी वार्तालाप के मध्य में कंचुकी आकर, युद्ध के लिए रथ के तैयार होने के विषय में दुर्योधन को सूचित करते हुए कहता है कि–

महाराज! ऊँची नीची भूमि पर चलने के कारण, जिसमें लगी हुई सोने की छोटी–छोटी घंटियाँ बज रही हैं। साथ ही, जो दोनों ओर लटकते हुए चँवरों से सुशोभित है। गति को नियन्त्रित करने के लिए लगाम खींचने के कारण व्याकुल घोड़ों से युक्त, शत्रुओं के मनोरथ को विनष्ट करने वाला, यह आपका रथ तैयार हो गया है।

विशेष–(i) युद्ध के लिए तैयार रथ का चित्रात्मक शैली में वर्णन किया गया है। कवि की यह शैली अनेक स्थलों पर दर्शनीय है।

(ii) प्रस्तुत श्लोक में प्रहर्षिणी छन्द का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

लक्षण– त्र्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम्।

(iii) घोड़ों की विशेषता होती है कि वे लगाम खींचने पर व्याकुल हो जाते हैं। प्रस्तुत उल्लेख से कवि का प्राणिविज्ञान विषयक ज्ञान भी अभिव्यंजित हुआ है।

व्या.टि.–(i)उद्घातैः क्वणिता विलोलाः हेम्नः घंटा यत्र तथाभूतः

संस्कृत व्याख्या– उच्चावचभूमौ शब्दायमानचंचलस्वर्णघंटिकः, लम्बमानपार्श्वद्वयबद्धचामरप्रकाशः, तेन विभूषितः, नियन्त्रिताः गति–विशेषविशिष्टाः अतएव व्याकुलाः अश्वाः तथाभूतः, शत्रूणां विध्वस्त–सकलाभिलाषः, अयं पुरो दृश्यमानः ते रथः सज्जो वर्तते, इति।

•••

तृतीय अंक

(क) प्रवेशक– नाटक में इसका प्रयोग भूतकाल में घटी हुई एवं भविष्यतकाल में घटने वाली घटनाओं की सूचना, दर्शकों को देने के लिए किया जाता है। यह दो अंकों के बीच में निम्न श्रेणी के दो पात्रों के मध्य वार्तारूप में प्रयुक्त होता है। इसका मुख्य उद्देश्य नाटक की कथावस्तु के विस्तार को कम करना है।

साहित्यदर्पणकार ने इस विषय में कहा है कि–

प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः।
अंकद्वयस्यान्तर्विज्ञेयः ज्ञेयं विष्कम्भके यथा।।

(साहित्यदर्पण–6/57)

प्रस्तुत तृतीय अंक में यह राक्षस–राक्षसी संवाद के माध्यम से भूतकाल में घटी घटनाओं की सूचना देने के लिए प्रयुक्त हुआ है।

(ख) स्वगतम्/ आत्मगतम्– कुछ बातें ऐसी होती हैं, जो मंच पर स्थित अन्य पात्र को सुनानी नहीं होती है, किन्तु कथा के प्रवाह की दृष्टि से वे सभी बातें आवश्यक हैं। साथ ही, दर्शकों को भी उन्हें सुनाना आवश्यक होता है। ये सभी बातें नाटक में पात्र, 'स्वगतम्' अथवा 'आत्मगतम्' के अन्तर्गत कहते हैं। साहित्यदर्पणकार ने इसे इसप्रकार परिभाषित किया है–

अश्राव्यं खलु यद् वस्तु तदिह स्वगतं मतम्।

(साहित्यदर्पण–6/137)

(1) 'चन्द्रिका' हतमानुष इति– तृतीय अंक के आरम्भ में विकृत वेष वाली राक्षसी प्रवेश करके महाभारत युद्ध में अनेक लोगों के मारे

जाने की सूचना देते हुए और सैंकड़ों वर्षों तक चलने वाले युद्ध की कामना करते हुए कहती है कि–

इस युद्ध में मारे गए लोगों के मांस, रुधिर और मज्जा से मैंने हजारों घड़े भर लिए हैं और मैं रात–दिन निरन्तर रक्तपान भी कर रही हूँ। मेरी तो यही इच्छा है कि यह युद्ध सैंकड़ों वर्षों तक इसी प्रकार चलता रहे।

विशेष–(i) महाभारत युद्ध में सैंकड़ों लोगों के मारे जाने की सूचना दी गयी है।

(ii) यहाँ प्रयुक्त राक्षसी के शरीर से चर्बी की गन्ध आने के कारण कवि ने इसका नाम 'वसागन्धा' रखा है।

(iii) राक्षसी–प्रवृत्ति का सुन्दर वर्णन किया गया है, जिससे बीभत्स रस का सुन्दर परिपाक हुआ है।

(iv) प्रस्तुत श्लोक वस्तुतः मूलरूप में प्राकृत भाषा में निबद्ध है, जिसका हमने सरलता के लिए संस्कृतरूपान्तर प्रयोग किया है।

व्या.टि.–(i) **पिबामि**– √पा+लट्, उत्तमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– युद्धे मृतानां न तु रोगादिना हतानाम्, मनुष्याणां मांसैः, शोणितैः, मेदोभिः च एकत्रीकृतं घटानां सहस्रं वर्तते, इति। मम तु अभिलाषा एषा, यत् युद्धमिदम् एवमेव दिवानिशं सहस्रवर्षं यावत् चलतु।

(2) 'चन्द्रिका' प्रत्यग्रेति– इसी क्रम में राक्षसी द्वारा पुकारने पर विकृत वेष वाला थका हुआ, राक्षस प्रवेश करके कहता है कि–

यदि मुझे अभी–अभी मारे हुए लोगों का मांस तथा गर्म–गर्म रक्त मिल जाए, तो मेरी यह थकान क्षणमात्र में ही दूर हो जाए।

विशेष– (i) इस राक्षस को रुधिरपान प्रिय होने के कारण, इसका नाम ही यहाँ 'रधिरप्रिय' रखा गया है।

व्या.टि.–(i) **नश्येत्**– √नश्+विधिलिङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– आह्वानानन्तरं प्रविश्य विकृतवेषः राक्षसः कथयति यत्– यदि सद्यः मारितानां जनानां मांसं, रुधिरं च प्राप्नुयात् मे, तदा मम एषः शारीरिकशैथिल्यं तत्क्षणे खलु नश्येत्।

(3) 'चन्द्रिका' रुधिरासवेति– राक्षसी द्वारा फिर से पुकारे जाने पर राक्षस कहता है कि– अरी, रक्तरूपी मदिरा को पीने से मदमस्त! युद्धभूमि में लम्बे समय से घूमने से लड़खड़ाते हुए शरीर वाली प्रिय–तमे! तुम मुझे क्यों पुकार रही हो? सुना जाता है कि आज के युद्ध में हजारों लोग मारे गए हैं, क्या तुमने भी ऐसा ही सुना है?

विशेष–(i) युद्ध की विभीषिका की सूचना दी गयी है।

(ii) यहाँ पर राक्षसी के लड़खड़ाने से प्रतीत होने वाली, थकान का कारण युद्धभूमि में लम्बे समय तक घूमना एवं युद्ध में मारे गए लोगों के मांस, रुधिरादि का संग्रह करना रहा है।

व्या.टि.–(i) **श्रूयते**– √श्रु+लट्, आत्मने, प्रथमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– **अत्र 'वसागन्धा' राक्षस्याः नाम अस्ति, रुधिरमेव मद्यं तस्य पानेन मत्ता, इति सम्बुद्धौ, रणभूमौ चिरकालं यावत् भ्रमणेन स्खलत् गात्रं यस्याः सा तदपि सम्बुद्धौ, प्रियतमे! किमर्थं आह्वयसि माम्? एतत् श्रूयते यत् अद्य युद्धे पुरुषाणां सहस्रसंख्या हता, किं त्वयापि एतत् श्रुतं न वा?**

(4) 'चन्द्रिका' महाप्रलयेति–प्रवेशक की समाप्ति के बाद नेपथ्य में होने वाले कोलाहल को सुनकर तलवार खींचे हुए अश्वत्थामा युद्धभूमि में उठने वाले भयंकर शब्द को लक्ष्य करके कहता है कि–

महान् प्रलयकाल की वायु से विक्षुब्ध हुए पुष्कर और आवर्तक नाम के मेघों की प्रचण्ड गर्जना की प्रतिध्वनि के समान, सुनने में अत्यधिक कर्कश, आकाश और पृथ्वी को सभी ओर से व्याप्त करने वाला, जिसे पूर्व मे कभी नहीं सुना गया है, इसप्रकार का यह भयंकर शब्द इस युद्धभूमि में भला किधर से उठ रहा है?

विशेष–(i) युद्धक्षेत्र में उठे कोलाहल की भयंकरता का सुन्दर प्रतिपादन किया गया है, जिससे भयानक रस का परिपाक हुआ है।

(ii) पौराणिक मान्यता के अनुसार– प्रलयकाल में जलवृष्टि के माध्यम से संसार का विनाश करने वाले, मेघों को 'पुष्कर' एवं 'आवर्तक' कहा जाता है।

(iii) उपमालंकार का सुन्दर प्रयोग भी दर्शनीय है।

(iv) प्रस्तुत श्लोक में पृथ्वीछन्द का मनोरम प्रयोग हुआ है।

लक्षण–जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः।।

व्या.टि.–(i)महाप्रलयस्य मारुतः महाप्रलयमारुतः, तेन क्षुभिताः।

संस्कृत व्याख्या– कल्पान्तकालवायुना क्षोभम् आसादितौ यौ प्रलयकालिकौ पुष्कर–आवर्तकेति नाम्ना प्रसिद्धौ मेघविशेषौ तयोः खलु भीषणं यत् निरन्तरं गर्जनं तस्य प्रतिध्वनिः समः, अथ च प्रतिध्वनिना व्याप्तद्यावापृथिवीकन्दरः, कर्णकटुः, समुद्रः इव युद्धप्रदेशात् न पूर्वं भूतः, इति अग्रे अयं श्रूयमाणः कलकललक्षणः सम्प्रति कस्मात् उदेति, इति?

(5) 'चन्द्रिका' यद्दुर्योधनेति– अश्वत्थामा इस भयंकर शब्द के पीछे, कौरवपक्ष की ओर से लड़ रहे, अपने पिता के पराक्रम–प्रदर्शन को कारण मानकर, चिन्तन करते हुए कहता है कि–

वस्तुतः मेरे पिताश्री का पराक्रमरूप यह कार्य दुर्योधन के प्रति पक्षपात के अनुकूल ही है, जो अस्त्र ग्रहण करने के बाद, पूर्णरूप से उचित है, जो महान् पराक्रमी परशुराम से प्राप्त की गयी सम्पूर्ण शस्त्र विद्याओं के गौरव से युक्त पराक्रम के प्रदर्शन के योग्य है। इसके अतिरिक्त जो संसार में विद्यमान सभी बड़े–बड़े धनुर्धारी महारथियों के गुरु द्रोणाचार्य के क्रोध के योग्य हैं, इसप्रकार के शत्रुओं को पूर्णरूप से विनष्ट करने वाला है। इस प्रचण्ड शब्द को सुनकर तो प्रतीत होता है कि मेरे पिताश्री ने वह कर्म आरम्भ कर दिया है।

विशेष–(i) अश्वत्थामा के पिता द्रोणाचार्य के शौर्य को अत्यन्त प्रभावी शैली में उद्‌घाटित किया है।

(ii) अपने पिता पर, अश्वत्थामा के गर्व की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है, जिससे वह स्वयं को गौरवान्वित अनुभव कर रहा है।

(iii) वह कर्म निश्चय ही आरम्भ हो गया है, इस सम्भावना के कारण उत्प्रेक्षालंकार एवं शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का सुन्दर प्रयोग हुआ है। लक्षणपूर्ववत्।

(iv) द्रोणाचार्य के गुरु परशुराम होने तथा दुर्योधन की ओर से उनके युद्ध करने आदि की सूचनाएँ भी दी गयी हैं।

व्या.टि.–(i) **युक्तम्**–√युज्+क्त । **अनुरूपम्**–रूपस्य योग्यम्।

(ii) प्रारब्धम्– प्र+आ+ √रभ्+क्त, आरम्भ हुआ।

संस्कृत व्याख्या– यत् कर्म कौरवाणां पक्षपातानुकूलं वर्तते, तत्, यत् च अस्त्रग्रहणे उचितं तत्, यत् खलु परशुरामात् अधिगतसकल–शस्त्रविद्यागौरवस्य पराक्रमस्य युक्तं तत्, यच्च लोके सर्वधनुर्धारिणां स्वामिनः क्रोधस्य योग्यं अरिविनाशकेन मे पित्रा द्रोणाचार्येण तत्, लोकप्रसिद्धं शत्रुदमनरूपकर्म निश्चयमेव आरब्धम्, नियतमिति उत्प्रेक्षा।

(6) 'चन्द्रिका' यदीति– भयभीत होकर युद्धभूमि से भागने वाले, योद्धाओं को देखकर, उन्हें सम्बोधित करके अश्वत्थामा कहता है कि–

यदि समरभूमि को छोड़ने से आप लोगों को मरने का भय नहीं हो, तो ही आपका यहाँ से भागना उचित है और यदि इस संसार में उत्पन्न होने वाले, सभी प्राणियों का मरण सुनिश्चित है, तो फिर आप लोग बिना किसी कारण के ही अपने यश को कलंकित क्यों कर रहे हो? अर्थात् आपको युद्धभूमि से पलायन नहीं करना चाहिए।

विशेष–(i) वस्तुतः भयभीत होकर सभी योद्धाओं का युद्धभूमि से पलायन द्रोणाचार्य की मृत्यु से भयभीत होने के कारण रहा है।

(ii) कवि ने शरीर की अपेक्षा यश को महत्ता प्रदान की है।

(iii) पुष्पिताग्रा छन्द का प्रयोग दर्शनीय कहा जा सकता है।

लक्षण– अयुजि नयुगरेफतो यकारो।

युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा।

(iv) संसार के सभी प्राणियों की मृत्यु की सुनिश्चितता प्रति–पादित की गयी है। श्रीमद्भागवत में भी यही कहा गया है–

मृत्युर्जन्मवतां धीर देहेन सह जायते।

अद्य वाब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः।।

व्या.टि.–(i) कुरुध्वे– √कृ+लट्, आत्मने. मध्यम पुरुष, बहुवचन।

(ii) प्रयातुम्– प्र+ √इण् (गतौ) + तुमुन्, जाने के लिए।

संस्कृत व्याख्या– यदि युद्धं परित्यज्य मृत्योः भयं नास्ति अर्थात् मृत्युः न भवेत्, तर्हि अस्मात् युद्धक्षेत्रात् अन्यत्र सुरक्षिते स्थाने गच्छन्तु भवन्तः, तत् वै उचितं खलु, यदि एवं न, तदा व्यर्थमेव स्वकीर्ति कलंकिता क्रियते भवद्भिः, नैव युद्धात् पलायनं कर्तव्यमिति, अभिप्रायः।

(7) 'चन्द्रिका' अस्त्रेति– युद्धभूमि से महारथी कर्ण, कृपाचार्यादि योद्धाओं को भी भागते हुए देखकर अश्वत्थामा, कहता है कि–

दिव्य अस्त्रों की भयंकर ज्वाला से व्याप्त, शत्रुओं के सेनारूपी समुद्र में वड़वानल के समान, आचरण करने वाले, सभी धनुर्धारियों के गुरु और मेरे पिताश्री द्रोणाचार्य के सेनापति रहते हुए, हे कर्ण! भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। हे कृपाचार्य! युद्धभूमि की ओर प्रस्थान करो, भागो नहीं, हे कृतवर्मन्! भय की शंका का परित्याग कर दो, क्योंकि युद्ध विषयक सम्पूर्ण जिम्मेदारी को अपने ऊपर उठाए हुए, मेरे पिता के रहते हुए, आप सभी लोगों को डरने की लेशमात्र भी आवश्यकता नहीं है।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक में कवि ने तीन प्रमुख महारथियों का नाम विशेषरूप से ग्रहण किया है, जो द्रोणाचार्य के वध के बाद भयभीत होकर युद्धभूमि से पलायन कर रहे हैं।

(ii) प्रस्तुत श्लोक में कवि की चित्रात्मक शैली दर्शनीय है।

(iii) अभी तक अश्वत्थामा को अपने पिता की मृत्यु का समाचार पता नहीं है, इसीलिए वह ऐसा कह रहा है।

(iv) उपमालंकार तथा स्रग्धरा छन्द का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) **मुंच**– √मुच्+लोट्, मध्यम पुरुष, एकवचन, छोड़ो।

(ii) **व्रज**– √व्रज्+ लोट्, मध्यम पुरुष, एकवचन, जाओ।

(iii) **वहति**–√वह्+लट्, प्रथम पुरुष, ए.व., वहन कर रहे हैं।

संस्कृत व्याख्या– अस्त्ररूपाग्निशिखाव्याप्तशत्रुसैन्यसमुद्रस्य मध्ये वाडवाग्निः इव आचरति यः सः द्रोणः, समस्तधानुष्केन्द्राणां उपदेष्टा, तस्य, अस्मिन् पुरो वर्तमाने युद्धे पितरि सेनापतिः भूते सति, हे कर्ण! भयं न कर्तव्यमिति, हे कृप! रणभुवं गच्छतु भवान्, हे हृदिकापुत्रकृत–वर्मन्! त्वमपि भयशंकां त्यज। धनुर्मात्रसहाये मम पिता सम्प्रति युद्ध–भारं वहति, अतएव भयस्य अवकाशः कीदृशः? नैव कोऽपि इत्यर्थः।

(8) 'चन्द्रिका' दग्धुमिति– अश्वत्थामा को नेपथ्य से द्रोण की मृत्यु के समाचार प्राप्त होने पर वह कहता है कि–

अरे पापियों! क्या सम्पूर्ण संसार को जला डालने के लिए बारहों सूर्य एक साथ उदित हो गए हैं? क्या प्रलयकाल के समान उनचास वायु एक साथ बहने लगे हैं? क्या महाप्रलय की तरह पुष्कर और आवर्तक आदि चारों मेघों से आकाश व्याप्त हो गया है? जो आप लोग मेरे पिता की मृत्यु की बात कह रहे हो।

विशेष–(i) अपने पिता द्रोणाचार्य की मृत्यु के विषय में सुनकर अश्वत्थामा का अप्रतिम और भयंकर क्रोध अभिव्यंजित हुआ है।

(ii) हेमाद्रि के व्रतखण्ड के ध्यान–प्रकरण में मातरिश्वा, सदागति, महाबल आदि **49 वायुओं** के नाम गिनाए गए हैं। यहाँ पर इन्हीं ओर संकेत किया गया है। प्रलयकाल में ये सभी मिलकर सृष्टि के विनाश का कारण बनते हैं।

(iii) इसीप्रकार **आदित्यों की संख्या बारह** मानी गयी है, ये भी प्रलयकाल में प्रचण्डरूप से गर्म होकर संसार को विनष्ट कर देते हैं।

(iv) संवर्तक, द्रोण के अलावा पुष्कर और आवर्तक प्रलयकालीन मेघों के विषय में ब्रह्माण्ड पुराण में कहा गया है कि–

पुष्करावर्तकास्तेन कारणेनेह विश्रुताः।
नानारूपधरास्ते तु महाघोरस्वनास्तथा।।
कल्पान्ते वृष्टिकर्तारः संवर्ताग्नेर्नियामकाः।।

(v) यहाँ पर विभावना, अनुप्रास अलंकार तथा मन्दाक्रान्ता छन्द का मनभावन प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) **कथयत**– √कथ्+लोट्, मध्यम पुरुष, बहुवचन।

(ii) **दग्धुम्**– √दह्+तुमुन्, जलाने के लिए।

संस्कृत व्याख्या– अग्निकिरणैः संसारं भस्मीकर्तुं सहसैव नोद्गताः द्वादशसूर्याः? सप्तप्रकारेण भिन्नाः नानात्वं गताः, नवचत्वारिंशत् संख्यकाः वायवः प्रतिदिशं वाताः न प्रचलिताः किम्? एवमेव पुष्करा–वर्तकसंवर्तकद्रोणाख्यैः मेघैः आकाशतलं न आच्छादितं किल? हे पापिनः! पराक्रमोदधेः मे पितुः द्रोणस्य अमंगलं अर्थात् मरणं कथं वदत यूयम्?

(9) **'चन्द्रिका' किमिति**– पिता के शोक से ग्रस्त अश्वत्थामा उनके **सारथि अश्वसेन** से अपने अश्रुओं को पोंछकर अपने पिता के मृत्यु विषयक समाचार को जानने के लिए कहता है कि–

हे अश्वसेन! तुम कहो कि भुजबल के सागर, मेरे पिता कैसे अस्त हो गए? क्या भीम से प्रेम करने वाले, उन्होंने अपने शिष्य भीम से गुरुदक्षिणा में उसकी भारी भरकम गदा को प्राप्त कर लिया? अर्थात् क्या उनकी मृत्यु का कारण भीम है? सारथि द्वारा मना करने पर वह पुनः कहता है कि–

तो फिर क्या गुरु की मर्यादा का उल्लंघन करने वाले, अर्जुन ने ही अपने दयालु गुरु का वध कर दिया? सूत द्वारा मना करने पर अश्वत्थामा फिर से कहता है कि–

तो क्या फिर भगवान् श्रीकृष्ण ने ही अपने सुदर्शन चक्र की तेज धार से उन्हें स्वर्गलोक का वासी बना दिया? सूत द्वारा इस विषय में भी असहमति व्यक्त करने पर अश्वत्थामा पुनः कहता है कि–

वस्तुतः इन तीनों कारणों के अलावा तो मुझे पिताश्री के वध का कोई कारण दिखायी नहीं देता है अर्थात् इनके अतिरिक्त अन्य कोई, मेरे महारथी पिता का वध करने में समर्थ ही नहीं है।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक की विशेषता है कि यह अश्वत्थामा एवं द्रोणाचार्य के सारथि के वार्तालाप रूप में प्रयुक्त हुआ है, इसके प्रत्येक चरण के बाद, सूत द्वारा प्रयुक्त वाक्य प्रयोग किया गया है।

(ii) अश्वत्थामा द्वारा पिता की घातक तीन सम्भावनाएँ व्यक्त की गयी हैं, जिन्हें सारथि द्वारा मना कर दिया गया है।

(iii) इस श्लोक में शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) **प्राप्तवान्**– प्र+ √आप्+शानच्, प्र.वि., ए.व.।

(ii) **आसादितः**– आ+ √सद्+क्त, प्राप्त किया।

(iii) **प्रापितः**– प्र+ √आप् (प्रापणे) +क्त प्राप्त किया।

संस्कृत व्याख्या– **भीमः प्रियो यस्य तथाभूतः मे पिता शिष्यात् भीमात् गुर्वी गदां एव गुरुदक्षिणारूपेण प्राप्तवान् किम्? भीमेन तं गदया हतः इत्यर्थः। सूतस्य अस्वीकृते सति, पुनः कथयति अश्वत्थामा, शिष्यं**

प्रति दयायुतः अयं त्यक्तगुरुमर्यादेन अर्जुनेन व्यापादितः किम्? नैव एतत् समीचीनमिति कथिते सति अश्वसेनेन, पुनः पृच्छति अश्वत्थामा– तत् किं भगवता कृष्णेन तीक्ष्णस्य सुदर्शनचक्रस्य धारामार्गं प्रापितः, सूतेन इदमपि न, इति कथिते सति, सः पुनः कथयति यत्– एतेभ्यः भीमादिभ्यः अन्यस्मात् अहं मृत्युरूपं पितुः विपदं नैव चिन्तयामीति।

(10) 'चन्द्रिका' एतेऽपीति– अश्वत्थामा द्वारा पिता की मृत्यु के विषय में पूछे जाने पर, द्रोण–सारथि अश्वसेन कहता है कि–

हे कुमार! ये भीम, अर्जुन आदि भी क्या युद्धभूमि में क्रोधित महादेव के समान, अस्त्र धारण करने वाले, आपके पिताजी की बराबरी करने में समर्थ हैं? अर्थात् कदापि नहीं, किन्तु यह तो शोक से व्याप्त हो जाने पर, जब आपके पिता ने अपने शस्त्र का त्याग कर दिया तो उस समय धृष्टद्युम्न नामक शत्रु ने अवसर प्राप्त करके, यह वधरूपी भयंकर कृत्य कर डाला।

विशेष–(i) द्रोण के वध में सबसे बड़ा कारण शोकग्रस्त उनके द्वारा अपने शस्त्र का परित्याग बताया गया है, जो वस्तुतः अपने पुत्र अश्वत्थामा के मारे जाने की सूचना को प्राप्त करने से हुआ था।

(ii) क्रुद्ध द्रोणाचार्य की उपमा क्रोधित भगवान् शंकर से दी गयी है, जो अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी है। अतः उपमालंकार।

(iii) यहाँ पर वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग भी दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **उपयान्ति**– उप+√इण् गतौ, लट्, प्र.पु., बहुवचन।

(ii) **विहितम्**– वि+√धा+ क्त, कर दिया।

(iii) महान् अस्त्रं पाणौ यस्य सः, तस्य, द्रोण एवं शिव विशेषण

संस्कृत व्याख्या– एते भीमार्जुनकृष्णाः अपि क्रुद्धस्य शिवस्य इव ब्रह्मास्त्रपाणेः तस्य द्रोणाचार्यस्य संग्रामे साम्यम् उपयान्ति किम्? नैव कदापि इत्यर्थः। यदा सः पुत्रशोकव्याप्तचित्तः आसीत्, तदैव अरिणा शिरः कर्तनेन तस्य वधरूपं दुष्कृत्यमेतत् कृतमेव, इति।

(11) 'चन्द्रिका' अश्वत्थामेति– अश्वत्थामा द्वारा यह पूछने पर कि क्या पिताश्री की मृत्यु का मैं ही कारण हूँ, तो सारथि अश्वसेन रोते हुए कहता है कि– तब तो आप भी सुन ही लीजिए, 'अश्वत्थामा

मारा गया' सत्यवादी युधिष्ठिर ने इसप्रकार स्पष्टरूप से कहकर, सत्य की रक्षा करने की इच्छा से इस वाक्य के अन्त में धीरे से **'हाथी'** कह दिया। उनके मुख से इस वाक्य को सुनकर, पुत्र को असीम प्रेम करने वाले, आपके पिताश्री ने धर्मराज युधिष्ठिर की बात पर पूर्णरूप से विश्वास करके, युद्धक्षेत्र में उसी क्षण अपने अस्त्रों को त्यागने के साथ ही अश्रुमोचन भी किया।

विशेष–(i) द्रोणाचार्य का पुत्र–वात्सल्य एवं सत्यवादी धर्मराज युधिष्ठिर का चरित्र उद्घाटित हुआ है।

(ii) करुणरस एवं मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **मुमोच**– √मुच्+लिट्, प्रथमपुरुष, एकवचन, छोड़ा।

(ii) **उक्त्वा**– √वच्+क्त्वा, कहकर। **व्याहृतम्**–वि+आ+ √हृ+क्त

संस्कृत व्याख्या– अश्वत्थामा विनाशितः, इति सत्यभाषिणा पृथापुत्रयुधिष्ठिरेण उच्चैः कथयित्वा, अवशिष्टं वाक्यं 'गजः', इति मन्द-स्वरेण उक्तम्, दयिततनयः असौ द्रोणाचार्यः अश्वत्थाम्नोः मरणं आकर्ण्य तस्य राज्ञः युधिष्ठिरस्य विश्वासात् च संग्रामे खलु शस्त्राणि बाष्पं च सममेव तत्याज।

(12) 'चन्द्रिका' श्रुत्वेति– अपने पिता के वध की घटना को सूत के माध्यम से सुनकर, अश्वत्थामा अत्यधिक विलाप करता है तो अपने पिता के सारथि द्वारा सान्त्वना दिए जाने पर वह कहता है कि–

हे पिताश्री! पुत्र से असीम प्रेम करने वाले, आपने मेरे वध की झूठी बात को सुनकर, अपने बाणों के साथ–साथ प्राणों को भी त्याग दिया, जबकि आपका यह पुत्र आपके वध की सत्य बात को सुनकर भी जीवित है। इसप्रकार के स्वार्थी एवं कठोरवृत्ति वाले, मेरे प्रति आपका यह पक्षपात व्यर्थ ही रहा है।

विशेष–(i) अश्वत्थामा का आशय है कि आपके वध के बाद मुझे भी प्राणों को त्याग देना चाहिए, मेरा जीवन वस्तुतः व्यर्थ है।

(ii) वसन्ततिलका छन्द का कमनीय प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i)**विमुक्ताः**–वि+ √मुच्+क्त, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन।

(ii) **जीवामि**– √जीव्+लट्, उत्तमपुरुष, बहुवचन, जीवित हूँ।

संस्कृत व्याख्या– हे तात! पुत्रवात्सल्येन भवता मम मिथ्या वधं श्रुत्वा, स्व बाणैः सह प्राणाः अपि परित्यक्ताः, अहं च तव पुत्रः त्वत् ऋते अपि प्राणान् धारयामि, जीवामि, अहो महत्कष्टस्य विषयोऽयम्।

(13) 'चन्द्रिका' धिगिति– इसप्रकार अश्वत्थामा द्वारा विलाप करने पर, उद्विग्न कृपाचार्य प्रवेश करके लम्बा श्वास लेकर कहते हैं कि–

अपने भाइयों के साथ सुयोधन को धिक्कार है, सत्य का पालन करने वाले धर्मराज युधिष्ठिर को धिक्कार है, व्यर्थ ही शस्त्र को धारण करने वाले, महारथी राजाओं को धिक्कार है। यहाँ तक कि हम सभी लोगों को भी धिक्कार है, जिन्होंने जुआ खेलने के अवसर पर चित्रलिखित के समान, उस समय द्रौपदी के तथा इससमय तात द्रोण के केशग्रहण को देखा है और कुछ भी नहीं कर सके हैं।

विशेष–(i) द्रोण की मृत्यु पर अश्वत्थामा के मामा कृपाचार्य की प्रबल एवं गहन वेदना अभिव्यक्त हुई है, जिसमें अप्रत्यक्षरूप से सम्पूर्ण क्षत्रिय समाज की भर्त्सनापूर्वक, घोर निन्दा की गयी है।

(ii) सभी के विनाश के हेतु, महाभारत के युद्ध के मूल कारण द्रौपदी के केशकर्षण की ओर विशेषरूप से संकेत किया गया है।

(iii) प्रस्तुत श्लोक में काव्यलिंग अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द का सौन्दर्य दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i)विक्षितः– वि+ √ईक्ष्+क्त। अनुजेन सहितं सानुजम्।

(ii) **विफलशस्त्रभृतः**–विफलानि शस्त्राणि बिभ्रति, इति।

संस्कृत व्याख्या– भ्रातृसहितं कुरूणां स्वामिनं दुर्योधनं धिक्, अजातशत्रुं युधिष्ठिरं धिक्, वृथाशस्त्रधारिणः राज्ञः धिक्, अस्मान् च सर्वान् धिक्, यतोहि तदा द्यूतकाले द्रौपद्याः, अस्मिन् समये च द्रोणस्य च बलात् केशग्रहणं चित्रलिखितैः इव निर्जीवैः इव वीक्षितः।

(14) 'चन्द्रिका' एकस्येति– इसी क्रम में कृपाचार्य सम्पूर्ण संसार के विनाश की सम्भावना करते हुए फिर से कहते हैं कि–

पूर्व समय में कौरव पाण्डवों द्वारा जुआ खेलने के अवसर पर, एक द्रौपदी के केशों को ग्रहण करने का परिणाम तो महाभारत के

युद्ध के रूप में वर्तमान में दिखायी दे ही रहा है, अब इस दूसरे महारथी द्रोणाचार्य के केशों को ग्रहण करने से तो मानो सम्पूर्ण प्रजा ही समाप्त हो जाएगी मानो प्रलयकाल ही आ जाएगा।

विशेष–(i) महाभारत के युद्ध को द्रौपदी के केशकर्षण से जोड़ते हुए, द्रोणाचार्य के केशकर्षण को प्रजा में होने वाले भावी प्रलयकाल की सम्भावना की गयी है। अतः उत्प्रेक्षालंकार ।

(ii) वस्तुतः प्रस्तुत श्लोक में धृष्टद्युम्न द्वारा निहत्थे द्रोणाचार्य के केशों को पकड़कर शिरच्छेद कर दिया गया, महाभारत की इसी कथा की ओर संकेत किया गया है।

(iii) प्रस्तुत श्लोक में पथ्यावक्त्र छन्द को प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) **वर्तते**– √वृत्+लट्, आत्मने, प्रथमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– एकबारमेव केशग्रहणस्य द्रौपद्याः, इति, प्रत्यक्षम् अनुभूयमानः महाभारतरूपयुद्धः फलमस्ति, भयंकरः परिणामः भूतले प्रवर्तते, सम्प्रति च द्वितीये द्रोणस्य केशग्रहणे तु निश्चयमेव सम्पूर्णप्रजाः विनष्टाः भविष्यति, प्रलयकालोऽऽगमिष्यति, इति।

(15) 'चन्द्रिका' आजन्मनः,इति– कारुणिक विलाप करते हुए द्रोणपुत्र अश्वत्थामा आकाश की ओर देखकर कहता है कि–

हे युधिष्ठिर! जन्म से लेकर आज तक आपने कभी भी झूठ नहीं बोला। इसीप्रकार आपने आज तक किसी से द्वेष भी नहीं किया इसीलिए तुम्हें **'अजातशत्रु'** संज्ञा प्रदान की गयी, किन्तु फिर भी ब्राह्मणों में श्रेष्ठ, सम्पूर्ण संसार के गुरु, मेरे पिता द्रोणाचार्य के लिए आपने अपने सत्यभाषण, गुरुसम्मान और ब्राह्मण का अवध्य विषयक ज्ञान आदि इन सभी गुणों को अकस्मात् ही मेरे भाग्य के दोष से कैसे छोड़ दिया?

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक में अश्वत्थामा ने युधिष्ठिर को मृदुल उलाहना दिया है, क्योंकि उनके छद्म असत्य बोलने से ही उसके पिता की हत्या की गयी थी।

(ii) परिकर अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द का सुन्दर प्रयोग हुआ है। भाषा की सरलता भी दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) भाग्यदोषात्– भाग्यस्य दोषः, भाग्यदोषः, तस्मात्।

संस्कृत व्याख्या– हे युधिष्ठिर! जन्मनः आरभ्य, अनृतं न उक्तम्, किलेति निश्चये। एतदपि प्रसिद्धिः अस्ति, यत् भवान् नैव कमपि कदापि द्वेष्टिः। अनेनैव कारणेन त्वं अजातशत्रुरिति कथ्यसे, एवं सत्यपि आचार्ये, अवध्ये द्विजश्रेष्ठे, मम पितरि, दौर्भाग्यात् अकस्मादेव एतत् सर्वं सत्यभाषणादिकं भवता कथं परित्यक्तम्, मिथ्याभाषणं कथं कृतमिति?

(16) 'चन्द्रिका' गतः, इति– इसी क्रम में अश्वत्थामा अपने मामा कृपाचार्य को सम्बोधित करते हुए कहता है कि–

आज आप जिस सेनापति के साथ युद्ध में गए थे और जो अकेला ही बड़े–बड़े महारथियों की युद्धविषयक आकांक्षा को पूरा करने में समर्थ था, जिसके साथ आप हमेशा ही बराबरी के रूप में हँसी मजाक करते थे। हे मामा! प्रशंसा के पात्र वे आपके बहनोई आज कहाँ चले गए।

विशेष–(i) अपने अभिन्न एवं प्रिय की मृत्यु के बाद व्यक्ति उसकी पूर्व में की गयी क्रियाओं का स्मरण करके विलाप करता है, यही मानव मनोविज्ञान है, महाकवि ने यहाँ इसी ओर संकेत किया है।

(ii) प्रस्तुत श्लोक में करुणरस का पूर्ण परिपाक हुआ है।

(iii) शिखरिणी छन्द का सौन्दर्य भी दर्शनीय है।

(iv) कृपाचार्य एवं द्रोणाचार्य के अनौपचारिक, घनिष्ठ एवं अन्तरंग सम्बन्धों को प्रस्तुत किया गया है।

व्या.टि.–(i)**गुरुसमरकण्डूनिकषणः**– समरस्य कण्डूः समरकण्डूः, गुर्वी चासौ समरकण्डूः, तस्याः निकषणः, युद्ध की भयंकर खुजली।

(ii) **अभवन्**– √भू+लङ्, प्रथमपुरुष, बहुवचन, हुए।

संस्कृत व्याख्या– येन सेनापतिना सह त्वं अस्मिन् अहनि, युद्धभूमिं अगच्छः। यः एकाकी वै वीराणां उत्कटरणेच्छारूपकण्डूति–निवारकः, येन सह भवतः निरन्तरं विचित्राः परिहासाः नर्मालापाः इत्यर्थः, भवन्ति स्म, सः ते भगिन्याः प्रशंसनीयः पतिः, इति, क्व नु गतवान्? कथयतु भवान्, इति ।

(17) 'चन्द्रिका' मद्वियोगेति– कृपाचार्य द्वारा अश्वत्थामा के लिए शोक न करने हेतु कहने पर वह पुत्रवत्सल पिता का अनुगमन करने की बात कहता है, तो कृप एवं सूत दोनों ही उसे ऐसा करने से रोकते हैं, तब अश्वत्थामा कहता है कि–

आर्य, क्या कह रहे हैं? जब मेरे वियोग को सहन न करते हुए, पिताश्री ने अपने प्राणों को ही त्याग दिया और परलोक वासी हो गए, तब उन दयावान् पिता के न रहने पर इस वियोग को भला मैं कैसे सह पाऊँगा? अर्थात् मेरे लिए पिताश्री का वियोग सहन कर पाना अत्यधिक कठिन है।

विशेष–(i) अश्वत्थामा की आन्तरिक वेदना अभिव्यक्त हुई है।

(ii) प्रस्तुत श्लोक में स्वाभाविकरूप से प्रयुक्त काव्यलिंग अलंकार एवं पथ्यावक्त्र छन्द का सौन्दर्य भी दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **गतः**– √गम्+क्त, चले गए।

(ii) **सहिष्ये**–√सह्+लृट्, उत्तमपुरुष, एकवचन, सहन करूँगा।

संस्कृत व्याख्या– मत् विरहं सोढुम् अशक्नुवन् पिताश्रीः अस्मात् लोकात् स्वर्गलोकं गतवान्, अहं पुनः मयि स्निग्धस्य तस्य पितुः वियोगं कथं सहिष्ये? नैव कदापि, इत्यर्थः। अतएव मया मरणं सुनिश्चितम्।

(18) 'चन्द्रिका' निवापेति– अश्वत्थामा द्वारा पिता के वियोग में आत्मघात का निर्णय करने पर कृपाचार्य उसे समझाते हुए कहते हैं–

पिता के दिवंगत हो जाने पर, श्राद्धतर्पणादि क्रियाओं को सम्पादित करना, उनकी स्मृति में गृहदान, पाठशाला, धर्मशाला एवं श्राद्धकर्म आदिकों को, तू केवल जीवित रहते हुए ही कर सकता है, तेरी मृत्यु के बाद, ये सभी सम्भव नहीं हैं। इसलिए यदि तुम अपने प्राणों का त्याग करोगे, तो ये श्राद्धादि कर्म नहीं किए जा सकेंगे, जिससे तेरे पिता की सदगति नहीं हो सकेगी और वे प्रेतलोक में ही पड़े रहेंगे। अतः तेरा यह आत्मघात का निर्णय उचित नहीं है।

विशेष–(i) कवि का श्राद्धकर्म एवं तर्पण आदि में गहन विश्वास अभिव्यक्त हुआ है। साथ ही, भारतीय संस्कृति का सुन्दर चित्र प्रस्तुत हुआ है, जिससे कवि की राष्ट्रीय भावना भी अभिव्यक्त हुई है।

(ii) यहाँ प्रयुक्त 'केतन' पद से अभिप्राय मन्दिर पाठशाला आदि स्मारक स्थलों से ग्रहण करना चाहिए।

(iii) प्रस्तुत श्लोक में पथ्यावक्त्र छन्द का प्रयोग हुआ है।

(iv) महाकवि की तार्किक शैली भी दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **शक्तः**– √शक्+क्त, समर्थ हो।

संस्कृत व्याख्या– **जलांजलिप्रदानेन पितृस्मारकरूपेण दत्त–गृहादिभिः, श्राद्धकर्मभिः पार्वणादिश्राद्धैः तस्य मृतस्य पितुः उपकारे खलु, एतेषां क्रियाणां कर्तृकत्वात्, तव जीवनम् आवश्यकं वर्तते। यतोहि यदि त्वं जीवितं भविष्यसि, तदैव एतेषां क्रियाणां सम्पादनं कर्तुं शक्नोसि। अस्याभावे पूर्वकालिकाः त्रिपुरुषाः अपि अतृप्ताः भविष्यन्ति।**

(19) 'चन्द्रिका' गृहीतमिति– इसके बाद शस्त्र–त्याग का निर्णय करके अश्वत्थामा अपने अस्त्र को सम्बोधित करते हुए कहता है कि–

जिसने अनुचित होते हुए भी पराभव की आशंका से तुझे ग्रहण किया था और जिसके प्रभाव से सम्पूर्ण संसार तेरा अचूक लक्ष्य था, उन मेरे पिताश्री ने पुत्र के शोक के कारण तेरा त्याग किया, किसी से भय के कारण नहीं, इसलिए उन्हीं का पुत्र मैं, अश्वत्थामा भी आज तेरा परित्याग कर रहा हूँ, तेरा कल्याण होवे।

विशेष–(i) अश्वत्थामा का नैराश्यभाव अभिव्यक्त हुआ है।

(ii) प्रस्तुत श्लोक में शस्त्र का मानवीकरण किया गया है।

(iii) यहाँ पर शिखरिणी छन्द का कमनीय प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) **आसीत्**– √अस्+लङ्, प्रथम पुरुष, एक वचन।

(ii) **परित्यक्तम्**– परि+ √त्यज्+क्त, त्यागा हुआ।

संस्कृत व्याख्या– **येन मम पित्रा शत्रुकृतपराभवात् भीतेः अनुचितभूते सत्यपि तव ग्रहणं कृतमासीत्, यस्य च धारणसामर्थ्यात् कोऽपि जनः तव लक्ष्यीभूतः न आसीत्, इति न खलु, तेन पुत्रशोकात् शत्रुजन्यभीतेः न, त्वं मया अपि सम्प्रति परित्यक्तम् असि, गच्छतु तावत् भवान्, भवते कल्याणं भवतु।**

(20) 'चन्द्रिका' आचार्यस्येति– तभी धृष्टद्युम्न के शिविर की ओर जाने की, नेपथ्य से सूचना देते हुए कहा जाता है कि–

अपने पुत्र के शोक से शस्त्र का त्याग किए हुए, अश्रुओं से धुले हुए, अतएव गीले मुख वाले, तीनों भुवनों के गुरु द्रोणाचार्य के श्वेत केशों से युक्त, मस्तक पर हाथ रखकर, क्रूरतापूर्ण कार्य करते हुए, यह धृष्टद्युम्न अपने शिविर की ओर सकुशल जा रहा है और आप सभी क्षत्रिय लोग इसे भला कैसे सहन कर रहे हैं?

विशेष–(i) द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न द्वारा युद्ध के नियमों का उल्लंघन करके, किए गए कुकृत्य की, क्षत्रिय समाज द्वारा घोर निन्दा की सुन्दर अभिव्यंजना हो रही है, क्योंकि निहत्थे व्यक्ति पर शस्त्र न चलाने का प्रावधान क्षत्रिय समाज में रहा है।

(ii) प्रस्तुत श्लोक में मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.– (i) **सहध्वम्**– √सह्+लोट्, आत्मने, मध्यमपुरुष, बहुव.।

संस्कृत व्याख्या– रणभूमौ पुत्रशोकात् परित्यक्तायुधस्य बाष्पक्षालितक्लिन्नमुखस्य त्रैलोक्यशिक्षकस्य धनुर्वेदस्य एकमात्रगुरोः द्रोणस्य शुक्लकेशे मस्तके हस्तं निधाय, क्रूरं कर्म कृत्वा शिरच्छेदं विधाय इति, अयं धृष्टद्युम्नः स्वीयं सैन्यशिविरं प्रति गच्छति, यूयं सर्वे क्षत्रियाः गुरोः नियमविरुद्धां एतादृशीं हिंसां कथं सहध्वम्? कथं क्षमध्वमिति भावः।

(21) 'चन्द्रिका' प्रत्यक्षेति– नेपथ्य से कही गयी बात को सुनकर अश्वत्थामा, सारथि एवं कृपाचार्य से उक्त कथन की सत्यता के विषय में पूछते हुए कहता है कि क्या यह बात सत्य है?

बड़े–बड़े धनुर्धारी राजाओं के समक्ष, आमरणान्त अनशन व्रत को धारण करने वाले, पके हुए केशों से युक्त, निःशस्त्र मेरे पिता के सिर पर, शत्रु द्वारा शस्त्र का प्रयोग किया गया था?

विशेष–(i) मरने के लिए प्रायः लोग अन्न का परित्याग कर देते हैं, अनशन व्रत की बात से यहाँ उसी ओर संकेत किया गया है।

(ii) प्रस्तुत श्लोक में कवि द्वारा भावों के अनुसार सरल भाषा एवं वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग किया गया है।

व्या.टि.–(i) प्रायेण बाहुल्येन मरणार्थं उपवासाय उपवेशनम्।

(ii) जराशुक्लः यः मौलिः तेन निरस्ताः काशाः येन तस्मिन्।

संस्कृत व्याख्या– गृहीतशरासनानां राज्ञां समक्षं मृत्युनिमित्तकानशनेन स्थितिः तत्तुल्यं नियमं आश्रितस्य निशस्त्रस्य, मे पितुः जराधवलेन शिरसि शस्त्रं प्रयुक्तं किम्, एतत् सत्यम् अस्ति?

(22) 'चन्द्रिका' परित्यक्ते, इति– इसी क्रम में पुनः विलाप करते हुए, अत्यधिक दुःखी अश्वत्थामा विचारपूर्वक कहता है कि–

अथवा इसमें कौन बड़ी बात है? शोक से दुःखी होकर, युद्ध में शरीर का त्याग कर देने पर उनके सिर को कोई कौआ छुए, या फिर कुत्ता अथवा द्रपद का पुत्र धृष्टद्युम्न ही क्यों न छुए, ऐसी स्थिति में तो सभी बराबर हैं, किन्तु मेरे पिता के सिर पर उसने अपने शस्त्र से प्रहार नहीं किया है, वस्तुतः तो उसने इस पैर का प्रहार, देदीप्यमान बड़े–बड़े दिव्य अस्त्रों के मद से मत्त, मेरे सिर पर ही किया है अर्थात् यह मेरे पिताजी का अपमान नहीं, अपितु मेरा ही घोर अपमान है।

विशेष–(i) अश्वत्थामा की असह्य वेदना तथा भयंकर आक्रोश की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है, वीररस का पूर्ण परिपाक हुआ है।

(ii) रूपक अलंकार एवं शिखरिणी छन्द का प्रयोग हुआ है।

(iii) धृष्टद्युम्न को यहाँ कुत्ते और कौए जैसा बताया गया है।

(iv) यहाँ पर चतुर्थ चरण में 'मया' के स्थान पर 'मम' पाठभेद भी उपलब्ध होता है, तब इसका यह अर्थ किया जाएगा–'यह मेरा पैर उसके सिर पर रखा जा रहा है।' दोनों ही अर्थ उपयुक्त हैं।

व्या.टि.–(i) **परिमृशेत्**– परि+ √मृश्+विधिलिङ्, प्र.पु., ए.वचन।

(ii) **परित्यक्ते**– परि+ √त्यज्+क्त, सप्तमी विभक्ति, एकवचन।

(iii) **शोकार्तमनसा**– शोकेन आर्तः मनो यस्य सः, तेन।

संस्कृत व्याख्या– समरमूर्धनि शोकोपहतचेतसा शरीरे सन्त्यक्ते सति, मस्तकं कुक्कुरः अथवा काकः वा धृष्टद्युम्नः स्पृशेत्, अनेन नैव कापि हानिः, जीवत्येव मानापमानादिलोकव्यवहारप्रवृत्तेः, देदीप्यमान–दिव्यास्त्रसमूहरूपधनमदोन्मत्तस्य तस्य रिपोः धृष्टद्युम्नस्य शिरसि वेगेन ममोपरि खलु अयं चरणः निक्षिप्तः। मम खलु तिरस्कारः कृतः तेन अधमेन धृष्टद्युम्नेनेति भावः।

(23) 'चन्द्रिका' तातमिति— इसी क्रम में विलाप करते हुए अश्वत्थामा फिर से धृष्टद्युम्न को सम्बोधित करके कहता है कि–

हे नीच पांचाल! जब तूने यह निश्चयपूर्वक जान लिया कि पिताजी शस्त्र ग्रहण नहीं करेंगे, तब निःशंक होकर, उनके सिर का स्पर्श किया, किन्तु ऐसा करते हुए तुझे यह याद नहीं आया कि पाण्डव और पांचाल सेनारूपी रूई के लिए प्रलयकाल की वायु के समान, अश्वत्थामा भी जीवित है।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक में पाण्डव और पांचाल सेना के लिए रूई का तथा अश्वत्थामा के लिए प्रलयकालीन वायु का उपमानरूप में प्रयोग किया गया है। अतः रूपकालंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(ii) महाकवि का नूतन उपमान वैशिष्ट्य प्रदर्शित हुआ है।

(iii) सरल भाषा एवं मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) **उपलभ्य**– उप+ √लभ्+क्त्वा (ल्यप्) ज्ञात्वा।

(ii) **त्यक्त्वा**– √त्यज्+क्त्वा, त्यागकर।

संस्कृत व्याख्या– मम पितरं शस्त्रग्रहणे पराङ्मुखं निश्चयेन ज्ञात्वा, तातकर्तृकमारणादि शंकां परित्यज्य, अस्य मत्पितुः शिरसि हस्तं व्यापारयतः किल तव आत्तधनुः पाण्डवद्रुपदसेनातूलोपममर्दनप्रलयवायुः अश्वत्थामा कथं स्मृतिपथं न प्राप्तः आयातः वा।

(24) 'चन्द्रिका' कृतमिति– इसी क्रम में पुनः अश्वत्थामा भयंकर आक्रोशपूर्वक कहता है कि–

मर्यादा का उल्लंघन करने वाले, जिन जिन शस्त्र को धारण करने वाले, पशुओं के समान नीच लोगों ने इस महान् पाप को किया है या अनुमति प्रदान की है, या फिर देखा है। श्रीकृष्ण के साथ, भीम, अर्जुन आदि उन सभी पापियों के रक्त, मांस और मज्जा से मैं आज बलि प्रदान करता हूँ।

विशेष–(i) अश्वत्थामा के क्रोध की पराकष्ठा प्रदर्शित हुई है।

(ii) प्रस्तुत श्लोक में हरिणी छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

लक्षण– नसमरसला गः षड्वेदैर्हयै ईरिणी मता।

(iii) 'सार्द्धम्' पद के योग में 'सहयुक्तेऽप्रधाने' सूत्र से कृष्ण के विशेषण 'नरकरिपुणा' पद में तृतीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i)**करोमि**– √कृ+लट्, उत्तमपुरुष, एकवचन, करता हूँ।

संस्कृत व्याख्या– यैः युद्धमर्यादातिक्रान्तैः अतएव पशुवत् कार्याकार्यविवेकरहितैः उद्यतशस्त्रैः भवद्भिः मम पितुः शिरःकर्तनब्रह्म–हत्यारूपं महापातकं विहितं, समर्थितं, अवलोकितं वा, दुर्जयस्य अपि असुरस्य जेत्रा कृष्णेन सह भीमार्जुनसहितानां तेषां दुष्टानां अयम् अहं रुधिरवसामांसैः तत्तत् दिगवस्थितानां भूतानां बलिं ददामि। अधुना तेषां सर्वेषां विनाशं तु सुनिश्चितमेव वर्तते, इत्यभिप्रायः।

(25) 'चन्द्रिका' पितुरिति– कृपाचार्य द्वारा शत्रु के विनाश के लिए प्रोत्साहित करने पर अश्वत्थामा फिर से कहता है कि–

हे पाण्डवों की सेना में सम्मिलित सभी नीच क्षत्रियों! पुरातन काल में परशुराम ने अपने पिता जमदग्नि के सिर को सहस्रबाहु द्वारा स्पर्श किए जाने पर, अपने फरसे द्वारा क्षत्रियों के इक्कीस बार विनाश का, जो कार्य किया था, क्या उसे आप लोग भूल गए हैं? क्रोध से अन्धा होकर यह अश्वत्थामा भी क्या आज युद्धभूमि में शत्रुओं के रक्त की वृष्टि द्वारा उसप्रकार का कर्म नहीं कर सकता है? अर्थात् निश्चय ही कर सकता है। इसलिए आप सभी की अब खैर नहीं है।

विशेष–(i) सहस्रबाहु द्वारा अपने पिता के अपमान से क्रोधित, परशुराम ने पृथिवी को **इक्कीस बार** क्षत्रियों से रहित किया था, यहाँ उसी पुरातन कथा की ओर संकेत किया गया है।

(ii) शिखरिणी छन्द का प्रयोग भी दर्शनीय बन पड़ा है।

व्या.टि.–(i) **विधातुम्**– वि+√धा+तुमुन्, करने के लिए।

(ii) **प्रभवति**– प्र+√भू+लट्, प्रथम पुरुष, एकवचन, समर्थ है।

संस्कृत व्याख्या– पितुः जमदग्नेः मस्तके स्पृष्टे सति, अनलः इव भास्वान् परशुः यस्य तादृशेन परशुरामेण यत् कर्म एकविंशतिबारं क्षत्रियविनाशाख्यं विहितम् आसीत्, तत् युष्माकं सर्वेषां श्रुतिपथं न उपगतं आकर्णितमिति? अस्मिन् अहनि एषः अश्वत्थामा क्रोधेन अन्धो

भूत्वा रणभूमौ शत्रूणां रुधिराणां धारया सम्पातः प्रीतिकरः आहार **पितृतर्पणरूपकर्म कर्तुं किं न शक्नोति, इति।**

(26) 'चन्द्रिका' भवेदिति– कृपाचार्य द्वारा सेनापति पद पर अभिषिक्त होने के बाद, युद्धभूमि में उतरने की बात पर, अश्वत्थामा इसे व्यर्थ और पराधीन कहता है, तो कृपाचार्य कहते हैं कि–

पुत्र! सेनापति पद पर अभिषिक्त होने की यह बात न तो पराधीन है और न ही व्यर्थ सी है। अपनी बात को पुष्ट करते हुए फिर से कहते है कि तुम्हीं देखो, यदि उन्हीं के समान शक्तिशाली आप उस कौरव सेना के नायक न बन सकें, तो भीष्म और द्रोण से रहित होने पर कौरव सेना की सामर्थ्य रह ही क्या जाएगी?

विशेष–(i) कवि की तार्किक शैली दर्शनीय है।

(ii) कृपाचार्य की आन्तरिक इच्छा की अभिव्यक्ति हुई है।

(iii) पथ्यावक्त्र छन्द का सुन्दर प्रयोग द्रष्टव्य है।

व्या.टि.–(i) **भवेत्–** √भू+विधिलिङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(ii) **युज्यते–** √युज्+लट्, आत्मने, प्रथमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– भीष्मरहितं द्रोणरहितं च दुर्योधनसैन्यं कथं **शत्रुसम्मुखे तिष्ठेत्, अनेन अस्याः सेनायाः सेनापतिपदे तत्सदृशयुद्धकर्म क्षमः भवान् यदि धुर्यः न नियुज्यते, इति। नाभिषिच्यते, इत्यर्थः।**

(27) 'चन्द्रिका' तेजस्वीति– तत्पश्चात् कर्ण और दुर्योधन के वार्तालाप के मध्य कर्ण को सम्बोधित करके दुर्योधन कहता है कि–

हे कर्ण! तेजस्वी वीर पुरुष तो शत्रुओं द्वारा मारे गए, अपने बन्धु–बान्धवों के अपार दुःख के सागर को अपने शस्त्रसहित बाहुरूपी नौका से पार करते हैं, किन्तु फिर भी द्रोणाचार्य ने युद्धभूमि में पुत्र की मृत्यु को सुनकर, शस्त्र ग्रहण न करते हुए उसका परित्याग भला क्यों कर दिया? इसका औचित्य मुझे लेशमात्र भी प्रतीत नहीं हो रहा है।

विशेष–(i) द्रोण द्वारा शस्त्रत्याग के विषय में दुर्योधन द्वारा कर्ण के समक्ष अपनी शंका को प्रस्तुत किया गया है।

(ii) पूर्वार्द्ध में रूपक अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(iii) प्रहर्षिणी छन्द का प्रयोग भी कमनीय रहा है।

लक्षण– त्र्याशाभि र्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम्।

व्या.टि.–(i) **व्रजति**– √व्रज्+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(ii) **निशम्य**– नि+ √शम्+क्त्वा (ल्यप्) सुनकर।

संस्कृत व्याख्या– हे अंगराज! यः जनः तेजस्वी भवति, सः तु स्वायुधरूपीप्लवेन खलु बाहुभ्यां गृहीत्वा शत्रुः द्वारा हतानां स्वबन्धुनां शोकं तरति, किन्तु आचार्यद्रोणेन एतत् किं कृतम्? यत् स्वपुत्रस्य वधं श्रुत्वा अस्य प्रतिकारम् अकृत्वा अस्त्रमपि स्व त्यक्तं खलु, इति?

(28) 'चन्द्रिका' दत्त्वेति– दुर्योधन के मन में द्रोणाचार्य के प्रति कटुता उत्पन्न करने के लिए, कर्ण द्वारा पुत्र अश्वत्थामा को सम्राट् बनाने की बात पर दुर्योधन अपनी सहमति व्यक्त करते हुए कहता है–

हे कर्ण! तुम ठीक ही कह रहे हो, इसमें कोई सन्देह नहीं है, नहीं तो अत्यधिक शक्तिशाली जयद्रथ को अभयदान देने के बाद भी अर्जुन द्वारा उसे मारे जाने पर, द्रोणाचार्य इसकी उपेक्षा भला क्यों करते? वस्तुतः जयद्रथ की रक्षा के लिए उन्होंने किसीप्रकार का भी प्रयास नहीं किया।

विशेष–(i) दुर्योधन द्वारा कर्ण की बात से सहमति व्यक्त की गयी है। अतः दुर्योधन का <u>कान का कच्चा</u> होना प्रदर्शित हो रहा है।

(ii) पथ्यावक्त्र छन्द एवं सरल भाषा प्रयोग दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **दत्वा**– √दा+क्त्वा, देकर।

(ii) **उपेक्षेत**– उप+ √ईक्ष्+विधिलिंग, आत्मने, प्रथमपुरुष, ए.व.।

संस्कृत व्याख्या– यदि एवं न स्यात्, तर्हि उक्तप्रकाराः साम्राज्यस्वार्थसाधनरूपा गुप्तसन्धिः न भवेत्, तदा महारथः सः आचार्यः द्रोणः, जयद्रथं अभयं दत्वापि अर्जुनेन हन्यमानं सिन्धुराजं जयद्रथं किमर्थम् उपेक्षेत, उपेक्षां कुर्यात्, इत्यर्थः।

(29) 'चन्द्रिका' एहीति– अपने पिता की मृत्यु के कारण दुःखी अश्वत्थामा से दुर्योधन कहता है कि–

हे आचार्य पुत्र! आपके पिता ने मेरे लिए अपने प्राणों को त्याग दिया और वे वीरगति को प्राप्त हुए, आइए अपने मनोरम अंगों द्वारा मेरे अंगों का आलिंगन कीजिए, आपकी भुजाओं का यह स्पर्श वस्तुतः

आपके पिता की भुजाओं के स्पर्श के समान ही इस शोक की अवस्था में भी हमें पुलकित कर रहा है।

विशेष–(i) दुर्योधन का चरित्र प्रदर्शित हुआ है, क्योंकि कर्ण द्वारा कान भर देने से यह प्रदर्शन तो दिखावा मात्र है।

(ii) वसन्ततिलका छन्द एवं भाषा का सारल्य द्रष्टव्य हैं।

(iii) चतुर्थ चरण में 'विकृतिम्' के स्थान पर 'निवृत्तिम्' पाठभेद भी मिलता है, तब इसका अर्थ 'शान्ति' करना होगा।

व्या.टि.–(i) **एहि**– √इण् गतौ+ लोट्, मध्यमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– अस्मदर्थं भवतः तातः हतवान्, इति सम्बुद्धौ शोकपरिम्लानैः अंगैः इदं मम अंगं सततं आलिंग, तव बाह्वोः एषः प्रत्यक्षम् अनुभूयमानः स्पर्शः ते पितुः द्रोणस्य सदृशः खलु, अनेनैव अयं मम शरीरं पुलकायमानं करोति सम्प्रति, तं वै अनभुवं स्मृत्वेति, किंवा निवृतिं पाठभेदेन शान्तिं करोति।

(30) 'चन्द्रिका' तातः, इति– इसी क्रम में दुर्योधन पुनः अश्वत्थामा से आचार्य की इस महाविपत्ति में स्वयं को भी समान दुःख वाला बताते हुए कहता है कि–

यदि आचार्य आपके पिता थे तो वे मेरे पिता के मित्र भी थे अर्थात् मेरे भी वे पिता के समान ही थे। इसीप्रकार शस्त्र–विद्या में जिसप्रकार वे आपके गुरु थे, उसीप्रकार वे मेरे भी गुरु थे, उनके परलोक वासी होने का जो दुःख हमें है, उसे आप अपने शोक से व्याकुल मन से ही समझने में समर्थ हैं।

विशेष–(i) दुर्योधन का मृदुभाषी चरित्र प्रदर्शित हुआ है। यद्यपि प्रस्तुत अपनत्व वस्तुतः दिखावा मात्र है।

व्या.टि.–(i) **जानीहि**– √ज्ञा+लोट्, मध्यमपुरुष, एकवचन।

(ii) **कथयामि**– √कथ्+लट्, उत्तमपुरुष, एकवचन, कहता हूँ।

संस्कृत व्याख्या– सः द्रोणाचार्यः यदि तव पिता आसीत्, तदा ममापि पितुः मित्रं कारणेन पितातुल्यः खल्वासीत्। एवमेव यदि सः शस्त्रविद्यायां तव गुरुरभवत् तथैव ममापि गुरुः वै भवति स्म। तस्य

मृत्यौ किमहं दुःखं स्वं कथयामि, त्वं किल शोकाक्रान्तेन स्व हृदयेन जानीहि अर्थात् यथा त्वं तेन दुःखेन दह्यसे तथैवाहमपि, इति भावः।

(31) 'चन्द्रिका' मयीति– इसके बाद, अश्वत्थामा अपनी पीड़ा को दुर्योधन के प्रति व्यक्त करते हुए कहता है कि–

मेरे जीवित रहते हुए ही जब शत्रु द्वारा मेरे पिता के केशों को पकड़ लिया और मैं कुछ भी नहीं कर सका, तब जिन लोगों के पुत्र नहीं हैं, इसप्रकार के वे लोग तो पुत्र की आकांक्षा भला क्यों करेंगे?

विशेष–(i) उपर्युक्त कथन में अश्वत्थामा की गहन मानसिक पीड़ा उभरकर पाठक के समक्ष आयी है।

(ii) सरल भाषा एवं पथ्यावक्त्र छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) **जीवति–** √जीव्+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(ii) **करिष्यन्ति–** √कृ+लृट्, प्रथमपुरुष, बहुवचन, करेंगे।

संस्कृत व्याख्या– मयि जीवति यदि मे पिता केशाकर्षणम् अवाप्य मृत्युं लभेत्, तर्हि मम जीवनस्य प्रयोजनमेव निरर्थकमस्ति, इदमेव निदर्शनम् उपलभ्य पुत्रप्रयोजनं किंचित्करं मत्वा अन्येऽपि अपुत्रिणः पुत्रोत्पादनात् विरताः भविष्यन्ति, इति अभिप्रायः।

(32) 'चन्द्रिका' यो यः, इति–इसके पश्चात् कर्ण को सम्बोधित करके अश्वत्थामा अपने द्वारा भविष्य में किए जाने योग्य कार्यों को कहता है कि–

हे अंगराज! सुनिए, जो किया जा सकता है। पाण्डवों की सेना में बाहुबल के घमण्ड वाले, जो भी योद्धा को जीवन धारण करने वाले है, पांचाल वशं में जो–जो भी शिशु, वृद्ध या अपनी माताओं के गर्भ में विद्यमान हैं और जिस–जिसने पिता के केशग्रहण रूप निन्दनीय कर्म को देखा है तथा जो भी युद्धभूमि में मेरे प्रतिकूल उपस्थित होने वाला है। इस संसार के काल का भी काल, क्रोध से अन्धा हुआ मैं, उन सभी का शीघ्र ही अन्त करने वाला हूँ।

विशेष–(i) शत्रु से बदला लेने के विषय में क्रुद्ध अश्वत्थामा के दृढ़निर्णय की सुन्दर प्रतीति हो रही है।

(ii) शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का मनभावन प्रयोग दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **बिभर्ति**– √भृ+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(ii)**चरति**– √चर्+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन, आचरण करता है।

संस्कृत व्याख्या– पाण्डवीसेनानां मध्ये, निजबाहुबलाभिमानः य ः आयुधं धारयति, पांचालराजवंशे यः यः अपि शिशुः, प्रौढ़ावस्थ मातृजरठे एव स्थितः, इति। यः यः पितृवधरूपस्य तस्य कर्मणः साक्षात् द्रष्टा आसीत्। अश्वत्थामा नाम्नि मयि रणभुवि भ्रमति, यः यः प्रतिकूल भविष्यति, इति। शत्रुवधजनितक्रोधेन कर्तव्याकर्तव्यविवेकशून्योऽहं एकः एव यमस्यापि यमो भूत्वा, संग्रामभुवि तस्य प्रागुक्तानां सर्वेषामेव यमोऽस्मि।

(33) 'चन्द्रिका' देशः, इति– इसी क्रम में अश्वत्थामा, जामदग्नि के शिष्य कर्ण को सम्बोधित करके फिर से कहता है कि–

हे कर्ण! यह वही कुरुक्षेत्र प्रदेश है, जहाँ के जलाशय शत्रुओं के रक्त के माध्यम से भरे गए थे, जमदग्नि के समान ही मेरे पिता का वध भी क्षत्रिय कुल में उत्पन्न धृष्टद्युम्न द्वारा केशों को पकड़कर ही किया गया है। शत्रुओं के शस्त्रों को भक्षण करने में समर्थ, जो दिव्य अस्त्र परशुराम के पास थे, वे ही मेरे पास भी हैं। इसलिए अपने पिता के वध का बदला लेने के लिए, जो कर्म परशुराम ने किया था, वही अब द्रोणाचार्य का पुत्र यह मैं भी करने जा रहा हूँ।

विशेष–(i) अश्वत्थामा के भयंकर क्रोध की अभिव्यक्ति हुई है।

(ii) प्रस्तुत श्लोक में शार्दूलविक्रीड़ित छन्द प्रयुक्त हुआ है।

(iii) अश्वत्थामा द्वारा अपनी उपमा परशुराम से दी गयी है।

व्या.टि.–(i) आहितानां शत्रूणां यानि शस्त्राणि, तेषाम् भक्षकानि अतएव गुरूणि प्रचण्डानि, इत्यर्थः।

संस्कृत व्याख्या–यस्मिन् स्यमन्तपंचकनामके देशे जलाशयाः शत्रूणां पूरिताः परशुरामेणेति, सः इतिहासप्रसिद्धः प्रत्यक्षं दृश्यमानः कुरुक्षेत्ररूपो देशः वर्तते, इति, तथाविधः जामदग्न्यपितृपरिभवप्रकारः मे पितुः केशग्रहः परिभवः क्षत्रियादेव धृष्टद्युम्ना, इति, तानि एव शत्रूणां यानि शस्त्राणि तेषां भक्षकानि अतएव गुरूणि प्रचण्डानि, इत्यर्थः।

देदीप्यमानानि मे अस्त्राणि वर्तन्ते, एव इति। किमन्यत् परशुरामेण यत् कृतं तदेव क्रोधेन अन्धोऽहं विवेकहीनो भूत्वा सम्प्रति अश्वत्थामा करुते।

(34) 'चन्द्रिका' प्रयत्नेति– कृपाचार्य द्वारा दुर्योधन से अश्वत्थामा को सेनापति बनाए जाने के प्रस्ताव को बाद अश्वत्थामा वह कहता है कि–

यदि आप मुझे सेनापति पद पर प्रतिष्ठित करते हैं, तो आज से ही आप निश्चिन्त होकर इसप्रकार सोएँगे कि चारण और बन्दीजन आपका यशोगान करके, प्रयत्नपूर्वक आपको जगाएँगे, आज ही यह पृथ्वी कृष्ण, पाण्डव एवं सोमवंश, इन सभी से शून्य हो जाएगी। इतना ही नहीं, मेरी भुजाओं के बल से आज वीरों में रणविषयक चर्चा भी समाप्त हो जाएगी तथा इन्हें नष्ट करने के बाद, पृथ्वी पर राजाओं का अत्यधिक बढ़ा हुआ यह भार भी हलका हो जाएगा।

विशेष–(i) अश्वत्थामा की अतिशयोक्ति पूर्ण उक्ति द्रष्टव्य है।

(ii) उपर्युक्त श्लोक में पृथ्वी छन्द का प्रयोग भी दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) प्रयत्नेन बोधितः, इति। परि+ √बुध्+क्त, परिबोधितः

(ii) **परिसमाप्यते**– परि+सम्+ √आप्+लट्,आत्मने. प्र.पु., ए.व।

संस्कृत व्याख्या– अद्य अस्मिन् अहनि एव वन्दिजनकृतस्तवैः प्रयत्नपूर्वकं निद्राभंगम् अवापितः। समरचिन्ताराहित्येन निद्राधिक्यं प्राप्स्यसि, इत्यर्थः। अद्य भुवनं कृष्ण–पाण्डव–सात्यकिप्रभृतिसोमवंश–शून्यं भविष्यति, इति। बाहुशालिनां वीराणां युद्धस्य वार्ता आमूलं समाप्ता भविष्यति। अद्य खलु राजवनातिदुर्भरः भूमेः भारः व्यपगच्छतु।

(35) 'चन्द्रिका' निर्वीर्यमिति– कर्ण द्वारा मात्र अश्रु बहाकर ही तुम तो अपने दुःख को दूर करो, इसप्रकार अप्रत्यक्षरूप से कहने पर अश्वत्थामा आक्रोशपूर्वक कहता है कि–

अरे, रे राधा के गर्भ के भारस्वरूप! क्या तुम्हारे समान मेरा शस्त्र भी गुरु के शाप से शापित किया हुआ है, जो मैं अस्त्र से अपने दुःख को दूर न करके, अश्रुओं का बहाकर दूर करूँ। क्या मैं तुम्हारे समान युद्धक्षेत्र को छोड़कर, भागकर आया हुआ कायर हूँ? क्या मैं भी

तुम्हारे समान स्तुति गाने वाले भाटों, सूत–मागधों के कुल में उत्पन्न हुआ हूँ, जो मैं अस्त्रों से अपने पिता की मृत्यु का बदला न लेकर केवल रोकर ही अपने दुःख दूर करूँ।

विशेष–(i) सूर्य के मन्त्र का प्रयोग करने से कुन्ती की कौमार्यावस्था में कर्ण की उत्पत्ति हुई थी, जिसे लोकलाज के भय से उसने संदूक में रखकर गंगा में बहा दिया था, बाद में सूतदम्पत्ति द्वारा प्राप्त करने पर, इसका पालन पोषण किया गया, तभी से इसे सूतपुत्र कहा जाता है। दुर्योधन ने बाद में इसे अंगदेश का राजा बना दिया।

(ii) द्रोणाचार्य द्वारा धनुर्विद्या की शिक्षा देने से मना करने पर सूतपुत्र कर्ण, परशुराम के पास गया और स्वयं को ब्राह्मण बताकर इस विद्या को प्राप्त कर लिया। बाद में, घटना विशेष से इसके क्षत्रिय होने का रहस्य खुल गया, तो परशुराम ने क्रोधित होकर इसे 'छल करके सीखी हुई इस धनुर्विद्या के अवसर पड़ने पर काम न आने का शाप दे दिया था।

(iii) चारण, भाट, सूत, मागध ये कुछ जातियाँ राजाओं के यश का गान करके अपनी जीविका अर्जन करती थीं, यहाँ उसी ओर संकेत किया गया है।

(iv) शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का प्रयोग भी दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **विहाय**– वि+ √हा+क्त्वा (ल्यप्) छोड़कर।

(ii) **जातः**– √जनी प्रादुर्भावे+क्त, उत्पन्न हुआ।

संस्कृत व्याख्या– तव इव मम शस्त्रं परशुरामस्य दत्तशापात् सामर्थ्यरहितं वर्तते किं। यथा त्वं अधुनैव भयात् रणं परित्यज्य प्राप्तोऽत्र, किम् अहमपि प्राप्तोऽस्मि। राज्ञां स्तुतिकरणाय आजीविका येषां तेषां सूतानां वंशे किमहं जातोऽस्मि, तव इव। यत् नीचाः भीमार्जुनप्रभृतयः शत्रवः तैः अनुष्ठितं यत् अप्रियं मत् पितृनिधनरूपं कर्म, तत् अश्रुणा प्रतिकरोमि आयुधेन न प्रतिविदधामि, इति।

(36) 'चन्द्रिका' निर्वीर्यं वेति-- अश्वत्थामा की बातों को सुनकर, दुर्योधन के समक्ष ही कर्ण, क्रोधपूर्वक उत्तर देते हुए कहता है कि–

अरे, रे व्यर्थ ही आलाप करने वाले! मूर्ख! भले ही मेरा शस्त्र, निस्तेज हो या फिर तेज से युक्त हो, किन्तु फिर भी मैंने तो आज तक कभी भी, कहीं भी शस्त्र का उसप्रकार त्याग नहीं किया है, जिसप्रकार महान् पराक्रमी तुम्हारे पिता ने पांचाल से भयभीत होकर युद्धक्षेत्र में कर दिया है।

विशेष–(i) तार्किक शैली की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

(ii) प्रस्तुत स्थल पर कर्ण की कटुभाषिता भी दर्शनीय है।

(iii) उपमालंकार तथा पथ्यावक्त्र छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) **उत्सृष्टम्**– उत्+ √सृज्+क्त, छोड़ा हुआ।

संस्कृत व्याख्या– निर्बलं सबलं वा मया स्वशस्त्रं, पांचाल–भीतस्य भुजबलशोभासम्पन्नस्य तव पितुः इव कुत्रापि न उत्सृष्टम् कदापि।

(37) 'चन्द्रिका' सूतो वेति– इसी क्रम में क्रुद्ध हुआ कर्ण, फिर से अश्वत्थामा से कहता है कि– और भी सुनो,

मैं सूत हूँ या सूत का पुत्र हूँ, इससे तुम्हें क्या लेना देना है? अच्छे या बुरे कुल में जन्म लेना तो विधाता के अधीन है, किन्तु मेरे अधीन तो मात्र कर्म करना है अर्थात् पुरुषार्थ करना है। इसलिए इस अवसर पर ये बातें कहने से कोई लाभ नहीं है।

विशेष–(i) महाकवि की भाषा की सरलता दर्शनीय है।

(ii) कर्ण का पुरुषार्थ करने में विश्वास अभिव्यक्त हुआ है।

(iii) पथ्यावक्त्र छन्द का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) **भवामि**– √भू+लट्, उत्तमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– अहं सारथिः अस्मि, किंवा सारथेः पुत्रोऽस्मि, यो वा को वा अपि भवामि, तेन किमपि प्रयोजनं न, सत्कुले उत्पत्तिः तु भाग्याधीनं वर्तते, मदाधीनं तु पुरुषार्थकरणमेव पराक्रमः खलु अस्ति।

(38) 'चन्द्रिका'स भीरुरिति–तभी अश्वत्थामा आक्रोशपूर्वक कर्ण से कहता है कि–

अरे! राधा के गर्भ के भारस्वरूप! मेरे पिता डरपोक थे या शूरवीर थे, किन्तु तीनों लोकों में उनका भुजबल प्रसिद्ध था, उन्होंने युद्धभूमि में रोजाना जो–जो कर्म किए थे, उन्हें सम्पूर्ण पृथ्वी भलीप्रकार जानती है। इतना ही नहीं, उन्होंने अपने शस्त्र का पतित्याग क्यों किया, यह तो सत्य के व्रत का पालन करने वाला युधिष्ठिर ही ठीक से जानता है। हे युद्ध से डरकर भागने वाले! तू तो उस समय वहाँ से अपने प्राणों को बचाकर भाग आया है। इसलिए तू इस सम्बन्ध में भला क्या जान सकता है?

विशेष–(i) अश्वत्थामा की स्पष्टवादिता प्रदर्शित हुई है।

(ii) शिखरिणी छन्द का प्रयोग भी दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) वेत्ति– √विद् ज्ञाने+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– सः मम पिता द्रोणः भीरुः कातरः, वीरः वा, इति लोकत्रयेऽपि प्रसिद्धोऽस्ति। मम पित्रा संग्रामे प्रतिदिवसं यत् पराक्रमकर्म विहितं तत् इयं वसुधा सम्यक्तया जानाति। एवं च तेन आयुधं केन कारणेन परित्यक्तम्? इदं तु सत्यव्रतस्य पालकः युधिष्ठिरः साक्षात् द्रष्टा कारणेन जानाति एव। हे रणभीरोः! संग्रामकातरः तत्र शस्त्रत्यागसमये त्वं कुत्रासीः? वस्तुतस्तु त्वं युद्धात् पलायनपरः आसीत्।

(39) 'चन्द्रिका' यदीति– अश्वत्थामा के प्रश्न के उत्तर में फिर से कर्ण कहता है कि–

अरे मूर्ख! हमें तो तेरे पिता के विषय में ही सन्देह होता है क्योंकि यदि उन्होंने शस्त्र का त्याग कर भी दिया था, तो भी वे अपने ऊपर होने वाले आक्रमण को तो क्या रोक नही सकते थे? जबकि वे तो स्त्रियों के समान, वहाँ उपस्थित सभी राजाओं के सामने, अपने सिर पर प्रहार होने पर भी उदासीन ही बने रहे।

विशेष–(i) कर्ण द्वारा अश्वत्थामा से अत्यन्त स्वाभाविक प्रश्न किया गया है, जो उसकी तीक्ष्ण बुद्धि का परिचायक है।

(ii) उपमालंकार एवं मंजुभाषिणी छन्द का प्रयोग हुआ है।

लक्षण– सजसा जगौ भवति मंजुभाषिणी।

व्या.टि.–(i) निवारयन्ति–नि+ √वार्+लट्, प्रथमपुरुष, बहुवचन।

संस्कृत व्याख्या–यदि तेन द्रोणेन आयुधम् उज्झितं, उज्झतु नाम, किन्तु परित्यक्तास्त्रा अपि उद्यतास्त्रान् शत्रून् न निरयन्ति किम्? येन कारणेन तव पित्रा नैव एकान्तेऽपितु नृपसमूहसन्निधौ स्त्रियाः इव औदासीन्यम् आचरितम्, स्वशिरच्छेदने।

(40) 'चन्द्रिका' कथमिति– इस दुःख के अवसर पर कर्ण की कष्टकर बातों को सहन न करने पर अश्वत्थामा क्रोध से काँपते हुए कहता है कि–

मेरे पिता ने भयभीत होकर या फिर पुत्र की मृत्यु का समाचार सुनकर शोकवश, जिस किसी कारण से भी द्रुपद के पुत्र द्वारा किए गए प्रहार को नहीं रोका, किन्तु मैं इस समय अपने भुजबल के दर्प से तेरे सिर पर, अपने बाएँ पैर का प्रहार कर रहा हूँ, तू इसे रोक सके तो रोक ले।

विशेष–(i) कर्ण की कटूक्तियों से प्रस्तुत श्लोक में अश्वत्थामा का असह्य क्रोध अपनी चरमसीमा पर पहुँच गया है।

(ii) सरलभाषा एवं मालिनी छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) न्यस्यते– नि+ √अस्+लट्, आत्मने, प्र.पु., ए.वचन।

संस्कृत व्याख्या– मम तेन पित्रा स्वपुत्रनिधनदुःखेन भीति–कारणेन वा, केनापि अन्येन कारणेन इत्यर्थः, धृष्टद्युम्नकरः न निवारितः, किन्तु सम्प्रति भुजयोः बलस्य यः दर्पः मम तेन तव शिरसि अयम् उत्तोलितः वामः चरणः, न तु करः स्थाप्यते, निवारय, एनं त्वं यदि समर्थोऽसि।

(41) 'चन्द्रिका' जात्येति– अश्वत्थामा द्वारा कर्ण के सिर पर वाम पाद का प्रहार करने पर वह तलवार निकाल कर कहता है कि–

यद्यपि तू ब्राह्मण जाति में जन्म लेने के कारण वध के योग्य नहीं है, किन्तु फिर भी अपने उठे हुए अपने पैर को निश्चय ही तू मेरी खड्ग से कटा हुआ और पृथ्वी पर पड़ा हुआ देखेगा।

विशेष–(i) महाभारतकाल में ब्राह्मण जाति को अवध्य माना जाता था, यहाँ पर उसी ओर संकेत किया गया है।

(ii)भाषा की सरलता व पथ्यावक्त्रछन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **उद्धृतम्**– उत्+ √धृ+क्त, उठाया हुआ।

(ii) **द्रक्ष्यसि**– √दृश्+लृट्, मध्यम पुरुष, एक वचन, देखोगे।

संस्कृत व्याख्या– **यद्यपि त्वं ब्राह्मणजात्याः कारणेन हन्तुं योग्यो न असि, तदापि इदमुद्धृतं चरणं तु मम खड्गेन छिन्नं सत् भूमौ पतितं अवलोकयिष्यसि। नैव विषयेऽस्मिन् संशयलेशोऽपि विद्यते।**

(42) 'चन्द्रिका' अद्येति– कर्ण द्वारा जाति के कारण अवध्य कहने पर अश्वत्थामा क्रोधपूर्वक अपने यज्ञोपवीत को तोड़कर फेंकते हुए कहता है कि–

ले, यह मैंने अपनी जाति को छोड़ दिया है और तूझे मारने के बाद, आज मैं अर्जुन की तुझे मारने की प्रतिज्ञा को भी झूठा कर दूँगा। इसलिए या तो तू शस्त्र ग्रहण करके मेरे साथ युद्ध कर या फिर उसे त्यागकर, अपने दोनों हाथों को जोड़कर क्षमायाचना कर ले, क्योंकि तभी आज मुझसे तेरे प्राणों की रक्षा हो सकेगी।

विशेष–(i) कर्ण और अश्वत्थामा दोनों का ही क्रोध चरम पर चित्रित किया गया है। वीररस का पूर्ण परिपाक हुआ है।

(ii) यहाँ पर पथ्यावक्त्र छन्द का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) **क्रियते**– √कृ+लट्, आत्मने, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(ii) **गृहाण**– √ग्रह्+लोट्, मध्यमपुरुष, एकवचन, ग्रहण करो।

संस्कृत व्याख्या– **अद्य अर्जुनस्य तव वधरूपा प्रतिज्ञा मया मिथ्या क्रियते, यतोहि सम्प्रति अहमेव कार्यमेतत् करिष्यामि। अतएव त्वं युद्धार्थम् आयुधं गृहाण। शस्त्रं त्यक्त्वा वा शिरसि प्रणामांजलिं दयायाचनार्थं रचय, नो चेत् तव मरणम् अद्य सुनिश्चितं खलु।**

(43) 'चन्द्रिका' उपेक्षितानामिति– कर्ण और अश्वत्थामा के परस्पर आक्रामक होने पर कर्ण, दुर्योधन से कहता है कि–

हे राजन्! आप हमें मत रोकिए, क्योंकि धीर पुरुषों द्वारा लापरवाही से उपेक्षा किए गए, इस प्रकार के नीच और मूर्ख लोगों को

यदि दण्डित न किया जाए, तो वे इसप्रकार लम्बी–लम्बी डींगे हाँका ही करते हैं।

विशेष–(i) अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) **भवति**– √भू+लट्, प्रथम पुरुष, एकवचन, होता है।

संस्कृत व्याख्या–धीरप्रकृतिभिः जनैः क्रोधेन ये विवेकहीनाः सन्ति, ते नैव उपेक्षितव्या, यतोहि अदण्डितानां एते उग्राः भवन्ति, अनपेक्षितानां मूर्खानां स्वल्पबलानां च नीचानां वा, ईदृशी वै आत्मश्लाघा भवति, अतएव एते नूनं शासनीयाः धीरैः, इत्याशयः।

(44) 'चन्द्रिका' पापप्रियेति– इसी क्रम में अश्वत्थामा राजा दुर्योधन को सम्बोधित करते हुए कहता है कि–

आप तो गुणवान् हैं और इस कर्ण को पापकार्य अच्छा लगता है, आप चन्द्रवंश जैसे उच्चकुल में उत्पन्न सम्राट् हैं और यह सारथि का पुत्र है, ऐसी स्थिति में आपके साथ इसकी मित्रता भला कैसे सम्भव है? और यदि आप यह कहें कि मैंने इसके साथ यह मित्रता इसके द्वारा अर्जुन को मरवाने के लिए की है, तब तो इससे यह आशा करना भी व्यर्थ है। हे राजन्! आप तो मुझे छोड़ दीजिए, आज मैं इस संसार को कर्ण और अर्जुन दोनों से ही शून्य कर दूँगा।

विशेष–(i) अश्वत्थामा का आत्मश्लाघा पूर्ण वचन प्रस्तुत हुआ है, जो उसके चरित्र को धूमिल करने वाला है।

(ii) वसन्ततिलका छन्द का कमनीय प्रयोग दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **हन्ता**– √हन्+तृच्, प्रथमा विभक्ति, एक वचन।

संस्कृत व्याख्या– अस्य कर्णस्य पापे रतिः वर्तते, सारथिः कुलप्रसूतोऽस्ति एषः, भवान् तु चन्द्रवंशे सम्भवः प्रशस्तगुणशालिनः सम्राट् अस्ति। अनेन अयं जनः तव सखा कथं भवितुं शक्यते? यदि भवान् एतत् चिन्तयति यत् अयं अर्जुनस्य हन्ता भविष्यति, इति मत्वा मैत्रं करोति, तदापि नैव अस्यापि आवश्यकता, यतोहि– भवान् एनं कर्णं त्यजतु, अद्य अहमेव संसारं कोपात् कर्णार्जुनरहितं करिष्यामि, इति।

(45) 'चन्द्रिका' अयमिति– इसके बाद अश्वत्थामा अपने मामा कृपाचार्य को सम्बोधित करके कहता है कि–

यदि ऐसी ही बात है, तो मामाजी! जब तक यह पापी शत्रुओं द्वारा नहीं मारा जाता है, तब तक के लिए, मैं अपने प्रिय अस्त्र का परित्याग कर रहा हूँ। जब यही कर्ण सेनापति के रूप में युद्ध में जाएगा और वह क्रुद्ध भीम एवं अर्जुन के आघातों को सहन करेगा, उसी समय दुर्योधन को इस अपने मित्र के बल का पता चल जाएगा।

विशेष–(i) शस्त्र का त्याग अश्वत्थामा का स्वभाव प्रतीत होता है, क्योंकि इससे पूर्व भी पिता की मृत्यु की सूचना पर भी इसने शस्त्र से क्षमापूर्वक उसके त्याग की बात की थी। (द्रष्टव्य श्लोक–3/19)

(ii) प्रस्तुत श्लोक में शिखरिणी छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) **परित्यक्तम्**– परि+ √त्यज्+क्त, त्यागा हुआ।

संस्कृत व्याख्या– **यावत्कालपर्यन्तं अयं दुष्टः कर्णः शत्रुशरैः मृत्युं न प्राप्नुयात्, तावत् मया अश्वत्थाम्ना एतत् मम प्रियम् अस्त्रं संग्रामभूमौ परित्यक्तम्। अस्य कर्णस्य सेनायाः प्रमुखे सति, अतीवक्रुद्धौ यौ भीमार्जुनौ ताभ्यां भयम्, तस्मिन् उपस्थिते राजा दुर्योधनः स्व प्रियस्य कर्णस्य बलं शक्तिं धनुर्वेदसामर्थ्यं वा जानातु।**

(46) 'चन्द्रिका' धृतायुधेति– अश्वत्थामा द्वारा अस्त्र त्यागने की घोषणा के बाद, उसे सम्बोधित करके कर्ण कहता है कि–

अरे मूर्ख! जब तक मैंने शस्त्र को धारण किया हुआ है, तब तक दूसरे किसी के भी द्वारा शस्त्र को धारण करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि जो कार्य मेरे शस्त्रों द्वारा नहीं किया जा सकता है, तो उसे कोई दूसरा भी सिद्ध नहीं कर सकता है।

विशेष–(i) कर्ण की गर्वोक्ति का सुन्दर प्रयोग किया गया है, जिससे उसकी चारित्रिक विशेषता प्रदर्शित हुई है।

(ii) प्रस्तुत श्लोक में अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **सेत्स्यति**– √सिध्+लृट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– **अहं कर्णः यावत्कालपर्यन्तम् आयुधं धृतवान् अस्मि, तावत्कालपर्यन्तं अन्यैः धृतैः आयुधैः किमपि प्रयोजनं नास्ति, अथवा मम अस्त्रेण यत् कार्यं न क्रियते, तत् नैव अन्येन केनापि शस्त्रेण सिद्धं भवितुं शक्यते, इति मम घोषणास्ति।**

(47) 'चन्द्रिका' कृष्टेति– इसी अवसर पर नेपथ्य से दुःशासन के वक्षःस्थल को विदीर्ण करके, उसका रक्त पीने के लिए, भीम द्वारा पकड़ लिए जाने की सूचना इसप्रकार प्राप्त होती है–

मनुष्यरूपी पशु, जिसने पांचालपुत्री द्रौपदी के केशों को खींचा था तथा अनेक राजाओं और गुरुओं के सामने ही, जिसने इसकी साड़ी को भी खींचा था, जिसके वक्षःस्थल के खून को पीने की मैंने उसी समय प्रतिज्ञा की थी, वही दुष्ट दुःशासन आज मेरी भुजाओं रूपी पिंजरे में फँस गया है, हे कौरवों! यदि आपमें शक्ति है, तो आकर इस समय इसकी रक्षा करो।

विशेष–(i) नेपथ्य से आने वाला यह स्वर वस्तुतः भीम का प्रयुक्त हुआ है, जिसने मरते हुए दुःशासन की रक्षा के लिए कौरवों को ललकारा है। भीम का चरित्र उद्घाटित हुआ है।

(ii) शार्दूलविक्रीड़ित छन्द व रूपकालंकार का प्रयोग हुआ है।

(iii) भीम की गर्वोक्ति से वीररस का परिपाक हुआ है।

व्या.टि.–(i) **कृष्टा–** √कृष्+क्त, टाप्, खींची गयी।

संस्कृत व्याख्या– येन मनुजपशुना परस्त्रीघर्षणं पशुतुल्यमिति, दुःशासनेन पांचालराजपुत्रीद्रौपदी केशैः आकृष्टाः, येन च अस्याः खलु परिहितम् अपि वस्त्रं भीष्मप्रभृतीनां समक्षे आकृष्टम्। यस्य च दुःशासनस्य वक्षःरुधिरपानस्य तदानीं मया प्रतिज्ञा कृताऽऽसीत्। सोऽयं दुःशासनः अस्मिन् समये पंजरतुल्ये मम बाहुबन्धने प्राप्तः, हे कौरवाः! यूयम् अस्य रक्षां कुरुथ।

(48) 'चन्द्रिका' सत्यादिति– भीम द्वारा दुःशासन को पकड़ लेने और उसके वक्षःस्थल का रक्त पी लेने पर अश्वत्थामा कहता है कि–

हे मामा! आप जरा मुझे मेरा शस्त्र प्रदान कीजिए। हाय, शस्त्र परित्यागरूप सत्य से तो झूठ ही अच्छा है, सत्य बोलने से प्राप्त होने वाले स्वर्ग को धिक्कार है, अब तो भले ही मुझे नरक की ही प्राप्ति क्यों न हो जावे, भीम को दुःशासन से बचाने के लिए मेरे द्वारा छोड़ा गया आयुध वस्तुतः छोड़े हुए के समान नहीं मानना चाहिए। ऐसा कहकर अश्वत्थामा अपना खड्ग को लेने के लिए दौड़ता है।

विशेष–(i) अश्वत्थामा की भीम से दुःशासन को बचाने की व्याकुलता की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

(ii) पथ्यावक्त्र छन्द एवं सरल भाषा का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) **अस्तु**– √अस्+लोट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(ii) **त्रातुम्**– √त्रै+तुमुन्, रक्षा करने के लिए।

संस्कृत व्याख्या–शस्त्रपरित्यागप्रतिज्ञारूपसत्यव्रतात् शस्त्रग्रहणरूपासत्यं श्रेष्यकरं विद्यते, सत्यरक्षणजन्यं स्वर्गं धिक्। मम कृते तु सत्यप्रतिज्ञाभंगजन्यनरकम् एव भवतु, नैव कापि चिन्ताऽस्ति। सम्प्रति तु दुःशासनस्य भीमात् रक्षणम् आवश्यकम्। अतः मया पूर्वं शस्त्रपरित्यक्तमपि अपरित्यक्तमेव मन्तव्यम्, इति। इदानीम् अहमस्त्रं धारयामि।

(49) 'चन्द्रिका' दुःशासनेति– भीम द्वारा दुःशासन के वक्षःस्थल का रक्तपान कर लेने पर, अश्वत्थामा पश्चात्ताप करते हुए कहता है कि–

इस समय दुःशासन का रक्त भीम द्वारा पी लिए जाने पर भी मैं कुछ नहीं कर सका और उदासीन ही बना रहा, तो अब मैं युद्ध में दुर्योधन का क्या उपकार कर सकता हूँ अर्थात् कोई नहीं।

विशेष–(i) अश्वत्थामा का गहन पश्चात्ताप अभिव्यक्त हुआ है।

(ii) अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग भी दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **कर्ता**– √कृ+तृच्। **अस्मि**– √अस्+लट्,उ.पु.,ए.व.।

संस्कृत व्याख्या– सम्प्रति दुःशासनस्य रुधिरे पीयमानेऽपि भीमेन, इति मया औदासिन्यम् अवलम्बितं न किमपि प्रतिकारं कृतमिति। तदा युद्धभूमौ अहं दुःशासनस्य रक्षणात् अपरं किं नु प्रीतिकरं कर्म दुर्योधनस्य कर्तुं शक्नोमि? नैव किमपि इत्यर्थः।

•••

'चन्द्रिका' हिन्दी व्याख्या, संस्कृत व्याख्या,

चतुर्थ अङ्क

(1) **'चन्द्रिका' राज्ञ इति**– दुःशासन के वक्षःस्थल के रक्त का पान करके अपने शरीर पर उसके खून को लपेटे हुए, भयंकररूप में नेपथ्य से भीम का स्वर सुनायी देता है, जो कहता है कि–

आज मैंने धनुर्धारी और अहंकार के धनी राजा दुर्योधन के सामने, कौरवों के पक्षपाती कर्ण और राजा शल्य के देखते हुए ही, द्रौपदी के केश एवं वस्त्र को खींचने वाले, जीवित दुःशासन की छाती को अपने तीखे नाखूनों से चीरकर, उसके गरम–गरम रक्त का पान किया है। इसप्रकार दुःशासन की रक्तपान सम्बन्धी मेरी पहली प्रतिज्ञा पूरी हो गयी हैं।

विशेष–(i) संतुष्ट भीमसेन का भयंकर रूप प्रदर्शित हुआ।

(ii) परिकरालंकार व शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का प्रयोग हुआ है।

(iii) बीभत्स रस का पूर्ण परिपाक भी दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **मानधनी**– मानमेव धनं यस्य तस्य, दुर्योधनस्य।

संस्कृत व्याख्या– अभिमानिनः धनुर्भृतः राज्ञः दुर्योधनस्य पुरतः एव तथा कौरवसुहृदः समक्षं कर्णस्य मद्रराजशल्यस्य च पश्यतः, द्रौपदीकेशवसनाकर्षिणः तस्य दुःशासनस्य प्राणान् अपरित्यजतः एव मया अद्य निशितैः नखैः विदारितात् वक्षसः मन्दोष्णं रक्तं पीतमिति।

(2) **'चन्द्रिका' दत्त्वा इति**– नेपथ्य में कही गयी भीम की उक्ति को सुनकर दुर्योधन का सारथि प्रवेश करके कहता है कि–

हाय, अत्यधिक कष्ट है, सिन्धुराज जयद्रथ को अभयदान प्रदान करके भी द्रोणाचार्य ने अर्जुन से उन्हें नहीं बचाया और आज मृग के समान सरलतापूर्वक मारकर दुःशासन में भी भीमसेन ने अत्यन्त

क्रूर कर्म कर दिया है। इसप्रकार शत्रुओं की अत्यन्त कठिन प्रतिज्ञा को भी सहजरूप में पूरा कराकर, कौरवकुल से विमुख हुआ, भाग्य प्रतीत होता है, इसप्रकार अनिष्ट करके भी कृतकृत्य नहीं हुआ है अर्थात् अभी और भी अधिक अनर्थ होने वाला है।

विशेष–(i) महाकवि का भाग्यवादी दृष्टिकोण प्रदर्शित हुआ है।

(ii) जयद्रथ वध तथा दुःशासन के वक्षःस्थल का खून पीना, इन दोनों प्रतिज्ञाओं को यहाँ अत्यधिक कठिन बताया गया है।

(iii) उत्प्रेक्षालंकार व स्रग्धरा छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **पूरयित्वा**– √पूर्+णिच्+क्त्वा, पूरी करके।

(ii) **मन्ये**– √मन्+लट्, आत्मने,उत्तमपुरुष, एकवचन, मानता हूँ।

संस्कृत व्याख्या– अर्जुनात् अभयदानं दत्वापि द्रोणाचार्येण, जयद्रथः न संरक्षितः भीमसेनात्, हरिणे इव अस्मिन् दुःशासने क्रूरं कर्म कृतम् आसीत् अर्जुनेन, रणभुवि दुर्योधनादिसमस्तशत्रूणां पुरतः खलु अतीवकठिनामपि प्रतिज्ञां लघुमिव पूरयित्वा कुरुकुलपराङ्मुखं विधिम् एतावता पूर्णमनोरथं न मन्येऽहं, न सम्भावयामि, इत्यर्थः।

(3) 'चन्द्रिका' मदकलितेति– रथ में बेहोश पड़े हुए दुर्योधन को देखकर, उसका सारथि लम्बा श्वास लेकर कहता है कि–

मदमस्त हाथी के समान, भीमसेन ने कौरवकुलरूपी वन के कुमाररूपी सभी वृक्षों को उखाड़कर फैंक दिया है। अब तो एकमात्र शाल वृक्ष के समान केवल महाराज दुर्योधन ही जीवित हैं।

विशेष–(i) भीम की मदमस्त हाथी से, कौरवकुल की वन से दुर्योधन के भाइयों की वृक्षों से, दुर्योधन की शाल वृक्ष से उपमा दी गयी है। अतः पूर्णोपमालंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(ii) दुर्योधन के सभी भाइयों के मरने की सूचना दी गयी है।

(iii) पुष्पिताग्रा छन्द का प्रयोग भी कमनीय बन पड़ा है।

(iv) श्लोक के अन्तिम चरण में दैव की प्रतिकूल दृष्टि पड़ने से, दुर्योधन की भावी मृत्यु की अभिव्यंजना भी हो रही है।

व्या.टि.–(i) **विलोकितः**– वि+ √लोक्+क्त, देखा गया।

संस्कृत व्याख्या– **मदेन युक्तः यः करिशावकः भीमरूपः इत्यर्थः, तेन विनाश्यमाने सर्वे वनवृक्षाः, इति स्पष्टः एकलः शालवृक्षः इव दुर्योधनरूपः शेषो यत्र तस्मिन्, अस्मिन् कौरवाणां वंशे त्वपि प्रतिकूल–दैवस्य कटाक्षैः निरीक्षितः।**

(4) 'चन्द्रिका' अक्षतस्येति– आकाश की ओर दृष्टिपात करके दुर्योधन का सारथि फिर से कहता है कि–

हे भरतकुल के विमुख, हतभाग्य! ऐसा प्रतीत होता है कि गदा हाथ में लिए हुए, जिसके शरीर पर एक भी घाव नहीं हुआ है, ऐसे भीम द्वारा तुम, इस दुर्योधन की जँघा को विदीर्ण करने सम्बन्धी उसकी दूसरी प्रतिज्ञा को भी अब शीघ्र ही पूरा करने वाले हो।

विशेष– (i) सूत के मुख से शीघ्र ही दुर्योधन की भावी मृत्यु की सूचना दी गयी है।

(ii) सरल भाषा के साथ पथ्यावक्त्र छन्द प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) **पूर्यते–** √पूर्+लट्,आत्मने, प्रथमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– **अक्षतस्य अर्थात् शस्त्रप्रहारजन्यव्रणादिकम् अप्राप्तस्य, गदाहस्तस्य, जीवनसंशयम् अप्राप्तस्य, गदायुद्धे दुर्योधनस्य नैपुण्यात् भीमस्य जीवने संशयोऽवश्यमेव आसीत्, किन्तु इदानीं तु भीमसेनस्य दुर्योधनोरुभंगरूपा अपि अपरा प्रतिज्ञा हतविधिना भवता पूर्यते।**

(5) 'चन्द्रिका' बालस्येति– मूर्च्छा से उठकर दुर्योधन रथ को युद्धभूमि में ले जाने के लिए अपने सारथि से कहता है, किन्तु सारथि द्वारा रथ के इस योग्य न होने के विषय में कहने पर, दुर्योधन उससे कहता है कि–

स्वभाव से ही चंचल मेरे पुत्र के समान, छोटे भाई दुःशासन का पापी गदाधारी वह भीम मेरे सामने ही अनर्थ कर देता है अर्थात् उसे मार देता है और इसका प्रतिकार करने वाले मुझे तू इस समय रोक रहा है? अरे! ऐसा कुकृत्य करने वाले भीम पर तुझे क्रोध नहीं आ रहा है और इतनी दर्दनाक मृत्यु को प्राप्त करने वाले, दुःशासन पर तुझे दया नहीं आ रही है? तथा स्वयं पर लज्जा नहीं आती है?

विशेष–(i) दुर्योधन की निरीह स्थिति अभिव्यक्त हुई है।

(ii) वसन्ततिलका छन्द का कमनीय प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) **व्यवस्यति**– वि+अव+ √अस्+लट्, प्र.पु., ए.वचन।

(ii) **निवारयसि**– नि+ √वार्+णिच्+लट्, मध्यमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– **असौ पापी भीमसेनः उत्त्थापितम् आयुधं येनासौ प्रत्यक्षं बालस्य अतएव स्वभावेणैव दुःखेन लालितस्य, पापं उरोविदारणरूपं करोति, एतस्मिन् विषये प्रतीकारे कृतोद्यमं मां किं त्वं निरुणत्सि? स्वामिनः अनुजः हतः इति, क्रोधः। बालोऽयमुरोविदारं हन्यते, इति करुणा तथा भ्रातृवधप्रतीकारपरस्य मम निषेधात् लज्जा च इति कथं न प्रादुर्भवन्ति ते, इत्यभिप्रायः।**

(6) 'चन्द्रिका' युक्त इति– दुःशासन के वध के विषय में स्मरण करके बार–बार मूर्च्छित होकर उठा हुआ, दुर्योधन कहता है कि–

हे दुःशासन! मैंने तो तुझे कभी भोग–विलास करने का अवसर तक प्रदान नहीं किया, तेरा भलीप्रकार लालन–पालन भी नहीं कर सका और मैं व्यर्थ ही तेरा बड़ा भाई बना रहा, हे वत्स! तेरी इस अकस्मात् ही उपस्थित हुई विपत्ति का कारण भी तो वस्तुतः मैं ही था, जिसने तुझे पाण्डवों के विरोध में द्रौपदी के केशाकर्षण आदि कार्य को कराने की आज्ञा प्रदान तो कर दी, किन्तु आज मैं तेरी रक्षा करने में पूरी तरह असमर्थ रहा।

विशेष–(i) दुःशासन के निर्ममतापूर्वक मारे जाने पर, दुर्योधन का घोर पश्चात्ताप अभिव्यक्त हुआ है।

(ii) भाषा की सरलता एवं वसन्ततिलका छन्द प्रयुक्त हुआ है।

व्या.टि.–(i) **युक्तः**– √युज+क्त, **अस्तु**– √अस्+लोट्, प्र.पु.,ए.व।

संस्कृत व्याख्या– **दुर्योधनः कथयति यत्– मिथ्याभूत–ज्येष्ठभ्रात्रा मया चिन्तितः, यथेच्छं लौकिकपरमसुखदविलासभोगादिषु नैव नियोजितः, नैव च सम्यक्रूपेण पालितः। हे वत्स! अस्याः भीम–कृतवक्षःस्थलविदारणरूपायाः तव विपत्तेः तु अहमेव कारणमस्मि। यतोहि मया खलु द्रौपद्याः केशकर्षणादिरूपं पाण्डवानाम् अपकारं कारयित्वा अपि न रक्षितोऽसि।**

(7) **'चन्द्रिका' रक्षणीयेनेति**– मूर्च्छा से उठने के बाद, अपने सारथि को धिक्कारते हुए दुर्योधन कहता है कि–

हे सूत! तुमने यह क्या किया? क्योंकि मेरी आज्ञा का पालन करने वाले, हमेशा रक्षा करने योग्य, भाई दुःशासन के प्राणों की बलि देकर तुमने मेरी रक्षा की है। यह वस्तुतः तुमने बहुत ही अनुचित किया है अर्थात् मुझे भी वहीं पर भीम से युद्ध करते हुए, अपने प्राणों की बलि दे देनी चाहिए थी।

विशेष–(i) दुर्योधन की आन्तरिक पीड़ा अभिव्यक्त हुई है।

(ii) काव्यलिंग अलंकार एवं अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) **आज्ञानुवर्तिना**– आज्ञाम् अनुवर्तते यः तेन।

(ii) **रक्षितः**– √रक्ष्+क्त। **रक्षणीयेन**– √रक्ष्+अनीयर, तृ.वि.,ए.व।

संस्कृत व्याख्या– **निरन्तरं अनुजत्वात् रक्षार्हेण आज्ञापालकेन, बालेन उपहारभूतेन भ्रात्रा दुःशासनेन, अहं रक्षितोऽस्मि। एतत् त्वया सर्वथाऽनुचितं विहितम्, इति।**

(8) **'चन्द्रिका' तस्यैवेति**– दुर्योधन अपने रथ को युद्धभूमि से निकाल लाने के लिए भर्त्सना करते हुए, अपने सारथि से कहता है कि–

उस समय मेरे भाई के शत्रु उस पाण्डवरूपी पशु भीम की गदा के आघातों से मेरी मूर्च्छा दूर क्यों नहीं हुई? यह अत्यन्त दुःख की बात है या फिर दुःशासन के रक्त से भीगे हुए, उसकी मृत्यु–शय्या पर ही मुझे या फिर भीम को क्यों नहीं सुला दिया गया?

विशेष–(i) युद्धभूमि से रथ को लाने की दुर्योधन की महती पीड़ा को सुन्दर अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है।

(ii) दुर्योधन का अपने छोटे भाई दुःशासन के प्रति असीम एवं गहन–प्रेम अभिव्यक्त हुआ है।

(iii) वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग हुआ है

व्या.टि.–(i) **अधिशयितः**– अधि+ √शी+णिच्+क्त, सुला दिया।

(ii) **विबोधितः**– वि+ √बुध्+क्त, जगाया गया ।

संस्कृत व्याख्या– **तस्यैव प्रसिद्धस्य मे अनुजशत्रोः, पाण्डवा-धमस्य भीमस्य, गदारूपवज्रकृतैः निष्पेषैः यस्मात् न विबोधितोऽस्मि, रणभूमितः अपवाहनात् हेतोः गदाप्रहारैः चैतन्यं न प्रापितोऽस्मि। दुःशासनसम्बन्धिनीं रुधिरार्द्रशय्यां अहं भीमः वा शीघ्रं नाधिशयितः।**

(9) 'चन्द्रिका' अपिनामेति– दुःशासन के वियोग में विलाप करते हुए, दुर्योधन आकाश की ओर देखकर, दैव को सम्बोधित करते हुए कहता है कि–

हे विधाता! यदि तुझे मेरा मारा जाना ही अभीष्ट है, तो मेरे ऊपर एक उपकार अवश्य करना कि मुझे भीम के हाथों नहीं मरवाना। दुर्योधन के इन वचनों को सुनकर सूत द्वारा 'पाप शान्त हो' ऐसा कहने पर, फिर से दुर्योधन कहता है कि–

अपने सभी भाई और मित्रों को युद्ध में मरवाने के बाद, अब राज्य को प्राप्त करने या विजय प्राप्त करने से भी क्या लाभ है?

विशेष–(i) दुर्योधन का घोर नैराश्य अभिव्यक्त हुआ है।

(ii) प्रस्तुत श्लोक वार्तालाप के रूप में प्रयोग किया गया है।

व्या.टि.–(i) **भवेत्**– √भू+विधिलिंग, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(ii) **हन्ता**–√हन्+तृच्, प्रथमा विभक्ति, एकवचन, मारने वाला।

संस्कृत व्याख्या– **हे दैव! यदि मम नाम इति सम्भावनायां मृत्युः अपि भवेत् तर्हि मम हन्ता भीमः न स्यात्, अन्यः कोऽपि भवेत् इति प्रार्थयेऽहम्, सूतः– कथमेवं कथ्यतेऽशुभम् महाराजेन। तदैव पुनः दुर्योधनः कथयति– नाशिताः सकलाः बन्धवः येन तथाभूतस्य मे राज्येन जयेन वा किं प्रयोजनम्? व्यर्थमेव एतत् सर्वमिति भावः।**

(10) 'चन्द्रिका' पर्याप्तेति– इसके बाद कर्ण का सारथि **सुन्दरक** आकर कर्ण के पुत्र **वृषसेन** द्वारा अर्जुन के साथ युद्ध की सूचना विस्तारपूर्वक देते हुए, उसकी मृत्यु का समाचार दुर्योधन को देता है तो इसे सुनकर दुर्योधन करुणापूर्वक कहता है कि–

बड़े–बड़े नेत्रों वाले, अभी–अभी उदित हुए चन्द्रमा के समान कान्ति से सम्पन्न, नए–नए यौवन की अलौकिक शोभा से युक्त, प्राप्त

के निकलने के समय की पीड़ा से विकृत हुआ, जिसकी आँखें पलट गयी हैं, तुम्हारा कमलरूपी मुख भला कर्ण द्वारा कैसे देखा गया होगा।

विशेष–(i) पुत्र की मृत्यु से दुर्योधन की कर्ण के प्रति चिन्ता अभिव्यक्त हुई है, जिससे उसका मृदुल चरित्र भी उद्घाटित हुआ है।

(ii) करुणरस का पूर्णपरिपाक, उपमालंकार का सौन्दर्य एवं वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) प्राणानाम् अपहारेण विपरीता दृष्टिः यत्र तत्।

(ii) उद्गच्छत् नूतनं यौवनं तेन रम्या शोभा यस्मिन् तम्।

संस्कृत व्याख्या–यथेष्टं दीर्घे कर्णपर्यन्तनेत्रे यस्य तथाभूतं तं वृषसेनं, सद्यः एव प्रादुर्भूतः यश्चन्द्रः सः इव मनोरमम्, उद्गच्छत् यत् नवं यौवनं तेन रम्यणीया शोभा यस्य तादृशम्, तव पूर्वानुभूतं आननमेव मुखकमलं प्राणानाम् अपहारेण परिवर्तिते दृष्टी, यत्र तत् तथाभूतं कर्णेन कथं दृष्टम्।

(11) 'चन्द्रिका' प्रत्यक्षमेति– वृषसेन की मृत्यु से दुःखी दुर्योधन विलाप करते हुए, दुःख के साथ अपने सारथि से कहता है कि–

इस संसार में दुःखों के भागी भी पुण्यवान् लोग ही होते हैं, मेरा हृदय तो आँखों के सामने ही बन्धुओं के मारे जाने से उत्पन्न होने वाले, पराभवरूप दुःख की अग्नि से अत्यधिक जल रहा है, फिर उसमें उत्पन्न होने दूसरे प्रकार के दुःख और पीड़ा की तो बात ही क्या है?

विशेष–(i) पहले से ही भाइयों की मृत्यु से होने वाली पराजय के कारण पीड़ित, दुर्योधन की असह्य वेदना अभिव्यक्त हुई है।

(ii) रूपकालंकार एवं पथ्यावक्त्र छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) **दह्यते**– √दह्+लट्, आत्मने, प्रथमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– अक्ष्णो समीपे शत्रुभिर्हतस्वजनानां अस्माकं एतत् हृदयं पराभवः एव अग्निः तेन अत्यधिकं भस्मीभवति, कुतः दुःखं? कुतः व्यथा?।

(12) 'चन्द्रिका' अस्त्रग्रामेति– समरभूमि से सुन्दरक द्वारा भेजे गए, खून से लिखे कर्ण के पत्र को दुर्योधन स्वयं पढ़ता है, जिसमें उसने अपने हृदय के उद्गारों को इसप्रकार लिखा हुआ था कि–

यह कर्ण अस्त्रों के प्रयोग में अत्यधिक कुशल है, युद्ध में इसकी बराबरी का कोई दूसरा योद्धा नहीं है। मुझे यह अपने भाइयों से भी अधिक प्रिय है। निश्चय ही, यह पाण्डवों पर विजय प्राप्त कर लेगा, इत्यादि प्रकार से चिन्तन करते हुए, आपने मुझे अत्यन्त सम्मान प्रदान किया, किन्तु दुःख है कि मैं दुःशासन के शत्रु पर विजय प्राप्त नहीं कर सका। इसलिए अब आप स्वयं ही अपनी भुजाओं के बल से या फिर रोते हुए इस भारी दुःख का प्रतिकार कीजिए।

विशेष– (i) कर्ण का चरित्र एवं उसकी गहन वेदना प्रदर्शित हुई है।

(ii) शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का प्रयोग भी दर्शनीय है।

(iii) साथ ही, कर्ण के प्रति दुर्योधन के चिन्तन का भी सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है।

(iv) महाकवि की गौडी शैली दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **एहि**–प्राप्नुहि, √इण् गतौ+लोट्, मध्यमपुरुष, ए.व.।

संस्कृत व्याख्या– अयं कर्णः अस्त्राणां प्रयोगे अतीवनिपुणोऽस्ति, युद्धे च कोऽपि जनोऽस्य तुल्यतां न विधत्ते, भ्रातृभ्योऽपि एषः मे प्रियतरोऽस्ति, अयमेव पृथापुत्राणां जेता भविष्यति अवश्यमेव, अनेन प्रकारेण चिन्तयित्वा बहुशोऽहं सम्मानितः भवद्भिः, किन्तु अहं दुःशासनस्य शत्रूणां पराभवं कर्तुं न समर्थोऽभवम्। अतएव भवान् खलु स्वभुजयोः वीर्येण बाष्पेण वा अस्य दुःखस्य प्रतिकारं करोतु किल।

(13) 'चन्द्रिका' हत्वेति– कर्ण के प्राण–त्याग विषयक विचार से सहमति व्यक्त करते हुए, दुर्योधन कहता है कि–

स्वजनों की मृत्यु के कारण, अत्यधिक दुःखी हुए, हम दोनों बहुत देर तक परस्पर अन्तिम प्रगाढ़ आलिंगनपूर्वक कृतकृत्य होकर इस अधम शरीर का एक साथ परित्याग तो अवश्य करेंगे, किन्तु इससे पूर्व हमें युधिष्ठिरादि पाण्डवों का वध भी करना है और मृत्यु को प्राप्त हुए अपने बन्धु–बान्धवों को जलांजलि देनी है एवं युद्ध से बचे हुए कुछ मन्त्रियों तथा शत्रुपक्ष के कुछ ही लोगों के साथ बैठकर रोते हुए अपने शोक की अभिव्यक्ति भी करनी है। इसलिए तुम अभी अपने

शरीर का त्याग करने का निर्णय छोड़ दो अर्थात् शत्रु से प्रतिकार लिए बिना अभी प्राणत्याग उचित नहीं है।

विशेष–(i) युद्ध में दयनीय स्थिति होते हुए भी सामाजिक दायित्वों के प्रति दुर्योधन की जागरुकता एवं स्वाभिमान के साथ–साथ अहंकार व नैराश्यभाव भी प्रदर्शित हुआ है।

(ii) प्रस्तुत श्लोक में मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **हत्वा**–√हन्+क्त्वा। **मुक्त्वा**– मुच्+क्त्वा।

(ii) **दत्वा**–√दा+क्त्वा। **कृत्वा**– कृ+क्त्वा।

(iii) **संत्यक्ष्यावः**– सम्+√त्यज्+लृट्, उत्तम पुरुष, द्विवचन।

संस्कृत व्याख्या– **युधिष्ठिरादीन् हत्वा, युद्धे मृतबन्धुभ्यः अमंगलं सलिलं दत्वा, जलेन तर्पयित्वेति, हतावशिष्टैः द्वित्रैः मन्त्रिभिः तथाभूतैः अरिभिश्च सह बाष्पं मुक्त्वा, परस्परं सुचिरं कालं यावत्, प्रगाढालिंगनं कृत्वा, हतबान्धवशोकेन सन्तप्तहृदयौ पार्थादिनां हननरूपतत्प्रतीकारेण च तृप्तौ इमं निन्द्यशरीरं अवश्यमेव सहैव परित्यक्ष्यावः।**

(14) 'चन्द्रिका' वृषसेन इति– इसी क्रम में दुर्योधन शोकग्रस्त कर्ण के प्रति सुन्दरक से कहता है कि–

हे कर्ण! आज न तो तुम्हारा पुत्र वृषसेन जीवित है और न ही मेरा भाई दुःशासन ही विद्यमान है। इसलिए इनकी मृत्यु से दुःखी मैं तुम्हें धैर्य बँधाता हूँ और तुम मुझे धैर्य बँधाओ, क्योंकि हम दोनों के दुःख तो वस्तुतः समान ही हैं।

विशेष–(i) दुर्योधन की भयंकर आन्तरिक पीड़ा व्यक्त हुई है।

(ii) प्रस्तुत श्लोक में अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **बोधयामि**– बुध्+णिच्, लट्, उत्तमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– **वृषसेनाभिधः ते पुत्रः सम्प्रति नास्ति, मे अनुजः दुःशासनोऽपि जीवितं नास्ति अधुना, अतएव स्वभ्रातृवधदुःखी अहं त्वां कथं सान्त्वयामि इति? उभौ संतप्तौ परस्परं सान्त्वनां ददावः, इति।**

(15) 'चन्द्रिका' अद्यैवेति– तभी माता–पिता के आगमन पर सूत द्वारा उन्हें सान्त्वना देने के लिए कहने पर अत्यन्त दुःखी और लज्जा के साथ दुर्योधन कहता है कि–

जिसका भाग्य ही विपरीत हो, ऐसा मैं भला इन्हें धीरज कैसे बँधाऊँ। तुम्ही देखो, दुःशासन और मैंने आज ही तो एक साथ माता पिता के दर्शन किए थे और उन्होंने भी प्रणाम करते हुए मेरे और दुःशासन के माथे का चुम्बन किया था। उसके बाद ही हम दोनों का युद्धभूमि में आगमन हुआ था। अब जबकि मेरे अनुज दुःशासन की शत्रु द्वारा ऐसी स्थिति कर देने पर अर्थात् उसे क्रूरतापूर्वक मार डालने पर मैं निर्लज्ज माता–पिता के पास जाकर, भला क्या कहूँगा? क्योंकि इस सबका कारण होते हुए भी मैं उसकी रक्षा के लिए कुछ भी नहीं कर सका हूँ।

विशेष–(i) दुर्योधन की मनःस्थिति का सुन्दर चित्रण हुआ है।

(ii) भावों के अनुसार सरलभाषा व मन्दाक्रान्ता छन्द का सुन्दर प्रयोग दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **अद्यैव**– अद्य+एव, वृद्धिरेचि सूत्र के अद्य के द्य में प्रयुक्त अ तथा एव के ए को अ+ए वृद्धि आदेश, वृद्धि सन्धि।

(ii) **दृष्ट्वा**– √दृश्+क्त्वा, देखकर।

(iii) **गत्वा**– गम्+क्त्वा, जाकर।

संस्कृत व्याख्या– आवां दुर्योधनदुःशासनौ पितरं मातरं च अवलोक्य, तयोः दर्शनं विधाय इति, अस्मिन्नेव दिने रणं गतवन्तौ, नम्रोऽहं दुःशासनः च स्वपितृभ्यां शिरसि आघ्रातौ, वात्सल्यभावादिति, रणात् कुशलपूर्वकं प्रत्यावर्ततु, इति भावात् खलु। तस्मिन् दुःशासने शत्रुणा भीमेन बलपूर्वकं तां शोणितपानार्थं वक्षोविदारणरूपाम्, एतादृशीम् कारुणिकीम् अवस्थां प्रापिते सति, निर्गता लज्जा यस्मात् सः तथाभूतोऽहं पित्रोः समीपं गत्वा किं कथयिष्यामि, इति?

'चन्द्रिका' हिन्दी व्याख्या, संस्कृत व्याख्या

पंचम अङ्क

इस अंक में प्रमुखरूप से धृतराष्ट्र, गान्धारी का दुर्योधन के साथ वार्तालाप, कर्ण की मृत्यु की सूचना तथा अश्वत्थामा विरति प्रमुख विषय रहे हैं। इस अंक में कुल बयालीस श्लोकों का प्रयोग हुआ है।

(1) 'चन्द्रिका' शल्यानीति– वटवृक्ष के नीचे स्थित दुर्योधन के पास धृतराष्ट्र और गान्धारी, संजय के साथ आते हैं और धृतराष्ट्र अपने एकमात्र जीवितपुत्र दुर्योधन से उसकी पीड़ा के विषय में पूछते हैं कि–

शरीर में घुसे हुए बाणों को निकालने वाले, यन्त्रों (कंक) द्वारा बाणों को निकालकर, कवच को शरीर से उतारकर, शस्त्रप्रहार से उत्पन्न घावों पर मलहम–पट्टी आदि करने पर, अपने मित्र कर्ण पर विश्वास रखने वाले और शत्रुओं को जीतकर आए हुए, राजाओं को अत्यन्त प्रेमपूर्ण दृष्टि से देखने वाले तुझसे, मुझ पापी ने यह भी नहीं पूछा कि– हे पुत्र! शस्त्रों के प्रहार से उत्पन्न होने वाली, पीड़ा सहन करने योग्य तो है?

विशेष–(i) धृतराष्ट्र का गहन पुत्रप्रेम एवं आन्तरिक पीड़ा की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

(ii) शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का प्रयोग भी दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **व्यपनीय**– वि+अप+अनीयर्। **पृष्टः**– √पृच्छ्+क्त।

संस्कृत व्याख्या–कंको नाम गृध्रभेदः तन्मुखसदृशाग्रैः शल्योद्धरणयन्त्रविशेषैः शरीरन्तः प्रविष्टानि सायकफलकानि उद्धृत्य, कवचे शरीरात् अपसारिते सति, शस्त्रप्रहारजनितानां व्रणानां शोषणार्थं औषध–उपलिप्तेषु सम्यक्रूपेण आबद्धेषु सत्सु मन्दं यथास्यात् तथा, कर्णे तन्नामके वीरे कृतः अपाश्रयो येन सः तथाभूतः, निर्जितं पराजितं शात्रवं

यैः तान्, राज्ञः दूरात् खलु लीलयाऽवलोकयन् हे पुत्रक! तव वेदना **सह्या न वा, इति कुशलप्रश्नमात्रम् अपि पापेन** शत्रुकृतपुत्रनाशात् **अधमभाग्येन मया भवान् न पृष्टः, नाऽऽभाषितः, इत्यर्थः।**

(2) 'चन्द्रिका' पापेति– सम्पूर्ण विनाश का कारण स्वयं को मानते हुए, दुर्योधन अपनी माता को सम्बोधित करके कहता है कि–

हे माता! अपने सभी भाइयों के विनाश को देखता हुआ भी मैं उसका प्रतिकार न कर सका, इसलिए मैं ही सबसे बड़ा पापी हूँ। इतना ही नहीं, मैं ही आपके तथा पिताजी के इन अश्रुओं के बहने का कारण भी हूँ। आपके इस निर्मल भरत नामक वंश में उत्पन्न हुए, पुत्रों का नाश करने वाले, मुझे आप अपना पुत्र क्यों मान रही हैं?

विशेष–(i) महाभारत युद्ध तथा उसमें बन्धुबान्धवों के विनाश के लिए दुर्योधन द्वारा स्वयं को कारण स्वीकार किया गया है।

(ii) सरल भाषा एवं वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) **अवैषि–** अव+√इष्+लट्, मध्यमपुरुष, एकवचन।

(ii) अप्रतिकारविषयीकृतः यः लघुभ्रातॄणां नाशः तस्य दर्शकः।

संस्कृत व्याख्या– हे मातः! शत्रुविनाशाऽकरणेनाविहितप्रतीकारः यः अनुजानां भ्रातॄणां नाशः तं विलोकयति, इति तथाविधः। पापभाक् **अहं दुर्योधनः पितुः तव च दुःखाश्रुजलानां कारणम् अस्मि।** निष्कलंके **ऽस्मिन् भरतनामराजर्षिवंशे अयशोभाजनम् अहं युवयोः सुतक्षयकरं** ईदृशं **तं मां दुर्योधनं 'पुत्रः' इति किमर्थं मन्यसे?**

(3) 'चन्द्रिका' मातः, इति– माता गान्धारी द्वारा अत्यन्त दीन हीन वचन कहने पर दुर्योधन उनसे कहता है कि–

हे माते! इसप्रकार दीनवचन कहना, आपके लिए लेशमात्र भी उचित नहीं है, क्योंकि कहाँ तो उच्च क्षत्रियकुल में उत्पन्न हुई आप वीर पत्नी और कहाँ इसप्रकार की दीनता का प्रदर्शन करना? हे कठोर हृदय वाली! आपको उन अपने सौ पुत्रों के मरने की तो चिन्ता नहीं है और इस अयोग्य मेरी चिन्ता कर रही हो? यह तो समीचीन नहीं है।

विशेष–(i) अपने सौ भाइयों के मरने से दुर्योधन के दुःख की सुन्दर अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है।

(ii) सरल भाषा व वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) अनुचिन्तयसि– अनु+√चिन्त्+लट्, म.पु., ए.वचन।

(ii) रक्षसि– √रक्ष्+ लट्, मध्यमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– हे मातः! तव अयोग्यं अविचारितं दीनं वचः वर्तते, इति। महाकुलप्रसूता क्षत्रियपत्नी भवती क्व? एषा प्रदर्शिता दीनता च क्व? द्वयमेतद् एकत्रानुपन्नमिति, हे मदस्नेहशालितया पुत्र–शतशोकम् अपि अविचरयन्ती पुत्रशतस्य नाशरूपां विपत्तिं तु न स्मरसि, किन्तु अयोग्यं मां जीवयितुं इच्छसि, यः सहोदररक्षणेऽसमर्थोऽभवत्।

(4) 'चन्द्रिका' कुन्त्येति– मातापिता द्वारा समझाने पर दुर्योधन अत्यन्त कटुतापूर्वक अपने पिता को सम्बोधित करते हुए कहता है कि–

हे तात! अब आप लोगों को धैर्य बँधाना मुश्किल है। अब तो आप लोग मेरे द्वारा मारे गए पुत्रों वाली, कुन्ती के साथ बैठकर ही अपने पुत्रों के मरने का शोक करो, क्योंकि मैं शीघ्र ही पाण्डवों का वध करने वाला हूँ। उसके बाद जिसप्रकार पाण्डवों ने आपके पुत्रों को मारा है, वैसे ही मैं भी कुन्ती के पुत्रों को मार दूँगा तो ऐसी स्थिति में आप दोनों का पुत्रशोक बराबर हो जाने पर, आप दोनों में धीरज स्वयं ही आ जाएगा।

विशेष–(i) दुर्योधन ने मातापिता की बातों से चिढ़कर इस बात को कहा है, इससे उसका निकृष्ट चरित्र व्यक्त हुआ है।

(ii) सहोक्ति अलंकार तथा अनुष्टुप् छन्द को प्रयोग हुआ है।

(iii) 'सह' के योग में 'कुन्त्या' पद में तृतीया विभक्ति हुई है।

व्या.टि.–(i) निहतपुत्रया– निहताः पुत्राः यस्याः सा तया।

संस्कृत व्याख्या– अद्य शीघ्रमेव इत्यर्थः, मया दुर्योधनेन, निहताः पुत्राः यस्याः तया पाण्डुपत्न्या कुन्त्या साकं दुःखेऽपि शोभमानौ शत्रु–प्रतिकारेण आश्वस्तहृदयौ भवन्तौ तान् दुःशासनादिसुतान् शोकविषयी–कुरुतम्। अनेनैव प्रकारेण भवतोः धैर्यं स्वयमेव आगमिष्यति, इति भावः।

(5) 'चन्द्रिका' दायदेति– तत्पश्चात् धृतराष्ट्र अपने पुत्र दुर्योधन को समझाते हुए कहते हैं कि–

जिन दोनों द्रोणाचार्य तथा भीष्म के बलबूते पर हम लोगों ने अपने दायादों अर्थात् हिस्सेदारों की भी परवाह नहीं की और उन्हें उनका हिस्सा देने से भी मना कर दिया, वे दोनों द्रोण और भीष्म भी मारे गए तथा कर्ण के देखते–देखते, उसके बेटे को मारने वाले, अर्जुन से सम्पूर्ण संसार ही काँप रहा है। मेरे सभी पुत्रों के मारे जाने पर, अब केवल तुममें ही शत्रु की प्रतिज्ञा शेष है अर्थात् उन्हें तुम्हें ही मारना बाकी है, क्योंकि तुम्हें मारने के बाद ही उनकी प्रतिज्ञा पूरी हो सकेगी। इसलिए हे पुत्र! तुम तो अब शत्रुओं के प्रति अहंकार का परित्याग करके, हम दोनों बूढ़े माता–पिता की रक्षा करो।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक में धृतराष्ट्र के अत्यन्त व्यावहारिक एवं वास्तविक दृष्टिकोण की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

(ii) शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का प्रयोग भी दर्शनीय है तथा 'कर्णस्य' पद में 'अनादर' में अनादरे षष्ठी से षष्ठी का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) पालय– √पाल्+लोट्, मध्यमपुरुष, एकवचन।

(ii) **मुंच–** √मुच्+लोट्, मध्यमपुरुष, एकवचन, छोड़ो।

संस्कृत व्याख्या– दायदाः अंशहारिणा बलवन्तः पाण्डवाः, ययोः द्रोणभीष्मयोः कारणेन तृणवत्मानिताः, तथा च कर्णस्य सुतं वृषसेनं तस्य खलु अग्रतः वै नाशयतः अर्जुनात् सर्वमपि वीरात्मकं जगत् भीतं वर्तते। एवं च मम पुत्राणां विनाशेन शत्रुः भीमः अधुनापि तव विषये अवशिष्ट–प्रतिज्ञोऽस्ति, अनेन हे पुत्र! शत्रूणां विषये दुराग्रहं अहंकारं वा त्यज। लोचनविकलतया इमौ जनकौ रक्षतु तावत्।

(6) 'चन्द्रिका' हीयमानानिति– पिता धृतराष्ट्र की पाण्डवों से सन्धि विषयक बात को सुनकर संजय के प्रति दुर्योधन कहता है कि–

बल में कहीं अधिक बढ़ा हुआ राजा कभी भी क्षीण बल वाले राजा के साथ सन्धि करने के लिए तैयार नहीं होता है। इसलिए पाण्डव मेरे साथ कभी भी सन्धि नहीं करेंगे, क्योंकि मैं तो अब दुःशासन आदि बलशाली सौ भाइयों से रहित हो गया हूँ, जबकि पाण्डव लोग अपने सभी भाइयों के साथ जीवित हैं।

विशेष–(i) दुर्योधन ने व्यावहारिक एवं ठोस धरातल पर यह बात की है, इससे उसका राजनीति विषयक ज्ञान व्यक्त हुआ है।

(ii) काव्यलिंग अलंकार, सरलभाषा व अनुष्टुप् छन्द का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) **सानुजः**– अनुजैः सहितः, अनुजों के साथ।

संस्कृत व्याख्या– क्षीणबलान् शत्रून् राजानः कथं नाम तैः सह सन्धिं विदधति? नैव कदापि, इत्यर्थः। अहं दुर्योधनः सहायभूतेन भ्रात्रा रहितोऽस्मि, सम्प्रति खलु युधिष्ठिरस्तु भ्रातृभिः युक्तोऽस्ति। अनेन कारणेन सः कदापि मया सह सन्धिं न करिष्यति, इति।

(7) 'चन्द्रिका' एकेनेति– माता–पिता एवं संजय तीनों द्वारा ही दुर्योधन को, पाण्डवों के साथ सन्धि करने के लिए कहने पर, दुर्योधन इन तीनों को ही सम्बोधित करते हुए कहता है कि–

जरा, आप तीनों ही सोचिए, युधिष्ठिर ने तो अपने एक भी भाई के मारे जाने पर, अपने मरने की प्रतिज्ञा की हुई है तो क्या यह दुर्योधन अपने सौ भाइयों के मारे जाने पर भी अपने जीवन को भला कैसे धारण कर सकता है? क्या मुझे दुःशासन के रक्त को पीने वाले, उस भीम को अपनी गदा से चूर–चूर करके, सभी दिशाओं को बलि प्रदान नहीं करनी चाहिए? और आप सभी के कहने के अनुसार मुझे इस समय दीनहीन होकर सन्धि कर लेनी चाहिए?

विशेष–(i) महाकवि की तार्किक शैली दर्शनीय है। दुर्योधन का स्वाभिमान भी अभिव्यक्त हुआ है।

(ii) काव्यशास्त्रियों द्वारा इसे अर्थान्तरसंक्रमितवाच्यध्वनि काव्य के उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया गया है।

(iii) यहाँ पर शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) **विक्षिपामि**– वि+ √क्षिप्, लट्, उत्तमपुरुष, एकवचन।

(ii) **विदधामि**– वि+ √धा+लट्, उत्तमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– एकेनापि भ्रात्रा न तु अधिकेन विरहितः युधिष्ठिरः प्राणत्यागं प्रतिश्रुतवान्, महाबले भ्रातृशतके युद्धे हते न तु रोगादिना मृते, अयं दुर्योधनः वीरत्वेन प्रसिद्धोऽपि तेषां सर्वेषां ज्येष्ठ–

भ्राता च, किं प्राणितं शक्नोति? किं च दुःशासनशोणितमेव अशनं भोजनं यस्य तम्, शत्रुं भीमं गदाग्रेण भिन्नविग्रहं सन्तं दिक्षु न विकिरामि? अपि तु दीनो भूत्वा किमहं सन्धिं कुर्याम्? किमेतत् समुचितं भविष्यतीति?

(8) 'चन्द्रिका' कलितभुवनेति– पाण्डवों के साथ सन्धि करने के लिए स्पष्ट मना करने पर धृतराष्ट्र कहते हैं कि ऐसी स्थिति में अब मैं क्या करूँ और किसकी शरण में जाऊँ, तब दुर्योधन कहता है कि–

सम्पूर्ण संसार की रक्षा करने वाले, अनन्त ऐश्वर्यों का भोग करने वाले, शत्रुओं का अपने पराक्रम से तिरस्कार करने वाले, सामर्थ्य सम्पन्न बड़े–बड़े हजारों राजाओं के चूड़ामणियों द्वारा अपने चरणों की वन्दना कराने वाले, युद्ध में सामने आने वाले शत्रुओं का वध करते हुए आपके सौ पुत्रों ने स्वयं को आहूत कर दिया। इसलिए अब आप माता जी के साथ, राजा सगर के समान क्षात्रधर्म का पालन करते हुए, इस पृथ्वी के भार को धारण कीजिए।

विशेष–(i) निदर्शनालंकार एवं हरिणी छन्द का प्रयोग दर्शनीय है। **लक्षण– नसमरसला गः षड्वेदैर्हयै र्हरिणी मता।**

व्या.टि.–(i) **वहतु–** √वह्+लोट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(ii) कलितानि आक्रान्तानि भुवनानि त्रयो लोकाः यैः ते।

संस्कृत व्याख्या– वशीकृतसकललोकाः इति भुक्तं सम्यक् उपभुक्तं साम्राज्यसौख्यं यैः ते तथाविधाः सफलीकुर्वाणाः अभिभूताः शत्रवः यैः ते, प्रणतानि शिरांसि येषां तथाभूतानां नतमस्तकानां भूपालानां शिखासहस्रैः कृतम् अर्चनं येषां ते तथाविधाः, युद्धे अरीन् नाशयन्तः सम्मुखं शतसंख्याकाः पुत्राः मारिताः यस्य सः, एतादृशः तातः धृतराष्ट्रः सगरेण ऊढ़ां अधिगतां कीर्तिं धारयतु, भवान् खलु अस्य राज्यस्य धुरि वहतु, इति।

(9) 'चन्द्रिका' प्रत्यक्षमिति– धृतराष्ट्र द्वारा शत्रु को मारने के गुप्त उपाय को विचार करने के लिए कहने पर दुर्योधन कहता है कि–

मेरी आँखों के सामने मेरे भाइयों का वध करने वाले, शत्रुओं का वध गुप्तरूप से करना उचित नहीं है। उसकी यह बात सुनकर

माता गान्धारी द्वारा इस विषय में सहायता करने वाले, किसी के विषय में पूछने पर फिर से दुर्योधन कहता है कि–

हे माते! शत्रु भले ही कितने भी क्यों न हों, मैं तो अकेला ही तीनों लोकों का संहार करने में समर्थ हूँ। इस सम्बन्ध में यह बात जरूर है कि यदि भाग्य मेरे अनुकूल हो जाए, तो मैं अभी इस सम्पूर्ण पृथ्वी को पाण्डवों से रहित कर दूँगा।

विशेष–(i) दुर्योधन का स्वाभिमानी एवं अहंकारी दोनों ही प्रकार का व्यक्तित्व तथा भाग्यवादी दृष्टिकोण प्रदर्शित हुआ है।

(ii) प्रस्तुत श्लोक संवादात्मकरूप में प्रयुक्त हुआ है, क्योंकि प्रथम दो चरणों के बाद गान्धारी का प्रश्न प्रयोग किया गया है।

(iii) शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का कमनीय प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) **हन्तुम्**–√हन्+तुमुन्, मारने के लिए।

संस्कृत व्याख्या– अक्ष्णोः पुरतः मारिताः बान्धवाः दुःशासनादयः यैः ते, शत्रवः पाण्डवाः, इति एकान्ते गूढरूपेण हन्तुं न योग्याः सन्ति, अस्मिन् संग्रामे तैः स्पष्टरूपेण यदपि भीष्मद्रोणादिवधादयः यदि तथाविधं कृतं तैः सह गूढरूपं युद्धं नैवोचितम्। ततः कः सहायो भविष्यति? इति मात्रा प्रश्ने कृते पुनः कथयति यत्– हे मातः! एकोऽहं लोकत्रयाणां क्षयकरणे समर्थोऽस्मि, ते पाण्डवाः तु अल्पसंख्यकाः खलु सन्ति, यदि मम दैव सहायो भूयात्, तदा अहं तु पृथ्वीं पाण्डवशून्याः कर्तुं शक्नोमि।

(10) 'चन्द्रिका' त्यक्तेति– इसी बीच नेपथ्य से होने वाले कलकल शब्द के साथ शल्य द्वारा परिचालित कर्ण के रथ के खाली लौटने की सूचना देते हुए कवि कहता है कि–

चाबुक एवं लगाम दोनों को ही, जिसने त्याग दिया है, ऐसा अर्जुन के बाणों से घायल शरीर वाला, रथ के मार्ग से परिचित होने के कारण मात्र घोड़ों द्वारा ही स्वतः पड़ाव पर पहुँचाया जाने वाला, कर्ण की कुशलतादि के समाचार पूछे जाने पर, केवल आँसू बहाकर ही उत्तर प्रदान करने वाला, कौरवों के हृदय में काँटे के समान चुभने वाला, **शल्य** रथ को खाली लिए हुए सेना के शिविर की ओर प्रस्थान कर रहा है।

विशेष–(i) शल्य द्वारा कर्ण के वध की सूचना दी गयी है।

(ii) महाकवि का अश्वशास्त्र विषयक ज्ञान व्यक्त हुआ है क्योंकि घोड़ों की विशेषता होती है कि वे परिचित मार्ग पर आँखें बन्द कर देने पर भी चल सकते हैं।

(iii) शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का प्रयोग हुआ है।

(iv) शल्य पद का दो बार प्रयोग होने तथा दोनों का भिन्न (काँटा, व्यक्ति)अर्थ होने से यमक अलंकार का सौन्दर्य भी दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **त्यक्तः**– √त्यज्+क्त, त्यागा हुआ ।

(ii) **आकृष्यमाणः**– आ+ √कृष्+शानच्, खींचा जाता हुआ।

संस्कृत व्याख्या– **उज्झितं प्राजनं चाबुकं प्रग्रहश्च येन तथाविधः, दुःखावेगात् प्रग्रहादयः वै परित्यज्य, इत्यर्थः। अर्जुनस्य नामांकितैः बाणैः अंकिततनुः यस्य असौ तथाविधः चिह्नितशरीरः रथमार्गपरिचयात् अश्वैः मन्दं–मन्दं उत्साहरहितमित्यर्थः, नीयमानः मार्गे कर्णवृत्तान्तं पृच्छतां जनेभ्यः अश्रुभिः निवेदयन् कर्णस्य सारथिः मद्रराजः कौरवान् पीड़यन् कर्णविरहितेनैव स्यन्दनेन सैन्यशिविरं प्रति गच्छति।**

(11) 'चन्द्रिका' शल्येनेति– इसी क्रम में पुनः कहते हैं कि-

शरीर में प्रवेश कर रहे विषैले बाणों के समान एवं शून्य मनोरथ के जैसा, कर्ण से शून्य रथ पर आरूढ़ हुए प्रवेश कर रहे, इस शल्य को देखकर, लोगों का यह समूह मूर्च्छित हो गया है अर्थात् कर्ण की मृत्यु को कौरवपक्ष के लोग सहन नहीं कर पा रहे हैं।

विशेष–(i) कर्ण की मृत्यु से होने वाले दुःख से कौरवपक्ष के दुःखी लोगों का सुन्दर चित्रण किया गया है। करुणरस का प्रयोग।

(ii) आर्या छन्द, यमक व उपमालंकार का प्रयोग दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **प्रविशता**–प्र+ √विश् प्रवेशने+शतृ, तृ.वि., एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– **शरीरान्ते प्रवेशं कुर्वन् इव विषदग्धलौहमुखास्त्रविशेषेण यथा जनः मूर्च्छितो भवति, तथैव शून्यमनोरथमिव, दिवंगतेन कर्णन रहितं अंगपतेः रथं आस्थितेन मद्रराजेन अयं कुरुसैन्यसमूहः मोहं गमितः अर्थात् कर्णस्य वधं श्रुत्वा सर्वेऽपि कौरवसैनिकाः मूर्च्छिताः बभूवुः।**

(12) 'चन्द्रिका' भीष्मे, इति– इसीप्रकार कर्ण की मृत्यु का समाचार प्राप्त करके, धृतराष्ट्र अत्यन्त दुःखपूर्वक कहते हैं कि–

अरे! अत्यधिक कष्ट है कि भीष्म और द्रोण के मारे जाने पर, जिस कर्ण के ऊपर अत्यधिक विश्वास था तथा मेरे पुत्र दुर्योधन का जो वीर मित्र भी था, आज तो वह भी मृत्यु को प्राप्त हो गया है।

विशेष–(i) कर्ण की मृत्यु के समाचार को सुनकर, धृतराष्ट्र का गहनतम दुःख अभिव्यक्त हुआ है।

(i) सरल भाषा एवं अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग भी दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **निहते**–नि+√हन्+क्त, सप्तमी विभक्ति, एकवचन।

(ii) **आसीत्**– √अस्+लङ्, प्रथम पुरुष, एकवचन, था।

संस्कृत व्याख्या– भीष्मे, द्रोणे च एतन्नाम्नी महारथिद्वये मृत्युशय्यायां शायिते सति, योऽस्माकं प्रधानरूपेण वीरः कर्ण अवलम्बनम् आसीत्। वत्सस्य दुर्योधनस्य च वीरमित्रमपि अभवत्, सोऽयम् कर्णोऽपि मृत्युं प्राप्तवान्।

(13) 'चन्द्रिका' अन्धः, इति– इसी क्रम में दुर्योधन को धैर्य बँधाते हुए धृतराष्ट्र अपने दुर्भाग्य को सम्बोधित करके कहते हैं कि–

अरे! दुर्भाग्य, अभी तक तो अन्धा मैं पत्नी के साथ अपने सौ पुत्रों की मृत्यु के दुःख का अनुभव कर रहा था, किन्तु अब तो अपने मित्र, गुरु एवं बन्धुवर्ग को रणभूमि में खोकर, इस शोचनीय दशा को प्राप्त हो गया हूँ। इतना ही नहीं, हम अन्धों के सहारेरूप, इस दुर्योधन को लेकर भी तू हमे निराश ही कर रहा है।

विशेष–(i) धृतराष्ट्र का नैराश्यातिरेक अभिव्यक्त हुआ है।

(ii)काव्यलिंग अलंकार, वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग हुआ है।

(iii) 'सह' पद के योग में 'भार्यया' शब्द में तृतीया विभक्ति।

व्या.टि.–(i) **उपगतः**– उप+√गम्+क्त, प्राप्त हुआ।

संस्कृत व्याख्या– अनुभूतशतपुत्रविपत्तिमरणं दुःखोऽन्धोऽहं धृतराष्ट्रः गान्धार्यया सह शोचनीयाम् अवस्थां प्राप्तोऽस्मि, यतोहि आमूलं विनाशितः मित्राणां बन्धूनां च समुदायो यस्य तस्मिन्, सकलसहायक–

रहितः, पुरोवर्तिनि एकमात्रावशिष्टे सुते दुर्योधनेऽपि दुर्भाग्येन विगताशः खलु कृतवान् अस्मि, इति।

(14) 'चन्द्रिका' अयि, इति– कर्ण की मृत्यु के समाचार को सुनकर दुर्योधन मूर्च्छित हो जाता है। उसके बाद चेतना प्राप्त करके वह कहता है कि–

हे कर्ण! मेरे मन में स्थायीरूप से आनन्द प्रदान करने वाली, कानों को सुख देने वाली, अपनी मधुर वाणी को तो मुझे सुनाओ। आज तक तुम मुझे छोड़कर कभी भी अलग नहीं रहे हो और मैंने भी तुम्हारा अप्रिय कभी नहीं किया है, तो फिर एकमात्र वृषसेन पर ही प्रेम उड़ेलने वाले, तुम मुझे इस हाल में छोड़कर स्वर्ग भला कैसे चले गए हो?

विशेष–(i) दुर्योधन की अपने मित्र कर्ण के प्रति भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। करुणरस का पूर्ण परिपाक हुआ है।

(ii) मंजुभाषिणी छन्द का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) **प्रयच्छ**– प्र+ √दा, लोट्, मध्यमपुरुष, एकवचन।

(ii) **विहाय**– वि+ √हा+क्त्वा (ल्यप्), छोड़कर।

संस्कृत व्याख्या– अयि, मम मित्र कर्ण! मद्विषये चिरस्थायिनीं प्रीतिं प्रकटीकुर्वन् इव मम कर्णयोः सुखदां श्रोत्रमधुरां वाचं प्रत्युत्तरं दीयताम्। हे वृषसेन वत्सल! निरन्तरं अवियुक्तं सदा सहचरम्, न कृतम् अकृतम् अप्रियं प्रियेतरं येन तम्, सदा तव प्रियमेव कृतं मया, इति। एतादृशं दुर्योधनं परित्यज्य कथं स्वर्गलोकं गच्छसि? नैवोचितमेतत्।

(15) 'चन्द्रिका' ममेति– कर्ण की मृत्यु के समाचार को सुनकर दुर्योधन बार–बार मूर्च्छित होता है और उसे वहाँ उपस्थित सभी लोग धैर्य बँधाते हैं, तो दुर्योधन कहता है कि–

हे पिताश्री! अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय कर्ण के युद्ध में मारे जाने पर, मुझे तो इस समय श्वास लेने में भी लज्जा का अनुभव हो रहा है, जबकि आप तो मुझे धैर्य धारण करने के लिए कह रहे हैं। इसलिए यह भला कैसे सम्भव है?

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक में दुर्योधन की अपने मित्र कर्ण के प्रति गहन आन्तरिक भावनाओं की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

(ii) अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग भी दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) लज्जे– √लज्ज्+लट्, आत्मने, उत्तमपुरुष, ए.व.।

संस्कृत व्याख्या– हे तात! मम प्राणेभ्योऽपि गरीयसि, मित्ररत्ने अंगदेशानां स्वामिनि तस्मिन् विश्रुतपराक्रमे कर्णे, इति मृते सति, अहं श्वासं गृहणन्नपि जिह्वेमि, विर्वृत्तौ धैर्यस्य वा का वार्ता?

(16) 'चन्द्रिका' शोचामीति– इसी क्रम में दुर्योधन फिर से अपने दुःख को व्यक्त करते हुए कहता है कि–

शोक करने योग्य, शत्रुओं द्वारा मारे गए, वत्स दुःशासन का एवं समस्त बन्धुवर्ग का, इस समय मुझे जरा भी शोक नहीं है, किन्तु जिस भी दुष्ट ने कर्ण में यह अत्यधिक भयंकर अमंगल कार्य किया है अर्थात् उसका वध किया है, उसके वंश का मैं युद्धभूमि में निश्चय ही अन्त करूँगा, इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं है।

विशेष–(i) दुर्योधन की वेदना में अतिशयोक्ति का आभास हो रहा है, क्योंकि इस अवस्था में वह यह सब भला कैसे कर सकता है?

(ii) भाषा की सरलता व वसन्ततिलका छन्द दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **अस्मि**– √अस्+लट्, उत्तमपुरुष, एकवचन, हूँ।

(ii) **शोचामि**– √शुच्+लट्, उत्तमपुरुष, एकवचन ।

संस्कृत व्याख्या– पाण्डवशत्रुभिः युद्धे हतम्, अतएव शोचितुम् अर्हमपि अनुजं तं पराक्रमेण प्रसिद्धं दुःशासनं, बान्धवगणं च, अधुनापि नाहं शोकं करोमि, यतोहि नायम् अवसरः शोकस्य, इति। किन्तु येन अर्जुनादिना अंगराजे श्रोतुम् असह्यं कर्णं प्रति अनुचितं कर्म अनुष्ठितम्, तस्य कुलस्य युद्धेऽहं विनाशं अवश्यमेव करिष्यामि, इति।

(17) 'चन्द्रिका' मामेति– धृतराष्ट्र एवं गान्धारी द्वारा दुर्योधन को थोड़ी देर के लिए, अश्रुओं को रोकने हेतु कहने पर वह अत्यन्त पीड़ापूर्वक कहता है कि–

जिस समय मेरा प्रिय मित्र कर्ण मेरे लिए प्राण दे रहा था, उस अवसर पर तो उसे किसी भी व्यक्ति ने नहीं रोका, किन्तु अब जबकि

मैं उसके लिए आँसू बहा रहा हूँ, तो फिर भला मुझे क्यों रोका जा रहा है? अर्थात् मुझे भी आप लोगों को इस समय अश्रुओं को बहाने से नहीं रोकना चाहिए।

विशेष–(i) अत्यधिक दुःखी दुर्योधन की अपने माता–पिता के प्रति चिड़चिड़ाहट की प्रतीति हो रही है।

(ii) सरल भाषा एवं अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) **उद्दिश्य**– उत्+ √दिश्+क्त्वा (ल्यप्) लक्ष्य करके।

(ii) **त्यजन्**– √त्यज्+शतृ, त्यागते हुए।

संस्कृत व्याख्या– मदर्थं युद्धे प्राणपरित्यागं कुर्वन् नैव केनापि कर्णः प्रतिषिद्धः, किन्तु तत्कृते किंवा उपकारिणं कर्णमुद्दिश्य सम्प्रति बाष्पम् अहं त्यजामि, तदा मम किं निवार्यते? नैवोचितमेतत्।

(18) 'चन्द्रिका' भूमौ इति– इसके बाद, सूत को सम्बोधित करके हुए, दुर्योधन द्वारा कर्ण का वध करने वाले के विषय में पूछने पर सारथि कहता है कि–

लोगों का इसप्रकार कहना है कि जब कर्ण के रथ का पहिया भूमि में फँस गया था, तो उसी अवसर पर हम लोगों की सेना के यमराज के रूप में विद्यमान इन्द्र के पुत्र अर्जुन ने, अपने बाणों के माध्यम से कर्ण को मार डाला।

विशेष–(i) आर्या छन्द एवं गौडी रीति दर्शनीय है।

(ii) महाभारत के अनुसार– ब्राह्मण के शाप के कारण मरण के समय कर्ण के रथ का चक्र, भूमि में धँस गया था।

व्या.टि.–(i) **निहतः**– नि+ √हन्+क्त, मार दिया।

संस्कृत व्याख्या– जनाः एतत् कथयन्ति, यत्– पृथिव्यां निमग्नं रथचक्रं यस्य तथाविधः, कर्णः चक्रायुधः भगवान् श्रीकृष्णः सारथिः यस्य तस्य, प्रसिद्धस्य अस्मत्सैन्यविनाशकर्मणि यमराजतुल्येति, इन्द्रतनयस्य अर्जुनस्य बाणैः मृतः किल, इति।

(19) 'चन्द्रिका' कर्णेति– कर्ण का वध करने वाले का नाम सुनकर, दुर्योधन कहता है कि– अरे! अत्यधिक कष्ट है,

कर्ण के मुखरूपी चन्द्र के स्मरण से मेरा शोकरूपी सागर मानो क्षुब्ध हो उठा है, जिसप्रकार चन्द्रमा के दर्शन से क्षुब्ध हुए सागर का, वडवानल पान कर लेता है, ठीक उसीप्रकार कर्णवध से उत्पन्न होने वाली मेरी क्रोधरूपी अग्नि ने अपने भाइयों के मरण से उत्पन्न होने वाले शोकरूपी सागर का पान कर लिया है अर्थात् इस समय तो शत्रु से बदला लेने की अग्नि ही धधक रही है, जबकि इससे पूर्व का शोक मन्द पड़ गया है।

विशेष–(i) दुर्योधन की उक्ति में वीररस का परिपाक हुआ है।

(ii) प्रस्तुत श्लोक के पूर्वार्द्ध में परम्परित रूपक तथा उत्तरार्द्ध में उपमालंकार, सरल भाषा एवं अनुष्टुप् छन्द का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(iii) समुद्र की अग्नि को **वडवानल** कहते हैं, इसी के कारण समुद्र के जल से वाष्प बनने पर वर्षा करने वाले मेघों का निर्माण होता है।

व्या.टि.–(i) **पीयते**– √पा+लट्, आत्मने, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(ii) **वाडवेनेव**–वाडवेन–इव, अ+इ–ए, गुणादेश, आद्गुणः से।

संस्कृत व्याख्या– कर्णस्य चन्द्रः इव आननं चिन्तनात् चंचलः मम शोकसमुद्रः, वडवानलनामकेन समुद्रान्तर्वर्तिना दहनेनेव क्रोध–समुत्पन्नेन अग्निना शोष्यते। यथा समुद्रमध्ये स्थितः वडवाग्निः तस्य जलं पिबति, एवमेव मम हृदयवर्तिनं शोकसागरं क्रोधरूपवह्निः पिबतीति।

(20) 'चन्द्रिका' ज्वलन इति– इसी बीच दुर्योधन फिर से अपने माता–पिता से युद्ध में जाने की अनुमति माँगते हुए कहता है कि–

हे माताजी, पिताश्री! आप दोनों प्रसन्न होइए। कर्ण तथा छोटे भाइयों के मरण से उत्पन्न होने वाले, शोक से उत्पन्न होने वाली, यह अग्नि मुझे जला डाल रही है। इसलिए यदि आपका कहना मानकर मैंने युद्ध नहीं भी किया, तो भी इस अग्नि द्वारा मेरा विनाश सुनिश्चित ही है। इसलिए युद्ध न करने तथा युद्ध करने, दोनों ही स्थितियों में एक जैसी स्थिति होने के कारण, मेरे लिए युद्ध करना ही श्रेयष्कर है, क्योंकि युद्ध करने पर नाश तो अनिश्चित है और विजय की सम्भावना

भी है। अतः इस शोकाग्नि में घुलघुल कर मरने की अपेक्षा युद्ध में लड़कर मरना ही उत्तम प्रतीत हो रहा है।

विशेष–(i) महाकवि की तार्किक शैली का सौन्दर्य द्रष्टव्य है।

(ii) अनुष्टुप् छन्द एवं भाषा की सरलता उल्लेखनीय है।

व्या.टि.–(i) **दहति**– √दह्+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(ii) **मामयम्**– माम्+अयम्, अज्झीनं परे संयोज्यम् से, म्+अ=म

संस्कृत व्याख्या– शोकात् प्रभवः अतएव सोढुम् अशक्यः प्रत्येकम् अंगं संतापकारी, इति, अयं शोकाग्निः मां सर्वतः तापयति, मम प्राणभयरूपायां विपत्तौ तुल्यायाम् अत्र शोकाग्निदाहः युद्धे च शस्त्रास्त्रादिभिः मरणं भयं इति, विपत्समानौ, युद्धं मे वरं श्रेयष्करं वै प्रतिभाति, यतोहि रणप्रवृत्तौ तु विजयस्य आशा वर्तते, किन्तु शोकाग्निमध्ये विनाशो वै सुनिश्चितः, अतएव युद्धाय आज्ञापयतु, इति।

(21) 'चन्द्रिका' भवतीति– दुर्योधन द्वारा अपने पिता के समक्ष युद्ध करने और न करने में युद्ध को श्रेयष्कर सिद्ध करने के बाद धृतराष्ट्र अपने पुत्र दुर्योधन का आलिंगन करके रोते हुए कहते हैं कि–

हे पुत्र! तुम्हारे द्वारा किए जाने वाले इसप्रकार के साहस में ही लक्ष्मी का निवास होता है, इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है, किन्तु उस भयंकर भीम को स्मरण करके, ही मेरा हृदय काँप उठता है, क्योंकि

हे स्वाभिमानियों में अग्रणी! युद्ध में तुम्हारा व्यवहार तो छल से रहित होता है, किन्तु शत्रुओं का युद्धव्यापार निश्चय ही छलपूर्ण होने के कारण मुझे अत्यधिक चिन्ता सता रही है। इसीलिए हाय, मैं तो दुर्भाग्य द्वारा मार ही दिया गया हूँ।

विशेष–(i) कहा भी गया है, 'साहसे श्रीः वसति'।

(ii) दुर्योधन को नियमपूर्वक युद्ध करने वाला कहा है।

(iii) इससे पाण्डवों द्वारा भविष्य में किए जाने वाले नियम के उल्लंघनपूर्वक युद्ध करने की भी सूचना मिल रही है।

(iv) सरल भाषा एवं मालिनी छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **भवति**– √भू+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन, होता है।

(ii) **द्रवति**– √द्रव्+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(iii) **उत्प्रेक्ष्य–** उत्+प्र+√ईक्ष्+क्त्वा (ल्यप्) देखकर।

संस्कृत व्याख्या– हे पुत्र! रणे अभिसरणरूपेषु साहसपूर्ण–व्यापारेषु विजयश्रीः सम्पत्तिर्वा विराजते, किन्तु भयानकं भीमं युधिष्ठिरस्य अनुजं अनुचिन्त्य तस्य च भीषणां प्रतिज्ञां स्मृत्वा, मे एतत् हृदयं कम्पते, व्याकुलीभवति, इति, हे अभिमानितया प्रसिद्धः! तव युद्धव्यापारः तु निष्कपटो अस्ति, किन्तु तव शत्रवः विषयेऽस्मिन् कुशलाः सन्ति, अनेनैव प्रतीयते यदहं तु विनष्टोऽस्मि।

(22) 'चन्द्रिका' पापेनेति– इसी बीच माता गान्धारी द्वारा भीम के विषय में शंका करने पर, दुर्योधन फिर से कहता है कि–

हे माते! भीम को तो रहने ही दो, आज तो वस्तुतः मेरे हृदय के मनोरथ के समान, शरीर में चन्दन की तरह आनन्द प्रदान करने वाले, नेत्रों को निर्मल चन्द्रमा के समान सुख देने वाले, आपके पुत्र और हे पिताश्री! आपके समान नीति में अद्वितीय शिष्य, कर्ण को जिस पापी ने मौत के घाट उतारा है, ये मेरे बाण उसी व्यक्ति अर्जुन पर सर्वप्रथम और एक साथ गिरेंगे।

विशेष–(i) दुर्योधन के दृढ़निश्चय की अभिव्यक्ति हुई है।

(ii) कर्ण के प्रति दुर्योधन का अगाध प्रेम प्रदर्शित हुआ है।

(iii) रूपकालंकार एवं वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) **पतन्तु–** √पत्+लोट्, प्रथमपुरुष, एकवचन, गिरें।

संस्कृत व्याख्या–येन पापिना दुष्टेन मम हृदयस्य मूर्तिमान् अभीष्टपदार्थः आसीत्, मम च सर्वेषु अंगेषु चन्दनरसः इव आह्लादकारी अभवत्, यश्च निर्मलचन्द्रः इव नेत्रयोः उत्सवकारी जातः, किंच हे अम्ब! तव पुत्रवत् परमस्नेहास्पदम्, हे पितः! तव कृते तु नीतौ अद्वितीयः शिष्यः नीतिविदां धुरीणः आसीत्, एवंविधः सः गुणकारी कर्णः येनापि जनेन हतवान्, तस्य अर्जुने मदीयाः बाणाः झटिति खलु पतिष्यन्ति, इति। एषः मे दृढ़निश्चयः।

(23) 'चन्द्रिका' गते, इति– धृतराष्ट्र द्वारा सेनापति के रूप में 'शल्य' का नाम लेने पर संजय, राजा दुर्योधन से कहता है कि–

हाय, अत्यधिक कष्ट का विषय है कि भीष्म के स्वर्गलोक में चले जाने और द्रोण जैसे उच्च कोटि के महारथी के मारे जाने पर एवं कर्ण जैसे धुरन्धर वीर के भी धराशायी होने पर, हे राजन्! अब आपकी आशा है कि शल्य ही पाण्डवों को जीत लेगा, इसरूप में शल्य पर टिकी हुई है, यह वस्तुतः अत्यधिक आश्चर्य एवं दुःख का विषय है।

विशेष–(i) दुर्योधन का आशावादी, किन्तु अव्यावहारिक दृष्टिकोण अभिव्यक्त हुआ है।

(ii) यहाँ श्लोक के प्रथम चरण के आरम्भ में 'हते' पाठ भी मिलता है, जो उसी के बाद द्रोणे से पूर्व 'हते' आने से उचित प्रतीत नहीं होता है। वस्तुतः यहाँ 'गते' पाठ अधिक समीचीन है।

(iii) प्रस्तुत श्लोक काकुवक्रोक्ति का सुन्दर उदाहरण है।

(iv) सरल भाषा एवं अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग भी दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **विनिपातिते**– वि+नि+ √पत्+णिच+क्त, स.वि.,ए.व.।

(ii) **जेष्यति**– √जि जये+लृट्, प्रथमपुरुष, एकवचन, जीतेगा।

संस्कृत व्याख्या– **हे राजन्! भीष्मे शरशय्यायां शायिते, द्रोणाचार्यस्य च मृते सति इत्यर्थः, तृतीयेऽपि च महावीरे अंगराजे कर्णे स्वर्गं गते सति, अधुना भवतः बलीवती आशा वर्तते, यत् शल्यः एतन्नामकः वीरः तव मित्रं पाण्डवान् युधिष्ठिरादीन् पराभूतान् विधास्यति, इति। यद्यपि एतत् सम्भवो नास्ति, सामान्यदृष्ट्या अपि।**

(24) 'चन्द्रिका' कर्णेति– संजय के उक्त कथन को सुनकर दुर्योधन उससे कहता है कि–

इसमें शल्य या अश्वत्थामा क्या करेगा? मैंने तो वस्तुतः निरन्तर प्रवाहित होने वाली अश्रुरूपी जलधारा से अपने आपको ही सेनापति पद पर अभिषिक्त कर लिया है। अब तो मैंने दृढ़निश्चय किया है कि या तो कर्ण को आलिंगन प्रदान करने वाला मैं, स्वर्ग में जाकर उससे मिलूँगा या फिर अर्जुन के ही प्राणों को नष्ट कर दूँगा।

विशेष–(i) दुर्योधन की पीड़ा एवं दृढ़निश्चय दोनों की सुन्दर ढंग से अभिव्यक्ति हुई है।

(ii) राज्याभिषेक में अनेक नदियों के जलों को लाकर, उससे नव नियुक्त राजा का अभिषेक किया जाता है, यहाँ अश्रुओं में नदीजल के अभेद की स्थापना से रूपकालंकार का सौन्दर्य भी दर्शनीय है।

(iii) उपर्युक्त श्लोक में अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) कर्णस्य राधेयस्य आलिंगनं ददति, इति यः सः।

संस्कृत व्याख्या– कर्णस्य आश्लेषकरः वा अर्जुनस्य प्राणहरः तथाविधोऽपि वा अनिवारितः सम्पातः पवनं येषां तैः अश्रुजलैः अहमेव इति, अभिषिक्तोऽस्मि अर्थात् योग्यसेनापतेः अभावे अहमेव सेनापतिः।

(25) 'चन्द्रिका' प्राप्तेति– नेपथ्य में हुए कोलाहल के कारण को जानकर सूत प्रवेश करके दुर्योधन से कहता है कि–

आयुष्मन्! एक ही रथ पर बैठे हुए, आपको इधर–उधर खोजते हुए, सभी से पूछते हुए, दोनों इधर ही आ रहे हैं। यह सुनकर सभी पूछते हैं कि कौन? कौन? आ रहे हैं? तब सूत फिर से कहता है कि–

वह कर्ण का शत्रु अर्जुन और वृक के समान क्रूर कर्म करने वाला भीम, ये दोनों इधर ही आ रहे हैं।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक को कवि ने संवादात्मक रूप में प्रयुक्त किया है।

(ii) टीकाकारों ने 'वृक' का अर्थ कुत्ते के स्वरूप वाला, हरिण को मारने वाला, एक प्रकार का व्याघ्र–विशेष अर्थ किया है, जबकि वृक का कोषों में भेडिया, लकड़बग्गा तथा गीदड़ अर्थ भी मिलते हैं।

(iii) अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **वृककर्मा–** वृकः इव कर्म करोति, यः सः, बहुव्रीहि।

संस्कृत व्याख्या– कर्णस्य शत्रुः सः अर्जुनः, वृकः इव कर्म करोति यः सः भीमः, एकस्मिन् खलु रथे विराजमानौ भवन्तं इतस्ततः पृच्छन्तौ यत्– 'कुत्रास्ति दुर्योधनः?' इति अत्र वै आगच्छतः।

(26) 'चन्द्रिका' कर्तेति– इसके पश्चात् मंच पर भीमार्जुन प्रवेश करते हैं तथा भीम लोगों को सम्बोधित करते हुए कहता है कि–

अरे दुर्योधन के सेवकों! आप लोगों को डरने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि हम तो जुए में कपट करने वाले, लाक्षागृह में आग

लगवाने वाले, अहंकार करने वाले, द्रौपदी के केश और वस्त्रों को खींचने में वायु के समान, जिसके हम पाण्डव लोग जुए में जीते हुए दास हैं, जो दुःशासन आदि का राजा है तथा सभी सौ भाइयों में सर्वश्रेष्ठ है, कर्ण का मित्र है, उस दुर्योधन को खोज रहे हैं। कृपा करके आप लोग उसके विषय में बताइए कि वह कहाँ पर है? इसके अलावा आप सभी यह भी समझ लें कि हम लोग यहाँ पर क्रुद्ध होकर नहीं, अपितु यों ही केवल उसे देखने के लिए यहाँ आए हैं।

विशेष–(i) दुर्योधन का विस्तार से चरित्र उद्घाटित हुआ है।
(ii) उपमालंकार एवं स्रग्धरा छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।
(iii) भीम ने दुर्योधन के सभी अपकारों को गिना दिया है।

व्या.टि.–(i) **कर्ता**– √कृ+तृच्, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।
(ii) **कथयत**– √कथ्+लट्, मध्यमपुरुष, बहुवचन।

संस्कृत व्याख्या– द्यूतकपटव्यापाराणां कर्ता, जतुप्रचुरं यत् गृहं तस्य लाक्षागृहदाहकः तथाविधः सः अहंकारी, पांचाल्याः केशानाम् उत्तरीयस्य वस्त्रस्य हरणे वायुस्वरूपः, युधिष्ठिरादयः पाण्डवाः यस्य दासाः, द्यूतनिर्जितत्वादिति, दुःशासनप्रभृतिकस्य कनिष्ठभ्रातृषु यः श्रेष्ठः अंगाधिपस्य कर्णस्य यः मित्रमिति, असौ दुर्योधनः कुत्र वर्तते? यूयम् अस्माकं ब्रूत, वयं नैव तं क्रोधेन द्रष्टुं वांछामः, अपितु केवलं दर्शनमेव तस्य कर्तुम् इच्छामः।

(27) 'चन्द्रिका' सकलेति– इसके बाद अर्जुन धृतराष्ट्र और गान्धारी को अपना परिचय देते हुए प्रणाम करता है कि–

हे माताजी, पिताश्री! आपके पुत्र, जिसके भरोसे सभी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने की आशा कर रहे थे तथा जिसके पराक्रम के गर्व से तुम्हारे सभी पुत्रों ने सम्पूर्ण संसार को तिनके के समान तुच्छ माना हुआ था, उस अंगराज कर्ण का युद्धभूमि में वध करने वाला महाराज पाण्डु का मध्यम पुत्र, यह मैं अर्जुन, आप दोनों को प्रणाम करता हूँ, स्वीकार कीजिए।

विशेष–(i) अपना परिचय देकर वृद्धजनों को प्रणाम करने की भारतीय परम्परा रही है, यहाँ पर कवि ने इसी का नियोजन किया है।

(ii) कौरवों के दुष्कृत्यों का उल्लेख विस्तार से किया गया है।

(iii) उपमालंकार एवं मालिनी छन्द का सौन्दर्य दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **निहन्ता**– नि+हन्+तृच्, प्रथमा विभक्ति, ए.व.।

(ii) **प्रणमति**– प्र+ √नम्+लट्, प्रथम पुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– अर्जुनः, धृतराष्ट्रं प्रति कथयति यत्– तव दुर्योधनादिभिः पुत्रैः यस्मिन् कर्णे सकलरिपूणां विजयाशा निबद्धा, यस्य कर्णस्य अहंकारेण सम्पूर्णम् इदं जगत् तृणसदृशं तिरस्कृतः आसीत्। युद्धभूमौ च तस्य एतादृशस्य प्रसिद्धपराक्रमस्य अपि राधेयसुतस्य घातकः एषः पुरोवर्ती मध्यमः पाण्डवः अर्जुनः वां पितरौ नमस्करोति, इति।

(28) 'चन्द्रिका' चूर्णितेति– इसप्रकार अर्जुन द्वारा दुर्योधन के माता–पिता धृतराष्ट्र और गान्धारी को प्रणाम करने के बाद, भीम अपना परिचय देकर प्रणाम करते हुए कहता है कि–

सभी कौरवों को चूर–चूर करने वाला, भविष्य में दुर्योधन ही जँघाओं को चीरने वाला एवं दुःशासन के रक्त को पीकर, मदमस्त हुआ, यह भीम अपना सिर नवाकर आपको सादर नमन करता है।

विशेष–(i) भीम का स्वाभिमान तथा गर्व दोनों की ही यहाँ पर सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। वीररस का परिपाक हुआ है।

(ii) समस्त भाषा एवं अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **भङ्क्ता**– √भंज्+तृच्, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

(ii) **अंचति**– √अंचु अर्चने+लट्, प्रथम पुरुष, एक वचन।

संस्कृत व्याख्या– निष्पिष्टाः निःशेषाः कुरुवंशजाताः दुर्योधना–दयः येन तथाभूतः, दुःशासनस्य वक्षःस्थलस्य रक्तपानेन इति, मत्तः दुर्योधनस्य च ऊर्वोः भंगकर्ता अयं भवतां पुरोवर्ती पाण्डुपुत्रः भीमः शिरसा पूजयति, इति। नतमस्तको भवति, इत्यर्थः।

(29) 'चन्द्रिका' कृष्णेति– तत्पश्चात् भीम द्वारा इसप्रकार प्रणाम करने पर धृतराष्ट्र के क्रोधित होने पर भीम पुनः कहता है कि–

तात! इस विषय में क्रोध से बस कीजिए, आपकी ही सभा में हम पाण्डवों की वधू द्रौपदी के केश, जिन–जिन राजाओं द्वारा खींचे गए, उन सभी राजाओं को पतंगे के समान, जिसने अपनी क्रोधरूपी

अग्नि में पूरी तरह जला डाला, आपको यह सब स्मरण कराने के लिए ही हम लोग यह सुना रहे हैं। इस सबको हम अपने भुजबल की प्रशंसा के लिए अथवा अहंकारवश नहीं कह रहे हैं, क्योंकि अपने पुत्र तथा पौत्रों के वधरूपी इस गुरुतर कार्य में आप ही सबसे बड़े साक्षी रहे हैं अर्थात् हम पाण्डवों के साथ जो–जो भी अन्याय, अनाचार किया गया, आपके सामने ही किया गया है, जिसमें आपकी अप्रत्यक्षरूप से सहमति ही रही है।

विशेष–(i) भीम का मन में दबा हुआ आक्रोश व्यक्त हुआ है।

(ii) यह सत्य है कि यदि धृतराष्ट्र चाहते, तो पाण्डवों के साथ अन्याय को रोका जा सकता था, किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया।

(iii) महाकवि ने महाभारतयुद्ध का सत्य उद्घाटित किया है।

(iv) उपमालंकार, स्रग्धरा छन्द का कमनीय प्रयोग द्रष्टव्य है।

व्या.टि.–(i) **कृष्टा**– √कृष्+क्त, टाप्, खींची गयी।

(ii) **दग्धाः**– √दह्+क्त, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन, जलाए गए।

संस्कृत व्याख्या– पाण्डवानां वधूः पत्नी द्रौपदी यैः नृपैः दुःशासनादिराजभिः तव खलु सदसि, केशेषु गृहीत्वाऽऽकृष्टा, येन अर्जुनेन क्षुद्रं यत् शलभकुलं तद्वत् अवज्ञया अनायासेनैव ते सर्वे कर्ण-दुःशासनादयः कृष्णायाः क्रोधाग्नौ भस्मीसात्कृताः, एतत् सर्वम् अहं भवतां श्रावये, न तु स्वभुजदर्पप्रकाशनाय अभिमानात्, इत्यर्थः, यतोहि हे तात! पुत्रैः पौत्रैः च सर्वैः यदपि कृतं तस्य सर्वस्य भवान् वै साक्षी आसीत्, भवता औदासिन्यं खलु प्रदर्शितम्, इति अस्य किल परिणामोऽयम्।

(30) 'चन्द्रिका' कृष्टेति– अपने पिता धृतराष्ट्र को कही गयी भीम की बातों को सुनकर, दुर्योधन कहता है कि–

जुए में जीती गयी तेरी पत्नी को दासी मानकर, तेरे और अर्जुन के एवं पशु के समान उस राजा युधिष्ठिर के और नकुल व सहदेव के तथा उस समय विरोध के लिए उपस्थित होने वाले राजाओं के सामने, तीनों लोकों के स्वामी मुझ दुर्योधन की आज्ञा से ही चोटी पकड़कर खींचा गया था, किन्तु बताओ, इस शत्रुता के प्रसंग में उन

राजाओं का भला क्या दोष था? जिन्हें तुम लोगों ने युद्ध में मारा है। इसी क्रम में तुम यह भी ध्यान रखना कि–

'जब तक तुम मुझ पर विजय प्राप्त नहीं कर लेते हो, तब तक तुम्हारा यह गर्व व्यर्थ ही है।'

विशेष–(i) अभिमानी दुर्योधन का कुतर्क अभिव्यक्त हुआ है।

(ii) उपमालंकार तथा स्रग्धरा छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **वद**– √वद्+लोट्, मध्यमपुरुष, एकवचन, बोलो।

(ii) **अजित्वा**– न जित्वा, इति, नञ् समास, न+ √जि+क्त्वा।

संस्कृत व्याख्या– भुवनानां पतिः तस्य मम दुर्योधनस्य आदेशेन द्यूते जिता दासी भवतः पशुतुल्यस्य तव च तस्य लोकप्रसिद्धस्य युधिष्ठिरस्य तयोः नकुलसहदेवयोः वा भार्या द्रौपदी राज्ञां समक्षं केशेषु गृहीत्वाऽऽकृष्टा दुःशासनेन, वर्तमाने वैरस्य अनुबन्धे ये राजानः हताः, तैः नरेन्द्रैः कस्तव अपकारः कृतः, इति कथय। भुजयोः बलस्य अतिरेकः सः एव धनं तेन महान् गर्वो यस्य तादृशं मां अपराजित्वा एव अभिमानः क्रियते, त्वया सम्प्रति, नोचितमेतत्।

(31) 'चन्द्रिका' अप्रियाणीति– दुर्योधन के कटुवचनों से आहत होकर, भीम, दुर्योधन को मारने के लिए उद्यत होता है, तब अर्जुन उसे रोकते हुए कहता है कि–

आर्य कृपा कीजिए, क्रोध से बस कीजिए, क्योंकि अब यह दुर्योधन केवल वाणी से ही अप्रिय करने में समर्थ है, कर्म से कुछ भी नहीं कर सकता है। इसलिए सौ भाइयों के मरने से दुःखी, इसके प्रलापों पर ध्यान देने एवं उनसे दुःखी तथा क्रोधित होने की लेशमात्र भी आवश्यकता नहीं है।

विशेष–(i) अर्जुन का गम्भीर व्यक्तित्व अभिव्यक्त हुआ है।

(ii) सरल भाषा एवं अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **करोति**– √कृ+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(ii) **हतभ्रातृशतः**– हतं मारितं भ्रातॄणां बन्धूनां शतं यस्य सः।

संस्कृत व्याख्या– विनष्टं भ्रातृशतं यस्य तथाभूतः, अतएव अतीव दुःखी एषः दुर्योधनः वाण्या खलु अनिष्टानि कर्तुं शक्नोति, युद्धे

नैव। अतएव अस्य दुर्योधनस्य निरर्थकैः वचोभिः का पीड़ा? नैव कापि इत्यर्थः। अनेन नैव एषः क्रोधस्य पात्रमस्ति, क्षन्तव्यः, इति।

(32) 'चन्द्रिका' अद्यैवेति– अर्जुन द्वारा समझाने पर भी भीम, कटुवचन बोलने वाले दुर्योधन को सम्बोधित करके कहता है कि–

अरे, रे कटुप्रलाप करने वाले! मेरी गदा के अग्रभाग के आघात से तेरी हड्डियों को चूर–चूर करने में यदि पूजनीय धृतराष्ट्र व्यवधान नहीं करें, तो मैं आज ही तुझे मारकर दुःशासन के पास ही परलोक में नहीं भेज देता? अर्थात् अभी तुझे मृत्यु के घाट उतार देता।

विशेष–(i) भीम के क्रोध की चरमसीमा प्रदर्शित हुई है।

(ii) वीररस एवं वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) कुरुते– √कृ+लट्, आत्मने, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(ii) कटुप्रलापिन्– कटुः अप्रियः प्रलापो यस्य सः, तत्सम्बुद्धौ।

संस्कृत व्याख्या–हे कटुप्रलापिन्! मम गदायाः अग्रभागेन छिद्यमानानि, अतएव शब्दायमानानि अस्थीनि, यत्र तथाभूते तव देहे तातो धृतराष्ट्रः विघ्नं न कुर्यात्, तर्हि अधुनैव त्वां न हिंसेयम्, इति न, अवश्यमेव हिंसेयम्, तथा च तत्र दुःशासनस्य अनुगमनाय प्रेतलोके प्रेषयेयम्।

(33) 'चन्द्रिका' शोकमिति– दुर्योधन को सम्बोधित करके, क्रुद्ध भीम फिर से कहता है कि–

अरे मूर्ख! मैं तो तुझे कभी का मार डालता, किन्तु तुझे स्त्रियों के समान रुलाना था, तेरे सामने ही तेरे छोटे भाई दुःशासन की छाती को चीरकर उसका रक्त पान करना था। इसलिए वस्तुतः तेरे जीवित रहने में आज तक केवल ये दो कारण ही रहे हैं। अन्यथा तो तेरे वंश रूपी कमलिनी के वन को क्रुद्ध हुए मैंने, कभी का नष्ट–भ्रष्ट कर दिया होता।

विशेष–(i) दुर्योधन से भीम ने अपने मन की बात कही है।

(ii) वीररस का पूर्णपाक हुआ है तथा उपमा, रूपक अलंकारों का सुन्दर प्रयोग हुआ है एवं मन्दाक्रान्ता छन्द प्रयुक्त हुआ है।

(iii) कवि का हस्तिविज्ञान विषयक ज्ञान भी प्रदर्शित हुआ है।

व्या.टि.–(i) परित्याजितः–परि+√त्यज्+णिच्+क्त, छोड़ा गया।

संस्कृत व्याख्या– युष्माकं कुलं कमलिनीव तस्य अनायासेनैव उच्छेदात् तत्र कुंजरे गजे इव तथाभूते भीमसेने कुपिते यत् कारणम् तत् कथयामि, इति प्रथमं स्त्रीवत् नयनयोः तव अश्रुजलं द्रष्टुं वांछामि स्म। एवं च यत् तव भ्रातुः दुःशासनस्य उरोविदारणे त्वं साक्षी स्याः, इत्यपि द्वितीयं कारणमासीत्। अन्यथा तु इदानीं यावत् दुष्टं त्वां नरपतिं परलोकवासी कुर्याम्, नैव विषयेऽस्मिन् संशयलेशोऽपि विद्यते, इति।

(34) 'चन्द्रिका' द्रक्ष्यन्तीति– भीम के वचनों को सुनकर, क्रुद्ध दुर्योधन उससे कहता है कि–

हे पाण्डवपशो! मैं तेरी तरह डींगें हाँकने वाला नहीं हूँ। तेरे बन्धु–बान्धव युद्धभूमि में मेरी गदा से तोड़ी गयी वक्षःस्थल की हड्डियों की माला से सुशोभित तुझे सोया हुआ शीघ्र ही देखेंगे अर्थात् मैं तुझे शीघ्र ही युद्धभूमि में मार डालूँगा, क्योंकि मैं केवल कहता नहीं हूँ, करता भी हूँ।

विशेष–(i) दुर्योधन का बड़बोला चरित्र उद्घाटित हुआ है।

(ii) समस्त पदावली, अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **द्रक्ष्यन्ति**– √दृश्+लृट्, प्रथमपुरुष, बहुवचन।

संस्कृत व्याख्या– पाण्डवाः मम गदया छिन्नानि यानि वक्षो–ऽस्थीनि, तेषां वेणिका प्रवाहो मालां वा तामेव भयानकं अलंकरणं यस्य तथाभूतं त्वां अचिरमेव चिराय प्रसुप्तं मृतमित्यर्थः द्रक्ष्यन्ति।

(35) 'चन्द्रिका' पीनाभ्यामिति– दुर्योधन के उक्त कथन के बाद, भीमसेन भी किंचित् हँसकर दुर्योधन से कहता है कि–

कल प्रातःकाल में ही सभी लोगों द्वारा देखते हुए, अर्थात् उन सभी की साक्षी में, अपने प्रचण्ड भुजदण्ड से घुमायी हुई, भयंकर गदा के प्रहार से चूर–चूर किए हुए, ऊरूओं वाले, तेरे सिर पर पैर रखकर, जिनमें तू ही प्रमुख है, इसप्रकार के तेरे भाइयों के समूह को मारकर, बहते हुए गाढ़े रक्तरूपी चन्दन को नख से शिखा तक लपेटे हुए, मैं स्वयं ही भीषण आभूषण का अनुभव करूँगा।

विशेष–(i) प्रस्तुत उक्ति में वीररस का पूर्ण परिपाक हुआ है।

(ii) महाकवि की चित्रात्मक एवं मनभावन शैली, गौड़ी रीति, रूपक अलंकार एवं स्रग्धरा छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **आधाय**– आ+ √धा+क्त्वा (ल्यप्) रखकर।

संस्कृत व्याख्या– परेद्यवि प्रभाते खलु सर्वेषां जनानां समक्षं स्व पीनाभ्यां भुजाभ्यां भ्रमिता या गुर्वी गदा, तस्याः प्रहारैः निष्पिष्टौ ऊरू यस्य तथोक्तस्य नृशंसस्य तव शिरसि चरणं निधाय, पिण्डीभूतेन आर्द्रेण च त्वमेव मुख्यो यत्र तादृशस्य भ्रातॄणां समूहस्य विदलनेन विगलद् यत् असृक् रक्तमिति, तदेव चन्दनं तेन किल नखशिखपर्यन्तं लिप्तः स्वयं भयानकं रुधिरलेपालंकरणम्, अनुभवितास्मि, इति।

(36) 'चन्द्रिका' कुर्वन्त्विति– इसी अवसर पर नेपथ्य से भीम और अर्जुन के लिए युधिष्ठिर का सन्देश इसप्रकार प्राप्त होता है कि–

सभी सम्माननीय लोग, मरे हुए अपने परिजनों, सम्बन्धियों के शरीरों का अग्निसंस्कार कर लेवें, इसके अलावा बन्धुलोग मरे हुए अपने बन्धुओं को अश्रुमिश्रित जलांजलि भारी मन से प्रदान करें, गृध्र एवं श्रृगाल आदि जीवों द्वारा खण्डित, मृत मनुष्यों के अंगों को वन में खोज लेवें, क्योंकि शत्रुओं के साथ–साथ अब तो सूर्य भी अस्ताचल को प्राप्त हो गया है। इसके अतिरिक्त सभी सेनाएँ अपने–अपने शिविरों में प्रस्थान करें, क्योंकि अब युद्ध की सम्भावना समाप्त हो गयी है।

विशेष–(i) उक्त कथन से युद्ध की समाप्ति की घोषणा के साथ–साथ उसके बाद किए जाने वाले कृत्यों की सूचना दी गयी है।

(ii) गौड़ी रीति, स्रग्धरा छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **कुर्वन्तु**– √कृ+लोट्, प्रथमपुरुष, बहुवचन, करें।

(ii) **संह्रियन्ताम्**– सम्+ √हृञ् अपनयने+लोट्,आ., प्र.पु., ब.व.।

संस्कृत व्याख्या– ये आप्ताः जनाः सन्ति, ते रणभूमौ मृतानां शरीरभारान् वह्निसात्, अन्तिमसंस्कारः इति कुर्वन्तु, एवं च अमी अन्ये बान्धवाः युद्धमृतेभ्यः सम्बन्धिभ्यः अश्रुमिश्रितं जलांजलिं येन केनापि प्रकारेण शोकपूर्णेन तर्पयन्तु। तथा च गृध्रकंकादिमांसाशिपक्षिभिः खण्डशः कृतान् स्वस्वबन्धुगात्राणां अंगानि वनं गत्वा तेषां मार्गणं कुर्वन्तु,

यतोहि अयं भास्वान् सूर्यः शत्रुभिः सह अस्तंगतः, इति अर्थात् यथा शत्रवः नाशं गतवन्तः तथैव रविः अयमपि अदर्शनं गतवान्। अतएव सैन्यानि उपसंह्रियन्ताम् युद्धक्षेत्रादिति।

(37) 'चन्द्रिका' कर्णक्रोधेनेति–युधिष्ठिर द्वारा करायी गयी युद्ध समाप्ति की घोषणा के तुरन्त बाद ही, नेपथ्य से अश्वत्थामा की आवाज़ सुनायी देती है, वह कहता है कि–

अरे, बाहुबल के घमण्डी अर्जुन! तू कहाँ भाग रहा है? इतने दिनों तक तो मैंने कर्ण के ऊपर क्रोध करने के कारण तुम्हें जीतने वाले, इस धनुष का परित्याग कर दिया था, इसीकारण तूने वीरों से रहित इस रणभूमि में अपने पराक्रम का प्रदर्शन कर लिया, अब जबकि किसी से भी न हारने वाले, अपने पिताश्री के सिर के स्पर्शरूप अपमान को स्मरण करके, पाण्डवों के लिए कालरूपी अग्नि के समान, धृष्ट–द्युम्न की सेना का पूर्णरूप से विनाश करने वाला, यह द्रोणपुत्र अश्वत्थामा आ गया है।

विशेष–(i) अश्वत्थामा का दम्भी चरित्र प्रदर्शित हुआ है।

(ii) ओज गुण, वीररस तथा स्रग्धरा छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) **अस्मि**– √अस्+लट्, उत्तमपुरुष, एकवचन, हूँ।

संस्कृत व्याख्या– युष्मान् जेतुं शीलं यस्य तत् तथाभूतं भवद्विजयि पुरःस्थितं कार्मुकं कर्णस्य उपरि जातेन क्रोधेन एतावद् दिनपर्यन्तं त्यक्तम्, सम्प्रति तस्य कर्णस्य विनाशात् एतत् पुनर्गृहीतमिति, वीररहिते वने इव अस्मिन् रणे भवतां प्रौढ़ः पराक्रमः अभवत्, पितुः द्रोणस्य शिरसि स्पर्शं स्मृत्वा खलु पाण्डुपुत्राणां भवतां प्रलयाग्निः समः धृष्टद्युम्नस्य सेनानां विनाशकः द्रोणस्य अपत्यं पुमान् अयं अश्वत्थामा अहं प्राप्तोऽस्मि।

(38) 'चन्द्रिका' कर्णेनेति– दुर्योधन द्वारा स्वागत किए जाने पर अश्वत्थामा अपनी आँखों में आँसू भरकर कहता है कि–

हे राजन्, दुर्योधन! आपके मित्र कर्ण ने अनेक प्रकार की मीठी मीठी बातें कहकर युद्धक्षेत्र में जो भी किया, वह आपको पता ही चल गया है। अब जबकि यह द्रोणाचार्य का पुत्र अश्वत्थामा शत्रु के समक्ष

आ गया है, इसलिए आप अपने शत्रु से बदला लेने की चिन्ता को छोड़ दीजिए, क्योंकि यह दायित्व अब मेरा है।

विशेष–(i) सरलभाषा व वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग हुआ है

व्या.टि.–(i) **विदितम्**– √विद् ज्ञाने+क्त, जाना गया।

(ii) **त्यज**– √त्यज्+लोट्, मध्यम पुरुष, एक वचन, छोड़ दो।

संस्कृत व्याख्या– अंगराजेन कर्णेन यत् श्रवणसुन्दरं सुश्राव्यमिति, कथितमासीत्, तत् बहुलं कथयित्वा अपि युद्धभूमौ यत् विहितं तत् भवता ज्ञातमेव सम्यक्‌रूपेण, अधुना एषः तव पुरो वर्तमानः द्रोणपुत्रः अश्वत्थामा सज्यं तथाभूतं धनुर्यस्य तादृशः सन् शत्रूणां सम्मुखं अभ्यागतोऽस्ति, अतएव शत्रुकृतापकारस्य प्रतिकारविषये चिन्तां जहि।

(39) 'चन्द्रिका' अवसाने, इति– अश्वत्थामा की बात सुनकर कर्ण मित्र दुर्योधन असूयापूर्वक उससे कहता है कि–

हे आचार्य पुत्र! आपने कर्ण के वध के बाद ही युद्ध करने का निर्णय लिया था। इसलिए अब मेरे वध की भी प्रतीक्षा कर लीजिए, क्योंकि कर्ण में तथा मेरे में किसीप्रकार का भी कोई अन्तर नहीं है।

विशेष–(i) दुर्योधन का मित्रभाव अभिव्यक्त हुआ है।

(ii) सरलभाषा व अनुष्टुप् छन्द का सुन्दर प्रयोग दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **योद्धव्यम्**– √युध्+तव्यत्, युद्ध करना चाहिए।

(ii) **प्रतीक्षस्व**–प्रति+ √ईक्ष्+लोट्,आत्मने, मध्यमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– अंगराजस्य कर्णस्य मृते सति खलु त्वया योद्धव्यम् आसीत् यद्येवं भवतां निश्चयोऽस्ति, तर्हि ममापि अवसानं प्रतिपालय, यतोहि कः कर्णः? कः सुयोधनः? आवयोः नैव भेदोऽस्ति।

(40) 'चन्द्रिका' अकलितमिति– दुर्योधन द्वारा अश्वत्थामा को इसप्रकार कटुवचन कहने पर, धृतराष्ट्र उसे समझाते हुए कहते हैं कि पुत्र! इस अवसर पर ऐसे वीर को विरक्त करना उचित नहीं है, तो दुर्योधन अपने पिता से कहता है कि–

पिताजी, मैंने क्या इससे कोई झूठ कहा है, आप ही देखिए बड़े–बड़े धनुर्धर योद्धा भी जिसकी सामर्थ्य को न जान सके। हम लोगों के भाग्य के प्रतिकूल होने पर भी जो हमारे लिए युद्धभूमि में

वीरगति को प्राप्त हो गया। उस मित्र, अंग देश के राजा, कर्ण की ही यह मेरे सामने निन्दा कर रहा था, तब आप ही बताइए कि अर्जुन तथा इस अश्वत्थामा में क्या अन्तर रह गया है? मुझे तो ये दोनों ही मेरे शत्रु के समान ही प्रतीत हो रहे हैं।

विशेष–(i) अपने मित्र मृत कर्ण के प्रति भी दुर्योधन की गहन आस्था एवं विश्वास की अभिव्यक्ति हुई है।

(ii) भाषा की सरलता व मालिनी छन्द दर्शनीय बन पड़े हैं।

व्या.टि.–(i) **परिवदति**– परि+ √वद्+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(ii) **कथय**– √कथ्+लोट्, मध्यमपुरुष, एकवचन, कहो।

संस्कृत व्याख्या– आत्ताः चापाः यैः तैः महावीरैः क्षत्रियैः अविज्ञातमाहात्म्यं सामर्थ्यमिति, यस्य तथाभूतं युष्माकं भाग्यदोषात् प्रतिकूलदैवात्, इत्यर्थः, रणशिरसि विनष्टं सुहृदं कर्णं मम समक्षेव निन्दति, एषः अश्वत्थामा, अनेन तस्मिन् अर्जुने अस्मिन् अश्वत्थामनि को भेदोऽस्ति, नैव कोऽपि, मम कृते तु उभावपि शत्रुः खलु वर्तेते।

(41) 'चन्द्रिका' स्मरतीति– दुर्योधन द्वारा अपनी कटुवाणी से अश्वत्थामा को युद्ध से विरक्त कर देने पर, धृतराष्ट्र अपनी ओर से संजय के माध्यम से उसे संदेश भेजते हुए कहते हैं कि–

हे अश्वत्थामा! तुम्हारा और दुर्योधन का बाल्यकाल गान्धारी की गोद में ही बड़ा हुआ है, क्योंकि तुमने भी दुर्योधन के समान ही, गान्धारी के एक स्तन का दूध बाँटकर प्रेमपूर्वक पिया है, जरा उसे भी स्मरण करो। बाल्यावस्था में अपने मलिन वस्त्रों से तुम भी मेरे बहुमूल्य वस्त्रों को गन्दा कर देते थे, क्या यह सब तुम्हें याद नहीं है? अब जबकि अपने सौ भाइयों के मरने के कारण शोक से अत्यधिक परेशान एवं कर्ण के ऊपर अपेक्षाकृत अधिक ही प्रेम होने से इस दुर्योधन द्वारा कहे गए, इन कटुवचनों पर तुम्हें ध्यान नहीं देना चाहिए तथा इससमय पाण्डवों के विरुद्ध युद्ध में दुर्योधन का ही साथ देना चाहिए।

विशेष–(i) धृतराष्ट्र का राजनैतिक चातुर्य प्रदर्शित हुआ है।

(ii) भावों के अनुसार भाषा व हरिणी छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) **स्मरति**– √स्मृ+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(ii) **विभज्य**– वि+ √भज्+क्त्वा (ल्यप्), बाँटकर।

संस्कृत व्याख्या– शैशवकाले अमुना दुर्योधनेन सह स्तनविभागं कृत्वा दुग्धं निपीतम् खलु, गान्धार्याः, एतत् सर्वं किं भवान् न स्मरति? यतोहि अनेन एषः दुर्योधनः भवतः भ्रातृकल्पोऽस्ति। एवं च ममांके तव शरीरपरिवर्तनैः विदलितं मम पट्टवस्त्रं अपि भवान् न स्मरति? मयापि सुतः इव त्वं पालितोऽसि, तस्मात् कारणात् सहोदराणाम् एकोनशत-संख्यकानां मृत्युना प्रवृद्धात् कनिष्ठस्य मित्रस्य कर्णस्य निधनात् अतीव शोकसम्पन्नोऽयम् दुर्योधनः, तव कृते सहोदरसमोऽस्ति, अतएव नैव एनं प्रति क्रोधं करोतु भवान्, नैवायं क्रोधयोग्योऽस्ति दुर्योधनः, इति।

(42) 'चन्द्रिका' यन्मोचितः, इति– इसी क्रम में संजय को रोककर पुनः धृतराष्ट्र, अश्वत्थामा के लिए सन्देश देते हुए कहते हैं कि

इसके अतिरिक्त उस अश्वत्थामा से यह भी कहना कि– युधिष्ठिर ने असत्य संभाषण करके, तुम्हारे पिताश्री से शस्त्रों को छुड़वा दिया था। उसके बाद उनका किसप्रकार अपमान हुआ है, इन दोनों बातों को भी भलीप्रकार विचार करके, साथ ही, अपने बल एवं पुरुषार्थ के विषय में चिन्तन करते हुए, दुर्योधन द्वारा कही गयी बातों को भुलाकर, जो भी उचित हो, वही तुम्हें इस अवस्था में करना चाहिए।

विशेष–(i) धृतराष्ट्र के संदेश से उनका कुटिल राजनीति विषयक स्वार्थ अधिक प्रतीत हो रहा है।

(ii) वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **मोचितः**– √मुच्+णिच्+क्त, छुड़ा दिया।

(ii) **अभूत्**– √भू+ लुङ्लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन, हुआ।

संस्कृत व्याख्या– यस्मात् तव जनकः द्रोणाचार्यः युधिष्ठिरस्य अलीकभाषणेन शस्त्रं खलु त्याजितः। यस्मात् तादृशः लोकोत्तरपराक्रम-शालिनः लोकविदितः धृष्टद्युम्नकृतमौलिस्पर्शादिरूपः तिरस्कारः अभवत् एतत् सर्वमपि अनुस्मृत्य, आत्मनि शरीरस्थितां शक्तिम् उत्साहातिरेकं च सम्यक्तया विचिन्त्य, दुर्योधनेन कथितं विरुद्धं वचनं विस्मृत्य इति यदपि उचितं मन्यते भवान् तदेव विदधातु, अस्मिन्नवसरे।

'चन्द्रिका' हिन्दी व्याख्या, संस्कृत व्याख्या

षष्ठ अङ्क

प्रस्तुत अंक में चार्वाक नामक राक्षस द्वारा मुनि वेष में आकर, युधिष्ठिर और द्रौपदी को भीम की मृत्यु का झूठा समाचार देकर, भ्रमित किया गया है, जिसके कारण युधिष्ठिर एवं द्रौपदी का विलाप तथा अन्त में भीम द्वारा उपस्थित होकर द्रौपदी के केश संवरण का वर्णन हुआ है तथा श्रीकृष्ण द्वारा पाण्डवों को आशीर्वाद प्रदान किया गया है।

(1) 'चन्द्रिका' तीर्णे, इति– युधिष्ठिर और द्रौपदी मंच पर प्रवेश करते हैं तथा युधिष्ठिर लम्बा श्वास लेकर कहता है कि– कष्ट है,

भीष्मरूपी महासागर को किसीप्रकार प्रयत्नपूर्वक पार करने पर, द्रोणरूपी अग्नि को किसी प्रकार शान्त कर देने पर, कर्णरूपी विषधर अर्थात् महासर्प को भी विनष्ट कर देने पर तथा शल्य को भी परलोक भेज देने पर, विजय की प्राप्ति में कुछ ही शेष रह गया था कि हमारे प्रिय और साहसी भीम ने अपनी वाणी से हम सभी के जीवन को संशय में डाल दिया है।

विशेष–(i) भीम ने प्रतिज्ञा की थी कि यदि मैं दुर्योधन की जँघा को विदीर्ण करके, उसका वध नहीं करूँगा तो अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा, यहाँ उसकी इसी प्रतिज्ञा की ओर संकेत किया गया है।

(ii) युधिष्ठिर का चरित्र प्रदर्शित किया गया है।

(iii) गौड़ी वृत्ति व शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का प्रयोग हुआ है।

(iv) भीष्म को महासागर, द्रोण को अग्नि तथा कर्ण को महान् विषैला सर्प कहा गया है। उपमेय तथा उपमान में अभेद की स्थापना के कारण रूपक अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **समारोपिताः**– सम्+आ+√रुह्+णिच्+क्त।

संस्कृत व्याख्या– भीष्ममहार्णवे अतिक्रान्ते, द्रोणकालग्नौ यथाकथंचित् अपि निर्वाणतां गते, उपशान्ते, कर्णः एव आशीविषभोगी तस्य प्रकर्षेण शान्तिं नीते, विनाशिते, इति, मद्रराजे शल्ये परलोकं प्राप्ते सति, अनेन प्रकारेण विजये किंचिदेव अवशिष्टे, साहसप्रियेण भीमेन यदि दुर्योधनं न हनिष्यामि, तदा आत्मानं अग्नौ त्यक्ष्यामि, इति प्रतिज्ञां कृत्वा वेगात्, अस्माकं सर्वेषां पाण्डवानां जीवनं संशये पातितमिति।

(2) 'चन्द्रिका' पंके वेति– युधिष्ठिर वहाँ उपस्थित सेवक बुधक को सम्बोधित करके, सहदेव के लिए कहीं जाकर छिपे हुए, दुर्योधन को खोजने हेतु लोगों को भेजने का संदेश देते हुए कहता है कि–

मछली पकड़कर अपने जीवन का निर्वाह करने वाले, लोग (दाश) कीचड़ या बालुकामय स्थानों में दुर्योधन को खोजने के लिए जावें। इसीप्रकार पैरों द्वारा रौंदी गयीं, लताओं के समूहों का अलग-अलग ज्ञान रखने वाले, ग्वाले सूखे हुए तिनकों के ढ़ेर में उसे खोजें। हाथी और व्याघ्रों से युक्त जंगलों में रहने वाले तथा गुफाओं एवं सुरंगों का ज्ञान रखने वाले चाण्डाल लोग, उसे इन स्थलों पर देखें और सिद्धमहात्माओं के वेष को धारण करने में निपुण, गुप्तचर प्रत्येक मुनि के आश्रम में जाकर इसका पता करें।

विशेष–(i) तात्कालिक गुप्तचर व्यवस्था पर प्रकाश पड़ा है।

(ii) दुर्योधन भीम द्वारा मारे जाने के भय से कहीं जाकर छिप गया है, उसी को खोजने का उपक्रम किया जा रहा है।

(iii) तात्कालिक समाज का चित्र भी प्रस्तुत हुआ है।

(iv) गौड़ी रीति एवं स्रग्धरा छन्द का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) **यान्तु**– √इण्गतौ+ लोट्, प्रथमपुरुष, बहुवचन।

(ii) **संचरन्तु**– सम्+ √चर्+ लोट्, प्रथमपुरुष, बहुवचन।

संस्कृत व्याख्या– के के गुप्तचराः कुत्र नियोक्तव्याः, दुर्योधनस्य अन्वेषणाय इति कथ्यते– गुप्तमार्गज्ञातारः मत्स्यजीविनः कर्दमे, पंकिले जलादौ, सिकतामयप्रदेशे वा गच्छन्तु, पादाघातैः विदलिताः याः लताः तासां समूहे ज्ञानं येषां ते गोपाः शुष्कवीरुत्तृणयुक्तेषु स्थलेषु संचरन्तु गजशार्दूलादिदुर्गमस्थलेषु चाण्डालपुरवेदिनः ये च अन्येऽपि भूगर्भमार्ग-

गुहागर्तादिज्ञातारः, ये च सिद्धपुरुषचिह्नधारिणः ते चराः प्रतिमुनिवास– स्थानं आश्रमेषु वा चरन्तु, दुर्योधनम् अन्वेषयन्तु सम्यक्तया।

(3) 'चन्द्रिका' ज्ञेया इति– तभी बुधक नामक सेवक को रोक कर फिर से युधिष्ठिर कहते हैं कि 'ठहरो, तुम सहदेव से यह भी कहना कि– इसके अलावा जो लोग एकान्त में शंकायुक्त होकर बात कर रहे हों, सोए हुए हों, रोगी या मदिरा पान करके उसके नशे में पड़े हुए हों, जिन स्थलों पर जाने में हरिण डर रहे हों तथा पक्षी शब्द कर रहे हों, जहाँ पर दुर्योधन के पदचिह्न की आकृति दिखायी दें, इत्यादि सभी स्थानों पर दुर्योधन को ढूँढ़ना चाहिए।

विशेष–(i) उपजाति छन्द का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(ii) दुर्योधन के छिपने के सभी सम्भावित स्थानों का उल्लेख हुआ है। साथ ही, युधिष्ठिर की सूक्ष्मदृष्टि की प्रतीति भी हो रही है।

व्या.टि.–(i) **सुप्ताः**– √सुप्+क्त, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन।

(ii) **आलपन्तः**– आ+√लप्+शतृ, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन।

संस्कृत व्याख्या– गुप्तचरैः दुर्योधनः कथम् अन्वेष्टव्यः, इति कथ्यते पुनः युधिष्ठिरेण– ये एकान्ते सशंकं परस्परं भाषमाणाः तेषु, ये शयिताः, रोगैः पीड़िताः, मदिरापानेन मत्ताः, तेषु मध्येऽपि गत्वा दर्शनीयः सः, येषु स्थलेषु हरिणानां भयम्, पक्षिणां उच्चैः आक्रन्दनम्, यत्र च रेखाध्वजपद्मादिराजचिह्नानि भवेत् पृथिव्यां तत्रापि अन्वेष्टव्यः सः।

(4) 'चन्द्रिका' त्रस्तमिति– धृष्टद्युम्न आकर युधिष्ठिर को भीम और दुर्योधन के मध्य युद्ध होने की सूचना देता है, तो युधिष्ठिर को एक बार तो विश्वास ही नहीं होता है और वे कहते हैं कि–

स्वभाव से ही डरे हुए, अत्यधिक पराक्रमी व्यक्ति का मन, भय के कारण के न होने पर भी शिथिल हो जाता है। इसलिए युद्धक्षेत्र में गदा को उठाए हुए, भीम के पराक्रम से यद्यपि मैं भलीभाँति परिचित हूँ, किन्तु फिर भी उसके प्रति स्नेह के कारण मेरा मन शंकित हो रहा है।

विशेष–(i) दुर्योधन के साथ युद्ध में प्रबल पराक्रमी भीम के विषय में युधिष्ठिर के मन की शंका की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

(ii) विशेषोक्ति अलंकार व वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग है।

व्या.टि.–(i) **प्रयाति**– प्र+ √इण्+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(ii) **जानामि**– √ज्ञा+लट्, उत्तमपुरुष, एकवचन, जानता हूँ।

संस्कृत व्याख्या– भयकारणम् अभावेऽपि प्रबलपराक्रमस्य पुरुषस्य मनः प्रकृत्या भीतं सत् यथार्थज्ञाननिश्चयविषये मन्दताम् प्रयाति, अनेनैव युद्धेषु उत्तोलितगदस्य भीमस्य भुजयोः बलं जानन्नपि तं प्रति स्नेहवशात् तस्य भीमस्य विजयस्य विषये शंकितोऽस्मि, इति।

(5) 'चन्द्रिका' गुरूणामिति–तत्पश्चात् युधिष्ठिर पास में स्थित द्रौपदी को सम्बोधित करके कहता है कि– हे सुक्षत्रिये!

गुरु, बन्धुजनों तथा हजारों राजाओं के समक्ष, भरी सभा में पूर्व में जो हम लोगों का अपमान हुआ था, हे प्रियतमे! उसका अन्त तो केवल दो ही मार्गों के माध्यम से होना सम्भव है। पहला तो हम लोग ही अपने प्राणों का त्याग कर दें या फिर कुरुकुल के कलंकस्वरूप उस दुरात्मा दुर्योधन की आज मृत्यु हो जाए।

विशेष–(i) युधिष्ठिर के मन की दुविधा प्रदर्शित हुई है।

(ii) भाषा की सरलता एवं शिखरिणी छन्द दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **अभूत्**– √भू+लुङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन, हुआ।

(ii) **गमयति**– √गम्+णिच्, लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन ।

संस्कृत व्याख्या– द्रोणादीनाम् आचार्याणां धार्तराष्ट्रादीनां क्षितिपालानां सहस्रं तेषाम् अग्रे पुरा द्यूतकाले नृपसदसि तस्मिन् यः अनुभूयमानः तिरस्कारः, तस्य अन्तं तु अस्मिन् दिने बाहुल्येन द्वयमपि एतत् प्रापयति, अस्माकं सर्वेषां प्राणानां क्षयः स्यात, कौरवाधमस्य दुर्योधनस्य वा अद्य मृत्युः भवेत्।

(6) 'चन्द्रिका' नूनमिति– उक्त कथन के बाद युधिष्ठिर फिर से स्वयं ही कहता है कि– अथवा सन्देह की आवश्यकता नहीं है–

प्रतिज्ञा के भंग से डरा हुआ भीम आज निश्चय ही, तुम्हारे केशों को खींचने वाले, उस अधम दुर्योधन को मारकर, तुम्हारे केशों को सँवारेगा। इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है।

विशेष–(i) भीम और दुर्योधन के युद्ध के परिणाम के सम्बन्ध में युधिष्ठिर का अन्तर्द्वन्द्व प्रदर्शित किया गया है।

(ii) तुल्ययोगितालंकार एवं अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) **बध्यते**– √बन्ध्+कर्मवाच्य, प्र.पु, एकवचन।

(ii) प्रतिज्ञायाः भंगेन कातरः यः सः भीरुः, तेन भीमेन।

संस्कृत व्याख्या– युधिष्ठिरः द्रौपदीं प्रति कथयति यत्– अस्मिन् दिने प्रतिज्ञापूर्त्तौ शंकितेन लोकप्रसिद्धेन तेन शूरवीरेण भीमेन तव केशकलापः अवश्यमेव संयम्यते। तस्य केशाकर्षकस्य क्षमस्य कुरुराजस्य वधं कृत्वा, इति।

(7) **'चन्द्रिका' जन्मेन्दोरिति**– जलाशय में जाकर छिपे हुए दुर्योधन के प्रति कहे गए, भीम के वचनों के विषय में युधिष्ठिर को बताते हुए धृष्टद्युम्न कहता है कि–

हे द्रौपदी के केश और वस्त्रों को खींचने वाले महापापी! इस समय भी तू अपने आपको निष्कलंक चन्द्रवंश में उत्पन्न कहता है तथा अपने सभी भाइयों और बड़े–बड़े वीरों को रणभूमि में खोकर, स्वयं गदा धारण किए हुए है एवं दुःशासन के थोड़े गर्म रक्तरूपी मदिरा को पीने के कारण मदमस्त हुए मुझ भीम को शत्रु मान रहा है। अरे अहंकार से अन्धे! यहाँ तक कि तू तो मधु और कैटभ जैसे राक्षसों के शत्रु भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति भी उद्दण्डता का व्यवहार करता है। अरे मनुष्यरूपी पशु! मेरे भय से युद्धभूमि का त्याग करके, तू यहाँ आकर कीचड़ में छिपकर बैठा हुआ है।

विशेष–(i) भीम का भयंकर आक्रोश, गर्वोक्ति एवं दुर्योधन का कायराना व्यवहार अभिव्यक्त हुआ है।

(ii) वीररस व शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) **विहाय**– वि+ √हा+क्त्वा (ल्यप) छोड़कर।

(ii) **व्यपदिशसि**–वि+अप+ √दिश्+लट्, मध्यमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– हे नराधम! चन्द्रमसः निर्दोषे वंशे उत्पत्तिं कथयसि, अद्यापि भ्रात्रादीनां वधे गदां धारयसि? दुःशासनस्य यत् मन्दोष्णं शोणितं तदेव मदिरा तथा मत्तः तम्, मां शत्रुः मन्यसे, हे दर्पेण

अन्धः! मधुकैटभासुरौ शत्रौ भगवति वासुदेवेऽपि उद्धतं प्रयतसे, सम्प्रति च मम भयात् संग्रामं त्यक्त्वा पंके लीनो भूत्वा तिष्ठसि, नैव लज्जसे?

(8) 'चन्द्रिका' पांचाल्या इति– इसी क्रम में जलाशय में छिपे हुए दुर्योधन को सम्बोधित करके भीम फिर से कहता है कि–

हे कौरवाधम! मैंने तो कौरवों के अन्तःपुर में रहने वाली स्त्रियों के पतियों का वध करके, उनके खुले हुए केशपाशों द्वारा द्रौपदी की क्रोधरूपी अग्नि को शान्त कर दिया है, किन्तु अपनी आँखों के सामने ही अपने छोटे भाई दुःशासन की छाती के बहते हुए रक्त को पीते हुए मुझे देखकर भी तूने क्या किया? तेरा तो अनवसर में ही अर्थात् प्राणों का त्याग करने से पहले ही अभिमान समाप्त हो गया है।

विशेष–(i) भीमसेन ने दुर्योधन को युद्ध के लिए ललकारा है।

(ii) वीररस एवं स्रग्धरा छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **निरीक्ष्य**– निर्+ईक्ष्+क्त्वा (ल्यप्) देखकर।

(ii) **प्रसह्य**– प्र+ √सह्+क्त्वा (ल्यप्), बलपूर्वक।

संस्कृत व्याख्या– मया भीमेन कौरवाणाम् अन्तःपुरेषु वसन्ति याः स्त्रियः तासाम् पतीनां बलपूर्वकं वधं कृत्वा उन्मुक्तैः कचसमूहैः हेतुभूतैः द्रौपद्याः क्रोधाग्निः शान्तप्रायः एव कृतः, तव भ्रातुः दुःशासनस्य उरःस्थलात् निःसरत् रुधिरं आस्वाद्यमानं मां भीमसेनं अवलोक्य क्रोधात् मयि त्वया किं कृतम्? नैव किमपि, इति, यस्मात् कारणात् अनवसरे अहंकारः त्वया त्यक्तः, अधुना च जलाशये निलीयसे?

(9) 'चन्द्रिका' त्यक्त्वेति– युधिष्ठिर द्वारा यह पूछने पर भीम की ललकार सुनकर, क्या दुर्योधन जलाशय से निकला? तो धृष्टद्युम्न कहता है कि– भला कैसे नहीं निकलता?

उसके बाद, उत्पन्न हुए क्रोध के कारण, जिसके शरीर से अग्नि की विषमय चिनगारियाँ चारों ओर निकल रही थीं, ऐसा वह दुर्योधन, भीम की भुजाओं से मन्दराचल के समान मथे जाने वाले, उस सरोवर से मानो क्षीरसागर से निकलने वाले **कालकूट विष** के समान बाहर निकल आया।

विशेष–(i) चित्रात्मक शैली, उपमा एव रूपक अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द का सुन्दर प्रयोग दर्शनीय है।

(ii) भीम की भुजाओं की उपमा मन्दराचल से, सरोवर की क्षीरसागर से तथा दुर्योधन की कालकूट विष से दी गयी है।

व्या.टि.–(i) **त्यक्त्वा**– √त्यज्+क्त्वा (ल्यप्), छोड़कर।

(ii) निर्गताः क्रोधानलरूपाः तीव्रविषस्य अग्निकणाः यस्मात् सः।

संस्कृत व्याख्या– सम्यक्तया आलोडितात् क्षीरसागरात् निर्गतः 'कालकूट' नाम विषः तमिव क्षिप्तौ यौ मन्दराचलः इव भीमस्य भुजौ तयोः चलनेन ताभिः समुत्पन्नाः क्रोधाग्निरूपाः महाविषस्य अग्निकणाः यस्मिन् तथाभूतः, सः दुर्योधनः वेगपूर्वकं सरोवरस्य तलं विहाय निर्गतः।

(10) 'चन्द्रिका' पंचानामिति– दुर्योधन के जलाशय से बाहर निकलने पर, भीम उसके भय को देखकर कहता है कि–

हे कौरवराज! निराश मत होओ, कवच पहनकर तथा शस्त्र को ग्रहण किए हुए तू, हम पाँचों में से, जिसे भी श्रेष्ठ योद्धा समझता हो, उसके साथ युद्धरूपी उत्सव को करने में समर्थ है।

विशेष–(i) भीम का अपने भाइयों की युद्धविषयक सामर्थ्य के प्रति गहन विश्वास व्यक्त हुआ है।

(ii) सरल भाषा एवं पथ्यावक्त्र छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **मन्यसे**– √मन्+लट्, आत्मने, मध्यमपुरुष, एकवचन।

(ii) **आत्तशस्त्रस्य**– आत्तं गृहीतं शस्त्रं येन सः, तस्य बहुव्रीहि।

संस्कृत व्याख्या– हे सुयोधन! अस्माकं पाण्डवानां मध्ये यमपि एकं पाण्डवं सुखेन योध्यं अवगच्छसि, तेन खलु पाण्डवेन सह धृत–कवचस्य गृहीतं शस्त्रं येन सः तस्य तव संग्राममहोत्सवः भवतु।

(11) 'चन्द्रिका' कर्णेतिति– भीम के युद्ध विषयक प्रस्ताव को सुनकर, उन्हें ईर्ष्यापूर्वक देखते हुए दुर्योधन कहता है कि–

हे भीम! कर्ण का वध करने के कारण अर्जुन और दुःशासन को मारने से तू, इसप्रकार मेरे लिए तो तुम दोनों ही बराबर हो, किन्तु फिर भी साहस प्रिय होने से मैं अप्रिय होते हुए भी, तुम्हारे साथ ही युद्ध करना चाहता हूँ।

विशेष–(i) दुर्योधन के पौरुष की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

(ii) भाषा की सरलता एवं पथ्यावक्त्र छन्द दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **योद्धुम्**– √युध्+तुमुन्, युद्ध करने के लिए।

संस्कृत व्याख्या– कर्णश्च दुःशासनश्च कर्णदुःशासनौ तयोः वधः, तस्मात् हेतोः युवां भीमार्जुनौ खलु मम समानम् एव स्थः, यतोहि कर्णस्य वधात् अर्जुनः, दुःशासनस्य च वधात् त्वम्, किन्तु प्रियं च साहसं यस्य असौ त्वमेव द्वेष्यः अपि युद्धं करणाय इष्टः, त्वया सह योत्स्ये नैव अन्येन सह इति, अभिप्रायः।

(12) 'चन्द्रिका' पूर्यन्तामिति– इसके पश्चात् श्रीकृष्ण द्वारा भेजे गए, सन्देश को युधिष्ठिर को सुनाते हुए धृष्टद्युम्न कहता है कि–

अब आप लोग भीम की विजय में सन्देह न करें। इसलिए आपके राज्याभिषेक के लिए, रत्नजटित कलशों को पवित्र जल से भरा जाए। इसीप्रकार द्रौपदी भी लम्बे समय से खुले हुए, अपने केशपाश को फिर से बाँधने का मंगलकार्य आरम्भ करे, तीक्ष्ण धार को धारण करने वाले, क्षत्रियों का समूल विनाश करने वाले, परशुराम के तथा क्रोध से अन्धे भीम के युद्धभूमि में उतरने पर, विजय में लेशमात्र भी सन्देह नहीं है अर्थात् अब भीम की विजय सुनिश्चित ही है।

विशेष–(i) भीम की विजय में श्रीकृष्ण का आश्वस्त होना सूचित हो रहा है, जिससे उसका युद्धकौशल भी अभिव्यंजित हुआ है।

(ii) द्रौपदी को विजय के आश्वासन के साथ, राज्याभिषेक के अवसर पर की जाने वाली तैयारियों की ओर संकेत किया गया है।

(iii) दीपकालंकार, शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) **करोतु**– √कृ+लोट्, प्रथम पुरुष, एक वचन।

(ii) **परिपतति**– परि+ √पत+लट्, प्रथम पुरुष, एक वचन।

संस्कृत व्याख्या– राज्येऽभिषेक्तुं रत्नखचिताः घटाः पवित्र-जलेन पूर्यन्ताम्, अतीव चिरकालेन मुक्ते केशबन्धननिमित्तं द्रौपदी केशबन्धनरूपोत्सवं विदधातु, शाणितेन परशुना समुज्ज्वलः करः यस्य तस्मिन् परशुरामे, अतीव क्रुद्धे च भीमे समरभुवि आक्रमति, विजय-विषये नैव संशयलेशोऽपि भवति।

(13) 'चन्द्रिका' क्रोधोद्गूर्णेति– द्रौपदी द्वारा शंका करने पर उसे समझाते हुए तथा भीम के साथ ही दुर्योधन के युद्ध की कामना करते हुए युधिष्ठिर कहते हैं कि–

हे क्षत्राणि! वस्तुतः युद्धभूमि में क्रोध से गदा को ताने हुए भीम के समान, दूसरा कोई भी शक्तिशाली नहीं है। इधर, दुर्योधन भी बलराम के समान ही गदायुद्ध में निपुण है। इसलिए धृतराष्ट्र के पुत्र रूपी कमलिनी को उखाड़कर फैंक देने वाले, हाथी के समान बल सम्पन्न, मेरे छोटे भाई भीमसेन का कल्याण होवे और उसी का युद्ध दुर्योधन के साथ हो रहा है, मैं भी ऐसी ही सम्भावना करता हूँ।

विशेष–(i) भीम का व्यक्तित्व अभिचित्रित किया गया है।

(ii) रूपकालंकार तथा शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का प्रयोग है।

(iii) 'सीरिणि' पद का प्रयोग बलराम के लिए हुआ है।

व्या.टि.–(i) **शङ्के**– √शङ्क्+लट्, आत्मने, उत्तमपुरुष, ए.व.।

(ii) उद्दण्डः यः दुर्योधनः सः एव नलिनी, तस्यै गजः इव तस्मै।

संस्कृत व्याख्या– रणभुवि क्रोधेन उद्यता गदा येन असौ तस्य भीमस्य समानबलः कोऽपि नास्ति, किन्तु दुर्योधने भगवति बलभद्रे इव लोकप्रसिद्धा अभ्यस्तं हस्तकर्म येन तस्य भावः तत्ता अस्त्रप्रयोगे हस्त–लाघवम् वर्तते एव, अतः उद्दण्डाः ये दुर्योधनादयः ते एव नलिन्यः तासां हस्तिवत् ध्वंसकाय मे अनुजाय कल्याणम् अस्तु, अहं च तस्य भीमस्य दुर्योधनेन सह वै युद्धं तर्कयामि, इति।

(14) 'चन्द्रिका' पदे, इति– मुनिवेषधारी चार्वाक द्वारा अर्जुन के साथ दुर्योधन का युद्ध होने तथा भीम की मृत्यु का कथन करने पर महाराज युधिष्ठिर उससे आँखों में आँसू भरकर कहते हैं कि–

हे ब्रह्मन्! आपके इस संदिग्ध पद को सुनकर कि–भीम जीवित नहीं है, मुझे अत्यधिक दुःख हो रहा है। यदि वत्स भीम की मृत्यु के सम्बन्ध में मुझे ठीक–ठीक पता चल जाए, तो मैं भी अपने प्राणों को त्यागकर सुखी हो जाऊँ।

विशेष–(i) युधिष्ठिर का जीवन से नैराश्य अभिव्यक्त हुआ है।

(ii) सरलभाषा तथा पथ्यावक्त्र छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **आस्ते**– √आस्+लट्, आत्मने, प्रथमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– युधिष्ठिरः चार्वाक मुनिं प्रति कथयति यत्-संशयिते अस्मिन् पदे प्रकृतविषये इति, भीमः जीवति न वा, इति, अयं युधिष्ठिरः दुःखितः तिष्ठति। अनुजस्य भीमस्य जीवनाभावरूपे निर्णीते सति, अहम् अपि प्राणमोक्षणात् सुखी भवितुं इच्छामि। प्राणत्यागः करिष्यामि, स्वप्रतिज्ञानुसारम्, इति अभिप्रायः।

(15) 'चन्द्रिका' सर्वथेति– भीम की मृत्यु का समाचार छद्म चार्वाक मुनि से सुनकर, दुःखी युधिष्ठिर आँसू बहाते हुए कहते हैं कि–

हे मुनिराज! भीम के समाचार आप संक्षेप में कहिए या फिर विस्तार से कहिए, मैं अपने भाई के सम्बन्ध में कुछ भी अच्छा या बुरा सभी कुछ सुनने के लिए मानसिक रूप से पूर्णतया तैयार हूँ।

विशेष–(i) युधिष्ठिर का समाचार सुनने के लिए दृढ़ निश्चय अभिव्यक्त हुआ है। करुणरस की अभिव्यक्ति भी हो रही है।

(ii) सरल भाषा व अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग भी दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **कथय**– √कथ्+लोट्, मध्यमपुरुष, एकवचन।

(ii) **श्रोतुम्**– √श्रु+तुमुन्, सुनने के लिए ।

संस्कृत व्याख्या– हे ब्रह्मन्! त्वं सर्वप्रकारेण समासात् विस्तारेण वा भीमस्य वृत्तान्तः कीदृशोऽपि स्यात् कथयतु मे, यतोहि अहं शुभं वा अशुभं वा तं समाचारं श्रवणाय मानसिकरूपेण सज्जोऽस्मि।

(16) 'चन्द्रिका' तस्मिन्निति– युधिष्ठिर द्वारा इसप्रकार कहने पर मुनिवेषधारी चार्वाक राक्षस कहता है कि–

सुनिए, कौरवराज दुर्योधन तथा भीम के उस भयंकर शब्द करने वाले, गदायुद्ध में, तभी वहाँ पर कहीं से अकस्मात् ही हल को अस्त्ररूप में धारण करने वाले, बलराम आ गए तथा उनके सामने भी बहुत देर तक युद्ध चलता रहा। उसके बाद, उन्होंने अपने प्रिय शिष्य दुर्योधन को अवसर देखकर एक संकेत किया, जिससे दुर्योधन ने दुःशासन के शत्रु भीम से अपना बदला ले लिया अर्थात् भीम का वध कर दिया।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक के एक चरण के बाद द्रौपदी तथा राक्षस का संवाद प्रयुक्त हुआ है, जिसे श्लोकों में प्रयुक्त होने वाली संवादात्मक शैली के रूप में देखा जा सकता है।

(ii) गौड़ी रीति व शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) **आगतः**– आ+ √गम्+क्त, आ गया।

(ii) **आलम्ब्य**– आ+ √लम्ब्+क्त्वा (ल्यप्), लक्ष्य करके।

संस्कृत व्याख्या– दुर्योधनभीमयोः गदयोः भयंकरध्वनियुक्ते तस्मिन् गदायुद्धे चलिते सति, तत्र अकस्मादेव हलधरो बलरामः आगतवान्। तस्य समक्षमपि युद्धमेतत् बहुकालं यावत् अभवत्, तदैव प्रियशिष्ये दुर्योधने स्वीयं स्नेहातिशयात् एकान्ते सः संकेतः दत्तवान्, यां संज्ञां प्राप्य कुरुश्रेष्ठः दुर्योधनः भीमसेने प्रतिकारं प्राप्तवान्, तस्य वधं कृत्वा, इति।

(17) 'चन्द्रिका' निर्लज्जस्येति– उस राक्षसरूप मुनि से भीमसेन के वध के विषय में सुनकर, युधिष्ठिर प्रलाप करते हुए कहते हैं कि–

हे वत्स! निर्लज्ज मेरे द्वारा जुए के नशे में भी तुझे दाँव पर लगा देने पर, दस हजार हाथियों के समान बल से युक्त होते हुए भी, तूने मर्यादा का पालन करते हुए, उसे अस्वीकार नहीं किया और दुर्योधन की दासता को मान लिया, किन्तु आज मैंने उससे भी बड़ा तेरा कौन सा अपराध कर दिया है? जो तू बन्धुबान्धवों से रहित मुझ अनाथ को क्षणमात्र में ही छोड़कर जा रहा है, तेरा वह पहले वाला प्रेम भला कहाँ गया है?

विशेष–(i) युधिष्ठिर की आन्तरिक वेदना की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। करुणरस का पूर्ण परिपाक हुआ है।

(ii) गौड़ी रीति तथा शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) **अपकृतम्**– अप+ √कृ+क्त, अपकार कर दिया।

(ii) **गम्यते**– √गम्+कर्मवाच्य, जाया जा रहा है।

संस्कृत व्याख्या–हे वत्स, अनुज, भीमसेन! दुष्टं उदरं यस्य तत् दुरोदरं तस्य व्यसनं तस्य द्यूतरतस्य अतएव लज्जारहितस्य मम अनुरागेण क्लिश्यता स्वीकृता दासता, मया अस्मिन् अहनि त्वयि किं

नाम अनिष्टं कृतं येन कारणेन अबान्धवं, अनाश्रयं मां तत्क्षणमेव परित्यज्य त्वं दूरम् गतोऽसि इति। तव प्रीतिः क्व गता सा मां प्रति।

(18) 'चन्द्रिका' स कीचकेति– इसी क्रम में द्रौपदी द्वारा महाराज! यह क्या है? इसप्रकार पूछने पर युधिष्ठिर कहते हैं कि–

हे कृष्णे! और दूसरा क्या है? कीचक, बक, हिडिम्ब तथा किर्मीर जैसे शक्तिशाली दुष्ट लोगों एवं राक्षसों को मारने वाला, मदमस्त, जरासन्धरूपी हाथी की सन्धियों को भी तोड़ डालने में वज्र के समान कठोर, गदारूपी मुद्गर से सुशोभित भुजाओं से युक्त, तुम्हारा प्रिय और मेरा छोटा भाई तथा अर्जुन का गुरु अस्त हो गया है अर्थात् परलोक सिधार गया है।

विशेष–(i) करुणरस, पृथ्वी छन्द का मनभावन प्रयोग हुआ है।

(ii) अज्ञातवास के समय राजा विराट के साले कीचक ने द्रौपदी के साथ अशिष्ट व्यवहार किया था, तो भीम ने गुप्तरूप से उसका वध कर दिया था, यहाँ उसी ओर संकेत किया गया है।

(iii) भीम ने अपने जीवन में अनेक शक्तिशाली राक्षसों को मौत के घाट उतारा, महाकवि ने यहाँ उनका भी कथन किया है।

व्या.टि.–(i) कीचकं निषूदयति, इति तथाभूतः कीचकहन्ता।

संस्कृत व्याख्या– सः लोकप्रसिद्धः कीचकस्य हन्ता, बकश्च हिडिम्बश्च किर्मीरश्च एतेषां राक्षसत्रयां शक्तिशालीनां घातकः, मदान्धो यः मगधाधिपः जरासन्धः स एव महाशक्तिशालित्वात् हस्तवत् आसीत्, तस्य सन्धिस्थानविदारणे, वज्रवत्, इति गदा एव लौहमुद्गरः तेन शोभिना तेन प्रचण्डपराक्रमतया बाहुद्वयेन युक्तः, तव च द्रौपद्याः प्रियतमः, विनाशं गतवान्, निश्चयमेव।

(19) 'चन्द्रिका' दत्त्वेति– इसी क्रम में फिर से पूर्व की स्मृतियों का उल्लेख करके, महाराज युधिष्ठिर विलाप करते हुए कहते हैं कि–

हे पुत्र! कर न देने वाले बड़े–बड़े राजाओं को कर देने के लिए बाध्य करते हुए, सम्पूर्ण पृथ्वी को मेरे अधीन बनाकर भी तू हमेशा लज्जित ही रहता था, जैसे तूने मेरे लिए कोई कार्य ही न किया हो, इसके अलावा मेरे द्वारा जुए में तुझे दाँव पर लगा देने पर भी क्रोध न

करते हुए, तू हमेशा प्रसन्न ही रहता था। इतना ही नहीं, विराट के यहाँ पर भी तो मेरी रक्षा के लिए ही तूने रसोइए के निकृष्ट काम को स्वीकार किया था, हे वत्स! ये सब तेरे अल्प आयु होने के ही चिह्न तो थे, जो मैंने बहुत पहले ही देख लिए थे।

विशेष–(i) अपने प्रिय व्यक्ति की मृत्यु के बाद, उसकी एक–एक क्रिया व्यक्ति की आँखों के सामने चित्रवत् आती है, जिसे यादकर वह और भी अधिक दुःखी होता है, यही मनोविज्ञान है, यहाँ भी भीम के वियोग मे दुःखी युधिष्ठिर के साथ ऐसा ही हो रहा है। महाकवि का मनोविज्ञान विषयक गहन ज्ञान व्यक्त हुआ है।

(ii) भारतीय मान्यता है कि यदि कोई व्यक्ति अत्यधिक अच्छे अर्थात् प्रशंसनीय कार्य कर रहा हो, तो वह अल्पायु होता है। युधिष्ठिर के कथन का यहाँ यही अभिप्राय है।

(iii) करुणरस एवं शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) **दत्वा**– √दा+क्त्वा, देकर।

(ii) लज्जसे, क्रुध्यसि, प्रीयसे, सभी में मध्यमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– हे वत्स! ये अकरदाः राजानः तान् सर्वान् करदाः कृत्वा ते सर्वे मदाधीनाः कृताः, तेषां च सकलभूपालानां भूमिः मह्यं दत्वापि लज्जितवान् असि, यत् च द्यूतक्रीड़ावसरे, मया पणीकृतः तं चिन्तयित्वा नैव कुपितोऽभवः, प्रत्युत् स्निह्यसि, यच्च विराटराजभवने मम स्थित्यर्थं पाचकत्वं उपगतोऽसि, एतानि सर्वाणि लक्षणानि अवलोकितानि मया तव, यानि वस्तुतः तव विनाशशीलस्य अल्पायुषि सम्भूतानि।

(20) 'चन्द्रिका' ज्ञातीति– भीम के वियोग में विलाप करते हुए युधिष्ठिर, कृष्ण के बड़े भाई बलराम को उलाहना देते हुए कहते हैं कि

आपने भीम एवं दुर्योधन के इस अन्तिम युद्ध में दुर्योधन का पक्ष लेते हुए, ज्ञातिविषयक प्रेम की ओर लेशमात्र भी ध्यान नहीं दिया और न ही क्षत्रियों के धर्म के विषय में ही चिन्तन किया, क्योंकि यह नियम है दो क्षत्रियों के द्वन्द्वयुद्ध में वहाँ उपस्थित दर्शकों को पक्षपात रहित होना चाहिए। इतना ही नहीं, मेरे छोटे भाई के साथ, आपने अपने छोटे भाई श्रीकृष्ण की मैत्री के विषय में भी नहीं सोचा। आपका

स्नेह तो अपने प्रिय शिष्य दुर्योधन तथा भीम के प्रति एक समान होना चाहिए था, यह आपका कैसा व्यवहार है? जो आप मुझ अभागे के प्रति इतने विमुख हो गए हैं।

विशेष–(i) बलराम के व्यवहार को लेकर, उनके प्रति युधिष्ठिर की आन्तरिक वेदना की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

(ii) सरल भाषा एवं मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **भवतु**– √भू+लोट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(ii) **भवतः**– भवत्+ङस्, षष्ठी विभक्ति, एक वचन, आपके।

संस्कृत व्याख्या– भवता सपिण्डानुरागः मनसि न कृतः, क्षत्रियाणां यः धर्मः भवति, सोऽपि न गणितः। एवमेव अनुजस्य श्री कृष्णस्य बद्धं प्रसिद्धं सौहार्द्रं अपि मनसि न आदृतम्, भवतः शिष्ययोः गदायुद्धेऽन्तेवासिनोः भीमदुर्योधनयोः शिष्यवात्सल्यं सम्यक् प्रकारेण समानरूपेण भवितव्यमिति पन्थाः, किन्तु भवता कीदृशोऽयं मार्गः स्वीकृतः? यस्मिन् भवान् मयि भाग्यहीने प्रतिकूलोऽभवत्।

(21) 'चन्द्रिका' तस्यैवेति– इसप्रकार अनेक तरह से विलाप करते हुए अन्त में युधिष्ठिर, कंचुकी को द्रौपदी के लिए चिता तैयार करने तथा स्वयं के लिए एक बार धनुष लाने के लिए कहकर भी बाद में मना करते हुए कहते हैं कि–

अथवा गाण्डीव धनुष का परित्याग करके, अर्जुन ने उसी भीम के रक्त से भीगी हुई गदा को लेकर, आज जो कार्य किया है, वही मेरे लिए भी कल्याणों को देने वाला होवे, क्योंकि भीम, अर्जुन के रहने पर शत्रु पर विजय प्राप्त करके भी क्या लाभ हो सकेगा? कोई नहीं।

विशेष–(i) युधिष्ठिर का घोर नैराश्य अभिव्यक्त हुआ है।

(ii) भावानुसार सरल भाषा व वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग दर्शनीय है। कवि की प्रसाद गुणयुक्त वैदर्भी शैली भी प्रदर्शित हुई है।

व्या.टि.–(i) **आदाय**– आ+ √दा+क्त्वा (ल्यप्) लेकर।

संस्कृत व्याख्या– अथवा धुनः त्यक्त्वा तस्यैव भीमस्य देहस्य रुधिरेण सिक्तं अतएव पाटलं अग्रं यस्याः तथाभूतां तां भीमरक्तचर्चितां गदां गृहीत्वा रणभूमौ भीमप्रियतमेन अर्जुनेन यत् कर्म कृतम्, गदायुद्धेन

प्राणान् त्यक्त्वा, तदेव कर्म मम कृतेऽपि कल्याणजनकमस्तु, इति। सम्प्रति तु विजयलाभेन अलम्, नैवास्य आवश्यकता वर्तते, इति भावः।

(22) 'चन्द्रिका' शक्ष्यामीति– अत्यधिक दुःखी युधिष्ठिर अपने कंचुकी जयन्धर से कहते हैं कि–

हे आर्य जयन्धर! क्या मैं कुबेर की नगरी अलकापुरी तथा इन्द्र की नगरी इन्द्रपुरी में अपने पराक्रम का प्रदर्शन करने वाले, भयंकर भुजदण्ड से युक्त, रणभूमि में मृत्युशय्या पर पड़े हुए, भीम और अर्जुन को और इनकी मृत्यु से प्रसन्न और कृतार्थ होने वाले शत्रु को देख सकूँगा, क्योंकि ऐसा करने की मुझ में सामर्थ्य नहीं है।

विशेष–(i) यहाँ भ्रातृप्रेम अवश्य अभिव्यक्त हुआ है, किन्तु युधिष्ठिर में सहनशक्ति का अभाव, उनके चरित्र की दुर्बलता को ही प्रदर्शित करने वाला है, जो क्षत्रिय के लिए शोभा नहीं देता है।

(ii) प्रस्तुत श्लोक में वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) **शक्ष्यामि–** √शक्+लृट्, उत्तमपुरुष, एकवचन।

(ii) **प्रविचेष्टमानौ–** प्र+वि+ √चेष्ट्+शानच्, प्र.वि., द्विवचन।

संस्कृत व्याख्या–लौहमुद्गरः इव स्थूलौ भुजदण्डौ ययोः तौ तथाभूतौ कुबेरः इन्द्रश्च तयोः पुरयोः अलकामरावत्योः प्रदर्शितः पराक्रमः याभ्यां तौ भूमौ परिलुण्ठनन्तौ भीमार्जुनौ द्रष्टुं, तयोः मरणेन सिद्ध–मनोरथं शत्रुं सुयोधनं द्रष्टुं नैव समर्थो भविष्यामि।

(23) 'चन्द्रिका' येनासीति– युधिष्ठिर, माता कुन्ती को सेविका बुद्धिमतिका के माध्यम से सन्देश भेजते हुए कहते हैं कि–

हे माते! जिसने अपनी भुजाओं के बल से लाक्षागृह के प्रज्वलित होने पर भी, सभी पुत्रों के साथ तुझे बचाया था, उसी प्रिय एवं परम शक्तिशाली, तेरे पुत्र का अमंगल समाचार मैं तुमसे कह रहा हूँ, क्योंकि कोई दूसरा व्यक्ति इसप्रकार की बात को भला कैसे कह सकता है? इसलिए मुझे ही यह कहने की हिम्मत करनी पड़ रही है।

विशेष–(i) करुणरस का परिपाक हुआ है व सह के योग में सुतैः पद में सहयुक्तेऽप्रधाने सूत्र से तृतीयाविभक्ति का प्रयोग हुआ है।

(ii) सरल भाषा व वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **आख्यामि**– आ+√ख्या+लट्, उत्तमपुरुष, ए.वचन।
(ii) **कथयेत्**– √कथ्+विधिलिङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– **हे मातः! येन भीमेन बाहुबलेन तत्र लाक्षागृहे ज्वलने सति, अस्माभिः सह त्वमपि बहिः निःसारिता, इति तस्य प्रसिद्धस्य शक्तिशालिनः प्रियतनयस्य अनिष्टघटनां मरणं वा ते कथयामि, यतोहि एतत् दुःसमाचारं कोऽपि अन्यः वक्तुं न शक्नोति।**

(24) 'चन्द्रिका' ममेति– कंचुकी जयन्धर के माध्यम से सहदेव को सन्देश भेजते हुए, दुःखी मन से युधिष्ठिर कहता है कि–

यद्यपि आप अवस्था में मुझसे बहुत छोटे हैं, किन्तु शास्त्रों के ज्ञान में आप मेरे समान ही हैं, स्वाभाविक दया तथा बुद्धि में आप मुझसे भी कहीं बढ़–चढ़कर हैं और विद्वत्ता में गुरु के समान हैं। इसलिए आज मैं तुम्हारे समक्ष हाथ जोड़कर प्रार्थना कर रहा हूँ कि मेरे प्रति आप अपना स्नेह कम करना अर्थात् मुझे भूल जाना, भ्रातृस्नेह में पड़कर अपने प्राण मत दे देना, किन्तु पिताजी को जलांजलि देने के लिए जीवित रहना।

विशेष–(i) सहदेव का चरित्र प्रदर्शित किया गया है तथा करुण रस का परिपाक भी दर्शनीय है।
(ii) कवि का श्राद्धक्रियाओं के प्रति विश्वास व्यक्त हुआ है।
(iii) सरल भाषा व हरिणी छन्द का सुन्दर प्रयोग है।

व्या.टि.–(i)**कृत्वा**– √कृ+क्त्वा, करके।**भव**– √भू+लोट्, म.पु., ए.व.।

संस्कृत व्याख्या– **भवान् अवस्थया कनियान् मे, शास्त्रेण तुल्यः असि, स्वाभाविकी दयाविषये ज्येष्ठोऽसि, विद्वत्तया गुरुसमो वर्तते। अनेनैव कारणेनाहं शिरसि मुकुलाकारौ हस्तौ विधाय अंजलिं बद्ध्वा इत्यर्थः, प्रार्थये यत्, मयि युधिष्ठिरे अनुरागः स्वल्पतां प्रापणीयः, पितुः पाण्डोः जलांजलिप्रदः त्वं भव, भ्रातृस्नेहात् मम अनुगमनं मा कुरु, इति।**

(25) 'चन्द्रिका' विस्मृत्येति–इसी क्रम में फिर से कहते हैं कि–

इसके अलावा हे वत्स! तुम शास्त्रों के निर्मल ज्ञान से युक्त बुद्धि द्वारा अनुजों सहित हम सभी को भुलाकर, भाइयों के साथ हम सभी को तथा पिताश्री पाण्डु को अश्रुमिश्रित जल से युक्त, पिण्ड देने

के लिए, अपने दायादों के यहाँ, यादवों के कुल में अथवा कहीं पर भी निर्जन वन में जाकर, अपने प्राणों की रक्षा अवश्य करना।

विशेष–(i) मृतात्माओं के लिए श्राद्धक्रिया की सम्पन्नता के लिए येन केन प्रकारेण अपने प्राणों की रक्षा हेतु सहदेव को निर्देश दिया गया है। मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग भी दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **विस्मृत्य**– वि+√स्मृ+क्त्वा (ल्यप्) भूलकर।

(ii) **प्रदातुम्**– प्र+√दा+तुमुन्, देने के लिए।

संस्कृत व्याख्या– शास्त्रज्ञानेन निर्मलतया बुद्ध्या भीमादि–सहितान् अस्मान् विस्मृत्य, स्वपित्रे पाण्डवे अश्रुमिश्रितान् सलिलबिन्दून् श्राद्धपिण्डान् च प्रदातुं सपिण्डानां भवने, यदुवंश्यानां कुले वा दुर्गमवने वा कृतावासेन भवता शरीरं अवश्यमेव रक्षणीयम्। अस्माभिः इव अधीरतया स्वशरीरं न त्याज्यम् इत्यर्थः।

(26) 'चन्द्रिका' शाखारोधस्येति– द्रौपदी सेविका बुद्धिमतिका के माध्यम से **अर्जुन की पत्नी सुभद्रा** को सन्देश देते हुए **अभिमन्यु की गर्भवती पत्नी उत्तरा** के चार माह के गर्भ की रक्षा के लिए कहती है, तो युधिष्ठिर अत्यन्त भारी मन से अश्रुपूर्वक कहते हैं कि–

हाय, अत्यधिक कष्ट की बात है कि अपनी शाखाओं से सम्पूर्ण भूमण्डल को आच्छादित कर देने वाला, सभी दिशाओं की शोभा में वृद्धि करने वाला, मजबूत तनों से युक्त तथा इसी सबके अनुरूप थाँवले से सम्पन्न अर्थात् परिवार वाला, पाण्डुकुलरूपी महावृक्ष के दुर्भाग्यवश आज भस्मीभूत हो जाने पर, इसकी छाया को चाहने वाले लोग अर्थात् यह द्रौपदी, उत्तरा के इस चार माह के छोटे से गर्भरूपी अंकुर पर आशा लगाए हुए है।

विशेष–(i) उत्तरा के गर्भ में स्थित जीव के प्रति अपने कुल की वंशबेल के चलने की आशा की गयी है। गौड़ी रीति दर्शनीय है।

(ii) रूपकालंकार व मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **कुरुते**– √कृ+लट्, आत्मने, प्रथमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– शाखायाम् आवरणेन आच्छादितं वसुधायाः मण्डलं येन तस्मिन् अलंकृताः दिशः येन तस्मिन् परिपुष्टः स्कन्धः अतीव

समुचितः परितः अन्तबन्धः आलवालादिः परिवारादयः च यस्य तथाभूते अतिविशाले पाण्डुवंशवृक्षे अस्माकं दौर्भाग्यात् भस्मीभूते सति, एषः द्रौपदीरूपः जनः तस्य विशेषवृक्षस्य वा कोमलांकुरे चतुर्मासगर्मांकुरे च छायार्थं विशिष्टं आशाबन्धं विदधाति, एतदाश्चर्यमेव, इति।

(27) 'चन्द्रिका' भ्रातुरिति– युधिष्ठिर के विलापों को सुनकर उनका **कंचुकी जयन्धर** माता कुन्ती को सम्बोधित करके कहता है कि

राजा भोज के भवन की पताका स्वरूप हा देवि कुन्ति! आपके भाई वसुदेव के पुत्र, श्रीकृष्ण के बड़े भाई, अर्जुन के साले तथा सम्पूर्ण धृतराष्ट्र के पुत्रों रूपी कमलिनी के वन को नष्ट–भ्रष्ट करने में हाथी के समान, महाबलशाली भीमसेन के गुरु, हलधर बलराम ने मदिरा से मत्त होकर अथवा पागलपन के कारण, तुम्हारे उस पुत्ररूपी वन को जला डाला है, जिसके आश्रय में यह सम्पूर्ण पृथ्वी सुखी थी।

विशेष–(i) भीम तथा बलराम का चरित्र वर्णित हुआ है।

(ii) विषमालंकार एवं शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) दग्धम्– √दह्+क्त, जला दिया।

संस्कृत व्याख्या– तव भ्रातुः वसुदेवस्य पुत्रेण, कृष्णस्य अग्रजेन, अर्जुनस्य श्यालेन, अखिला ये धृतराष्ट्रपुत्राः दुर्योधनादयः ते खलु नलिन्यः तासां उन्मूलनं तत्र हस्तिरूपस्य तस्यैव भीमस्य गुरुणा बलभद्रेण उन्मादरोगवता मदिरापानेन मत्तेन वा त्वत् सुताः एव काननम् अग्निसात् कृतमिति। यस्य भीमस्य आश्रयणात् एषा मही सुखी आसीत्।

(28) 'चन्द्रिका' हलीति– कंचुकी जयन्धर के ही माध्यम से अर्जुन के विजय होने की स्थिति में, उसे सन्देश देते हुए युधिष्ठिर कहते हैं कि–

यद्यपि यह बात सत्य है कि वत्स भीमसेन के वध में बलराम कारण हैं तथापि वे तुम्हारे सच्चे मित्र और श्रीकृष्ण के भाई हैं। इसलिए यदि मेरे ऊपर तुम्हारा प्रेम हो, तो उनके ऊपर तुम क्रोध मत करना, अपनी रक्षा के लिए वन में भले ही चले जाना, किन्तु दयाशून्य होकर बदला लेने के विचार से क्षात्रधर्म का पालन करते हुए, इनके साथ युद्ध मत करना।

विशेष–(i) युद्ध से युधिष्ठिर की वितृष्णा अभिव्यक्त हुई है।

(ii) काव्यलिंग अलंकार, भाषा की सरलता एवं शिखरिणी छन्द का प्रयोग दर्शनीय बन पड़ा है।

व्या.टि.–(i) **भवति**– √भू+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(ii)गच्छेः– √गम्+विधिलिङ्, मध्यमपुरुष, एकवचन, चले जाना।

संस्कृत व्याख्या– मम अनुजस्य भीमस्य मरणे बलरामः खलु कारणमस्ति, यद्यपि सत्यमेतत् तथापि एषः ते सहजमित्रस्य श्रीकृष्णस्य भ्रातास्ति, अतएव क्रोधः न कार्यः, यदि भवतः मयि स्नेहः, तर्हि वनं गच्छेः, किन्तु अनेन सह दयाशून्यां क्षत्रियमार्गम् अवलम्ब्य युद्धादिकं नैव करणीयं भ्रातृवधप्रतिकाराय।

(29) 'चन्द्रिका' अद्यप्रभृतीति– भीष्मादि गुरु तथा अपने पूर्वजों को जलांजलि देने के बाद, युधिष्ठिर स्वर्ग में स्थित अपने पिता पाण्डु को सम्बोधित करके कहते हैं कि–

हे पिताश्री! अब इसके बाद आपको मेरा दिया हुआ, जलादि दुर्लभ हो जाएगा, इसलिए माता माद्री के साथ आप, आज मेरे द्वारा दिए गए, इस तर्पण जल को प्राप्त करें।

विशेष–(i) युधिष्ठिर की पीड़ा की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

(ii) काव्यलिंग अलंकार व पथ्यावक्त्र छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) **दत्तम्**– √दा+क्त, दिया गया।

संस्कृत व्याख्या– हे तात! अस्मात् दिनात् आरभ्य अस्मत् सकाशात् पुनः यत् दुष्प्रापं तत् इदं मया प्रदत्तं, निवापांजलिजलं मात्रा सार्धं भवता ग्रहणं करणीयम्, इति।

(30) 'चन्द्रिका' एतज्जलमिति– इसके बाद छोटे भाई भीम को जलांजलि देते हुए युधिष्ठिर कहते हैं कि–

तत्पश्चात् यह जल नीलकमल के समान नेत्रों वाले, भीम के लिए है, जो मेरे ग्रहण करने के अभाव में विभाग किए बिना ही, उसके पास पहुँच जाए, हे वत्स! यद्यपि तू प्यासा है, किन्तु फिर भी थोड़ी प्रतीक्षा करना, क्योंकि दिए गए इस जल को एक साथ पीने के लिए, मैं बहुत शीघ्र ही तुम्हारे पास आ रहा हूँ।

विशेष–(i)सरलभाषा व वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग हुआ है।

(ii) भीम के प्रति युधिष्ठिर का गहन स्नेह व्यक्त हुआ है।

व्या.टि.–(i) **अस्तु**– √अस्+लोट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– मया दीयमानम् एतत् जलं निवापोदकमिति, नीलकमलवत् लोचने यस्य तथाभूताय भीमाय तुभ्यं ददामि, इति। अरे भीम! एतत् जलं तव ममापि च साधारणं खलु भवतु, जानामि अहं यद्यपि त्वं पिपासितोऽसि, किन्तु क्षणमात्रं वै प्रतीक्षस्व, यतोहि एषोऽहं त्वया सह पातुमेनं शीघ्रमेव तव समीपं आगच्छामि, वेगात् इति।

(31) 'चन्द्रिका' मयेति– भीमसेन से जुड़ी हुई स्मृतियों के विषय में उल्लेख करते हुए युधिष्ठिर कहते हैं कि–

हे वत्स! तूने हमेशा ही मेरा मान रखा और पहले मेरे द्वारा माता के स्तन का पान करने के बाद, ही तूने दूध पिया। मेरे प्रति तुम्हारा विशेष प्रेम होने के कारण, मेरे खाने से बचे हुए पदार्थों को खाकर तूने अपना निर्वाह किया। इसीप्रकार यज्ञों में भी हमेशा ही हम दोनों मिलकर एक साथ ही सोमपान करते थे। इसलिए मेरे द्वारा दिए गए, इस तर्पण के जल को भला तुम पहले कैसे पी सकते हो?

विशेष–(i) भीम के प्रति बाल्यकाल से लेकर ही युधिष्ठिर का प्रगाढ़ प्रेम प्रतीत हो रहा है तथा करुणरस का पूर्ण परिपाक हुआ है।

(ii) काव्यलिंग अलंकार व शिखरिणी छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) **पिबसि**– √पा+लट्, मध्यम पुरुष, एक वचन।

(ii) **जनयसि**– √जन्+णिच्+लट्, मध्यमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– अम्बायाः स्तनं मया आदौ पीतम्, मदनन्तरं भवता ग्रहणं कृतम्, भ्रातृवात्सल्येन। मद्भुक्तावशिष्टैः दुग्धादिभिः जीवन-वृत्तिं स्वं करोषि स्म। एवमेव क्रतुषु अपि सोमरसपाने तव मम च आवयोः व्यवहारः पूर्वापरीभूतो वै आसीत्। अतएव अधुना त्वं एतत् तर्पणजलं मत्तः पूर्वं कथं पिबसि? एतत्तु सर्वथानुचितमेव, इति भावः।

(32) 'चन्द्रिका' तस्मै, इति– युधिष्ठिर द्वारा जलांजलि देने के बाद, द्रौपदी द्वारा 'जलांजलि किसे जल दूँ?' यह पूछने पर युधिष्ठिर कहते हैं कि–

हे द्रौपदि! तुम तो स्वर्ग के लिए प्रस्थान करने वाले, उस भीम को जल दो, जिसने माता कुन्ती को भी, गान्धारी के साथ रोने में सहयोगिनी (सखी) बना दिया है अर्थात् भीम ने गान्धारी के पुत्रों को मारकर उसे रुलाया, जबकि दुर्योधन ने भीमसेन को ही मारकर माता कुन्ती को रोने के लिए मजबूर कर दिया।

विशेष–(i) भाषा की सरलता एवं अनुष्टुप् छन्द दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **देहि**– √दा+लोट्, मध्यमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– हे द्रौपदि! अकस्मादेव स्वर्गं प्रस्थिते तस्मै भीमाय एतत् तर्पणजलं दीयताम्, येन भीमेन माता कुन्ती अपि गान्धार्यया सह रोदने सखी कृता अस्ति।

(33) 'चन्द्रिका' असमाप्तेति– द्रौपदी द्वारा भीम को जलांजलि देने पर युधिष्ठिर, मृत भीम को सम्बोधित करके कहते हैं कि–

हे भीमसेन! तुम तो अपनी प्रतिज्ञा को पूरा किए बिना ही स्वर्ग चले गए हो, इसलिए यह तुम्हारी प्रिया द्रौपदी अपने खुले केशों से ही तुम्हें जलांजलि दे रही है।

विशेष–(i) सरलभाषा एवं अनुष्टुप् छन्द दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) असमाप्ता प्रतिज्ञा यस्य सः तस्मिन्, इति।

संस्कृत व्याख्या– केशसंयमनरूपा प्रतिज्ञा यस्य असमाप्ता अपूर्णेति, महान्तौ च भुजौ यस्य सः तस्मिन् महाभुजे त्वयि दिवं गते सति, एषा तव प्रिया द्रौपदी असंयमितकेशा खलु तर्पणांजलिः ददाति।

(34) 'चन्द्रिका' तां वत्सलामिति– इसप्रकार भीमसेन को स्मरण करते हुए, अनेक प्रकार से विलाप करने के बाद, युधिष्ठिर अपने अनुज अर्जुन को भी मरा हुआ मानकर स्मरण करते हुए कहते हैं कि–

हे वत्स! अत्यन्त विनम्रभाव से पुत्रवत्सला उस माता कुन्ती को प्रणाम किए बिना ही तथा अपने बड़े भाई मुझे प्रगाढ़ आलिंगन करने के अभाव में मेरी आज्ञा लिए बिना ही, स्वयंवर द्वारा लायी हुई अपनी प्रिया द्रौपदी से पूछे बिना ही, तुम इस लम्बे प्रवास पर कैसे चले गए?

विशेष–(i) अर्जुन के प्रति युधिष्ठिर के भावों की कारुणिक अभिव्यक्ति हुई है। साथ ही, करुणरस का प्रवाह भी दर्शनीय है।

(ii) परिकरालंकार एवं वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) **अनुपगुह्य**– अन्+उप+ √गुह्+क्त्वा (ल्यप्) नञ्।

(ii) **अपृष्ट्वा**– न पृष्ट्वा, इति, न+ √पृच्छ्+क्त्वा, बिना पूछे।

संस्कृत व्याख्या– अयि, तात! अर्जुन, स्निग्धां तां मातरं कुन्तीं विनीतभावेन अनभिवन्द्य, मां च वत्सलमिति गाढं यथा स्यात् तथा आलिंग्याभावेऽपि मदाज्ञां विनापि, स्वयंवरेण आनीतां प्रियां द्रौपदीं अनापृच्छ्यापि एतादृशीं दीर्घयात्रां मरणमित्यर्थः, कथं गतोऽसि।

(35) 'चन्द्रिका' ऊरू, इति– इसी बीच नेपथ्य से कोलाहल के बाद, द्रौपदी को खोजते हुए दुर्योधन के रक्त से अपने शरीर व हाथों को पूरी तरह भिगोए हुए, भीमसेन का स्वर सुनायी देता है कि–

हे योद्धाओं! आप लोगों को मुझसे भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है, आप तो मुझे केवल द्रौपदी का पता बता दो, जिस द्रौपदी की साड़ी को अनेक प्रकार से विलासपूर्वक, हाथों से ताल ठोककर दुर्योधन के सामने खींचा गया था और दुःशासन द्वारा केशों को खींचने से, जिसकी चोटी खुल गयी थी। इसप्रकार की वह द्रौपदी किस स्थान पर है? आप तो मुझे केवल यही बता दीजिए।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक में भीम की गर्वोक्ति अब तक निराश दर्शकों में भी वीररस का संचार करने वाली है।

(ii) सरल भाषा व वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) कथयत– √कथ्+लट्, मध्यमपुरुष, बहुवचन।

(ii) करेण कर्षणं तेन भिन्नः विश्लेषितः मौलिः यस्याः सा।

संस्कृत व्याख्या– यां द्रौपदीं प्रति दुर्योधनस्य समक्षे खलु विलासपूर्वकं 'ममोरुप्रदेशे आसतामिति' कथितम् आसीत्, ऊरू आस्फालयतः, यस्याः च वस्त्रस्यापि दुःशासनस्य कराभ्यां आकर्षणेन विश्लेषितः कबरीबन्धः, एतादृशी सा द्रौपदी सम्प्रति कस्मिन् स्थाने विद्यते, इति? यूयम् मां वदत, इति, मा भैषी।

(36) 'चन्द्रिका' प्रियमिति– भीम की आवाज़ को पहचाने बिना ही उसे दुर्योधन मानते हुए, युधिष्ठिर आवेगपूर्वक कहते हैं कि– हे द्रौपदि! तुम डरो मत, अरे, यहाँ कोई है? मेरा धनुष लाओ,

हे कुरुकुल के अंगारस्वरूप दुर्योधन! मैं तेरे समान कठोर हृदय वाला नहीं हूँ, जो दुःशासन आदि के मरने पर भी जीवित रहने में अपनी शान समझ रहा है। यद्यपि मैं जरासन्ध के शत्रु तथा अपने छोटे भाई भीम को एवं किरात वेषधारी भगवान् शंकर के साथ युद्ध

करने वाले, अपने छोटे भाई अर्जुन को देखे बिना जीवित नहीं रह सकता हूँ, किन्तु फिर भी अपने बाणों की वर्षा करके, तुम्हारे प्राण तो ले ही सकता हूँ, इसमें तुम्हें लेशमात्र भी संदेह नहीं समझना चाहिए।

विशेष–(i) युधिष्ठिर का प्रथम बार पराक्रम प्रदर्शित हुआ है।

(ii) रूपकालंकार एवं मालिनी छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i)**अपश्यन्**, न पश्यन्,इति, न+ √दृश्+शतृ, प्र.वि.ए.व.।

(ii) **अपहर्तुम्**– अप+ √हृ+तुमुन्, अपहरण करने के लिए।

संस्कृत व्याख्या– युधिष्ठिरः कथयति यत्– हे कुरुकुलांगार! प्रियं तं प्रसिद्धं कनिष्ठभ्रातरं जरासन्धशत्रुं तं वत्सं भीमं कुपितः यः हरः एव किरातव्याधरूपः महादेवः तस्य द्वेषिणं तेन सह कृतं युद्धमिति, तम् अर्जुनं च अपश्यन् अहं कठोरहृदयः त्वमिव यद्यपि जीवितुं न शक्नोमि, पुनरपि बाणवर्षैः तव प्राणान् तु विनाशयितुं शक्तोऽस्मि, नैवास्मिन् विषये संशयलेशोऽपि विद्यते, इति।

(37) 'चन्द्रिका' नाहमिति–इसके बाद दुर्योधन के रक्त से लिप्त शरीर वाला, भीम गदा हाथ में लिए प्रवेश करके कहता है कि–

अरे, समन्तपंचक में घूमने वाले सैनिकों! आप लोग घबराइए नहीं, मै न तो कोई राक्षस हूँ, न भूत हूँ। मैं तो वस्तुतः शत्रु के रक्त से स्नान किया हुआ, अपने प्रतिज्ञारूपी समुद्र को पार करने वाला, एक क्रोधी क्षत्रिय हूँ। युद्धरूपी अग्नि की ज्वाला में जलने से बचे हुए, हे क्षत्रिय वीरों! आप लोग मुझे देखकर इसप्रकार भयभीत मत होइए, जो आप मुझसे बचने के लिए मरे हुए हाथी तथा घोड़ों की ओट लेकर छिप रहे हो।

विशेष–(i) भयानक रस का पूर्ण परिपाक हुआ है।

(ii) रूपकालंकार एवं स्रग्धरा छन्द का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) **आस्यते**– √आस्+कर्मवाच्य, छिपा जा रहा है।

(ii) **नाहम्**– न+अहम्, न्+अ+अहम् (अ+अ–आ) दीर्घ सन्धि।

संस्कृत व्याख्या– भीमः कथयति यत्– अहं न रक्षसोऽस्मि, नैव च पिशाचोऽस्मि, अपितु दुर्योधनस्य रुधिरमेव जलं तेन संसिक्तानि अंगानि यस्य तथोक्तः उत्तीर्णः महती जलनिधिः सः एव समुद्ररूपदुर्गम–प्रदेशो येन असौ महाक्रोधी क्षत्रियोऽस्मि, भो राजन्य वीराः! यूयं समरे एव अग्निः तस्य ज्वालाभिः ज्वलितेभ्यः अवशिष्टाः युष्माकं इतस्ततः

आत्मगोपनरूपेण भयेन अलं कुरुत। मा भेतव्यमिति। ये युद्धे हताः हस्तिनः अश्वाश्च तेषु पृष्ठे निलीय नैव स्थितो भवितव्यः युष्माभिः।

(38) 'चन्द्रिका' आशैशवादिति– इसी बीच भीम अपनी प्रिया द्रौपदी के बाल, दुर्योधन के रक्तरंजित हाथों से सँवारने के लिए, उसे पकड़ना चाहता है, तब उसे दुर्योधन मानकर पकड़ते हुए, युधिष्ठिर कहते हैं कि–

हे नीच दुर्योधन! बाहुबल के कारण अत्यन्त मतवाला हुआ तू अपनी बाल्यावस्था से लेकर आज तक अपराध ही करता रहा है। अरे! भीम और अर्जुन को मारने वाले, इस समय तू मेरे भुजारूपी पिंजरे में आ गया है, पापी तू यहाँ से जीवित एक कदम भी नहीं जा सकता है।

विशेष–(i) युधिष्ठिर का भयंकर आक्रोश अभिव्यक्त हुआ है।

(ii) रूपकालंकार एवं वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) **अपहर्तुम्–** अप+ √हृ+ तुमुन्, हरण करने के लिए।

(ii) **आसाद्य–** आ+ √सद्+क्त्वा (ल्यप्) प्राप्त करके।

संस्कृत व्याख्या– हे पापकारिन्! शैशवात् प्रभृति प्रतिदिनं कृताः अपराधाः येन सः तथाभूतः, मत्तः क्षीबः हतौ भीमार्जुनौ येन तथाभूतः, त्वं अद्य मम युधिष्ठिरस्य भुजपाशयोः मध्ये प्राप्य बलेन गृहीतोऽसि, अतएव अस्मात् स्थानात् जीवन् सन् पदमेकमपि नैव गन्तुं समर्थोऽसि, इति।

(39) 'चन्द्रिका' भूमाविति– तभी कंचुकी जयन्धर, भीमसेन को पहचानकर युधिष्ठिर को प्रसन्नतापूर्वक, उसके भीम होने की सूचना देता है, तब युधिष्ठिर कहता है कि क्या कहा? यह दुर्योधन नहीं है? इसके उत्तर में भीमसेन युधिष्ठिर से कहता है कि–

हे अजातशत्रो! अब दुर्योधन कहाँ है, पाण्डुकुल से द्वेष करने वाले, उसका शरीर तो मैंने मारकर भूमि पर फैंक दिया है तथा उसके रक्त को चन्दन के समान, अपने शरीर पर लेप लिया है, चारों समुद्रों की सीमा वाली, पृथ्वी के साथ–साथ उसकी राजलक्ष्मी को भी आपके श्रीचरणों में अर्पित कर दिया है। उस दुर्योधन के सेवक, मित्र, योद्धा एवं सम्पूर्ण कुरुकुल इस युद्धरूपी अग्नि में पूरी तरह जला दिया गया है। हे राजन्! अब तो धृतराष्ट्र के पुत्र उस दुर्योधन का नाममात्र ही शेष रह गया है, जिसका आप इस समय उच्चारण कर रहे हैं।

विशेष–(i) भीम के कथन से आततायी दुर्योधन के विनाश की सूचना प्राप्त करके, दर्शकों को असीम आनन्द की प्राप्ति हुई है।

(ii) रूपकालंकार एवं स्रग्धरा छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **ब्रवीषि**– √ब्रू+लट्, मध्यमपुरुष, एक वचन।

(ii) **क्षिप्तम्**– √क्षिप्+क्त, फैंक दिया है।

संस्कृत व्याख्या– तस्य दुष्टात्मनः दुर्योधनस्य शरीरं तु मया प्राणरहितं कृत्वा पृथिव्यां प्रक्षिप्तम्, तथा च इदं चन्दनतुल्यं रक्तं स्वशरीरे अर्पितम्, चतुर्णाम् उदधीनां पयांसि सीमानो यस्याः तथाभूतया पृथिव्या सह अस्याः राजलक्ष्मीः भवतां चरणौ अर्पिता, तस्य च दुर्योधनस्य ये दासाः, बान्धवाः, मित्राणि, योद्धारः आसन्, ते सर्वे युद्धाग्नौ पूर्णरूपेण भस्मीभूताः, युद्धे निहताः, इत्यर्थः। हे राजन्! अधुना तु तस्य दुर्योधनस्य नाममात्रमेव शेषो वर्तते, तत् भवता उच्चार्यते।

(40) 'चन्द्रिका' रिपोरिति–भीम द्वारा अपना परिचय देने के बाद, युधिष्ठिर उसका प्रेमपूर्वक आलिंगन करके कहते हैं कि–

हे भीम! तुम शत्रु के विनाश की बात तो रहने दो, तुम तो मुझे बार–बार, सौ बार यह बताओ कि– 'जिसने बक नामक राक्षस का वध किया था, तुम वही मेरे प्रिय भ्राता भीम ही हो न, यह बात सच तो है? भीम द्वारा 'वस्तुतः मैं वही हूँ' युधिष्ठिर फिर से कहते हैं कि–

और क्या तुम वही भीमरूपी मगरमच्छ हो, जिसने निरन्तर बहते हुए रक्तरूपी जल वाले, जरासन्ध के वक्षःस्थलरूपी सरोवर में जल को तट पर प्रहार करने की क्रिया लीलापूर्वक की थी अर्थात् दुष्ट जरासन्ध का दर्दनाक वध किया था।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक को कवि ने संवादात्मक शैली में प्रस्तुत किया है। युधिष्ठिर के कथन के बाद भीम का वाक्य प्रयुक्त हुआ है। अन्त में फिर से युधिष्ठिर ने ही अपनी बात को कहा है।

(ii) युधिष्ठिर के भावावेग एवं प्रसन्नता की अभिव्यक्ति हुई है।

(iii) जलाशय में उतरकर उसके पानी को बलपूर्वक तट पर फैंकने की क्रिया को **जलाघात क्रिया** कहते हैं।

(iv) रूपकालंकार एवं शिखरिणी छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **आख्याहि**– आ+ √ख्या+लोट्, म.पु., ए.व.।

(ii) **बकरिपु:–** बकस्य रिपु:, षष्ठी तत्पुरुष, बक का शत्रु।

संस्कृत व्याख्या– शत्रोः दुर्योधनस्य वधविषयिकी वार्ता तु तिष्ठतु, साम्प्रतं तु एतत् शतशः भूयोभूयः, इति कथय यत् योऽसौ 'बक' नाम राक्षस्य वधकर्ता आसीत्, त्वं सः एव मम प्रियः भ्राता असि, इति सत्यं किम्? । तदा भीमः सो वै अस्मि अहम, कथयति। तदा युधिष्ठिरः पुनः भणति– रुधिरस्य प्रवाहः सः एव सलिलं यत्र तस्मिन् रक्तप्रवाहरूपे जले मगधाधिपस्य जरासन्धस्य उरःसरोवररूपायां संग्रामे सरःतटोत्खननं जलप्रक्षेपणं वा लीला कृता येन मकरः त्वमेव असि किम्?

(41) 'चन्द्रिका' कृष्टेति– भीम के भयंकर रूप को देखकर द्रौपदी डरकर भागती है, तो भीमसेन उसे सम्बोधित करके कहता है कि– हे राजपुत्रि! हमें देखकर इसप्रकार के भय से बस करो,

क्योंकि जिस मनुष्यरूप पशु ने तुम्हें राजसभा में खींचा था, उसी दुःशासन को चीरकर, पीने से बचे हुए, उसके गाढ़े रक्त से रंगे हुए, इन हाथों का तुम भी स्पर्श करो। हे कान्ते! मेरी गदा से विदीर्ण की गयी जँघा वाले, कौरवराज दुर्योधन का यह रसयुक्त खून शत्रु द्वारा किए गए, सन्ताप की शान्ति के लिए मैंने तुम्हारे प्रत्येक अंगों में लगा दिया है, इसलिए शत्रु के विनाश से अब तुम परम शान्ति का अनुभव कर सकती हो।

विशेष–(i) भीम ने द्रौपदी के भय को दूर करने के लिए, अपना पराक्रमशाली परिचय गर्व के साथ प्रदान किया है।

(ii) वीररस व स्रग्धरा छन्द का प्रयोग भी दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) **कृष्टा–** √कृष्+क्त+टाप्, खींची गयी।

संस्कृत व्याख्या– हे कान्ते! येन नराधमेन तेन दुःशासनेन राजसभायां आकृष्य नीता असि, तस्य एतानि पुरोदृश्यमानानि घनानि मम हस्तयोः विद्यमानानि पीतेन अवशिष्टानि रक्तानि तानि स्पर्शं कुरु। स्व च पराभवजन्यदुःखं दूरीकुरु, इत्यर्थः। मम गदया भग्नौ ऊरू यस्य तस्य कुरूणां राज्ञः दुर्योधनस्य प्रत्यंगे निषिक्तं लिप्तं वा अतिस्वादु एतत रुधिरं तव शत्रुसमुद्भूतस्य परिभवाग्नेः उपशमनाय अलं भविष्यति, इति।

(42) 'चन्द्रिका'क्रोधान्धैरिति– इसप्रकार कहने के बाद भीमसेन द्रौपदी की वेणी का बन्धन (संहार) करता है तभी नेपथ्य से आवाज़ आती है कि– इस महायुद्धरूपी अग्नि से बचे हुए क्षत्रियों का मंगल हो

जिस चोटी के खुल जाने के कारण, अपरिमित भुजबल वाले, क्रोध के कारण अन्धे हुए, पाण्डुपुत्रों ने बड़े–बड़े महारथियों का संहार कर दिया तथा प्रत्येक दिशा में राजाओं के अन्तःपुरों की स्त्रियों के केशपाश खुलवा दिए अर्थात् उनके पतियों को मारकर उन्हें विधवा बना दिया। क्रुद्ध हुए यमराज के समान, द्रौपदी का यह केशपाश, जो कौरवों के विनाश के लिए धूमकेतु के समान था। सौभाग्यवश आज बँध गया है। इसलिए अब युद्ध के कारण प्रजा का विनाश बन्द होवे और शेष बचे हुए राजाओं के कुलों का कल्याण होवे।

विशेष–(i) वेणीसंहार नाटक की संरचना का कवि का मुख्य उद्देश्य अभिव्यंजित हुआ है।

(ii) पर्यायोक्ति अलंकार व स्रग्धरा छन्द का प्रयोग हुआ है।

(iii) आकाश में निकलने वाला, **धूमकेतु** अनिष्ट का सूचक माना गया है, यहाँ द्रौपदी के केशपाश की उपमा धूमकेतु से दी गयी है, जो अत्यन्त मनभावन बन पड़ी है।

(iv) स्वस्ति पद के योग में कुलेभ्यः पद में चतुर्थी विभक्ति।

व्या.टि.–(i) **विरमतु**– वि+ √रम्+लोट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– द्रौपद्याः यस्य केशपाशस्य मोक्षणात् अतीव–क्रुद्धैः अतुलबलसम्पन्नैः पाण्डवैः सर्वासु दिक्षु नरपतिनां विनाशं कृत्वा, पार्थिवाणां अन्तःपुराणि मुक्तकेशानि कृतानि, सोऽयं केशपाशः कुपित–यमसखः इव कुरूणां कृते धूमकेतुः तुल्यः, सम्प्रति कृष्णायाः सः केश–पाशः भीमेन स्वप्रतिज्ञानुसारं संयतः, इति। अतएव इदानीं लोकानां विनाशः शम्यतु, राज्ञां च कुलानां कल्याणम् अस्तु।

(43) 'चन्द्रिका' कृतगुरु, इति– इसके बाद मंच पर कृष्ण तथा अर्जुन प्रवेश करते हैं, तो युधिष्ठिर उनका अभिवादन करके कहते हैं कि–हे भगवन्! जिनके मंगल की कामना स्वयं साक्षात् भगवान् कर रहे हों, उनकी विजय के अतिरिक्त तो अन्य कुछ हो ही नहीं सकता है–

अपने से उत्पन्न हुए पृथिवी आदि पंच महाभूतों एवं महत् तत्त्वादि के क्षोभ से सृष्टि के अनुकूल प्रवृत्ति के माध्यम से संसार की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश के हेतु, प्रकट हुए त्रिगुणात्मक मूर्ति वाले, जन्म और मरण से पूर्णतया रहित, चिन्तनातीत आपके स्मरणमात्र से

तो व्यक्ति इस संसार के बन्धन से ही छूट जाता है, फिर आपके दर्शन होने पर तो कहना ही क्या है?

विशेष–(i) महाकवि की श्रीकृष्ण के प्रति अगाध भक्ति एवं सांख्यदर्शन विषयक गहन ज्ञान प्रदर्शित हुआ है।

(ii) विरोधाभासालंकार व मालिनी छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) **चिन्तयित्वा**– √चिन्त्+क्त्वा, चिन्तन करके।

संस्कृत व्याख्या– हे देव! यतोहि त्वां विचिन्त्यापि मनुष्यः दुःखी न भवति, किं पुनः दर्शनात्? कीदृशमिति कथ्यते यत्– स्व परिणामेन खलु उत्पादितानि यानि स्थूलानि पृथिव्यादिमहाभूतानि महत्तत्त्वादयः तेषां क्षोभेण सृष्टिः सम्भूता किल। यश्च संसारस्य उत्पत्तेः संहारस्य स्थितेः च कारणमस्ति, एतादृशं तं तत्त्वं अजन्मा, अमरं अचिन्त्यं वक्तव्यम्, एतादृशं तं तत्त्वं विचिन्त्यापि, इति पूर्वेण अन्वयः।

(44) 'चन्द्रिका' व्यासः, इति– इसके बाद श्रीकृष्ण, महाराज युधिष्ठिर को उनके राज्याभिषेक के सम्बन्ध में कहते हैं कि–

ये भगवान् वेदव्यास और वाल्मीकि, परशुराम आदि मुनि, माद्री पुत्र नकुल तथा सहदेव के साथ, धृष्टद्युम्न आदि सेनापति, आपकी आज्ञा का पालन करने वाले, मगध, मत्स्य देश के एवं यादव कुलों के राजा, आपके राज्याभिषेक के लिए, अपने–अपने कन्धों पर तीर्थों से लाए हुए, ऊपर तक भरे हुए जलों वाले कलशों को लेकर उपस्थित हो गए हैं।

विशेष–(i) युधिष्ठिर के राज्याभिषेक की सूचना दी गयी है।

(ii) गौड़ी रीति एवं शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) **प्राप्ताः**– प्र+ √आप् प्रापणे+क्त, प्र.वि.,बहुवचन।

(ii) **अधिष्ठिताः**–अधि+ √स्था+क्त, प्रथमा विभक्ति,बहुवचन।

संस्कृत व्याख्या– हे महाराज युधिष्ठिर! अयं भगवान् व्यासः अमी च वाल्मीकिपरशुरामप्रभृतयः धृततीर्थजलपूर्णघटाः स्कन्धे निधाय जाबालिप्रमुखाः मुनयः नकुलसहदेवाभ्यां नियन्त्रिताः धृष्टद्युम्नः प्रमुखः येषां ते तथोक्ताः अमी योद्धारः वशंवदैः मागधमत्स्ययादवकुलैः सार्धं तव राज्याभिषेकाय समागताः सन्ति।

(45) 'चन्द्रिका' क्रोधान्धैरिति–अन्त में श्रीकृष्ण द्वारा यह पूछने पर कि मैं तुम्हारा दूसरा क्या प्रिय कार्य करूँ? युधिष्ठिर कहते हैं कि–

आपकी ही कृपा से तो अपने घोर अपमान के कारण, क्रोध से अन्धे हम लोगों ने शत्रुओं के सम्पूर्ण कुल का विनाश कर दिया है तथा हम पाँचों भाई आज भी सुरक्षित हैं। मेरे द्वारा खेले गए जुआ आदि दुर्व्यसनों के कारण उत्पन्न हुए, द्रौपदी के अपमानरूपी महासागर को भी पार कर लिया है और इन सबसे बढ़कर आप पुरुषोत्तम भगवान् स्वयं मुझसे आगे बढ़कर आदरपूर्वक कुछ माँगने के लिए कह रहे हैं। इसलिए मैं तो धन्य हूँ। इससे बढ़कर भला दूसरा मेरे लिए क्या हो सकता है, जिसे मैं प्रसन्न हुए आपसे, अपने लिए माँगूँ? अर्थात् ऐसा कुछ भी नहीं है, जिसे आपसे इस अवसर पर माँगा जाए।

विशेष–(i) महाराज युधिष्ठिर की श्रीकृष्ण के समक्ष संतोषी वृत्ति प्रदर्शित हुई है। नाटक का सुखान्त होना भी दर्शनीय है।

(ii) सरलभाषा व शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) **याचे**– √याच्+लट्, आत्मने. उत्तमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– क्रोधेन विमूढैः अस्माभिः अशेषशत्रुकुलं विनाशितम्, वयं च सर्वे पंचसंख्यकाः पाण्डवाः कुशलिनः सन्ति, मम च द्यूतादिव्यसनेन उत्पादितः द्रौपद्याः परिभवरूपसागरोऽपि उत्तीर्णः। स्वयं भगवान् त्वं श्रीकृष्णः पुण्यात्मानं मां युधिष्ठिरं कथयसि, अतः परं अन्यत् यदपि वस्तु वांछितोऽसि तर्हि याचनां कुरु, इति। अतःपरं हे प्रभो! अहं भवतां प्रति किं याचनां करोमि? नैव किमपि इत्यर्थः।

(46) 'चन्द्रिका' अकृपणमतिरिति– नाटक के अन्त में भरत वाक्य के रूप में फिर भी युधिष्ठिर भगवान् श्रीकृष्ण से कहते हैं कि–

हे पुरुषोत्तम! यदि आप प्रसन्न ही हैं, तो फिर यह हो जाए,

इस संसार में उदार भावना से युक्त सभी लोग, सौ वर्ष की आयु वाले होवें, सभी लोगों की आप में संशय से रहित भक्ति बनी रहे। कल्याणकारी कार्य करते हुए राजा, प्रजाओं में लोकप्रिय तथा विद्वानों को बन्धु के समान प्रेम करने वाला, गुणवानों का पारखी अर्थात् गुणों को ग्रहण करने वाला तथा हमेशा ही यज्ञादि पुण्य कर्म करने वाला और व्यवस्थित मन्त्रिमण्डल वाला अथवा सैन्यसमूह वाला होवे।

विशेष–(i) महाकवि ने ग्रन्थ के अन्त में अपनी स्वयं की भावनाओं को अभिव्यक्त करते हुए, संसार के लिए मंगलकामना की है।

(ii) सरल भाषा एवं हरिणी छन्द का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(iii) कवि ने एक लोककल्याणकारी राज्य की कल्पना की है।

व्या.टि.–(i) **भूयात्**– √भू+आशीर्लिङ्, प्रथमपुरुष,एकवचन।

(ii) **भवतु**– √भू+लोट्, प्रथम पुरुष, एक वचन, होवे।

संस्कृत व्याख्या– हे पुरुषोत्तम! ये अदीनमतयः सन्ति, ते जनाः वर्षशतं यावत् जीवन्तु, सर्वेषु च जनेषु भवतः भक्तिः संशयरहिता भवेत्। नृपश्च लोके प्रियः स्यात्, कल्याणयुक्तैः कार्यैः, सः च विद्योपासकानां बन्धुः भवतु, सदैव पुण्यकर्ता, विशिष्टज्ञानविच्च व्यवस्थापितमण्डलं मन्त्रिमण्डलयुक्तः सैन्यमण्डलयुक्तः वा भवेत्।

(47) 'चन्द्रिका' काव्यालापेति– अन्त में महाकवि भट्टनारायण अपने मन की गहन वेदना को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि–

वर्तमान समय में मधुर काव्यपाठ तथा सुभाषितों की चर्चा को पसन्द करने वाले भोज के समान राजा लोग नहीं रह गए हैं। इसी प्रकार शास्त्र एवं काव्यों के विविध विषयों पर चर्चा हेतु गोष्ठियों का भी आयोजन नहीं होता है, जो वास्तव में उत्कृष्ट काव्य की संरचना करने वाले सज्जन हैं, उनकी सूक्तियों की प्रशंसा भी लोगों द्वारा नहीं की जा रही है। इतना ही नहीं, आजकल कवियों में रस, अलंकार और प्रसादगुण से युक्त मनोहर वचनों का तो अभाव ही हो गया है। अन्त में कवि की प्रस्तुत नाट्यकृति के प्रति शुभकामना की है कि यह प्रबन्ध सभीप्रकार के साहित्यिक गुणों से युक्त होने के कारण सर्वश्रेष्ठ नाटकों में गिना जाए तथा इसके माध्यम से कवि को अप्रतिम यश की प्राप्ति होवे।

विशेष–(i) तात्कालिक विद्वत्समाज एवं अपनी वेणीसंहार नामक कृति के प्रति कवि के उद्‌गार प्रदर्शित किए गए हैं।

(ii) महाकवि की स्पष्टवादिता अभिव्यक्त हुई है।

(iii) सरल भाषा एवं शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i)**प्राप्ताः**– प्र+ √आप्+क्त, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन।

(ii) **आगताः**–आ+ √गम्+क्त, टाप्, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन।

•••

परिशिष्ट

a. श्लोकानुक्रमणिका–

श्लोक	स्थल निर्देश
1. अकलितमहिमानम्	5 / 40
2. अकृपणमति	6 / 46
3. अक्षतस्य गदापाणेः	4 / 4
4. अत्रैव किं न विशसेयम्	5 / 32
5. अद्यप्रभृति वारीदम्	6 / 29
6. अद्य मिथ्या प्रतिज्ञो	3 / 42
7. अद्यैवावां रणमुपगतौ	4 / 15
8. अन्धोऽनुभूतशत	5 / 13
9. अन्योन्यास्फालभिन्न	1 / 27
10. अपि नाम भवेन्मृत्युः	4 / 9
11. अप्रियाणि करोत्येष	5 / 31
12. अयि कर्ण कर्णसुखदाम्	5 / 14
13. अयं पापो यावन्न	3 / 45
14. अवसानेऽङगराजस्य	5 / 39
15. अश्वत्थामा हत इति	3 / 11
16. असमाप्त– प्रतिज्ञेऽस्तम्	6 / 33
17. अस्त्र ग्रामविधौ कृती	4 / 12
18. अस्त्रज्वालावलीढ	3 / 7
19. आचार्यस्य त्रिभुवन	3 / 20
20. आजन्मनो न वितथम्	3 / 15
21. आत्मारामा विहित	1 / 23
22. आशस्त्रग्रहणादकुण्ठ	2 / 2
23. आशैशवादनुदिनम्	6 / 38

•••

b. वेणीसंहारम् नाटकम् में प्रयुक्त सूक्तियाँ–(अकारादिक्रम से)

1. अकुशलदर्शनाः स्वप्नाः देवतानां प्रशंसया कुशलपरिणामा भवन्ति।
2. अनुक्तहितकारिता हि प्रकाशयति मनोगतां स्वामिभक्तिम्।
3. अनुल्लंघनीयः समुदाचारः।
4. अप्रमत्तसंचरणीयानि रिपुबलानि श्रूयन्ते।
5. अहो मुग्धत्वमबलानाम्।
6. आशाबलवती राजन्! शल्यो जेष्यति पाण्डवान्।
7. उपक्रियमाणाभावे किमुपकरणेन।
8. उपेक्षितानां मन्दानां धीरसत्वैरवज्ञया।
9. अत्रासितानां क्रोधान्धैर्भवत्येषा विकत्थना।
10. कालानुरूपं प्रतिविधातव्यम्।
11. कुतस्तस्य विजयादन्यद् यस्य भगवान्।
    पुराणपुरुषो नारायणः स्वयं मंगलान्याशास्ते।
12. को हि नाम भगवता सन्दिष्टं विकल्पयति।
13. गुप्त्या साक्षान्महानल्पः स्वयमन्येन वा कृतः
    करोति महतीं प्रीतिमपकारोपकारिणाम्।।
14. ग्रहाणां चरितं स्वप्नो निमित्तान्युपयाचितम्।
    फलन्ति काकतालीयं तेन प्राज्ञा न विभ्यति।।
15. तं मोहान्धः कथमयममुं वेत्तु देवं पुराणम्।
16. तेजस्वी रिपुहतबन्धुदुःखपारं
    बाहुभ्यां व्रजति धृतायुधप्लवाभ्याम्।
17. त्रस्तं विनापि विषयादुरुविक्रमस्य
    चेतो विवेकपरिमन्थरतां प्रयाति।
18. दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम्।
19. न किंचिन्न ददाति भगवान् प्रसन्नः।
20. न घटस्य कूपपाते रज्जुरपि तत्र प्रक्षेप्तव्या।

21. न युक्तमनभिवाद्य गुरून् गन्तुम्।
22. न युक्तं पराक्रमवतां वाड्मात्रेणापि विरागमुत्पादयितुम्।
23. न युक्तं बन्धुव्यसनं विस्तरेणावेदयितुम्।
24. न युक्तं वीरस्य क्षत्रियस्य प्रतिज्ञातं शिथिलयितुम्।
25. पुण्यवन्तो हि दुःखभाजो भवन्ति।
26. प्रकृतिर्दुस्त्यजा।
27. बन्द्याः खलु गुरवः।
28. ब्राह्मणशोणितं खल्वेतद्गलं दहद्दहत्प्रविशति।
29. भवति तनय! लक्ष्मीः साहसेष्वीदृशेषु ।
30. यदि समरमपास्य नास्ति मृत्यो–
भर्यमिति युक्तमितोऽन्यतः प्रयातुम्।
31. अथ मरणमवश्यमेव जन्तोः किमिति मुधा मलिनं यशः कुरुध्वे।
32. यद्देवस्त्रिभुवननाथो भणति तत्कथमन्यथा भविष्यति।
33. यावत्क्षत्रं तावत्समरविजयिनो जिताः हुताश्च वीराः।
34. यावत्प्राणिहि तावदुपदेष्टव्यभूमिर्विजिगीषुः प्रज्ञावताम्।
35. यावदयं संसारस्तावत्प्रसिद्धैवेयं लोकयात्रा
यत्पुत्रैः पितरो लोकद्वयेऽप्यनुवर्तनीयाः।
36. वक्तुं सुकरं दुष्करमध्यवसितुम्।
37. विश्राव्य नामकर्मणी वन्दनीयाः गुरवः।
38. स एव स्निग्धो जनो यः पृष्टः परुषमपि हितं भणति।
39. स्त्रीणां हि साहचर्याद् भवन्ति चेतांसि भर्तृसदृशानि।
मधुरापि हि मूर्च्छयते विषविटपिसमाश्रिता वल्ली।
40. स्वपंजनाः किं न खलु प्रलपति।
41. हीयमानाः किल रिपोर्नृपाः सन्दधते परान्

•••

c. वेणीसंहारम् नाटक में प्रयुक्त छन्द–

प्रस्तुत नाटक में महाकवि ने कुल अट्ठारह छन्दों का प्रयोग किया है, जिनमें सर्वाधिक 39 बार वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग हुआ है तथा दूसरे स्थान पर शार्दूलविक्रीडितम् आता है, क्योंकि इसका प्रयोग 33 बार हुआ है। यहाँ हम प्रस्तुत नाटक में प्रयुक्त छन्दों का स्थल–निर्देशपूर्वक उल्लेख कर रहे हैं। छन्दों का क्रम प्रयोग संख्या को दृष्टि में रखकर किया गया है–

(1) **वसन्ततिलका–** यह छन्द नाटककार को अत्यधिक प्रिय है, क्योंकि प्रस्तुत नाटक में इस छन्द का नाटककार ने कुल उनतालीस बार प्रयोग किया है, जो इसप्रकार हैं– 1/7, 8, 15, 21, 2/7, 12, 23, 26, 28, 3/10, 12, 13, 15, 21, 29, 30, 40, 44, 4/5, 6, 8, 10, 5/2, 3, 13, 16, 22, 32, 38, 42, 6/4, 9, 21, 22, 23, 30, 34, 35, 38=39 श्लोक

इस छन्द का लक्षण इसप्रकार है–

उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।

अर्थात् इस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः तगण, भगण, जगण, जगण और अन्त में दो गुरु वर्ण होते हैं तथा एक चरण में वर्णों की संख्या कुल चौदह होती है।

उदाहरण–

तगण भगण जगण जगण

SSI SII ISI ISI SS–14 वर्ण

निर्वाणवैरदहनाः प्रशमादरीणां
नन्दन्तु पाण्डुतनयाः सह माधवेन।
रक्तप्रसाधितभुवः क्षतविग्रहाश्च
स्वस्था भवन्तु कुरुराजसुताः सभृत्याः।।1/7।।

(2) **शार्दूलविक्रीडित–** इस छन्द का प्रयोग इस नाटक में कुल तैंतीस बार (1/2, 12, 24, 25, 2/1, 2, 9, 13, 17, 20, 25, 3/5, ,9,

33, 35, 47, 4/1, 12, 5/1, 5, 7, 9, 10, 6/1,7, 12, 13, 16, 17, 19, 27,. 44, 45) हुआ है। इसका लक्षण और उदाहरण इसप्रकार है–

लक्षण– सूर्याश्वैर्मस्जास्तताः स गुरवः शार्दूलविक्रीडितम्।।

अर्थात् इसके प्रत्येक चरण में क्रमशः मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण और अन्त में एक गुरु वर्ण के क्रम से कुल 19 वर्ण होते हैं। 12 एवं 7 वर्णों पर यति होती है।

उदाहरण–

मगण सगण जगण सगण तगण तगण

ऽऽऽ ।।ऽ ।ऽ। ।।ऽ ऽऽ। ऽऽ। ऽ –19वर्ण

युष्मच्छासनलंघनाहसि मया मग्नेन नाम स्थितं
प्राप्ता नाम विगर्हणा स्थितिमतां मध्येऽनुजानामपि।
क्रोधोल्लासितशोणितारुणगदस्योच्छिन्दतः कौरवा–
नद्यैकं दिवसं ममासि न गुरुर्नाहं विधेयस्तव।।1/12।।

(3) **पथ्यावक्त्रम्–** इस छन्द का यहाँ कुल अट्ठाईस बार प्रयोग हुआ है– 1/9, 13, 14, 16, 17, 18, 19, 2/14, 15, 24, 3/14, 17, 18, 26, 31, 36, 37, 41, 42, 48, 4/11, 6/10, 11, 14, 29, 32, 33।

'पथ्यावक्त्र' छन्द का लक्षण इसप्रकार है–

युजोर्जेन सरिद्भर्तुः पथ्यावक्त्रं प्रकीर्तितम्।।

इस छन्द के दूसरे और चौथे पादों में चतुर्थ अक्षर के बाद जगण (।ऽ।) की उपस्थिति होना आवश्यक है, लक्षण में प्रयुक्त 'सरित्भर्तुः' से अभिप्राय समुद्र से ग्रहण करके, इसे चार संख्या का द्योतक माना जाएगा। इसीप्रकार लक्षण में प्रयुक्त 'युजोः' का अर्थ श्लोक के युग्मचरणों अर्थात् द्वितीय एवं चतुर्थ पादों से ग्रहण करेंगे और 'जेन' का अभिप्राय यहाँ जगण से ग्रहण करना चाहिए।

जैसे–

गु तगण यगण ल गु मगण जगण गु

S SS। ।SS । S SSS । S । ।

नित्यं नीतिनिषण्णस्य, राज्ञो राष्ट्रं न सीदति।

ल यगण यगण गु ल मगण जगण गु

। । SS । S S S S SSS । S । S

नहि पथ्याशिनः काये, जायन्ते व्याधिवेदना।।

प्रस्तुत श्लोक में युग्म पादों अर्थात् द्वितीय एवं चतुर्थ पादों में चौथे अक्षरों के बाद 'जगण' का प्रयोग होने से यह **पथ्यावक्त्र छन्द** का उदाहरण हुआ ।

(4) **अनुष्टुप्**– इसे श्लोक भी कहते हैं। इसका लक्षण इसप्रकार है–

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पंचमम्।

द्वि चतुः पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः।।

अर्थात् इस छन्द के प्रत्येक चरण में आठ वर्ण होते हैं और प्रत्येक चरण में पाँचवाँ वर्ण लघु तथा छठा वर्ण गुरु होता है। इसके अलावा दूसरे और चौथे चरणों में सातवाँ वर्ण लघु और पहले, तीसरे चरणों में सातवाँ वर्ण गुरु होता है। प्रस्तुत नाटक में इसका कुल पच्चीस स्थलों पर (1/26, 2/3, 4, 3/43, 46, 49, 4/7, 9, 14, 5/4, 6, 12, 15, 17, 19, 20, 23, 24, 25, 28, 31, 34, 39, 6/6, 15,) प्रयोग हुआ है–

उदाहरण–

। S ।S।

भूयः परिभवक्लान्तिलज्जाविधुरिताननम्।

। S ।S।

अनिःशेषितकौरव्यं न पश्यसि वृकोदरम्।।1/26।।

(5) **स्रग्धरा**– नाटककार ने इसका कुल इक्कीस बार (1/3, 22, 27, 2/19, 22, 27, 3/7, 32, 4/2, 5/26, 29, 30, 35, 36, 37, 6/2, 8, 37, 39, 41, 42) प्रयोग किया है। इसका लक्षण और उदाहरण इस प्रकार है–

लक्षण–म्रभ्नैर्यानां त्रयेन त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्।

इस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः मगण, रगण, भगण, नगण, यगण, यगण, यगण होते हैं। इसप्रकार कुल मिलाकर इसमें 21 वर्ण तथा सात–सात वर्णों पर यति होती है।

उदाहरण–

मगण, रगण, भगण, नगण, यगण, यगण, यगण

ऽऽऽ ऽ।ऽऽ।। ।। । ।ऽऽ ।ऽऽ ।ऽऽ –21वर्ण

मन्थायस्तार्णवाम्भःप्लुतकुहरचलन्मन्दरध्वानधीरः
कोणाघातेषु गर्जत्प्रलयघनघटाऽन्योन्यसंघट्टचण्डः।
कृष्णाक्रोधाग्रदूतः कुरुकुलनिधनोत्पातनिर्घातवातः
केनास्मत्सिंहनादप्रतिरसितसखो दुन्दुभिस्ताडितोऽयम्।।1/22

(6) **मन्दाक्रान्ता–** इस नाटक में इस छन्द का 1/23, 2/8, 11, 18, 3/8, 11, 20, 23, 4/13, 15, 5/33, 6/20, 25, 26, कुल चौदह बार प्रयोग हुआ है। इसका लक्षण इसप्रकार है–

मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैर्म्भौ नतौ ताद् गुरू चेत्।

इस छन्द के प्रत्येक चरण में एक मगण, एक भगण, एक नगण, और दो तगण तथा अन्त में दो गुरु का प्रयोग होता है तथा चार, छः एवं सात अक्षरों पर यति का प्रयोग किया जाता है तथा इसमें कुल सत्रह अक्षर होते हैं।

उदाहरण–

मगण भगण नगण तगण तगण गु गु

ऽऽऽ ऽ।। ।।। ऽऽ। ऽऽ। ऽऽ

आत्मारामा विहितरतयो निर्विकल्पे समाधौ
ज्ञानोत्सेकाद्विघटिततमोग्रन्थयः सत्त्वनिष्ठाः।
यं वीक्षन्ते कमपि तमसां ज्योतिषां वा परस्तात्
तं मोहान्धः कथमयममुं वेत्तु देवं पुराणम्।।1/23।।

(7) **शिखरिणी–** इन नाटक में इस छन्द का कुल तेरह बार (1/1, 10, 11, 3/16, 19, 22, 25, 38, 45, 6/5, 28, 31, 40) प्रयोग हुआ है। इसके प्रत्येक चरण में क्रमशः यगण, मगण, नगण, सगण, भगण होते हैं।

अन्त में लघु और गुरु होता है। कुल 17 वर्ण होते हैं तथा 6 और 11 पर यति होती है। इसका लक्षण एवं उदाहरण इसप्रकार है–

लक्षण– रसैः रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी।

उदाहरण–

यगण मगण नगण सगण भगण लघु गुरु

।ऽऽ ऽऽऽ ।।। ।। ऽ ऽ।। । ऽ –17वर्ण

परित्यक्ते देहे रणशिरसि शोकार्तमनसा,
शिरः श्वा काको वा द्रुपदतनयो वा परिमृशेत्।
स्फुरद्दिव्याऽस्त्रौघद्रविणमदमत्तस्य च रिपो–
र्मयैवाऽयं पादः शिरसि निहितस्तस्य सहसा।।3/22।।

(8) **मालिनी–** प्रस्तुत नाटक में इस छन्द का केवल सात बार (2/16, 3/40, 5/21, 27, 40, 6/36, 43,) प्रयोग हुआ है। इसका लक्षण इसप्रकार है–

लक्षण– ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः।

अर्थात् इसके प्रत्येक चरण में नगण, नगण, मगण, यगण, यगण के क्रम से कुल पन्द्रह वर्णों का प्रयोग होता है। इस छन्द में माधुर्य गुण की प्रधानता रहती है–

उदाहरण–

नगण नगण मगण यगण यगण

।।।।। । । ऽऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ कुल–15 वर्ण

कथमपि न निषिद्धो दुःखिना भीरुणा वा
द्रुपदतनयपाणिस्तेन पित्रा ममाऽद्य।
तव भुजबलदर्पाध्मायमानस्य वामः
शिरसि चरण एष न्यस्यते वारयैनम्।।3/40।।

(9). **आर्या–** इस छन्द का यहाँ कुल छः बार (1/4, 5, 6, 20, 5/11, 18) प्रयोग हुआ है, इसका लक्षण और उदाहरण इसप्रकार है–

लक्षण– यस्या पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि।

अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पंचदश साऽऽर्या।।

अर्थात् इस छन्द के प्रथम पाद में 12 दूसरे में 18 तथा तीसरे में पुनः12 तथा चौथे पाद में 15 मात्राएँ होती हैं।

उदाहरण–

श्रवणांजलिपुटपेयं विरचितवान्भारताख्यममृतं यः।
तमहमरागमकृष्णं कृष्णद्वैपायनं वन्दे।।1/4।।

(10). **हरिणी–** नाटककार ने इस छन्द का यहाँ कुल पाँच बार (3/24, 5/8, 41, 6/4, 46) प्रयोग किया है। इसके प्रत्येक चरण में क्रमशः नगण, सगण, मगण, रगण, सगण और एक–एक लघु और गुरु के क्रम से कुल 17 वर्ण होते हैं तथा 6, 4, 7 पर यति होती है। इसका लक्षण और उदाहरण इसप्रकार है–

लक्षण– नसमरसला गः षड्वेदैर्हयै र्हरिणी मता।

उदाहरण–

नगण सगण मगण रगण, सगण ल.गु.
I II IIS SSS SIS II SI S– 17 वर्ण

कृतमनुमतं दृष्टं वा यैरिदं गुरुपातकं
मनुजपशुभिर्निर्मर्यादैर्भवद्भिरुदायुधैः
नरकरिपुणा सार्धं तेषां सभीमकिरीटिना–
मयमहमसृङ्मेदोमांसैः करोमि दिशां बलिम्।।3/24।।

(11) **पृथ्वी–** प्रस्तुत नाटक में इस छन्द का 3/4, 34, 6/18 कुल तीन बार प्रयोग हुआ है। इसका लक्षण एवं उदाहरण इसप्रकार है–

लक्षण–जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः।।

इस छन्द के प्रत्येक चरण में एक जगण, एक सगण, एक जगण, एक सगण, एक यगण अन्त में एक लघु एक गुरु का प्रयोग होने के कारण इसमें कुल सत्रह अक्षर होते हैं तथा आठ(वसु) तथा नौ(ग्रह) के बाद 'यति' अर्थात् 'विराम' का प्रयोग करते हैं।

उदाहरण–

जगण सगण जगण सगण यगण लगु

ISI IIS ISI IIS ISS IS

महाप्रलयमारुतक्षुभितपुष्करावर्तक–
प्रचण्डघनगर्जितप्रतिरवानुकारी मुहुः।
रवः श्रवणभैरवः स्थगितरोदसीकन्दरः
कुतोऽद्य समरोदधेरयमभूतपूर्वः पुरः।।3/4।।

(12) **पुष्पिताग्रा–** प्रस्तुत छन्द के प्रथम और तृतीय चरणों में नगण, नगण, रगण, यगण के क्रम से कुल 12 वर्ण तथा द्वितीय और चतुर्थ चरणों में नगण, जगण, जगण, रगण और अन्त में एक गुरु के क्रम से कुल 13 वर्ण होते हैं। विवेच्य नाटक में इसका कुल दो बार (3/6, 4/3) प्रयोग हुआ है। इसका लक्षण एवं उदाहरण इसप्रकार है–

लक्षण– अयुजि नयुगरेफतो यकारो।
युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा।

उदाहरण–

नगण नगण रगण यगण

III III SIS ISS –12वर्ण

यदि समरमपास्य नास्ति मृत्यो–

नगण, जगण, जगण, रगण

III ISI ISI SIS S – 13 वर्ण

भयमिति युक्तमितोऽन्यतः प्रयातुम्।
अथ मरणमवश्यमेव जन्तोः
किमिति मुधा मलिनं यशः कुरुध्वे।।3/6।।

(13) **प्रहर्षिणी–** इस छन्द का यहाँ दो बार (2/29, 3/27) प्रयोग हुआ है। इसके प्रत्येक चरण में क्रमशः मगण, नगण, जगण, रगण तथा अन्त में एक गुरु कुल 13 वर्ण होते हैं तथा तीन और दस पर यति होती है। इसका लक्षण और उदाहरण इसप्रकार है–

लक्षण– त्र्याशाभि र्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम्।

उदाहरण–

मगण, नगण जगण, रगण गुरु
SSS ।।। ।S। S।S S– कुल 13 वर्ण

तेजस्वी रिपुहतबन्धुदुःखपारं,
बाहुभ्यां व्रजति धृतायुधप्लवाभ्याम्।
आचार्यः सुतनिधनं निशम्य संख्ये
किं शस्त्रग्रहणसमये विशस्त्र आसीत्।।3/27।।

(14) **ललिता–** प्रस्तुत विवेच्य नाटक में इस छन्द का कुल दो बार 2/5, 6 प्रयोग हुआ है। इसका उदाहरण एवं लक्षण इसप्रकार है–

ससजाविषमे यदागुरु सभरास्याल्ललिता समे लगौ।।

अर्थात् इस छन्द के विषम चरणों में क्रमशः सगण, सगण, जगण और एक गुरु का प्रयोग करते हैं। इसप्रकार इन चरणों में कुल दस–दस अक्षर होते हैं। पाद के अन्त में 'यति' का प्रयोग किया जाता है, जबकि सम चरणों में सगण, भगण, रगण तथा अन्त में लघु गुरु होता है तथा कुल ग्यारह वर्ण होते हैं।

उदाहरण–

सगण सगण जगण गुरु सगण भगण रगण लघु गुरु
।।S ।।S ।S। S ।।S S।। S।S ।S

सहभृत्यगणं सबान्धवं सहमि त्रंससु तंसहानुजम्।
स्वबलेन निहन्ति संयुगे न चिरात्पाण्डुसुतः सुयोधनम्।2/5

(15) **मँजुभाषिणी–** हमारे विवेच्य नाटक में यह छन्द कुल दो बार 3/39, 5/14 प्रयुक्त हुआ है। इसका लक्षण एवं उदाहरण इस प्रकार है–

लक्षण– सजसा जगौ भवति मंजुभाषिणी।।

इस छन्द के प्रत्येक चरण में **एक सगण, एक जगण, एक सगण, एक जगण अन्त में एक गुरु** प्रयोग होता है, इस कारण इसे

'मंजुभाषिणी' कहा जाता है। इसमें कुल तेरह अक्षर होते हैं तथा पाँच और आठ पर 'विराम' का प्रयोग करते हैं।

उदाहरण–

सगण जगण सगण जगण गु
। । S । S । । । S । S । S

यदि शस्त्रमुज्झितमशस्त्रपाणयो
न निवारयन्ति किमरीनुदायुधान्।
यदनेन मौलिदलनेऽप्युदासितं
सुचिरं स्त्रियेव नृपचक्रसन्निधौ।।3/39।।

(16) **उपजाति–** उपेन्द्रवज्रा एवं इन्द्रवज्रा के मिश्रण से उपजाति छन्द का निर्माण होता है। प्रस्तुत नाटक में इसका केवल एक बार (3/1) ही प्रयोग हुआ है। इसका लक्षण और उदाहरण इसप्रकार है–

लक्षण– स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः,
उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौः।
अनन्तरोदीरित लक्ष्मभाजौ,
पादौ यदीयावुपजातयस्ताः।।

अर्थात् इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा इन दोनों छन्दों के मिश्रण से इस छन्द का निर्माण होता है। इसके किसी चरण में उपेन्द्रवज्रा तो किसी दूसरे चरण में इन्द्रवज्रा छन्द का प्रयोग करते हैं। इन्द्रवज्रा छन्द में तगण, तगण, जगण और अन्त में दो गुरु के क्रम से कुल 11 वर्ण होते हैं–

"स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः"

इसीप्रकार उपर्युक्त लक्षण के अनुसार उपेन्द्रवज्रा छन्द में जगण, तगण, जगण तथा अन्त में दो गुरु(**जतजास्ततो गौः**) वर्णों के क्रम से कुल ग्यारह वर्णों का प्रयोग किया जाता है।

उदाहरण–

तगण तगण जगण दो गुरु
S S । S S । । S । S S इन्द्रवज्रा

ज्ञेया रहः शंकितमालपन्तः

सुप्ता रुगार्ता मदिराविधेयाः।
त्रासो मृगाणां, वयसां विरावो

जगण तगण जगण दो गुरु
। S । S S । । S । S S उपेन्द्रवज्रा

नृपांकपादप्रतिमाश्च यत्र।।6/3।।

(17) **औपच्छन्दसिकम्**– इस नाटक में कुल एक बार 2/10 इस छन्द का लक्षण इसप्रकार है–

जिस छन्द के अन्त में रगण और यगण हों, छन्दशास्त्र के विद्वानों द्वारा इसे 'औपच्छन्दसिक' कहा गया है

कहने का तात्पर्य है कि यदि वैतालीय छन्द में प्रयुक्त विषम पादों की छः मात्राओं के बाद और सम पादों में आठ मात्राओं के बाद रगण और यगण क्रमशः हों, तो यह छन्दःशास्त्र के विद्वानों द्वारा 'औपच्छन्दसिक' कहा गया है। दूसरे शब्दों में, यदि वैतालीय छन्द के अन्त में एक गुरु और जोड़ दिया जाए, तो यही वैतालीय **'औपच्छन्दसिक'** छन्द हो जाता है।

उदाहरण–

छः मात्रा रगण यगण 8 मात्राएँ रगण यगण
S S । । S । S । S S S S S । । S । S । S S

वाक्यैर्मधुरैः प्रतार्य पूर्व, यःपश्चादभि सन्दधाति मित्रम्।

छः मात्रा रगण यगण 8 मात्राएँ रगण यगण
S S । । S । S । S S S S S । । S । S । S S

तं दुष्टमतिं विशिष्टगोष्ठ्यामौपच्छन्दसिकं वदन्ति बाह्याः।।

उपर्युक्त उदाहरण में विषम पादों अर्थात् प्रथम एवं तृतीय में आरम्भिक छः मात्राओं के बाद क्रमशः रगण प्रयुक्त होने के बाद स्थित लघु, गुरु के बाद एक और गुरु का प्रयोग करने पर 'यगण' की निर्मिति हो गयी है। इसीप्रकार सम पादों अर्थात् द्वितीय एवं चतुर्थ में आरम्भिक आठ मात्राओं के बाद रगण का प्रयोग हुआ था, उसके बाद प्रयुक्त होने वाले लघु–गुरु के बाद एक 'गुरु' का प्रयोग करने पर 'यगण' की निर्मिति हो गयी है।

इसप्रकार वैतालीय की क्रमशः 14, 16 मात्राएँ यहाँ 'औपच्छ–न्दसिक' में क्रमशः 16 और 18 मात्राएँ हो गयी हैं। अतः यह स्पष्टरूप से यह 'औपच्छन्दसिक' छन्द का लक्षण हुआ, जिसे वैतालीय का ही एक भेद माना गया है।

इयमस्मदुपाश्रयैकचित्ता
मनसा प्रेमनिबद्धमत्सरेण।
नियतं कुपितातिवल्लभत्वात्
स्वयमुत्प्रेक्ष्य ममापराधलेशम्।।2/10।।

(18) **द्रुतविलम्बितम्–** प्रस्तुत नाटक में कुल एक बार 2/21 प्रयुक्त इस छन्द का लक्षण इसप्रकार है–

लक्षण– द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ।

इस छन्द के प्रत्येक चरण में एक नगण, दो भगण तथा एक रगण प्रयोग होने के कारण इसमें कुल बारह अक्षर होते हैं, इसके पाद के अन्त में विराम होता है।

उदाहरण–

नगण भगण भगण रगण नगण भगण भगण रगण
I I I S I I S I I S I S I I I S I I S I I S I S
कुरु घनोरु पदानि शनैः शनै रयि! विमुंच गतिं परिवेपिनीम्।
सुतनु! बाहुलतोपनिबन्धनं मम निपीडय गाढमुरःस्थलम्।।2/21

•••

d. परीक्षा में प्रष्टव्य लघु प्रश्न–

1. वेणीसंहार नाटकम् के नायक का नाम?
2. वेणीसंहार नाटकम् में कितने अंक है?
3. वेणीसंहार नाटक के रचयिता का नाम ?
4. इस नाटक के नायक के पिता का नाम?
5. नाटक के नायक की पत्नी का नाम?
6. नाटक के नायक के बड़े भाई का नाम?

7. नाटक में प्रयुक्त दुर्योधन के कंचुकी का नाम?
8. नाटक में प्रयुक्त युधिष्ठिर के कंचुकी का नाम?
9. नाटक के नायक के प्रमुख शत्रु का नाम?
10. नायक की माता का नाम?
11. प्रतिनायक की माता का नाम?
12. प्रतिनायक के पिता का नाम?
13. नाटक के लेखक का काल?
14. भट्टनारायण की कृति का नाम?
15. भट्टनारायण की उपाधि का नाम?
16. भट्टनारायण के मूल जन्मस्थान का नाम?
17. भट्टनारायण की कर्मस्थली का नाम?
18. भट्टनारायण को बंगाल में किस राजा ने आमन्त्रित किया?
19. आदिशूर ने कवि को बंगाल में किसलिए आमन्त्रित किया?
20. कान्यकुब्ज से कितने ब्राह्मणों को बंगाल बुलाया गया?
21. दुर्योधन भानुमती के साथ किस प्रासाद पर गया?
22. दुर्योधन की बहन का नाम?
23. दुर्योधन के दामाद का नाम?
24. द्रोणाचार्य के पुत्र का नाम?
25. कर्ण का पालन करने वाली माता का नाम?
26. अश्वत्थामा के पिता का नाम?
27. अश्वत्थामा को शस्त्र उठाने से किसके द्वारा रोका जाता है?
28. दुर्योधन के सारथि का नाम?
29. कर्ण की मृत्यु का समाचार लेकर दुर्योधन के पास आता है?
30. भीम से बचने के लिए दुर्योधन कहाँ पर छिप जाता है?
31. दुर्योधन का पता किसके प्रयत्नों से चलता है?

32. अन्त में कौन युधिष्ठिर तथा द्रौपदी को भ्रमित करता है?

33. भानुमती अनिष्ट निवारण के लिए किसकी पूजा करती है?

34. अर्जुन के धनुष का नाम?

35. भीमसेन का अन्य नाम?

36. दूतकार्य के लिए दुर्योधन की सभा में कौन गया?

37. सन्धि में पाण्डवों की ओर से क्या माँगा गया?

38. सूत्रधार ने पारिपार्श्विक से किस ऋतु को आधार बनाकर गीत गाने को कहा?

39. भानुमती की तीन विशेषताओं का कथन कीजिए?

40. नाटक के अन्त में प्रयुक्त 'भरत–वाक्य' का प्रयोग, किस पात्र द्वारा किया गया है?

41. सन्धि में माँगे गए चार गाँवों के नाम?

42. तृतीय अंक में प्रयुक्त राक्षसी का नाम?

43. तृतीय अंक में प्रयुक्त राक्षस का नाम?

44. घटोत्कच की माता का नाम?

45. घटोत्कच के पिता का नाम?

46. द्रोणाचार्य का वध करने वाले का नाम?

47. द्रोणाचार्य के सारथी का नाम?

48. युधिष्ठिर की माता का नाम?

49. अश्वत्थामा के मामा का नाम?

50. राधेय कर्ण के गुरु का नाम?

51. कर्ण के पुत्र का नाम?

52. दुर्योधन किस क्रिया के सहयोग से तालाब में छिप गया?

53. अर्जुन ने किस धनुष से वृषसेन का वध किया?

54. परशुराम ने पृथ्वी को कितनी बार क्षत्रियों से रहित किया?

•••

<u>डॉ. राकेश शास्त्री द्वारा लिखी हमारे प्रकाशन की पुस्तकें</u>

1. **तर्कभाषा**, डायग्रामिक 'चन्द्रिका' व्याख्या **पृष्ठ–562**
2. **अर्थसंग्रह**, डायग्रामिक 'चन्द्रिका' व्याख्या, **पृष्ठ–379**
3. **योगसूत्रम्**, डायग्रामिक 'चन्द्रिका' व्याख्या, **पृष्ठ–512**
4. **नाटककार कालिदास**, कालिदासत्रय का प्रतिपादक, **पृष्ठ–625**
5. **प्रतिमा नाटकम्**, विस्तृत भूमिका, अनुवाद, 'चन्द्रिका' व्याख्या **पृष्ठ–453**
6. **रत्नावली नाटिका**, विस्तृत भूमिका, अनुवाद, 'चन्द्रिका' व्याख्या, **पृष्ठ–487**
7. **मुद्राराक्षस नाटकम्**, विस्तृत भूमिका, अनुवाद,'चन्द्रिका' व्याख्या, **पृष्ठ–589**
8. **पंचस्वराः**, विस्तृत भूमिका डायग्रामिक 'चन्द्रिका' व्याख्या, **पृष्ठ–332**
9. **चाणक्य–नीति**, विस्तृत भूमिका, अनुवाद, 'चन्द्रिका' व्याख्या **पृष्ठ–530**
10. **भुवन–दीपक**, विस्तृत भूमिका, डायग्रामिक 'चन्द्रिका' व्याख्या, **पृष्ठ–332**
11. **वृत्तरत्नाकर**, विस्तृत भूमिका, डायग्रामिक 'चन्द्रिका' व्याख्या **पृष्ठ–343**
12. **मनुष्यालय–चन्द्रिका**, विस्तृत भूमिका, 'चन्द्रिका' व्याख्या, **पृष्ठ–357**
13. **ज्योतिष–दिग्दर्शिका**, विस्तृत भूमिका, डायग्रामिक 'चन्द्रिका' **पृष्ठ–324**
14. **संस्कृत–अन्त्याक्षरी चन्द्रिका**, 500 से अधिक श्रेष्ठ श्लोकसंग्रह, **पृष्ठ–121**
15. <u>**शांखायन ब्राह्मण** (दो खण्डों में), विस्तृत भूमिका, हिन्दीअनुवाद</u> **पृष्ठ–713**
16. **पाणिनीय–शिक्षा**, विस्तृत भूमिका, डायग्रामिक 'चन्द्रिका' **पृष्ठ–138**
17. **सांख्य–दर्शनम्**,भूमिका सांख्य–ग्रन्थों पर आधारित संदर्भग्रन्थ, **पृष्ठ–288**
18. **कठोपनिषद्** (सम्पूर्ण), भूमिका, शांकरभाष्य सहित 'चन्द्रिका' **पृष्ठ–316**
19. **मार्कण्डेय महापुराणम्**, विस्तृत भूमिका, हिन्दी–अनुवाद, **पृष्ठ–872**
20. **काव्यप्रकाश** (दो खण्डों में), डायग्रामिक 'चन्द्रिका' व्याख्या **पृष्ठ–1304**
21. **काव्यदीपिका** (सम्पूर्ण)विस्तृत भूमिका, डायग्रामिक 'चन्द्रिका' **पृष्ठ–448**
22. **कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषद्** विस्तृत भूमिका, हिन्दी–अनुवाद, **पृष्ठ–208**
23. **ऐतरेय उपनिषद्** भूमिका, शांकर–भाष्य सहित 'चन्द्रिका' **पृष्ठ–200**
24. **आपस्तम्ब धर्मसूत्रम्** विस्तृत भूमिका, पदच्छेद, 'चन्द्रिका' **पृष्ठ–984**
25. **वासवदत्ता** विस्तृत भूमिका, पदच्छेद, 'चन्द्रिका' व्याख्या, **पृष्ठ–504**
26. **कादम्बरी कथामुखम्** विस्तृत भूमिका, पदच्छेद, 'चन्द्रिका' **पृष्ठ–584**
27. **दर्शनशास्त्र का अंतरंग इतिहास**, नौ दर्शनों का सरल परिचय **पृष्ठ– 672**
28. **शतकचतुष्टयम् भर्तृहरि** विस्तृत भूमिका, मूल अन्वय अनुवाद **पृष्ठ– 360**
29. **मेघदूतम्**, विस्तृत भूमिका,अन्वय, अनुवाद, 'चन्द्रिका' व्याख्या **पृष्ठ– 464**
30. **वेणीसंहार** विस्तृत भूमिका,अन्वय, अनुवाद, 'चन्द्रिका' व्याख्या **पृष्ठ– 536**

***

लेखक परिचय

नाम : डॉ. राकेश शास्त्री

शिक्षा : हाईस्कूल (1971), इण्टरमीडिएट (1973) प्रथम श्रेणी (यू. पी. बोर्ड), बी.ए. (ऑनर्स संस्कृत) (1975) मेरठ विश्वविद्यालय की योग्यता सूची में छठवाँ स्थान, महाविद्यालय स्वर्णपदक, एम.ए. (संस्कृत-साहित्य वैशिष्ट्य), (1977), प्रथम श्रेणी, पी-एच.डी. (1981) वेद, पुराणेतिहासाचार्य (1984) सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, वि.वि. योग्यता सूची में प्रथम स्थान, विश्वविद्यालय स्वर्णपदक, साहित्याचार्य (प्रथम श्रेणी), डी.लिट् (2013), (राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।)

अनुभव : सेवानिवृत्त अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग, श्री गोविन्द गुरु राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बाँसवाड़ा (राज.) लगभग 29 वर्ष राजस्थान सरकार की उच्चशिक्षा सेवा, एम. फिल्, पी-एच.डी के छात्रों को निर्देशन। गुरुकुल काँगडी विश्वविद्यालय, हरिद्वार के संस्कृत-विभाग में लगभग 5 वर्ष अध्यापन, वैदिक एवं पौराणिक रिसर्च इन्सटीट्यूट नैमिषारण्य (सीतापुर) उ.प्र. में शोध-सहायक 2 वर्ष।

ग्रन्थ लेखन : ऋग्वेद के निपात, मार्कण्डेय महापुराण (हिन्दी अनुवाद), मनुस्मृति (सम्पूर्ण दो खण्डों में), वेदान्तसार, सांख्यकारिका, तर्कसंग्रह, तर्कभाषा, अर्थसंग्रह, योगसूत्र, भारतीय दर्शन की मूल अवधारणाएँ, स्नातक संस्कृत सरला, सुगम संस्कृत व्याकरण आदि दर्शन एवं व्याकरण ग्रन्थों की डायग्रामिक सरल हिन्दी व्याख्या, अभिज्ञान शाकुन्तलम्, स्वप्नवासवदत्तम्, मुद्राराक्षसम्, नागानन्दम्, प्रतिमा नाटकम्, रत्नावली नाटिका आदि नाटकों का सरल हिन्दी अनुवाद एवं 'चन्द्रिका' हिन्दी व्याख्या, बृहद्वृक्सूक्त चन्द्रिका, ऋक्सूक्त चन्द्रिका, बृहदारण्यकोपनिषद्, कठोपनिषद्, ऐतरेय उपनिषद् और कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषद्, शांखायन ब्राह्मण (1-2 भाग) आदि वैदिक ग्रन्थों की सरल प्रस्तुति, ज्योतिष दिग्दर्शिका, पंचस्वराः, मनुष्यालय चन्द्रिका, भुवन दीपक, आदि ज्योतिष एवं वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों की डायग्रामिक सरल प्रस्तुति। महाभारतकार एवं कालिदास की काव्यकला, नाटककार कालिदास, कालिदास की काव्यचेतना, कालिदास की वैज्ञानिक दृष्टि, कालिदास की उपमा-योजना आदि उच्च कोटि के संदर्भ शोध ग्रन्थों के प्रणेता, संस्कृत निबन्ध चन्द्रिका, संस्कृत बोध-कथा मंजरी, संस्कृत नाट्य निकुंजम्, संस्कृत कविता मंजरी, संस्कृत कथा मंजरी आदि 81 से भी अधिक मौलिक एवं व्याख्या ग्रन्थों के लेखक।

शोध पत्र : प्रसिद्ध शोध पत्र-पत्रिकाओं एवं अभिनन्दन ग्रन्थों में 65 से अधिक शोध निबन्ध प्रकाशित, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय शोध-संगोष्ठियों में 50 से अधिक शोधलेख पठित, सत्रों की अध्यक्षता एवं मुख्यवक्ता।

पुरस्कार व संदर्भ ग्रन्थों में नामोल्लेख : आदिवासी जनजाति क्षेत्र बाँसवाडा में पूर्णतया समर्पित संस्कृत प्रचार-प्रसार के लिए राष्ट्रीय, राज्यस्तरीय तथा स्थानीय स्तर पर लगभग 25 से अधिक पुरस्कारों से सम्मानित तथा राष्ट्रीय, राज्यस्तरीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय संदर्भ ग्रन्थों में नामोल्लेख।

चौखम्भा ओरियन्टालिया

प्राच्यविद्या, आयुर्वेद तथा दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक

बंग्लो रोड, 9-यू.बी., जवाहर नगर (निकट कमला नगर) दिल्ली-7 (भारत)

फोन : 011-40230818, 9910289743

E-mail : chaukhambhaorientalia@gmail.com